द्वितीयः परिच्छेदः

(अलङ्कारविवेचनम्)

काव्यशोभाकरान्[1] धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्न्र्येन[2]वक्ष्यति ।।१।।

अन्वय— काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते । ते च आद्यापि विकल्प्यन्ते, तान् कात्स्न्र्येन कः वक्ष्यति ।

शब्दार्थ— काव्यशोभाकरान् = काव्य की शोभा (चमत्कार, रमणीयता) को सम्पादित करने वाले, काव्य के शोभाधायक। धर्मान् = धर्मों को, गुण-विशेष को। अलङ्कारान् = अलङ्कार। प्रचक्षते = कहा जाता है। ते च = और वे (अलङ्कार)। अद्यापि = आज भी, अब तक भी। विकल्प्यन्ते = (विविध रूप से) उद्भावित किये जा रहे हैं, कल्पित किये जा रहे हैं। तान् = उन (विविधरूप वाले) (अलङ्कारों) को। कात्स्न्र्येन = पूर्णरूप से। कः = कौन (व्यक्ति)। वक्ष्यति = कह सकता है, निरूपित (विवेचित) कर सकता है, विवेचन करने में समर्थ हो सकता है।

अनुवाद— काव्य (के शरीर) की शोभा (चमत्कार, रमणीयता) को सम्पादित करने के वाले धर्मों (गुण-विशेषों) को अलङ्कार कहा जाता है। वे (अलङ्कार) आज भी (विविध रूप से) उद्भावित (कल्पित) किये जा रहें हैं। अतः उन (विविधरूप वाले) अलङ्कारों को पूर्णरूपेण कौन (व्यक्ति) निरूपित (विवेचित) कर सकता है।

संस्कृतव्याख्या— प्रथमे परिच्छेदे काव्यशरीरं गुणाँश्च निरूप्यात्र अलङ्कारान् विवेचयति- **काव्येति । काव्यशोभाकरान्** काव्यस्य इष्टार्थव्यवच्छिन्नपदावलीरूपस्य काव्यशरीरस्य शोभा सौन्दर्यं चमत्कारवैचित्र्यमित्यर्थः, तत्करान् तद्विधायकान् **धर्मान्** गुणविशेषान् **अलङ्कारान् प्रचक्षते** कथयन्ति । यथा कटककुण्डलादिना शरीरस्य शोभां विदधति तथैव अनुप्रासाद्यलङ्कारेण काव्यशरीरं सुशोभयति । **ते च** अलङ्कारा **अद्यापि** साम्प्रतिककालेऽपि **विकल्पयन्ते** विविधकल्पनाभिः नवनवाः उद्भाव्यन्ते अलङ्कारविज्ञैरिति शेषः । अत एव **तान्** अलङ्कारान् **कात्स्न्र्येन** पूर्णरूपेण साकल्येन वा **कः**

---

(१) काव्ये शोभाकरान् ।

(२) कात्स्नेंन ।

व्यक्तिः **वक्ष्यति** विवेचयिष्यति । विविधकल्पनाद्वारा उद्भावितानाम् अलङ्काराणां सङ्ख्यां निर्धारयितुं कोऽपि जनः समर्थः नास्तीति भावः ।

विशेष—

(१) प्रथम परिच्छेद में काव्यस्वरूप, उसके गुणों तथा हेतुओं का निरूपण करने के पश्चात् द्वितीय परिच्छेद में काव्यशरीर को अलंकृत (चमत्कृत) करने वाले धर्मविशेष अलङ्कार का निरूपण किया जा रहा है।

(२) काव्य के शोभाधायक धर्मविशेष को अलङ्कार कहा जाता है।

(३) वामन के अनुसार– 'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः । तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः' अर्थात् काव्य के सौन्दर्याधायक धर्म गुण कहलाते हैं, और उसके अतिशय के हेतु (समृद्धि के हेतु, अतिशायक) धर्म अलङ्कार कहलाते हैं। इस प्रकार वामन ने गुण-अलङ्कार का भेद निर्दिष्ट किया है किन्तु दण्डी ने यह भेद-निर्देश नहीं किया है। सम्भवतः उनके मत में गुण और अलङ्कार में कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

(४) उत्तरवर्ती आचार्यों ने गुण और अलङ्कार के भेद को अधिक सुस्पष्ट किया है। विश्वनाथ के अनुसार काव्यात्मभूत रस के उत्कर्षाधायक नित्य धर्मों को गुण तथा काव्यशरीरभूत शब्द और अर्थ के अतिशयशोभाधायक अस्थिर धर्मों को अलङ्कार कहा जाता है– रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माशौर्यादयो यथा । गुणा .... (सा०द० ८.१) शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः । रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् (सा०द० १०।१)।

(५) संस्कृत काव्यशास्त्र में अलङ्कारों के विविधरूपों और उनके भेदोपभेद की कल्पना करने से दिन प्रतिदिन नये-नये अलङ्कार उद्भावित हो रहें हैं। इस प्रकार इनकी सङ्ख्या इतनी असीमित है कि सभी का समग्ररूपेण निरूपण नहीं किया जा सकता।

किन्तु बीजं विकल्पानां पूर्वाचार्यैः प्रदर्शितम्[१] ।
तदेव प्रति[२]संस्कर्त्तुमयमस्तत्परिश्रमः ।।२।।

अन्वय— किन्तु पूर्वाचार्यैः विकल्पानां बीजं प्रदर्शितम् । तत् एव परिसंस्कर्तुम् अयम् अस्मत्परिश्रमः (विद्यते) ।

---

(१) प्रकल्पितः ।

(२) प्रति ।

शब्दार्थ— किन्तु = परन्तु। पूर्वाचार्यैः = पूर्ववर्ती (भरत आदि) आचार्यों द्वारा। विकल्पानां = कल्पनाओं का, उद्भावनाओं का। बीजं = बीज, मूल, जड़। प्रदर्शितं = निर्दिष्ट किया गया है, प्रतिपादित किया गया है। तत् एव = उसी (बीज) को ही। परिसंस्कर्तुं = स्पष्ट (परिष्कार, परिसंस्कार) करने के लिए। अयं = यह। अस्मत्परि-श्रमः = हमारा परिश्रम (प्रयास) है।

अनुवाद— परन्तु पूर्ववर्ती (भरत इत्यादि) आचार्यों द्वारा (अलङ्कार-विषयक विविध) कल्पनाओं (उद्भावनाओं) का बीज (मूल) (तत्तत् स्वकीय नाट्यशास्त्र इत्यादि ग्रन्थों में) निर्दिष्ट (प्रतिपादित) किया गया है। उसी (बीज) को ही स्पष्ट (परिष्कार) करने के लिए हमारा यह प्रयास (परिश्रम) (किया गया है)।

संस्कृतव्याख्या— विविधप्रकारस्य विकल्पितालङ्कारस्य विवेचनस्य असम्भव-त्वेऽपि तद्विकल्पसामान्यरूपस्य विवेचनं सम्भवमिति निरूपयत्यत्र- **किन्त्विति**। **किन्तु** परञ्च **पूर्वाचार्यैः** भरतादिभिः **विकल्पानां** विविधकल्पनोद्भावितानाम् अलङ्काराणां **बीजं** सामान्यं मूलं **प्रदर्शितं** स्वस्वप्रतिपादितग्रन्थे नाट्यशास्त्रादौ निरूपितम्। **तत् एव** तद्बीजमेव **परिसंस्कर्तुं** स्फुटीकर्तुम् **अयम्** एषः **अस्मत्परिश्रमः** ग्रन्थप्रणयनरूपो अस्माकं परिश्रमः प्रयासः, क्रियते इति शेषः। यथा नवीनैः उद्भावितानाम् उपमादि-भेदानां बीजं भरतेनोपन्यस्तं तद्भेदास्तु तदेव बीजमाश्रित्य अन्यैः आचार्यैः कल्पिताः। तादृशमेव बीजमन्विष्य अहमपि तत्स्पष्टीकरणार्थं प्रयासरतः अस्मि।

विशेष—

(१) अलङ्कारों के विविध रूपों उनके भेदोपभेद की नई-नई कल्पनाएँ काव्यशास्त्री करते हैं जिससे अलङ्कारों की सङ्ख्या के विषय में सादृश्य नहीं रह जाता और उद्भावनाओं के आधार पर अलङ्कारों के विविध भेद स्वीकार कर लिये जाते हैं।

(२) विकल्पों के आधार पर उद्भावित अलङ्कारों की विविधता का निरूपण यद्यपि पूर्ण-रूपेण असम्भव है तथापि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा बीजरूप में निरूपित अलङ्कारों को स्पष्ट रूप से बतलाने का प्रयास किया जा रहा है।

काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलङ्क्रियाः।
साधारणमलङ्कारजातमन्यत्[१] प्रदर्श्यते[२] ।।३।।

अन्वय— काश्चित् अलङ्क्रियाः मार्गविभागार्थं प्राक् उक्ताः। अन्यत् साधारणम् अलङ्कारजातं प्रदर्श्यते।

---

(१) अद्य।

(२) प्रकाश्यते।

शब्दार्थ— काश्चित् = कुछ (विशेष)। अलङ्क्रियाः = अलङ्कार । मार्गविभागार्थं = मार्ग-विभाजन के लिए, मार्ग-भेद का प्रदर्शन करने के लिए, मार्ग-विभाजन के प्रसङ्ग में। प्राक् = पहले। उक्ताः = बतलाये जा चुके हैं, निरूपित किये जा चुके हैं। अन्यत् = (उनसे) अन्य। साधारणं = सामान्य, साधारण, सर्वसम्मत, दोनों मार्ग वालों को स्वीकृत। अलङ्कारजातं = अलङ्कार-समूह को। प्रदर्श्यते = प्रदर्शित (निरूपित, विवेचित) किया जा रहा है।

अनुवाद— कुछ (विशेष अनुप्रास इत्यादि) अलङ्कार मार्ग-विभाजन के प्रसङ्ग में पहले बतलाये (निरूपित किये) जा चुके हैं। (यहाँ उससे) अन्य साधारण (सर्वसम्मत, दोनों मार्गो को स्वीकृत) अलङ्कार-समूह को प्रदर्शित (निरूपित) किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— सम्प्रति साधारणालङ्कारनिरूपणम् उपक्रमति– **काश्चिदिति** । **काश्चित्** विशिष्टः **अलङ्क्रियाः** अलङ्काराः, **मार्गविभागार्थं** वैदर्भगौडीययोः मार्ग-भेद-विवेचनार्थं **प्राक्** पूर्वं माधुर्यगुणनिरूपणप्रसङ्गे **उक्ताः** विवेचिताः । **अन्यत्** तन्निरूपितविशिष्टालङ्कारभिन्नं **साधारणं** सर्वसम्मतं मार्गद्वयोः स्वीकृतमित्यर्थः, **अलङ्कारजातम्** अलङ्कारसमूहमत्र **प्रदर्श्यते** विवेच्यते ।

विशेष—

(१) वैदर्भ और गौडीय मार्ग के भेद को स्पष्ट करते समय प्रथम परिच्छेद में माधुर्य गुण निरूपण के प्रसङ्ग में श्रुत्यनुप्रासादि शब्दालङ्कारों का निरूपण किया गया है। उन अलङ्कारों से अन्य अलङ्कारों का स्पष्टीकरण अब किया जाएगा।

(२) वस्तुतः मार्ग-भेद निरूपण के सम्बन्ध में निरूपित अलङ्कार गुण हैं जिन्हें मार्ग विशेष के उपकारक के रूप में अलङ्कार कहा गया है। वे अलङ्कार गौड़ीयमार्ग वालों को विशेष रूप से अभिमत हैं। उन अलङ्कारों के होने पर गौडीय जन बन्धशैथिल्य इत्यादि दोषों को भी उपेक्षित कर देते है अतः इन्हें विशिष्ट अलङ्कार की श्रेणी में रखा गया है।

(३) इन विशिष्ट अलङ्कारों से अन्य साधारण अलङ्कार हैं जो सर्वसम्मत (सर्वमान्य) हैं। दोनों मार्गों के अनुयायी इन अलङ्कारों को सामान्यरूप से स्वीकृत करते हैं

(निरूपिता अलङ्काराः)

स्वभावाख्यानमुपमा रूपकं दीपकावृती ।
आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना ।।४।।

समासातिशयोत्प्रेक्षा हेतुः सूक्ष्मो लवः क्रमः ।
प्रेयो रसवदूर्जस्वि पर्यायोक्तं[1] समाहितम् ।।५।।
उदात्तापह्नुतिश्लेष[2]विशेषस्तुल्ययोगिता ।
विरोधाप्रस्तुतस्तोत्रे व्याजस्तुतिनिदर्शने ।।६।।
सहोक्तिः परिवृत्याशीः संसृष्टिरथ[3] भाविकम् ।
इति वाचामलङ्कारा दर्शिताः[4] पूर्वसूरिभिः ।।७।।

अन्वय + शब्दार्थ— स्वभावाख्यानं = स्वभावोक्ति । उपमा = उपमा । रूपकं = रूपक। दीपकावृत्ती = दीपक, और आवृत्ति। आक्षेपः = आक्षेप। अर्थान्तरन्यासः = अर्थान्तरन्यास। व्यतिरेकः = व्यतिरेक। विभावना = विभावना। समासातिशयो-त्प्रेक्षाः = समासोक्ति, अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा। हेतुः = हेतु। सूक्ष्मः = सूक्ष्म । लवः = लेश । क्रमः = यथासंख्य । प्रेयः = प्रेय । रसवत् = रसवत् । ऊर्जस्वि = ऊर्जस्वी । पर्यायोक्तं = पर्यायोक्त । समाहितं = समाहित । उदात्तापह्नुतिश्लेषविशेषाः = उदात्त, अपह्नुति, श्लेष और विशेषोक्ति। तुल्ययोगिता = तुल्ययोगिता। विरोधा-प्रस्तुतस्तोत्रे = विरोध, और अप्रस्तुतप्रशंसा। व्याजस्तुतिनिदर्शने = व्याजस्तुति और निदर्शना। सहोक्तिः = सहोक्ति। परिवृत्याशीः = परिवृत्ति और आशीः। संसृष्टिः = संसृष्टि (सङ्कीर्ण)। भाविकं = भाविक। इति = ये। वाचां = वाणी के, काव्यशरीर के। अलङ्काराः = अलङ्कार। पूर्वसूरिभिः = पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा। दर्शिताः = दिखलाये गये हैं, निरूपित किये गये हैं।

अनुवाद— पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा ये (पैंतीस) अलङ्कार निर्दिष्ट किये हैं— स्व-भावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म, लेश, यथासङ्ख्य, प्रेय, रसवत्, उर्ज-स्वी, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, अनह्नुति, श्लेष, विशेषोक्ति, तुल्योगिता, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि और भाविक ।

संस्कृतव्याख्या— लक्षणीयानाम् अलङ्काराणां नामनिर्देशपूर्वकं परिगणनं निरू-पयति- **स्वभावेति । स्वभावाख्यानं** स्वभावोक्तिः **उपमा रूपकं दीपकावृती** दीपकञ्च आवृत्तिश्च **आक्षेपः अर्थान्तरन्यासः व्यतिरेकः विभावना समासातिशयोत्प्रेक्षाः** समासोक्तिः अतिशयोक्तिः उत्प्रेक्षा च, **हेतुः सूक्ष्मः लवः** लेशः **क्रमः** यथासङ्ख्यम्, **प्रेयः रसवत् ऊर्जस्वी पर्यायोक्तं समाहितम् उदात्तापह्नुतिश्लेषविशेषाः** उदात्तः अपह्नुतिः श्लेषः विशेषोक्तिः च **तुल्ययोगिता विरोधाप्रस्तुतस्तोत्रे**- विरोधः अप्रस्तुत-स्तोत्रं अप्रस्तुतप्रशंसा च, **व्याजस्तुतिनिदर्शनं** व्याजस्तुतिः निदर्शना च **सहोक्तिः**

(१) पर्यायान्यत् । (२) श्लिष्ट । (३) सङ्कीर्णमथ । (४) -काराः स्मर्यन्ते ।

परिवृत्याशीः परिवृत्तिः आशीः च **संसृष्टिः** सङ्कीर्णं भाविकं इत्येते **वाचां** काव्यशरीरस्य पञ्चत्रिंशत्सङ्ख्याकाः **अलङ्काराः पूर्वसूरिभिः** पूर्वाचार्यैः **दर्शिताः** निरूपिताः विद्यन्ते ।

विशेष—

(१) इस कारिकाओं में निरूपित किये जाने वाले अलङ्कारों की नामनिर्देशपूर्वक गणना की गयी है । इनमें पैंतीस अलङ्कारों का नाम दिया गया है जिनका विवेचन आगे किया जाएगा ।

(स्वभावोक्तिः लक्षणम्)

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती ।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्याः सालङ्कृतिर्यथा ।।८।।

अन्वय— पदार्थानां नानावस्थं रूपं साक्षात् विवृण्वती स्वभावोक्तिः च जातिः च । सा अलङ्कृतिः आद्या (विद्यते) ।

शब्दार्थ— पदार्थानां = पदार्थों के। नानावस्थं = भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में स्थित, विभिन्न अवस्थाओं में प्रकट होने वाले । रूपं = रूप को, स्वरूप को । साक्षात् = प्रत्यक्षरूप से । विवृण्वती = खोलती हुई, प्रदर्शित करने वाली । स्वभावोक्तिः = स्वभावोक्ति । जातिः च = और जाति । सा = वह (प्रसिद्ध) । अलङ्कृतिः = अलङ्कार । आद्या = अग्रगण्य है।

अनुवाद— (जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य रूप) पदार्थों की विभिन्न अवस्थाओं में प्रकट होने वाले स्वरूप को प्रत्यक्षरूप से प्रदर्शित कर देने वाली (स्पष्ट कर देने वाली) वह (प्रसिद्ध अलङ्कार) स्वभावोक्ति (कहलाती है)। (इसका दूसरा नाम) जाति (भी है)। वह (अलङ्कारों में) अग्रगण्य है।

संस्कृतव्याख्या— अत्र स्वभावोक्त्यलङ्कारं विवेचयति– **नानावस्थमिति** । **पदार्थानां** जातिक्रियागुणद्रव्यरूपाणां वस्तूनां **नानावस्थं** विविधदशापन्नं **रूपं** स्वरूपविशेषं **साक्षात्** प्रत्यक्षमिव **विवृण्वती** सूक्ष्मत्वात् दुर्दर्शमपि प्रदर्शयन्ती **सा** प्रसिद्धा **अलङ्कृतिः** अलङ्कारः **स्वभावोक्तिः जातिः च** इति नामद्वयेनाख्यापिता **आद्या** अलङ्कारेषु अग्रगण्या, विद्यते इति शेषः ।

विशेष—

(१) इस कारिका में स्वभावोक्ति अलङ्कार का लक्षण प्रतिपादित किया गया है। इसका दूसरा नाम जाति अलङ्कार भी है। इस अलङ्कार में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में स्थित

पदार्थों के रूप को प्रत्यक्ष रूप से वर्णित किया जाता है अर्थात् इसमें पदार्थों का ऐसा सजीव स्वाभाविक वर्णन होना चाहिए जिससे उनका प्रत्यक्षदर्शन होने लगे, वह अलङ्कार स्वभावोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

(२) स्वभावोक्ति के लिए जाति नाम के प्रयोग से यह लक्षित होता है कि इस अलङ्कार का सम्बन्ध मूलतः जातिरूप पदार्थ के ही स्वरूप वर्णन से था। दण्डी ने जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य रूप पदार्थों की विभिन्न अवस्थाओं का ग्रहण करके इसका क्षेत्र व्यापक बना दिया है।

(३) नानावस्थं के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि किसी वस्तु की अनेक अवस्थाओं का स्वभाविक वर्णन ही स्वभावोक्ति अलङ्कार में होता है, केवल एक अवस्था का वर्णन होने पर स्वाभावोक्ति नहीं होती।

(४) 'रूपं साक्षाद्विवृण्वती' के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि अलङ्कार में वस्तुवक्रता अथवा वैचित्र्य होना चाहिए। स्वरूप-वर्णन में चमत्कार न होने पर अलङ्कार नहीं माना जाएगा।

(५) भोजराज के अनुसार अर्थव्यक्ति अर्थगुण है। उनके अनुसार सार्वकालिक वस्तु के स्वरूप का वर्णन अर्थव्यक्ति गुण है और आगन्तुकवस्तुस्वरूप का वर्णन स्व-भावोक्ति अलङ्कार है किन्तु दण्डी ने अनेयार्थत्वरूप अर्थव्यक्ति को शब्दगुण माना है तथा सार्वकालिक और आगन्तुक दोनों के स्वरूपवर्णन को स्वभावोक्ति में समाविष्ट किया है।

(६) भामह ने 'केचित्प्रचक्ष्यते' (२.९३-९४) के द्वारा पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों द्वारा निर्दिष्ट स्वभावोक्ति के प्रति अपनी असम्मति को व्यक्त किया है। वामन ने भी (३।२।१३) में स्वभावोक्ति को अर्थव्यक्ति नामक अर्थगुण में समाहित किया है। मम्मट ने (७.७२) की वृत्ति में अर्थव्यक्ति को ही स्वभावोक्ति में समाहित किया है।

(७) दण्डी ने जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य के आधार पर स्वभावोक्ति को चार विभागों में विभाजित किया है— (क) जातिगत स्वभावोक्ति (ख) गुणगत स्वभावोक्ति (ग) क्रियागत स्वभावोक्ति और (घ) द्रव्यगत स्वाभावोक्ति। इनका उदाहरण इन्होंने आगे दिया है।

(जातिगतस्वभावोक्तेः निदर्शनम्)

तुण्डैराताम्रकुटिलैः पक्षैर्हरितकोमलैः ।
त्रिवर्णराजिभिः कण्ठैरेते मञ्जुगिरः शुकाः ।।९।।

अन्वय— एते मञ्जुगिरः शुकाः आताम्रकुटिलैः तुण्डैः हरितकोमलैः त्रिवर्णराजिभिः कण्ठैः (युक्ताः सन्ति)।

शब्दार्थ— एते = ये (सामने विद्यमान)। मञ्जुगिरः = मधुर बोलने वाले, मनोहर बोलने वाले। शुकाः = तोते। आताम्रकुटिलैः = कुछ लाल और टेढे। तुण्डैः = मुखों से, चोचों से। हरितकोमलैः = हरे और सुकुमार (सुकोमल)। पक्षैः = पङ्खों से। त्रिवर्णराजिभिः = तीन रङ्गों वाली (तिरङ्गी) रेखाओं वाले। कण्ठैः = गले से।

अनुवाद— ये (सामने विद्यमान) मधुर बोलने वाले तोते कुछ लाल और टेढ़े मुखों (चोचों) से, हरे और सुकुमार (सुकोमल) पङ्खों से तथा तिरङ्गी रेखाओं वाले गले से युक्त हैं। (अर्थात् इनके मुख (चोंच) कुछ लाल और टेढ़े पङ्ख हैं, हरे और सुकोमल है तथा गर्दन तीन रङ्गों वाली रेखाओं से व्याप्त है)।

संस्कृतव्याख्या— जातिगतस्वभावोक्तेः निदर्शनं ददात्यत्र– **तुण्डैरिति**। **एते** पुरोविद्यमानाः **मञ्जुगिरः** मधुरालापिनः **शुकाः** कीराः **आताम्रकुटिलैः** ईषद्रक्तैः वक्राकृतिभिश्च **तुण्डैः** मुखैः चञ्चुभिरित्यर्थः **हरितकोमलैः** हरितवर्णैः सुकुमारैश्च **पक्षैः** गरुद्भिः **त्रिवर्णराजिभिः** त्रिवर्णात्मकैः श्वेतरक्तकृष्णवर्णैः **राजिभिः** रेखाभिः **कण्ठैः** उपलक्षिताः, विद्यन्ते इति योजनीयम्। अत्र मुखादीनाम् आताम्रत्वादिकः रूपः शुकजातेरसाधारणधर्मः प्रत्यक्षमिव वर्णितः, अत एन जातिगता स्वभावोक्तिः।

विशेष—

(१) यह जातिगत स्वभावोक्ति का उदाहरण है। इस पद्य में शुक जाति के असाधारणधर्म– कुछ लाल और टेढ़ी चोचों, हरे और सुकुमार पङ्खों तथा तिरङ्गी गर्दनों का प्रत्यक्ष के समान वर्णन हुआ है, अतः जातिगत स्वभावोक्ति है।

(क्रियागतस्वभावोक्तेः निदर्शनम्)

कलक्वणितगर्भेण कण्ठेनाघूर्णितेक्षणः।
पारावतः परिभ्रम्य[१] रिरंसुश्चुम्बति प्रियाम् ॥१०॥

अन्वय— कलक्वणितगर्भेण कण्ठेन आघूर्णितेक्षणः रिरंसुः पारावतः परिभ्रम्य प्रियां चुम्बति।

शब्दार्थ— कलक्वणितगर्भेण = अव्यक्त मधुर ध्वनि से युक्त। कण्ठेन = कण्ठ से। आघूर्णितेक्षणः = (अपनी) आखों को गोलायी में घुमाता हुआ, आखों को मटकाता हुआ। रिरंसुः = रमण करने की इच्छा (अभिलाषा) वाला। परावतः =

---

(१) -क्रम्य, -क्षिव्य, -वृत्य।

कपोत, कबूतर। परिभ्रम्य = (प्रिया के अगल-बगल) घूमकर। प्रियां = (अपनी) प्रिया (कपोती) को। चुम्बति = चूम रहा है, चुम्बन ले रहा है।

अनुवाद— (अव्यक्त) मधुर ध्वनि से युक्त कण्ठ से (ध्वनि करता हुआ) और आखों को मटकाता हुआ (अपनी आँखों को गोलायी में घुमाता हुआ) रमण करने की इच्छा (अभिलाषा) वाला कपोत (कबूतर) (अपनी प्रिया के अगल-बगल) घूमकर प्रिया (कपोती) को चूम रहा है।

संस्कृतव्याख्या— क्रियागतस्वभावोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **कलक्वणितेति । कलक्वणितगर्भेण** कलम् अव्यक्तं मधुरं क्वणितं ध्वनिः तत् गर्भे अभ्यन्तरे यस्य तादृशेन कण्ठेन गलविलेन युक्तः **आघूर्णितेक्षणः** प्रियां प्रति भ्रमितनेत्रः **रिरंसुः** रन्तु अभिलषमाणः **पारावतः** कपोतः **परिभ्रम्य** प्रियां परितः भ्रमणं कृत्वा **प्रियां** स्वप्रियतमां कपोतीं **चुम्बति** । अत्र कलक्वणनं नेत्रघूर्णनम् इत्येते धर्माः कपोतस्य अवस्थाभिन्नस्य चुम्बनक्रियायाः साक्षाद्रूपेण वर्णिताः सन्ति, अत एव क्रियागतसमासोक्तेः निदर्शनम् ।

विशेष—

(१) मधुर शब्द करना, आँखें मटकाना इत्यादि अवस्थाओं से उपलक्षित चुम्बनक्रिया-रूप पदार्थ का प्रत्यक्ष-सा वर्णन होने से यहाँ क्रियागत स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

(गुणगतस्वभावोक्तेः निदर्शनम्)

बध्नन्नङ्गेषु रोमाञ्चं कुर्वन्मनसि निर्वृतिम् ।
नेत्रे चामीलयन्नेष प्रियास्पर्शः प्रवर्तते ।।११।।

अन्वय— अङ्गेषु रोमाञ्चं बध्नन्, मनसि निर्वृतिं कुर्वन् नेत्रे च आमीलयन् एषः प्रियास्पर्शः प्रवर्तते ।

शब्दार्थ— अङ्गेषु = अङ्गों में, शरीर में, गात्रों में। रोमाञ्चं = रोमाञ्च को, रोमहर्ष को। बध्नन् = उत्पन्न करता हुआ, बढ़ाता हुआ, जगाता हुआ। मनसि = चित्त में। निर्वृतिं = परमानन्द को, आनन्द-विशेष को, सुख को। कुर्वन् = (सञ्चारित) करता हुआ, (उत्पन्न) करता हुआ, सम्पादित करता हुआ। नेत्रे च = और आखों को। आमीलयन् = निमीलित करता हुआ। एषः = यह। प्रियास्पर्शः = प्रियतमा का स्पर्श। प्रवर्तते = प्रवृत हो रहा है, प्रारम्भ हो रहा है, प्रसरित हो रहा है।

अनुवाद— शरीर में रोमाञ्च को उत्पन्न करता हुआ (जगाता हुआ), मन में परमानन्द (आनन्दविशेष) को सञ्चारित (उत्पन्न) करता हुआ और आँखों को थोड़ा निमीलित करता हुआ यह प्रियतमा (के शरीर) का स्पर्श प्रवृत्त हो रहा है।

संस्कृतव्याख्या— गुणगतस्वभावोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **बध्नन्निति** । **अङ्गेषु** गात्रेषु **रोमाञ्चं** रोमहर्षं **बध्नन्** उत्पादन्, **मनसि** चेतसि **निर्वृतिं** परमानन्दम् आनन्दविशेषं वा **कुर्वन्** सम्पादयन् **नेत्रे च** चक्षुषी च **आमीलयन्** आनन्दातिशयेन ईषन्निमीलयन्, **एषः** पूर्वानुभूतः **प्रियास्पर्शः** प्रियायाः दयितायाः स्पर्शः शरीरसंस्पर्शः **प्रवर्तते** प्रारभते। रोमहर्षं नेत्रनिमीलनं विविधावस्थं स्पर्शगुणपदार्थरूपं प्रत्यक्षरूपेण वर्णितम् अत एवात्र गुणगतस्वभावोक्तिरलङ्कारः ।

विशेष—

(१) यहाँ रोमाञ्च उत्पन्न होना, मानसिक परमानन्द और नेत्रनिमीलन इत्यादि अवस्थाओं वाले स्पर्शगुणरूप पदार्थ का प्रत्यक्ष स्वाभाविक वर्णन होने से गुणगत स्वभावोक्ति है।

(द्रव्यगतस्वभावोक्तेः निदर्शनम्)

कण्ठे कालः करस्थेन कपालेनेन्दुशेखरः ।
जटाभिः स्निग्धताम्राभिराविरासीद् वृषध्वजः ।।१२।।

अन्वय— कण्ठे कालः करस्थेन कपालेन स्निग्धताम्राभिः जटाभिः (च) इन्दुशेखरः वृषध्वजः आविः आसीत् ।

शब्दार्थ— कण्ठे कालः = काण्ठ (गले) में कालकूट (को धारण करने) वाले अथवा गले में काले (चिह्न) वाले, नीलकण्ठ। करस्थेन = हाथ में स्थित (विद्यमान)। कपालेन = कपाल (भिक्षापात्र) से युक्त। स्निग्धताम्राभिः = कोमल और ताम्रवर्ण (पाटल वर्ण) वाली। जटाभिः = जटाओं से युक्त। इन्दुशेखरः = चन्द्रशेखर, चन्द्रमा है शिखर (ललाट) पर जिसके ऐसे, ललाट पर चन्द्रमा को धारण करने वाले। वृषध्वजः = वृषकेतु, वृषध्वज, वृष (वृषभ = बैल) है ध्वज (पताका, चिह्न) जिसका ऐसे, वृषभ-पताका वाले। आविरासीत् = प्रकट हो गये।

अनुवाद— कण्ठ में कालकूट (को धारण करने) वाले अथवा (गले में काले चिह्न वाले), हाथ में विद्यमान कपाल (भिक्षापात्र) से युक्त, कोमल और ताम्रवर्ण वाली जटाओं से युक्त (सुशोभित), चन्द्रशेखर (अर्थात् ललाट पर चन्द्रमा का धारण करने वाले) वृषकेतु (शिव) प्रकट हो गये।

संस्कृतव्याख्या— द्रव्यगतस्वभावोक्तिमुदाहरति- **कण्ठे इति** । **कण्ठे** गलप्रदेशे **कालः** कालकूटं यस्य तादृशः, **करस्थेन** हस्तवर्तिना **कपालेन** भिक्षापात्रेण तथा च **स्निग्धताम्राभिः** स्निग्धाभिः कोमलाभिः ताम्राभिश्च ताम्रवर्णाभिः **जटाभिः** शिरोरुहैः उपलक्षितः **इन्दुशेखरः** इन्दुः चन्द्रमा शेखरे मस्तके यस्य तादृशः, चन्द्रशेखरः

इत्यर्थः, **वृषध्वजः** वृषकेतुः शिवः **आविरासीत्** प्रकटीभूतः आसीत्। कण्ठे कालत्वं कपालित्वम् इत्यादयः सर्वे धर्माः अवस्थाभिन्नस्य शिवरूपस्य द्रव्यस्य साक्षात्स्वाभाविकवर्णनेनात्र द्रव्यगतस्वभावोक्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) यहाँ कण्ठ में कालिमा, हाथ में कपाल, शिर पर कोमल तथा ताम्रवर्ण जटाओं का धारण इत्यादि धर्म विविध अवस्था वाले शिवरूपी द्रव्य का साक्षात् स्वाभाविक वर्णन है अतः द्रव्यगत-स्वभावोक्ति है।

(स्वभावोक्तिरुपसंहारः)

जातिक्रियागुणद्रव्य[1]स्वभावाख्यानमीदृशम् ।
शास्त्रेष्वस्यैव[2] साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीप्सितम् ।।१३।।

अन्वय— ईदृशं जातिक्रियागुणस्वभावाख्यानं शास्त्रेषु, अस्य एव साम्राज्यं काव्येषु अपि एतत् ईप्सितम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— ईदृशं = इस प्रकार वाला। जातिक्रियागुणद्रव्यस्वाभावाख्यानं = जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य के स्वभाव (स्वरूप) का कथन। शास्त्रेषु = (काव्यविषयक) शास्त्रों में, काव्यशास्त्रों में। अस्य एव = इसी (स्वभावोक्ति) का ही। साम्राज्यं = साम्राज्य, प्रधानता। काव्येषु अपि = काव्य (ग्रन्थों) में भी। एतत् = यह (स्वभावोक्ति अलङ्कार) ही। ईप्सितं = अभीष्ट, अभिलषित, मान्यता प्राप्त।

अनुवाद— इस (उपर्युक्त) प्रकार वाले जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य के स्वभाव (स्वरूप) का कथन (स्वभावोक्ति अलङ्कार कहलाता है)। (काव्यविषयक) शास्त्रों (काव्यशास्त्रों) में इसी (स्वभावोक्ति) की ही प्रधानता है, काव्य (ग्रन्थों) में भी यह (स्वभावोक्ति अलङ्कार) अभीष्ट (मान्यता प्राप्त) है।

संस्कृतव्याख्या— स्वभावोक्त्यलङ्कारम् उपसंहरत्यत्र- **जाति इति**। **ईदृशम्** एतादृशं पूर्वोक्तप्रकारं **जातिक्रियागुणद्रव्यस्वभावाख्यानं** जातिः किया: गुणः द्रव्यञ्च तेषां स्वभावाख्यानं स्वरूपविवेचनं स्वभावोक्तिः नामालङ्कारः इत्यभिधीयते। **शास्त्रेषु** काव्यविषयकशास्त्रेषु **अस्य एव** स्वभावोक्तेरलङ्कारस्य एव **साम्राज्यम्** आधिपत्यं प्राधान्यमित्यर्थः विद्यते, **काव्येषु अपि** महाकाव्यादिषु काव्यग्रन्थेषु अपि **एतत्** स्वभा-

---

(१) द्रव्यैः स्व।

(२) शास्त्रे चास्यैव।

वोक्तेरलङ्कारः **ईप्सितम्** अभिलषितं वर्तते। कवयः स्वकाव्येषु अन्यालङ्कारस्यैवापेक्षयाऽस्या प्रयोगं प्रधानतया कुर्वन्ति।

विशेष—

(१) दण्डी ने सभी अलङ्कारों में स्वभावोक्ति को आदि अलङ्कार कहा है (द्र० २.८)। यहाँ काव्य तथा काव्यशास्त्र दोनों में उसकी प्रधानता का निर्देश किया हैं। जहाँ काव्यशास्त्र में इसे प्रमुख अलङ्कार के रूप में स्वीकार किया गया है वहीं कवि लोग भी अपनी काव्य-कृतियों में इस अलङ्कार का बहुतायता से प्रयोग करते हैं।

(२) वैयाकरणों ने पदार्थ के चार रूपों को माना है। जैसा कि महाभाष्य के द्वितीय आह्निक में ऋत्लृक् के भाष्य में पतञ्जलि ने लिखा है– "चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिर्जातिशब्दा-गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाश्चतुर्धा" अर्थात् शब्दों की चार प्रवृत्तियाँ होती हैं– जातिगत शब्द, गुणगत शब्द, क्रियागत शब्द और द्रव्यगत शब्द- इस प्रकार शब्द चार प्रकार के होते है। इसी आधार पर दण्डी ने भी जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य के आधार पर पदार्थ के चार रूपों का ग्रहण किया है। अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में भामह ६.२१ में, मम्मट २.८ की वृत्ति में और विश्वनाथ २.४ में इन भेदों का उल्लेख किया है।

(उपमालङ्कारनिरूपणम्)

यथा कथञ्चित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीतये।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं निदर्श्यते ।।१४।।

अन्वय— यत्र यथा कथञ्चित् उद्भूतं सादृश्यं प्रतीयते सा उपमा नाम। तस्याः अयं प्रपञ्चः निदर्श्यते।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ (काव्य में)। यथा कथञ्चित् = जिस भी किसी प्रकार से। उद्भूतं = उत्पन्न, अभिव्यक्त, स्पष्ट, प्रफुटित। सादृश्यं = समानता, सदृशता। प्रतीयते = प्रतीत होवे। सा = वह। उपमा नाम = उपमा नामक (अलङ्कार) (होता है)। तस्याः = उस (उपमा) का। अयं = यह। प्रपञ्चः = विस्तार, निरूपण। निदर्श्यते = निर्दिष्ट (विवेचित, वर्णित) किया जा रहा है।

अनुवाद— जहाँ जिस भी किसी प्रकार से स्पष्ट (अभिव्यक्त) (दो पदार्थों में) समानता (सदृशता) प्रतीत होवे, वह (समानता वाला) उपमा नामक (अलङ्कार होता है)। इस (उपमा) का विस्तार निर्दिष्ट (विवेचित) किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— उपमालङ्कारं विवेचयत्यत्र– **यथेति**। **यत्र** काव्यस्य यस्मिन् स्थले **यथाकथञ्चित्** येन केन चिद्विधिना **उद्भूतम्** उत्पन्नम् अभिव्यक्तमित्यर्थः, उप-

मानोपमेययोः भेदस्य परिस्फुटत्वात् स्पष्टं **सादृश्यं** पदार्थयोः किञ्चिदपि साम्यं **प्रतीयते** अवबुध्यते **सा** पूर्वोक्ता **उपमा नाम** उपमा नामकः अलङ्कार भवतीति शेषः । **तस्याः** उपमायाः **अयम्** एषः **प्रपञ्चः** भेदोपभेदपूर्वकं विस्तारः **निदर्श्यते** विवेच्यते । यत्र काव्ये यथाकेनचिद्गुणक्रियादिरूपेण द्वयोः पदार्थयोः स्पष्टं साम्यं अभिधावृत्या प्रतीयते सा उपमा नामालङ्कारः भवति ।

विशेष—

(१) उपमा के उपमान, उपमेय, साधारणधर्म और वाचक– ये चार अङ्ग होते हैं। जिससे समानता की जाती है उसे उपमान तथा जिसकी समानता की जाती है उसे उपमेय कहा जाता है। उपमान और उपमेय में विद्यमान समानधर्म, जिसके कारण समानता प्रतीत होती है, वह साधारण धर्म कहा जाता है तथा जिस शब्द के द्वारा समानता निर्दिष्ट की जाती है, वह वाचक कहलाता है। जैसे– 'कमलमिव मुखं मनोज्ञम्' में कमल उपमान, मुख उपमेय, मनोज्ञता धर्म तथा इव वाचक है।

(२) काव्यनिष्ठ दो पदार्थों का चमत्कार-जनक सादृश्य ही उपमा कहलाता है। चमत्कार के अभाव में उपमा नहीं होती।

(३) जहाँ उपमा के चारों अङ्ग उपमान, उपमेय, धर्म तथा वाचक विद्यमान होते हैं, वह पूर्णोपमा कहलाता है। जैसा कि विश्वनाथ ने कहा है—

सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च ।
उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यमियं पुनः ॥
(सा० द० १०-१५)

(४) ध्यातव्य है कि यद्यपि उपमान और उपमेय के साधारण धर्म में भेद होता है। उपमा में धर्म में भेद होते हुए भी अभेद की प्रतीति होती है। जैसा कि मम्मट ने कहा है– 'साधर्म्यमुपमा भेदे' ।

(५) दण्डी ने उपमा के बतीस भेदों का निरूपण किया है। वे ये हैं– धर्मोपमा, वस्तूपमा, विपर्यासोपमा, अन्योन्योपमा, नियमोपमा, अनियमोपमा, समुच्चयोपमा, अतिशयोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, अद्भुतोपमा, मोहोपमा, संशयोपमा, निर्णयोपमा, श्लेषोपमा, समानोपमा, निन्दोपमा, प्रशंसोपमा, आचिख्यासोपमा, विरोधोपमा, प्रतिषेधोपमा, चटूपमा, तत्त्वाख्यानोपमा, साधारणोपमा, अभूतोपमा, सम्भावितोपमा, बहूपमा, विक्रियोपमा, मालोपमा, वाक्यार्थोपमा, प्रतिवस्तूपमा, तुल्ययोगोपमा और हेतूपमा।

(६) उत्तरवर्ती आचार्यों में इनमें से कुछ भेदों को उपेक्षित कर दिया है, कुछ भेदों को नये अभिधानों से अभिहित किया है, कुछ को स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में निरूपित किया है तथा कुछ भेदों को अन्य अलङ्कारों के भेद के रूप में माना है। इनका विवेचन यथास्थान किया जाएगा।

(धर्मोपमाविवेचनम्)

अम्भोरुहमिवाताम्रं मुग्धे करतलं तव ।
इति धर्मोपमा साक्षात्तुल्यधर्मप्रदर्शनात् ।।१५।।

अन्वय— 'मुग्धे तव करतलम् अम्भोरुहम् इव आताम्रम्' इति साक्षात् तुल्य-धर्मप्रदर्शनात् धर्मोपमा ।

शब्दार्थ— मुग्धे = हे बाले। तव = तुम्हारा। करतलं = हथेली। अम्भोरुहम् इव = कमल के समान। आताम्रं = थोड़ा लाल, पाटल वर्ण वाली । इति = इस प्रकार, यहाँ साक्षात् = प्रत्यक्षरूप से, स्पष्टतः। तुल्यधर्मप्रदर्शनात् = समान धर्म (गुण) के प्रदर्शन (कथन) होने के कारण। धर्मोपमा = धर्मोपमा (गुणोपमा) है।

अनुवाद— हे बाले, तुम्हारा करतल (हथेली) कमल के समान थोड़ा लाल (पाटलवर्ण वाली है) यहाँ स्पष्ट रूप से सामान्य धर्म का कथन होने के कारण धर्मोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— उपमाया द्वात्रिंशद्भेदेषु प्रथमं भेदं धर्मोपमां विवेचयत्यत्र-अम्भोरुहमिति । **हे मुग्धे** हे बाले **तव** मुग्धायाः **करतलं** पाणितलं **अम्भोरुहं** कमलम् **इव** सदृशम् **आताम्रम्** ईषल्लोहितवर्णं विद्यत इति शेषः **इति** इत्यस्मिन्कथने **साक्षात्** स्पष्टरूपेण शब्दद्वारा **तुल्यधर्मप्रदर्शनात्** उपमेयस्य करतलस्य उपमानस्य अम्भोरुहस्य च द्वयोः समानधर्मस्य आताम्रत्वस्य कथनात् **धर्मोपमा** उपमायाः तन्नाम भेदः अस्ति। उत्तरवर्त्तिनामाचार्याणां मतेनात्रोपमायाः चतुर्णाम् उपमानोपमेयधर्मवाचकपदानां विद्यमान-त्वात् पूर्णोपमा विद्यते ।

विशेष—

(१) यहाँ धर्मोपमा नामक उपमा के भेद का निरूपण किया गया है। जिस कथन में उपमान और उपमेय के समान धर्म (गुण) का स्पष्ट प्रदर्शन होता है, वह धर्मोपमा नामक उपमा अलङ्कार होता है। जैसे- 'उपमान कमल और उपमेय करतल के साधारण धर्म ईषद्रक्तता का साक्षात् शब्द द्वारा वर्णन होने से धर्मोपमा (गुणोपमा) है।

(२) इस उदाहरण में उपमा के चारों अङ्ग उपमान, उपमेय, धर्म तथा वाचक उपात्त

है, अतः परवर्ती आचार्य विश्वनाथ आदि पूर्णोपमा मानते हैं। एक, दो अथवा तीन अङ्गों के अनुपादान होने पर लुप्तोपमा होती है।

(**वस्तूपमाविवेचनम्**)

राजीवमिव ते वक्त्रं नेत्रे नीलोत्पले इव ।
इयं[1] प्रतीयमानैकधर्मा वस्तूपमैव सा ।।१६।।

अन्वय— ते वक्त्रं राजीवम् इव नेत्रे नीलोत्पले इव (स्तः) । सा प्रतीयमानैकधर्मा इयं वस्तूपमा एव ।

शब्दार्थ— ते = तुम्हारा। वक्त्रं = मुख। राजीवम् इव = कमल के समान। नेत्रे = दोनों आँखें। नीलोत्पले इव = नीलकमल के समान। सा = वह। प्रतीयमानैक-धर्मा = प्रतीयमान है समानधर्म जिसमें ऐसी, प्रतीयमान समानधर्म वाली। इयं = यह । वस्तूपमा एव = वस्तूपमा ही है।

अनुवाद— (हे मुग्धे!) तुम्हारा मुख (ईषत् लाल) कमल और आँखे नील-कमल के समान है। (यहाँ सामान्यधर्म की प्रतीति मात्र हो रही है) अतः प्रतीयमान धर्म वाली वस्तूपमा है।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीयं वस्तूपमां विवेचयत्यत्र- **राजीवमिति** । (हे मुग्धे) **ते** तव, **वक्त्रं** मुखं **राजीवम् इव** लालकमलसदृशं **नेत्रे** नयने **नीलोत्पले इव** नीलकमले इव स्तः । **सा** पूर्वोक्ता उपमा **प्रतीयमानैकधर्मा** प्रतीयमानः गम्यमानः एकधर्मः सामान्य-धर्मः यस्यां तादृशी **इयम्** अत्र निदर्शिता **वस्तूपमा एव** तन्नाम उपमा एव विद्यते । अत्र सामान्यधर्मः प्रतीयमानः, न तु शब्देनाभिधीयमानः, अत एव वस्तूपमा अस्ति । उत्तर-वर्त्तिनामाचार्याणां मतेनात्र लुप्तोपमा विद्यते ।

विशेष—

(१) जिस उपमा में सामान्य धर्म का शब्द द्वारा कथन नहीं होता, उसकी प्रतीति मात्र है, वह वस्तूपमा कहलाती है। उक्त उदाहरण में सामान्य धर्म मुख के सन्दर्भ में कमल की लालिमा का शब्द द्वारा कथन नहीं हुआ है केवल लालिमा धर्म की प्रतीतिमात्र हो रही है अतः वस्तूपमा अलङ्कार है।

(२) उत्तरवर्ती आचार्यों ने यहाँ लालिमा धर्म का शब्द द्वारा कथन न होने के कारण लुप्तोंपमा माना है। इस प्रकार दण्डी द्वारा निर्दिष्ट वस्तूपमा अलङ्कार के स्थान पर लुप्तोपमा नाम से इसे विवेचित किया है।

---

(१) इति ।

(३) धर्मोपमा अलङ्कार में उपमा के उपमेय, उपमान, साधारणधर्म तथा वाचक- ये चारों अङ्ग शब्दोपात्त (शब्द द्वारा कथित) होते हैं किन्तु वस्तूपमा में सामान्य धर्म शब्द द्वारा अभिधीयमान नहीं होता, केवल प्रतीयमान (प्रतीति का विषय) होता है। यही धर्मोपमा और वस्तूपमा में भेद है।

(विपर्यासोपमाविवेचनम्)

तवाननमि[१]वोन्निद्रमरविन्दमभूदिति ।
सा प्रसिद्धेर्विपर्यासाद्विपर्यासोपमेष्यते ।।१७।।

अन्वय— 'अरविन्दं तव आननम् इव उन्निद्रम् अभूत्' इति प्रसिद्धेः विपर्यासात् सा विपर्यासोपमा इष्यते ।

शब्दार्थ— अरविन्दं =कमल। तव = तुम्हारे। मुखम् इव = मुख के समान। उन्निद्रम् = खिल गया, विकसित हो गया, प्रफुल्लित हो गया। इति = इस प्रकार। प्रसिद्धेः = (लोक) प्रसिद्ध (व्यवहार) की। विपर्यासात् = विपरीतता होने के कारण। सा = वह। विपर्यासोपमा = विपर्यासोपमा। इष्यते = कहा जाता है, कहलाता है।

अनुवाद— 'कमल तुम्हारे मुख के समान प्रफुल्लित हो गया था' इस प्रकार (यहाँ) लोक-प्रसिद्ध (व्यवहार) की विपरीतता होने के कारण विपर्यासोपमा कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयं विपर्यासोपमां विवेचयत्यत्र- **तवाननमिति** । **अरविन्दं** कमलं **तव** मुग्धायाः **आननम् इव** मुखम् इव, **उन्निद्रं** प्रबुद्धं प्रफुल्लितम् वा **अभूत्** आसीत् **इति** अत्र **प्रसिद्धेः** लोकव्यवहारे प्रसिद्धस्य **विपर्यासात्** उपमानस्थाने उपमेयस्य कथनेन वैपरीत्यात् **सा** अत्र निदर्शिता **विपर्यासोपमा** तन्नामालङ्कार **इष्यते** कथ्यते। उत्तवर्तिनामाचार्याणां मतेनात्र प्रतीपालङ्कारः । यथोक्तं विश्वनाथेन-

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ।। (सा०द० १०.८७)

विशेष—

(१) यहाँ विपर्यासोपमा को निर्दिष्ट किया गया है। जिस उपमा में लोकप्रसिद्धव्यवहार की विपरीतता दृष्टिगोचर होती है, वह विपर्यासोपमा कहलाता है।

(२) लोक में मुख की उपमा कमल से दी जाती है। इस प्रकार मुख उपमेय तथा कमल

---

(१) त्वदाननम

उपमान होता है। इस उपमान और उपमेय की विपरीतता अर्थात् उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय के रूप में कथन लोकप्रसिद्ध व्यवहार का वैपरीत्य है। इस प्रकार उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय के रूप में वर्णित करने पर विपर्यासोपमा नामक अलङ्कार होता है।

(३) प्रस्तुत उदाहरण में कमल को उपमेय तथा मुख को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो लोक-व्यवहार के विपरीत है। लोक में तो कमल का उपमानत्व और मुख का उपमेयत्व प्रसिद्ध है। इस लोक-प्रसिद्धि की विपरीतता होने के कारण यहाँ विपर्यासोपमा है।

(४) परवर्ती आचार्यों ने इसे प्रतीप अलङ्कार नाम से अभिहित किया है जैसा कि विश्वनाथ ने कहा है—

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ।। (सा०द० १०-८७)

(५) ध्यातव्य है कि इसमें साधारण धर्म शब्दोपात्त नहीं होता है– प्रतीयमान ही होता है।

(अन्योन्योपमाविवेचनम्)

तवाननमिवामम्भोजमम्भोजमिव ते मुखम् ।
इत्यन्योन्योपमा सेयमन्योत्कर्षशंसिनी ।।१८।।

अन्वय— अम्भोजं तव आननम् इव, ते मुखम् अम्भोजम् इव इति अयम् अन्योन्योत्कर्षशंसिनी सा अन्योन्योपमा ।

शब्दार्थ— अम्भोजं = कमल। तव = तुम्हारे। आननम् इव = मुख के समान (है)। ते = तुम्हारा। मुखं = मुख। अम्भोजम् इव = कमल के समान (है)। इति = इस प्रकार। अयम् = यह। अन्योन्योत्कर्षशंसिनी = परस्पर उत्कृष्टता के कथन (प्रशंसा) वाली। सा = वह (उपमा)। अन्योन्योपमा = अन्योन्योपमा (कहलाती है)।

अनुवाद— 'कमल तुम्हारे मुख के सामन है (और) तुम्हारा मुख कमल के समान है' इस प्रकार यह परस्पर उत्कृष्टता के कथन वाली वह (उपमा) अन्योन्योपमा (कहलाती है)।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्थम् अन्योन्योपमां विवेचयत्यत्र– **तवाननमिति । अम्भोजं** कमलं **तव** मुग्धायाः **आननम् इव** मुखम् इव, **ते** तव मुग्धायाः **मुखम्** आननम् **अम्भोजम्** इव कमलम् इव **इति** एवं प्रकारेण **अयम्** एषः **अन्योन्योत्कर्षशंसिनी**

अन्योन्यां परस्परम् उपमेयोपमानयोः, शंसिनी प्रशंसिनी **सा** उपमा **अन्योन्योपमा** तन्नामोपमा कथ्यते। अत्र मुखं कमलं च परस्परेण उपमानभावेन परस्परोत्कृष्टत्वं शंसति अत एव अन्योन्योपमा। उत्तरवर्तिनामाचार्याणां मते उपमेयम् उपमेयोपमा इत्यभिधानेन प्रयुक्ता विद्यते।

विशेष—

(१) जहाँ उपमान को उपमेय तथा पुनः उपमेय को उपमान के रूप में वर्णित किया जाता है, इस प्रकार उपमान और उपमेय दोनों के उत्कर्ष की प्रशंसा की जाती है, वहाँ अन्योन्योपमा होती है।

(२) इस उदाहरण में पहले मुख को उपमान और कमल को उपमेय पुनः मुख को उपमेय और कमल को उपमान के रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार परस्पर मुख और कमल दोनों की प्रशंसा की गयी है अतः यहाँ अन्योन्योपमा है। यहाँ भी साधारण धर्म रक्तिमा शब्दोपात्त नहीं प्रतीयमान ही है।

(३) उत्तरवर्ती आचार्यों ने इसे उपमेयोपमा नाम से निर्दिष्ट किया है। (द्रष्टव्य)- ''पर्यायेण द्वयोरेतदुपमेयोपमा'' (सा०द०१०-२७)।

(४) प्रस्तुत को उपमेय और अप्रस्तुत को उपमान बनाया जाता है। जहाँ पर दोनों प्रस्तुत हों वहाँ पर दोनों को उपमेय और उपमान बनाया जाता है। इससे तृतीय सादृश्य का व्यवच्छेद पर्यवसित होता है। तुम्हारा मुख कमल के समान है और कमल तुम्हारे मुख के समान है, इससे यह प्रतीत होता है कि मुख और कमल के समान कोई तीसरा पदार्थ नहीं है, ऐसी तुलना को अन्योन्योपमा कहा जाता है।

(नियमोपमाविवेचनम्)

त्वन्मुखं कमलेनैव तुल्यं नान्येन केनचित् ।
इत्यन्यसाम्यव्यावृत्तेरियं सा नियमोपमा ।।१९।।

अन्वय— त्वन्मुखं कमलेन एव तुल्यं केनचित् अन्येन न इति अन्यसाम्य-व्यावृत्तेः इयं सा नियमोपमा।

शब्दार्थ— त्वन्मुखं = तुम्हारा मुख। कमलेन एव तुल्यं = कमल के समान ही (है)। केनचित् = किसी। अन्येन न = दूसरे (पदार्थ के समान) नहीं (है)। इति = इस प्रकार। अन्यसाम्यव्यावृत्तेः = दूसरे की समानता के निषेध होने के कारण। इयं = यह। सा = वह (उपमा)। नियमोपमा = नियमोपमा (कहलाती है)।

अनुवाद— "तुम्हारा मुख कमल के समान ही है, किसी अन्य (पदार्थ) के (समान) नहीं" इस प्रकार (चन्द्र इत्यादि) दूसरे से (मुख की) समानता का निषेध होने के कारण यह (उपमा) नियमोपमा (कहलाती) है।

संस्कृतव्याख्या— पञ्चममं नियमोपमां विवेचयत्यत्र- **त्वन्मुखमिति** । **त्वन्मुखं** तवाननम् कमलेन एव तुल्यम् **अन्येन न** केनचिदपरेण चन्द्रादिना सदृशं न विद्यते इत्यत्र अन्येन **अन्यसाम्यव्यावृत्तेः** चन्द्रादिना तस्य साम्यस्य समानतायाः व्यावृत्तेः निषेधात् **इयम्** एषा **सा** उपमा **नियमोपमा** तन्नामा ख्यापिता भवति । एकस्य पदार्थस्य अनेकोप-मानसद्भावेऽपि हीनताप्रत्यये इति सदृशान्तरनिषेधपूर्वकं यत्र क्वचनैकस्मिन् उपमाने सदृशतां निबध्यते सा चोपमाननियमनाद् नियमोपमा इत्यभिधीयते । उत्तरवर्त्ति-भिराचार्यैः उपमायाः भेदोऽयं न विवेचितः ।

विशेष—

(१) किसी भी वर्णनीय पदार्थ के यदि अनेक उपमान हों तो उस पदार्थ का अपकर्ष प्रतीत होता है। पदार्थ की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करने के लिए उसकी एक ही उपमान से समानता बताकर यदि अन्य उपमानों का प्रतिषेध कर दिया जाय तो ऐसी उपमा को नियमोपमा कहा जाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में मुख कमल के समान ही है किस अन्य चन्द्रमा इत्यादि के समान नहीं- इस कथन के द्वारा मुख की उत्कृष्टता को बतलाने के लिए केवल एक ही उपमान कमल का प्रयोग किया गया है, अन्य चन्द्रमा इत्यादि उपमानों का निषेध कर दिया गया है अतः यहाँ नियमोपमा है।

(३) नियामोपमा में उपमेय के लिए उपमान का नियमन कर दिया जाता है। उस उपमान के नियमन से अन्य उपमान के साथ समानता का प्रतिषेध हो जाता है। उपमान के नियमित हो जाने के कारण ही इस उपमा को नियमोपमा कहा जाता है।

(४) उत्तरवर्त्ती आचार्य उपमा के इस भेद के विषय में मौन हैं। उन लोगों ने इस भेद का निरूपण नहीं किया है।

(अनियमोपमाविवेचनम्)

पद्मं तावत्तवान्वेति मुखमन्यच्च तादृशम् ।
अस्ति चेदस्तु तत्कारीत्यसावनियमोपमा ।।२०।।

अन्वय— "पद्मं तावत् तव मुखम् अन्वेति; चेत् अन्यत् च तादृशम् तत्कारि अस्ति अस्तु" इति असौ अनियमोपमा ।

शब्दार्थ— पद्मं = कमल। तावत् = तो। तव = तुम्हारे। मुखं = मुख का। अन्वेति = अनुकरण (अनुगमन) करता है। चेत् = यदि। अन्यत् = और दूसरे (चन्द्रमा इत्यादि)। तादृशं = इसी प्रकार। तत्कारि = उस (मुख के अनुकरण) को करने वाले। अस्ति = हैं, हैं। अस्तु = होवें, रहें। इति = इस प्रकार। असौ = यह। अनियमोपमा = अनियमोपमा अलङ्कार (है)।

अनुवाद— "कमल तो तुम्हारे मुख का अनुकरण (अनुगमन) करता ही है। यदि (उस कमल से) अन्य (चन्द्रमा इत्यादि भी) उस (कमल) के समान उस (मुख के अनुकरण) को करने वाले हैं (तो अनुकरण करने वाले) रहें" इस प्रकार यह (उपमान का नियमन न होने के कारण) अनियमोपमा (अलङ्कार) है।

संस्कृतव्याख्या— षष्ठ अनियमोपमां विवेचयत्यत्र– **पद्ममिति**। **पद्मं** कमलं तावत् **तव** मुग्धायाः **मुखम्** आननम् **अन्वेति** अनुकरोति। **चेत्** यदि कमलात् **अन्यत् च** चन्द्रादिः इतरत् च **तादृशं** तस्य कमलस्य इव **तत्कारि** तन्मुखानुकारि **अस्ति** विद्यते तत् **अस्तु** भवतु नाम' **इति** एवमत्र उपमानविषये नियमाभावाद् **असौ** एषः **अनियमोपमा** तन्नामा अलङ्कारः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमान का नियमन नहीं होता, वह अनियमोपमा कहलाती है। जैसे उक्त उदाहरण में कमल के ही उपमान होने का नियमन नहीं है। उससे अन्य चन्द्रादि भी उपमेय मुख के उपमान हो सकते हैं। अतः यहाँ अनियमोपमा है।

(२) उत्तरवर्ती आचार्यों ने इस उपमाभेद को स्वीकार नहीं किया है।

(समुच्चयोपमाविवेचनम्)

समुच्चयोपमाप्यस्ति न कान्त्यैव मुखं तव।
ह्लादनाख्येन चान्वेति कर्मणेन्दुमितीदृशी ।।२१।।

अन्वय— तव मुखं कान्त्या एव न, ह्लादनाख्येन कर्मणा चापि इन्दुम् अन्वेति इति ईदृशी समुच्चयोपमा अस्ति।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारा। मुखं = मुख। कान्त्या = कान्ति से, प्रभा से। एव न = ही नहीं। ह्लादनाख्येन = आह्लादन रूप, अनुरञ्जन रूप। कर्मणा चापि = कर्म से भी। इन्दुं = चन्द्रमा का। अन्वेति = अनुसरण (अनुगमन, अनुकरण) करता है। इति = इस प्रकार। ईदृशी = ऐसी। समुच्चयोपमा = समुच्चयोपमा। अस्ति = होती है।

अनुवाद— तुम्हारा मुख कान्ति से ही नहीं (प्रत्युत) अनुरञ्जन रूप कर्म से भी चन्द्रमा का अनुसरण (अनुकरण) करता है, इस प्रकार ऐसी (उपमा) समुच्चयोपमा होती है।

संस्कृतव्याख्या— सप्तमं समुच्चयोपमां विवेचयत्यत्र- **समुच्चयोपमेति** । **तव** मुग्धायाः **मुखम्** आननं **कान्त्या एव** प्रभया एव **न** प्रत्युत **ह्लादनाख्येन** अनुरञ्जनरूपेण **कर्मणा चापि इन्दुं** चन्द्रम् **अन्वेति** अनुकरोति **इति** एवं प्रकारेण **इदृशी** एतादृशी **समुच्च-योपमा** तन्नामा उपमालङ्कारः **अस्ति** विद्यते । समुच्चयोपमा सामान्यधर्मद्वयस्य द्वया-धिकस्य वा समुच्चयेन एकत्र निरूपणाद् भवति । चमत्कारविशेषाभावादयमपि भेदः परवर्तिभिराचार्यैरस्वीकृतम् ।

विशेष—

(१) जिस उपमा में दो या दो से अधिक सामान्य धर्मों का एकत्र वर्णन हो, वह समुच्चयोपमा कहलाती है। दो या दो से अधिक धर्मों का समुच्चय (एकत्र वर्णन) होने के कारण होने वाली उपमा समुच्चयोपमा है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में कान्ति और आह्लादन- इन दो साधारण धर्मों के लिए मुख की चन्द्रमा से उपमा दी गयी है, अतः समुच्चयोपमा है।

(३) परवर्ती आचार्यों द्वारा यह उपमा का भेद भी विशेष चमत्कार युक्त न होने के कारण निर्दिष्ट नहीं किया गया है।

(अतिशयोपमाविवेचनम्)

त्वय्येव त्वन्मुखं दृष्टं दृश्यते दिवि चन्द्रमाः ।
इयत्येव भिदा नान्येत्यसावतिशयोपमा ।।२२।।

अन्वय— त्वन्मुखं त्वयि एव दृष्टं, चन्द्रमा दिवि दृश्यते, इयती एव भिदा, न अन्या, इति असौ अतिशयोपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— त्वन्मुखं = तुम्हारा मुख। त्वयि = तुम्हारे (शरीर) में। एव = ही। दृष्टं = दिखालायी पड़ता है, दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रमाः = चन्द्रमा। दिवि = आकाश में। दृश्यते = दिखलायी पड़ता है। इयती एव = इतना ही। भिदा = भेद है। अन्या = अन्य (भेद) । न = नहीं है। इति = इस प्रकार। असौ = यह। अतिश-योपमा = अतिशयोपमा है।

अनुवाद— तुम्हारा मुख तुम्हारे (शरीर) में ही दिखलायी पड़ता है (और) चन्द्रमा आकाश में दृष्टिगोचर होता है; (तुम्हारे मुख और चन्द्रमा में) इतना ही अन्तर है; अन्य कोई (अन्तर) नहीं है; इस प्रकार यह अतिशयोपमा (नामक उपमालङ्कार) है।

संस्कृतव्याख्या— अष्टमम् अतिशयोपमां विवेचयत्यत्र- **त्वय्येवेति** । **त्वन्मुखं** तव मुग्धायाः मुखम् आननं **त्वयि एव** तव शरीरे एव **दृष्टं** दृष्टिगोचरं विद्यते, **चन्द्रमाः** चन्द्रः **दिवि** आकाशे **दृश्यते** दृष्टिगोचरं जायते; त्वन्मुखचन्द्रयोः **इयती एव** एतावदेव **भिदा** स्थानविशेषस्य भेदः विद्यते **अन्या** अतोऽपरा कश्चिद् भेदः **न** अस्ति; **इति** एवम् **असौ** एषा **अतिशयोपमा** तन्नामा उपमालङ्कारः वर्तते । उपमेयोपमानयोः आश्रयभेदमात्रकथनाद् उपमायाः अतिशयचमत्कारेण अतिशयोपमा विद्यते अथ वा तयोः महदन्तरे सत्यपि तयोः स्थाननिबन्धने एव भेदः नान्यः, इत्यभेदाध्यवसायवर्णनाद् अतिशयोपमा अस्ति ।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमान और उपमेय में अत्यधिक भेद होने पर भी केवल एक भेद को प्रस्तुत करके अन्य भेदों को छिपा दिया जाता है, इस प्रकार दोनों में एक भेद के अतिरिक्त अन्य भेदों को अभेदाध्यवसाय कर दिया जाता है जिससे उपमेय की गुण-क्रिया का अतिशय प्रतीत होता है, ऐसी उपमा अतिशयोपमा कहलाती है।

(२) इस उपमा में समानता व्यञ्जित होती है, शब्दोपात्त नहीं, क्योंकि उपमावाचक इवादि शब्द प्रयुक्त नहीं होते।

(३) प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय मुख और उपमान चन्द्रमा में केवल आश्रयगत भेद मुख का शरीराश्रित होना और चन्द्रमा का आकाशाश्रित होना ही प्रस्तुत किया गया है। दोनों में इसके अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं दिखलाया गया है। इस प्रकार उपमा में सातिशय चमत्कार होने के कारण यहाँ अतिशयोपमा है।

(४) इसे व्यतिरेक अलङ्कार नहीं माना जा सकता, क्योंकि व्यतिरेक अलङ्कार में उपमेय की उत्कृष्टता और उपमान की अपकृष्टता प्रस्तुत होती है (द्रष्टव्य सा०द० १०.५२)। किन्तु यहाँ उपमान और उपमेय में समानता है अतः यह उपमा का ही भेद है।

(उत्प्रेक्षितोपमाविवेचनम्)

मय्येवास्या मुखश्रीरित्यलमिन्दोर्विकत्थनैः ।
पद्मेऽपि सा यदस्त्येवेत्यसावुत्प्रेक्षितोपमा ।।२३।।

अन्वय— अस्याः मुखश्रीः मयि एव इति इन्दोः विकत्थनैः अलम् । पद्मे अपि सा अस्ति एव इति असौ उत्प्रेक्षितोपमा (विद्यते) ।

शब्दार्थ— अस्याः = इस (मुग्धा) की । मुखश्रीः = मुख की कान्ति, मुख की शोभा । मयि एव = मेरे (चन्द्रमा) में ही (है)। इति = इस प्रकार । इन्दोः = चन्द्रमा

की। विकत्थनैः = आत्मश्लाघा से, आत्मप्रशंसा से। अलम् = कोई फल नहीं है, व्यर्थ है। पद्मे अपि = कमल में भी। सा = वह (इसके मुख की शोभा के समान शोभा)। यत् = तो। अस्ति एव = है ही। इति = इस प्रकार। असौ = यह। उत्प्रेक्षितोपमा = उत्प्रेक्षितोपमा है।

अनुवाद— इस (मुग्धा) के मुख की शोभा (के समान शोभा) केवल मेरे (चन्द्रमा) में ही है, इस प्रकार चन्द्रमा की आत्मश्लाघा (आत्मप्रशंसा) व्यर्थ है (क्योंकि) कमल में भी वह (इसके मुख की शोभा के समान शोभा) तो है ही, इस प्रकार यह उत्प्रेक्षितोपमा (अलङ्कार) है।

संस्कृतव्याख्या— नवमम् उत्प्रेक्षितोपमां विवेचयत्यत्र- **मय्येवेति**। **अस्याः** मुग्धायाः **मुखश्रीः** मुखकान्तिसदृशी कान्तिः **मयि एव** चन्द्रे एव, विद्यते इति शेषः, **इति** एवं विधम् **इन्दोः** चन्द्रस्य **विकत्थनैः** आत्मप्रशंसाबन्धनैः **अलं** न कोऽपि लाभः। यतो हि **सा** मुग्धायाः मुखकान्तिसदृशी कान्तिः **कमलेऽपि** अरविन्देऽपि **अस्ति एव** निश्चितरूपेण विद्यते, **इति उत्प्रेक्षितोपमा** चन्द्रस्य आत्मश्लाघायाः उत्प्रेक्षणाद् **उत्प्रेक्षितोपमा** नाम अलङ्कारः। चन्द्रमा एवंविधं आत्मप्रशंसनं न करोति, नायकेनैव चाटूक्तये इदमुत्प्रेक्षितम् अत एवात्रोत्प्रेक्षितोपमा अस्ति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उत्प्रेक्षा द्वारा सादृश्य का कथन होता है, वह उत्प्रेक्षितोपमा कहलाती है।

(२) चन्द्रमा इस प्रकार की आत्मप्रशंसा नहीं करता, यह नायक के द्वारा चाटूक्ति के लिए उत्प्रेक्षित मात्र है, वास्तविक नहीं।

(३) इस सुन्दरी के मुख की शोभा केवल मुझमें ही है यदि ऐसा सोच कर चन्द्रमा अपनी प्रशंसा करता है तो उसकी भूल है क्योंकि उसके मुख की शोभा कमल में भी तो है ही- इस कथन में चन्द्रमा के विकत्थन के निषेध की कल्पना द्वारा मुख और चन्द्रमा में सदृशता बतलायी गयी है। यह सादृश्यता उत्प्रेक्षागर्भित है, अतः यह उत्प्रेक्षितोपमा है।

(अद्भुतोपमाविवेचनम्)

यदि किञ्चिद् भवेत् पद्मं सुभ्रु विभ्रान्तलोचनम्।
तत्ते मुखश्रियं धत्तामित्यसावद्भुतोपमा ।।२४।।

अन्वय— सुभ्रु, यदि पद्मं किञ्चित् विभ्रान्तलोचनं भवेत् तत् ते मुखश्रियं धत्ताम् इति असौ अद्भुतोपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— सुभ्रु = हे सुन्दर भौहों वाली (सुन्दरि)। यदि = यदि। पद्मं = कमल। विभ्रान्तलोचनं = चञ्चल आँखों वाला। भवेत् = हो जाय। तत् = तो। ते = तुम्हारे। मुखश्रियं = मुख की कान्ति (शोभा) को। धत्तां = धारण कर ले, प्राप्त कर ले। इति = इस प्रकार। असौ = यह। अद्भुतोपमा = अद्भुतोपमा है।

अनुवाद— हे सुन्दर भौहों वाली (सुन्दरि), यदि कमल चञ्चल आँखो वाला हो जाय (अर्थात् यदि कमल में चञ्चल आँखें हो जाय) तो वह (कमल) तुम्हारे मुख की कान्ति को धारण कर ले, इस प्रकार यह अद्भुतोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— दशमम् अद्भुतोपमां विवेचयत्यत्र- **यदीति**। **सुभ्रु** हे सुष्ठु-भ्रूयुक्ते सुन्दरि ! **यदि** चेत् **पद्मं** कमलं **विभ्रान्तलोचनं** चञ्चलनेत्रयुक्तं **भवेत्** जायेत् तर्हि **तत्** कमलं **ते** तव सुन्दर्याः **मुखश्रियं** मुखस्य आननस्य श्रियं शोभां **धत्तां** धारयेत् **इति** एवं **असौ अद्भुतोपमा** तन्नामा अलङ्कारः विद्यते। यदि कमलं नेत्रयुक्तं भवेत् तत् तव मुखश्रियं धारयितुं प्रभवेद् इति अद्भुतसम्भावनया कल्पितत्वेन मुखसादृश्यकथनं चमत्कारातिशयाय विद्यते अत एवात्र अद्भुतोपमा। चञ्चलनेत्रत्वादयः धर्माः मुखस्यैव वर्तते, न तु कमलस्य परञ्च तेषामपि सम्भावनया कमले कल्पनम् अद्भुतत्वं तेनाद्भुतत्वेन युक्ता उपमा अद्भुतोपमा भवति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में अद्भुत सम्भावना के द्वारा सादृश्य का कथन होता है, वह अद्भुतोपमा कहलाती है।

(२) नेत्र की चञ्चलता मुख का धर्म है, कमल का नहीं। नायिका की चाटुकारिता करने वाले नायक ने अद्भुत सम्भावना द्वारा उसे कमल के धर्म के रूप में कल्पित किया है, यही चमत्कारिता है। यह चमत्कारपूर्ण उपमा अद्भुत सम्भावना के होने के कारण अद्भुतोपमा कहलाती है।

(मोहोपमाविवेचनम्)

शशीत्युत्प्रेक्ष्य तन्वङ्गि त्वन्मुखं त्वन्मुखाशया।
इन्दुमप्यनुधावामीत्येषा मोहोपमा स्मृता ।।२५।।

अन्वय— तन्वङ्गि, त्वन्मुखं शशी इति उत्प्रेक्ष्य त्वन्मुखाशया इन्दुम् अपि अनुधावामि इति एषा मोहोपमा स्मृता।

शब्दार्थ— तन्वङ्गि = हे पतले शरीर वाली (सुन्दरि)। त्वन्मुखं = तुम्हारे मुख को। शशी इति = चन्द्रमा है- ऐसा। उत्प्रेक्ष्य = समझकर। त्वन्मुखाशया = तुम्हारे मुख (को देखने) की लालसा से। इन्दुम् अपि = चन्द्रमा के ही। अनुधावामि = (मोह

वश) पीछे-पीछे दौड़ रहा हूँ, अनुसरण (अनुगमन) कर रहा हूँ । इति = इस प्रकार। एषा = यह। मोहोपमा = मोहोपमा। स्मृता = कहलाती है।

अनुवाद— हे पतले शरीर वाली (सुन्दरि), तुम्हारे मुख को (यह) चन्द्रमा (है) ऐसा समझकर (और फिर तुम्हारे विरह-काल में) तुम्हारे मुख (को देखने) की लालसा से (चन्द्रमा को तुम्हारा मुख समझकर) मैं (भ्रमवश) चन्द्रमा के ही पीछे-पीछे दौड़ रहा हूँ, इस प्रकार (मुख में चन्द्रमा और चन्द्रमा में मुख का भ्रम होने के कारण) यह मोहोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— एकादशं मोहोपमां विवेचयत्यत्र- **शशीति**। **तन्वङ्गि** हे कृशाङ्गि, **त्वन्मुखं** तव सुन्दर्याः मुखम् आननं **शशी इति** चन्द्रमाः इति **उत्प्रेक्ष्य** सम्भाव्य तदनन्तरं त्वद्विरहकाले **त्वन्मुखाशया** तव मुखस्य आननस्य आशया स्पृहया अहम् भ्रमेण चन्द्रे त्वमुखम् अवबुद्ध्य **इन्दुं** चन्द्रम् **अपि अनुधावामि** अनुगच्छामि **इति** एवंविधं **एषा** सम्प्रत्युदाहृता **मोहोपमा** तन्नामा अलङ्कारः। उत्तवर्तिनामाचार्याणां मतेनायं भ्रान्तिमानलङ्कारः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में भ्रम के कारण उपमान को उपमेय समझ लिया जाय, वह मोहोपमा कहलाती है। दण्डी से उत्तरवर्ती आचार्यों ने इसे भ्रान्तिमान् अलङ्कार के नाम से अभिहित किया है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में सादृश्य के कारण चन्द्रमा को सुन्दरी का मुख समझ लिया गया है अतः भ्रममूलक होने के कारण यहाँ मोहोपमा है।

(संशयोपमाविवेचनम्)

किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किन्ते लोलेक्षणं मुखम्।
मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा ।।२६।।

अन्वय— किम् अन्तर्भ्रान्तालि पद्मं किं ते लोलेक्षणं मुखम् मम चित्तं दोलायते इति इयं संशयोपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— किं = क्या। अन्तर्भ्रान्तालि = मध्यभाग में घूमते हुए (भ्रमण करते हुए, विचरण करते हुए) भ्रमरों वाला। पद्मं = कमल (है)। किं = क्या, अथवा। ते = तुम्हारा। लोलेक्षणं = चञ्चल आखों वाला। मुखं = मुख (है)। मम = मेरा। चित्तं = मन। दोलायते = आन्दोलित हो रहा है, संशय (दुविधा) में पड़ गया है। इति = इस प्रकार। इयं = यह। संशयोपमा है।

अनुवाद— क्या (यह) मध्यभाग में धूमते (विचरण करते) हुए भ्रमरों वाला कमल है (अथवा) तुम्हारा चञ्चल आखों वाला मुख है (इस विषय में) मेरा मन आन्दोलित हो रहा है (संशय = दुविधा में पड़ गया है), इस प्रकार यह संशयोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— द्वादशं संशयोपमां विवेचयत्यत्र- **किमिति**। **किं** संशये **अन्तर्भ्रा-न्तालि** अन्तः मध्यभागे भ्रान्तौ भ्रमन्तौ अली भ्रमरौ यत्र तादृशं **पद्मं** कमलं **किं** अथवा **ते** तव सुन्दर्याः **लोलेक्षणं** लोले चञ्चले ईक्षणे नेत्रे यत्र तादृशं **मुखम्** आननं विद्यते इति **मम** नायकस्य **चित्तं** मनः **दोलायते** द्वैधमिवानुभवति, **इति** एवं संशयस्य चमत्कारतया **इयम्** एषा **संशयोपमा** तन्नामालङ्कारः अस्ति। अन्येषा-माचार्याणां मतेनात्र सन्देहालङ्कारः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में समानता की प्रतीति में संशय होता है, वह संशयमूलक होने के कारण संशयोपमा कहलाती है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में समानता के कारण यह मध्यभाग में मडराते हुए भौरों वाला कमल है अथवा चञ्चल आँखों वाला मुख- यह संशय है अतः यहाँ संशयमूलक संशयोपमा है।

(३) अन्य आचार्यों ने इस अलङ्कार को सन्देह अलङ्कार के नाम से अभिहित किया है।

(निर्णयोपमाविवेचनम्)

न पद्मस्येन्दुनिग्राह्यस्येन्दुलज्जाकरी द्युतिः ।
अतस्त्वन्मुखमेवेदमित्यसौ निर्णयोपमा ।।२७।।

अन्वय— इन्दुलज्जाकरी द्युतिः इन्दुनिग्राह्यस्य पद्मस्य न, अतः इदं त्वन्मुखम् एव, इति असौ निर्णयोपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— इन्दुलज्जाकरी = चन्द्रमा को लज्जित कर देने वाली। द्युतिः = कान्ति, शोभा। इन्दुनिग्राह्यस्य = चन्द्रमा के द्वारा (सङ्कोचित अत एव) अभिभूत (पराजित) कर दिये जाने वाले। पद्मस्य = कमल की। न = नहीं होती। अतः = इसलिए। इदं = यह। त्वन्मुखम् एव = तुम्हारा मुख ही है। इति = इस प्रकार। असौ = यह। निर्णयोपमा = निर्णयोपमा (है)।

अनुवाद— चन्द्रमा को लज्जित कर देने वाली शोभा चन्द्रमा के द्वारा (सङ्कुचित कर दिये जाने वाले अत एव) अभिभूत (पराजित) यह दिये जाने वाले कमल की

नहीं होती, इसलिए (चन्द्रमा को लज्जित कर देने वाला) यह तुम्हारा मुख ही है। इस प्रकार यह (सादृश्य संशय के निर्णयान्त संशय रूप होने से) निर्णयोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— त्रयोदशं निर्णयोपमां विवेचयत्यत्र– **न पद्मस्येति**। **इन्दुनिग्राह्यस्य** इन्दुना निग्राह्यस्य पराभूतस्य **पद्मस्य** कमलस्य **द्युतिः** शोभा चन्द्रेण **इन्दुलज्जाकरी** चन्द्रसङ्कोचकारिणी **न** सम्भवति। कमलं स्वसङ्कोचेन हेतुना चन्द्रेण अभिभूयमानं भवति अत एव तत्कमलं चन्द्रेणाभिभूतपूर्वम्; तस्य शोभा स्वजेतारं चन्द्रं सङ्कोचयितुम् अक्षमा विद्यते। **अत** एतां चन्द्रसङ्कोचकारिणीं शोभां बिभ्रत् **त्वन्मुखं** तवाननमेवास्ति **इति असौ निर्णयोपमा** तन्नामालङ्कारः वर्तते। उपमायाः भेदोऽयं परवर्तिभिराचार्यैः सन्देहः निश्चयो वा अलङ्काररूपेण ख्यापितः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमेय और उपमान को निर्णय देकर सादृश्य व्यक्त किया जाता है, वह निर्णयोपमा कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रमा के उदित होने पर कमल सङ्कुचित हो जाता है अतः कमल की शोभा चन्द्रमा के लिए लज्जाकारक नहीं हो सकती, इस लिए यह तुम्हारा मुख ही है, कमल नहीं हो सकता क्योंकि यदि कमल होता तो वह चाँदनी में सङ्कुचित हो जाता अतः चन्द्रमा इसके आगे लजाता नहीं। इस निर्णय से मुख और चन्द्रमा में सादृश्य प्रकट होता है अतः यहाँ निर्णयोपमा है।

(श्लेषोपमाविवेचनम्)

शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि[१] श्रीमत् सुरभिगन्धि च।
अम्भोजमिव ते वक्त्रमिति श्लेषोपमा स्मृता[२] ॥२८॥

अन्वय— ते वक्त्रं अम्भोजम् इव शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि श्रीमत् सुरभिगन्धि च (वर्तते); इति श्लेषोपमा स्मृता।

शब्दार्थ— ते = तुम्हारा। वक्त्रं = मुख। अम्भोजम् इव = कमल के समान शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि = चन्द्रमा का शत्रु, चन्द्रमा का प्रतिद्वन्द्वी। श्रीमत् = लक्ष्मी से संयुक्त, शोभा से सम्पन्न। सुरभिगन्धि च = और सुगन्ध युक्त, सुगन्धित (श्वासों वाला)। इति = यह। श्लेषोपमा = श्लेषोपमा। स्मृता = कहलाती है।

---

(१) प्रतिद्वन्द्वि।

(२) मता।

अनुवाद— तुम्हारा मुख कमल के समान चन्द्रमा का प्रतिद्वन्द्वी, शोभा से सम्पन्न और सुगन्धयुक्त है, यह श्लेषोपमा कहलाती है।

संस्कृतव्याख्या— चतुदर्शी श्लेषोपमां विवेचयत्यत्र- **शिशिरांशिवति इत्यादि**। **ते** तव सुन्दर्याः **वक्त्रं** मुखं **अम्भोजम् इव** कमलसदृशं **शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि** शिशिरांशोः चन्द्रस्य प्रतिस्पर्धि प्रतिद्वन्द्वि **श्रीमत्** शोभायुक्तं **सुरभिगन्धि च** मनोहरगन्धयुक्तं च विद्यते **इति श्लेषोपमा** तन्नामा उपमा **स्मृता** कथिता बुधैः इति शेषः। यस्यामुपमायां साधारणधर्माणां श्लेषेण कथनं भवति सा उपमा श्लेषोपमा इत्यभिधेया भवति। अत्र मुखस्योपमा कमलेन सह विद्यते। यथा कमलं चन्द्रेण सङ्कोचनं प्राप्य तस्य प्रतिद्वन्द्वि भवति तथैव मुखमपि स्वशोभातिशयात् चन्द्रस्य प्रतिद्वन्द्वि विद्यते। यथा लक्ष्मीनिवासात् कमलं श्रीसम्पन्नं तथैव मुखं शोभासम्पन्नं तथा च कमलस्य सुगन्धवत् मुखमपि सुगन्धियुक्तं विद्यते।

विशेष—

(१) जिस उपमा में साधारण धर्म के लिए श्लिष्ट पदों का प्रयोग किया जाता है वह श्लेषोपमा कहलाती है। जैसे- प्रस्तुत उदाहरण में मुख की उपमा कमल से दी गयी है। इसमें साधारण धर्म के लिए उपमेय और उपमान को चन्द्र का प्रतिस्पर्धि, श्रीमत् और सुरभिगन्धि कहा गया है। ये पद श्लिष्ट हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा द्वारा सङ्कुचित कर दिये जाने के कारण कमल चन्द्रमा से स्पर्धा रखता है उसी प्रकार शोभातिशय से मुख भी चन्द्रमा से स्पर्धा करता है, लक्ष्मी का आसन होने के कारण कमल श्रीसम्पन्न है तो अपनी कान्ति से मुख भी श्रीसम्पन्न है और कमल से सुन्दर गन्ध निकलती है तो मुख से भी सुगन्ध निकलती है।

(२) इस कथन से शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि, श्रीमत् और सुरभिगन्धि- ये साधारण धर्म वाले पद श्लेषयुक्त है, अतः यहाँ श्लेषोपमा है।

(समानोपमाविवेचनम्)

सरूपशब्दवाच्यत्वात्सा समानोपमा[१] यथा।
बालेवोद्यानमालेयं सालकाननशोभिनी ॥२९॥

अन्वय— सरूपशब्दवाच्यत्वात् सा समानोपमा (भवति)। यथा- इयम् उद्यानमाला बाला इव सालकाननशोभिनी (विद्यते)।

---

(१) सरूपो-, सन्दानो-।

शब्दार्थ— सरूपशब्दवाच्यत्वात् = समान रूप वाले शब्द से अभिहित होने के कारण। सा = वह उपमा। समानोपमा = समानोपमा (होती है)। यथा = जैसे। इयम् = यह। उद्यानमाला = उपवनमाला, उपवन की पङ्क्ति। बाला इव = युवती के समान। सालकाननशोभिनी = (उपवनमाला पक्ष में) साल वृक्ष से शोभायमान है (युवती पक्ष में) सालक आनन (अर्थात् अलकों से युक्त मुख) से शोभायमान है।

अनुवाद— (सामान्य धर्म के भिन्न-भिन्न होने पर भी उसका) समान रूप वाले शब्द से अभिहित होने कारण वह उपमा समानोपमा (कहलाती है)। जैसे- यह उद्यानमाला साल वृक्षों से उसी प्रकार शोभायमान है जिस प्रकार युवती सालक आनन (अलकों से युक्त मुख) से शोभायमान होती है।

संस्कृतव्याख्या— पञ्चदशं समानोपमां विवेचयत्यत्र- **सरूपेति**। **सरूपशब्द-वाच्यत्वात्** साधर्म्यस्य सरूपैः समानरूपैः शब्दैः वाच्यत्वात् प्रतिपादनत्वात् **सा** प्रसिद्धा उपमा **समानोपमा** तन्नामा उपमा इति कथ्यते। **यथा सालकाननशोभिनी** साल-काननैः सालवृक्षैः शोभिनी सुशोभिता सती **उद्यानमाला** उपवनश्रेणिः सालकैः कुन्तलै सुशोभितेन आननेन मुखेन शोभिनी सुशोभिता **बाला इव** युवती सदृशी विद्यते। अत्र उपमायां उपमानोपमेययोः सामान्यधर्मस्य भिन्नत्वादपि समानरूपेण शब्देन वाच्यत्वात् समानोपमा विद्यते।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमान और उपमेय के साधारण धर्म के भिन्न-भिन्न होने पर भी उनका समान रूप वाले श्लिष्ट शब्द द्वारा कथन होता है वह समानोपमा कहलाती है। इस उपमा का आधार साधारणधर्म को समान रूप वाले शब्द से कहा जाना है अर्थात् यह शब्दश्लेष पर आधारित उपमा है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय उद्यानपङ्क्ति का साधारण धर्म सालवृक्षों से शोभायमान होना है तथा उपमान युवती के मुख का साधारण धर्म चूर्ण कुन्तल से शोभायमान होना है। यहाँ इन दोनों धर्मों का कथन समानरूप वाले एक ही श्लिष्ट शब्द 'सालकाननशोभिनी' से किया गया है, अतः समानोपमा है।

(निन्दोपमाविवेचनम्)

पद्मं बहुरजश्चन्द्रो क्षयी ताभ्यां तवाननम्।
समानमपि सोत्सेकमिति निन्दोपमा स्मृता[१] ।।३०।।

---

(१) मता।

अन्वय— पद्मं बहुरजः चन्द्रः क्षयी ताभ्यां समानम् अपि तव आननं सोत्सेकम् इति निन्दोपमा स्मृता।

शब्दार्थ— पद्मं = कमल। बहुरजः = बहुत पराग-कणों वाला। चन्द्रः = चन्द्रमा। क्षयी = क्षयशील, क्षीण होने वाला, क्षय को प्राप्त होने वाला, घटने वाला। ताभ्यां = (दोष-दूषित) उन दोनों से। समानम् अपि = समान (सदृश्यता युक्त) होने पर भी। तव = तुम्हारा। आननं = मुख। सोत्सेकं = उत्कृष्ट, शोभासम्पन्न, अतिशयशोभाधायक, अत्यधिक रमणीय (आकर्षक)। इति = इस प्रकार। निन्दोपमा = निन्दोपमा। मता = कहलाती है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) कमल बहुत पराग-कणों वाला है (अर्थात् कमल परागकणों से धूसरित है और) चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होने वाला (कृष्ण पक्ष में धीरे-धीरे क्षीण होने वाला) है। (दोष-दूषित) उन दोनों (कमल और चन्द्रमा) से समान होने पर भी तुम्हारा मुख अत्यधिक आकर्षक है, इस प्रकार (निन्द्य उपमानों से समानता का कथन होने से) यह निन्दोपमा कहलाती है।

संस्कृतव्याख्या— षोडशं निन्दोपमां विवेचयत्यत्र– **पद्ममिति**। हे सुन्दरी **पद्मं** कमलं **बहुरजः** बहुपरागकणधूसरितं विद्यते, **चन्द्रः** चन्द्रमाः च **क्षयी** कृष्णपक्षे प्रतिदिनं क्षीणतां याति, ताभ्यां द्वाभ्यां कमलचन्द्राभ्यां **समानम् अपि** साधर्म्यान्तरेण तुल्यम् अपि **तव** ते युवत्याः **आननं** मुखं **सोत्सेकं** समतिशयोत्कर्षयुक्तं विद्यते **इति** एवं विधं निन्द्योपमाने साम्यताकथनात् **निन्दोपमा** तन्नामा उपमा भवति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमान में दोष दिखलाते हुए उसकी उपमेय से समानता दिखलायी जाती है, वह निन्दोपमा कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में उपमान कमल बहुत से परागकणों के गिरने के कारण मटमैला हो गया है तथा चन्द्रमा कृष्णपक्ष में प्रतिदिन क्रमशः घटता जाता है किन्तु उन दोनों के समान होते हुए भी उपमेय मुख अतिशय उत्कर्ष वाला अतः आकर्षक है। इस प्रकार उपमान कमल और चन्द्रमा की निन्दा करते हुए उनके समान मुख के होने का कथन होने से यहाँ निन्दोपमा है।

(प्रशंसोपमाविवेचनम्)

ब्रह्मणोऽप्युद्भवः पद्मं चन्द्रः[1] शम्भुशिरोधृतः।
तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति[2] सा प्रशंसोपमेष्यति ।।३१।।

(१) पद्मश्चन्द्रः। (२) ते मुखेनेति।

अन्वय— पद्मं ब्रह्मणः अपि उद्भवः, चन्द्रः शम्भुशिरोधृतः तौ त्वन्मुखेन तुल्यौ (विद्यते) इति सा प्रशंसोपमा इष्यति।

शब्दार्थ— पद्मं = कमल। ब्रह्मणः = जगत्स्रष्टा का, ब्रह्मा का, विधाता का। अपि = भी। उद्भवः = उत्पत्तिस्थान, जन्मस्थान। चन्द्रः = चन्द्रमा। शम्भुशिरोधृतः = शङ्कर के द्वारा शिर पर धारण किया जाता है। तौ = वे दोनों (कमल और चन्द्रमा)। त्वन्मुखेन = तुम्हारे मुख के। तुल्यौ = समान हैं। इति = इस प्रकार। सा = वह (उपमा)। प्रशंसोपमा = प्रशंसोपमा। इष्यते = कहलाती है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) कमल ब्रह्मा का भी उत्पत्ति स्थान है, और चन्द्रमा शङ्कर द्वारा सिर पर धारण किया जाता है। (ऐसे) ये दोनों (कमल और चन्द्रमा) तुम्हारे मुख के समान हैं, इस प्रकार वह (उपमा) प्रशंसोपमा कहलाती है।

संस्कृतव्याख्या— सप्तदशं प्रशंसोपमां विवेचयत्यत्र– **ब्रह्मणः इति**। हे सुन्दरि, **पद्मं** कमलं **ब्रह्मणः** विधातुः **उद्भवः** जन्मस्थानं विष्णोः नाभिकमलेन ब्रह्मणः जन्म इति पौराणिककथनम्, **चन्द्रः** चन्द्रमाः **शम्भुशिरोधृतः** शम्भुना शङ्करेण शिरसि मस्तके धृतः निधाय लब्धादरः। एतादृशौ विधातृणा शङ्करेण च सम्मानितौ **तौ** द्वौ प्रशंसनीयौ कमलचन्द्रमसौ **त्वन्मुखेन** तव सुन्दर्याः मुखेन आननेन तुल्यौ सदृशौ स्तः। इति उपमेयस्य महत्त्वप्राप्तेनोपमानेन सदृशत्वात् **सा** प्रसिद्धोपमा **प्रशंसोपमा** तन्नामोपमा **इष्यते** कथ्यते बुधैरितिशेषः। अत्र कमलचन्द्रमसौ गुणाधिकतया उपमानभूतेन मुखेन प्रशंसितौ इति मुखस्य गुणाधिक्यं व्यञ्जितम्। प्रसिद्धस्योपमेयस्य मुखस्य उपमानकल्पनादत्र विपर्यासोपमा सम्भाविता जायते परञ्च प्रशंसाप्रामुख्यात्तु प्रशंसोपमायाः एवात्र ग्रहणं भवति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में श्रेष्ठ उपमान से उपमेय की श्रेष्ठता व्यक्त होती है, वह प्रशंसोपमा कहलाती है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण में उपमान कमल और चन्द्रमा दोनों श्रेष्ठ हैं क्योंकि कमल ब्रह्मा का जन्मस्थान तथा चन्द्रमा शिव के द्वारा सिर पर धारण किया जाता है। ये श्रेष्ठ उपमान मुख के समान हैं। इस कथन से मुख की श्रेष्ठता व्यक्त की गयी है। अतः यह उपमा उपमेय की प्रशंसापरक होने के कारण प्रशंसोपमा है।

(२) प्रसिद्ध उपमेय मुख के उपमान के रूप में उद्भावित करने के कारण यहाँ विपर्यासोपमा भी सम्भावित है किन्तु उपमेय की प्रशंसा की प्रमुखता होने के कारण यहाँ प्रशंसोपमा ही है।

(आचिख्यासोपमाविवेचनम्)

चन्द्रेण त्वन्मुखं तुल्यमित्याचिख्यासु मे मनः ।
स गुणो वास्तु दोषो वेत्याचिख्यासोपमा ।।३२।।

अन्वय— त्वन्मुखं चन्द्रेण तुल्यं इति मे मनः आचिख्यासु । सः गुणः वा दोषः वा इति आचिख्यासोपमा (विद्यते) ।

शब्दार्थ— त्वन्मुखं = तुम्हारा मुख । चन्द्रेण = चन्द्रमा के । तुल्यं = समान (है) । इति = इस प्रकार । मे = मेरा । मनः = मन, चित्त । आचिख्यासु = कहना चाहता है, कहने का इच्छुक है । सः = वह । गुणः वा = गुण है, उचित है । दोषः वा = अथवा दोष है, अनुचित है । इति = इस प्रकार । आचिख्यासोपमा = आचि-ख्यासोपमा (है) ।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान है- इस प्रकार मेरा मन कहना चाहता है । (यह कथन) गुण (उचित) है अथवा दोष (अनुचित) है, इस प्रकार यह आचिख्यासोपमा है ।

संस्कृतव्याख्या— अष्टादशम् आचिख्यासोपमां विवेचयत्यत्र- **चन्द्रेणेति** । **हे सुन्दरि, त्वन्मुखं** तवाननं **चन्द्रेण** चन्द्रमसा **तुल्यं** सदृशम् विद्यते **इति** एवं विधं **मे** मम **मनः** चेतः **आचिख्यासु** कथयितुम् इच्छुकं विद्यते । **सः** कथनाभिलाषः **गुणः वा** न जाने उचितं वा **दोषः वा** अनुचितं वा अस्ति, **इति** एवंविधा उपमा आचिख्यान् मूलतत्वात् **आचिख्यासोपमा** तन्नामोपमा वर्तते ।

विशेष—

(१) जिस उपमा में समानता के कथनमात्र की इच्छा व्यक्त होती है, वह आचिख्यासोपमा कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में मुख चन्द्रमा के समान है- यह कहने की इच्छा व्यक्त की गयी है अतः यहाँ आचिख्यासोपमा है ।

(विरोधोपमाविवेचनम्)

शतपत्रं शरच्चन्द्रस्त्वदाननमिति त्रयम् ।
परस्परविरोधीति सा विरोधोपमा मता[१] ।।३३।।

अन्वय— शतपत्रं शच्चन्द्रः त्वदाननम् इति त्रयं परस्परविरोधि इति सा विरो-धोपमा मता ।

---

(१) - पमोदिता ।

शब्दार्थ— शतपत्रं = कमल। शरच्चन्द्रः = शरत्कालीन चन्द्रमा। त्वदाननं = तुम्हारा मुख। इति = ये। त्रयं = तीनों। परस्परविरोधि = आपस में प्रतिद्वन्द्वी है। इति = इस प्रकार। सा = वह (उपमा)। विरोधोपमा = विरोधोपमा। मता = कही गयी है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) कमल, शरत्कालीन चन्द्रमा और तुम्हारा मुख- ये तीनों परस्पर विरोधी (परस्पर सौन्दर्य के प्रतिद्वन्द्वी) हैं, इस प्रकार (परस्पर विरोध के कारण) वह (उपमा) विरोधोपमा कही गयी है।

संस्कृतव्याख्या— एकोनविंशं विरोधोपमां विवेचयत्यत्र— **शतपत्रमिति**। हे सुन्दरि, शतपत्रं कमलं **शरच्चन्द्रः** शरत्कालीनचन्द्रमाः **इति त्रयं परस्परविरोधि** परस्परस्य अन्योन्यस्य विरोधि प्रतिद्वन्द्वि विद्यते। परस्परं समानगुणानां परस्परं विरोधः प्रसिद्धः। अत्र तु कमलस्य चन्द्रस्य च विरोधः चन्द्रेण कमलस्य सङ्कोचनाद् भवति। नायिकामुखमपि स्वसौन्दर्याधिक्येन तयोः कमलचन्द्रयोः प्रतिस्पर्धि इति परस्परं विरुद्धत्वम्। अत्र विरोधस्य साम्यकल्पनाद् विरोधोपमा।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमेय और उपमान में परस्पर विरोध की कल्पना करके समानता प्रकट की जाती है, वह विरोधोपमा कहलाती है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में कमल, चन्द्रमा और मुख- इन तीनों में विरोध की उद्भावना करके सादृश्य का कथन हुआ है, अतः यह उपमा विरोधोपमा है।

(३) उत्तरवर्ती आचार्यों ने इस उपमा के भेद को उपेक्षित कर दिया है।

(प्रतिषेधोपमाविवेचनम्)

न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम्।
कलङ्किनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा ।।३४।।

अन्वय— कलङ्किनः जडस्य इन्दोः शक्तिः ते मुखेन प्रतिगर्जितुं न जातु इति सा प्रतिषेधोपमा एव।

शब्दार्थ— कलङ्किनः = कलङ्क वाले। जडस्य = मूढ़, शीतलप्रकृति वाले। इन्दोः = चन्द्रमा की। शक्तिः = सामर्थ्य, क्षमता। ते = तुम्हारे। मुखेन = मुख से, मुख के साथ। प्रतिगर्जितुं = प्रतिगर्जना करने के लिए, प्रतिस्पर्धा करने के लिए, प्रतिद्वन्द्विता करने के लिए। न जातु = समर्थ नहीं है, सक्षम नहीं है। इति = इस प्रकार। सा = वह (उपमा)। प्रतिषेधोपमा एव = प्रतिषेधोपमा ही है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) कलङ्कयुक्त और जड़ (मूर्ख अथवा शीतल) चन्द्रमा की क्षमता तुम्हारे मुख के साथ प्रतिस्पर्धा करने (बराबरी करने) के लिए समर्थ नहीं है। इस प्रकार (प्रतिषेध होने के कारण) वह (उपमा) प्रतिषेधोपमा ही है।

संस्कृतव्याख्या— विंशं प्रतिषेधोपमां विवेचयत्यत्र- **न जात्विति**। हे सुन्दरि, **कल- ङ्किनः** कलङ्कयुक्तस्य **जडस्य च** शीतलस्य मूर्खस्य वा **इन्दोः** चन्द्रस्य **शक्तिः** सामर्थ्यं **ते** तव **मुखेन** आननेन सह **प्रतिगर्जितुं** प्रतिस्पर्धितुं **न जातु** न सक्षमः विद्यते। कलङ्कित्वेन जडत्वेन च चन्द्रः तव मुखेन प्रतिस्पर्धां कर्त्तुं सामर्थ्यरहितः विद्यते इत्यर्थः। अत्र दोषयुक्तस्य चन्द्रस्य नायिकायाः मुखेन प्रतिस्पर्धाशक्तेः प्रतिषेधं विद्यते। अत एव प्रतिषेधद्वारा सादृश्यकथनेन प्रतिषेधोपमा अस्ति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमान में कोई दोष दिखाकर उपमेय की उपमान से समानता का निषेध किया जाता है, तो वह प्रतिषेधोपमा कहलाती है।

(२) उक्त उदाहरण में मुख से स्पर्धा करने की चन्द्रमा की शक्ति का निषेध किया गया है क्योंकि चन्द्रमा एक तो कलङ्की है दूसरे जड़ अर्थात् बोलने वाला नहीं है, अतः यहाँ प्रतिषेधोपमा है।

(३) निन्दोपमा में सादृश्यता का निषेध नहीं होता किन्तु प्रतिषेधोपमा में प्रतिषेध हो जाता है और उपमेयाधिक्य विवक्षित होता है।

(चटूपमाविवेचनम्)

मृगेक्षणाङ्कं ते वक्त्रं मृगेणैवाङ्कितः शशी।
तथापि सम एवासौ नोत्कर्षीति चटूपमा ।।३५।।

अन्वय— ते वक्त्रं मृगेक्षणाङ्कं (परञ्च) शशी मृगेण एव अङ्कितः तथापि असौ समः एव उत्कर्षी न, इति चटूपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— ते = तुम्हारा। वक्त्रं = मुख। मृगेक्षणाङ्कं = मृग के नेत्र से अङ्कित (चिह्नित) है। शशी = चन्द्रमा। मृगेण एव = (सम्पूर्ण) मृग से ही। अङ्कितः = अङ्कित (चिह्नित) है। तथापि = तो भी। असौ = यह (चन्द्रमा मुख के)। समः एव = समान (सदृश) ही है। उत्कर्षी न = उत्कर्षयुक्त नहीं, अधिक शोभा वाला नहीं, बढ़कर नहीं। इति = इस प्रकार। चटूपमा = चटूपमा है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) तुम्हारा मुख (केवल) मृग के नेत्र से अङ्कित (चिह्नित) है (किन्तु) चन्द्रमा (सम्पूर्ण) मृग से ही चिह्नित है, तो भी यह (चन्द्रमा तुम्हारे मुख के) समान है; (मुख से) उत्कृष्ट (बढ़कर) नहीं है, इस प्रकार (यह) चटूपमा है।

संस्कृतव्याख्या— एकविंशं चटूपमां विवेचयत्यत्र– **मृगेक्षणाङ्कमिति**। हे सुन्दरि, ते तव **वक्त्रं** मुखं **मृगेक्षणाङ्कं** मृगस्य हरिणस्य ईक्षणं नेत्रम् इव नेत्रं यस्य तादृशं परञ्च शशी चन्द्रमाः **मृगेण एव** सम्पूर्णेन हरिणा एव **अङ्कितः** चिह्नितः, विद्यते इति शेषः, तथापि **असौ** चन्द्रमा तव मुखेन **समः** सदृशः एव। मुखाद् **उत्कर्षी** उत्कृष्टः न वर्तते— **इति** एवं विधं एषा **चटूपमा** तन्नामोपमा अस्ति। अधिकसाधनसम्पन्नोऽपि चन्द्रमाः लावण्येन त्वन्मुखं नातिशेते अत्र साम्यकथनस्य प्रियोक्तिरूपत्वात् चटूपमा तथा चोत्कर्षकारणे सत्यपि उत्कर्षाभावरिति विशेषोक्तिः। उत्तरवर्तिभिराचार्यैः उपमायाः भेदोऽयं नाङ्गीकृतः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमेय की उपेक्षा तथा उपमान की श्रेष्ठता होने पर भी उपमेय को उपमान के समान ही वर्णित किया जाता है, वह उपमा उपमेय की चापलूसी (चाटुकारिता) होने के कारण चटूपमा कहलाती है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में नायिका के मुख पर केवल मृग के नेत्र मात्र का अङ्कन है अर्थात् नायिका मृगनयनी है और चन्द्रमा पर तो सम्पूर्ण मृग का चिह्न है। इस प्रकार उपमेय मुख की अपेक्षा उपमान चन्द्रमा को मुख से उत्कृष्ट होना चाहिए क्योंकि उस पर मात्र मृग के नेत्र का ही नहीं सम्पूर्ण मृग का चिह्न है किन्तु उपमान चन्द्रमा उपमेय मुख से लावण्य में उत्कृष्ट नहीं प्रत्युत उसी के समान है। नायक द्वारा नायिका के प्रति इस प्रकार का कथन चाटूकारिता है अतः यहाँ चटूपमा है।

(३) चन्द्रमा में मुख की अपेक्षा उत्कृष्टता के कारणभूत सम्पूर्ण मृग का अङ्कन होने पर भी उसमें उत्कृष्टता का अभाव होने के कारण विशेषोक्ति भी है।

(४) उत्तरवर्ती आचार्यों ने उपमा के इस भेद को स्वीकार नहीं किया है।

(तत्त्वाख्यानोपमाविवेचनम्)

न पद्मं मुखमेवेदं न भृङ्गौ चक्षुषी इमे।
इति विस्पष्टसादृश्यात्तत्वाख्यानोपमैव सा।।३६।।

अन्वय— इदं पद्मं न, मुखम् एव, भृङ्गौ न, इमे चक्षषी इति विस्पष्टसादृश्यात् सा तत्त्वाख्यानोपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— इदं = यह। पद्मं न = कमल नहीं है। मुखम् एव = (नायिका का) मुख ही है। भृङ्गौ न = दो भ्रमर नहीं है। इमे = ये दोनों। चक्षुषी = (नायिका की) दोनों आँखें हैं। इति = इस प्रकार। विस्पष्टसादृश्यात् = विशेष रूप से स्पष्ट समा-

नता के कारण। सा = वह उपमा। तत्त्वाख्यानोपमा = तत्त्वाख्यानोपमा (है)।

अनुवाद— यह कमल नहीं है (यह तो नायिका का) मुख हैं, (ये) दोनों भ्रमर नहीं हैं ये (नायिका की) दोनों आँखों हैं, इस प्रकार विशेषरूप से स्पष्ट समानता के (कथन के) कारण यह (उपमा) तत्त्वाख्यानोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— द्वाविंशं तत्त्वाख्यानोपमां विवेचयत्यत्र– **न पद्ममिति**। **इदम्** एतत् पुरोदृश्यमानं **पद्मं** कमलं **न** विद्यते, एततु नायिकायाः **मुखम् एव** आननमेव अस्ति। इमौ मुखे दृश्यमानौ **भृङ्गौ** भ्रमरौ न, विद्यते, **इमे** नायिकायाः **चक्षुषी** नेत्रे विद्यते। इति एवं विधं **विस्पष्टसादृश्यात्** विस्पष्टं विशेषेण स्पष्टं स्फुरितं सादृश्यं साम्यं यत्र तादृशं तस्मात् कारणात् **सा** एषा उपमा **तत्त्वाख्यानोपमा** तन्नामोपमा भवति। निर्णयोपमायां तत्त्वकथनं सन्देहनिराकरणपूर्वकं भवति परञ्चात्र तत्त्वाख्यानोपमायां तु तत्त्वकथनं भ्रान्तिनिरासपूर्वकम् इत्यनयोः भेदः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमान और उपमेय में होने वाले भ्रम का निराकरण करते हुए सादृश्य कथन होता है। वह उपमा तत्त्वाख्यानोपमा उपमा कहलाती है।

(२) निर्णयोपमा में तत्त्वाख्यान सादृश्यकथन सन्देह का निवारण करते हुए किया जाता है किन्तु तत्त्वाख्यानोपमा में सादृश्य कथन भ्रम का निवारण करते हुए किया जाता है- यह दोनों में भेद है।

(३) प्रस्तुत उदाहरण में यह कमल है अथवा मुख ऐसा भ्रम होने पर "यह कमल नहीं, मुख ही है" इस प्रकार भ्रम का निवारण करते हुए यहाँ उपमान कमल और उपमेय मुख का सादृश्य बतलाया है। इसी प्रकार दो भ्रमर और नायिका की दोनों आखों में हुए भ्रम का निवारण करते हुए 'ये दो भ्रमर नहीं, दो आँखे हैं' इस प्रकार सादृश्य कथन तत्त्वाख्यानोपमा है।

(असाधारणोपमाविवेचनम्)

चन्द्रारविन्दयोः कान्तिम[1]तिक्रम्य मुखं तव।
आत्मनैवाभवत्तुल्यमित्यसाधारणोपमा ॥३७॥

अन्वय— तव मुखं चन्द्रारविन्दयोः कान्तिम् अतिक्रम्य आत्मना एव तुल्यम् अभवत्, इति असाधारणोपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारा। मुखं = मुख। चन्द्रारविन्दयोः = चन्द्रमा और

(१) - कक्ष्याम्।

कमल की। कान्तिं = शोभा को। अतिक्रम्य = अतिक्रमण करके, तिरस्कृत करके। आत्मना एव = अपने ही (अर्थात् तुम्हारे मुख के ही)। तुल्यं = समान। अभवत् = हो गया है। इति = इस प्रकार। असाधारणोपमा = असाधारणोपमा है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) तुम्हारा मुख, चन्द्रमा और कमल की शोभा को तिरस्कृत करके अपने ही (अर्थात् तुम्हारे मुख के ही) समान हो गया है, इस प्रकार (यह उपमा) असाधारणोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— त्रयोविंशं असाधारणोपमां विवेचयत्यत्र– **चन्द्रारविन्दयोरिति**। हे सुन्दरि **तव** ते नायिकायाः **मुखम्** आननं **चन्द्रारविन्दयोः** चन्द्रस्य चन्द्रमसः अरविन्दस्य कमलस्य च तयोः **कान्तिं** शोभाम् अतिक्रम्य तिरस्कृत्य **आत्मना एव** स्वकीयेन एव मुखेन **तुल्यं** समानम् **अभवत्** जातम्, **इति** एवंविधम् **असाधारणोपमा** तन्नामोपमा भवतीति शेषः। यस्यामुपमायां उपमेयेन उपमानस्य शोभा तिरस्कृता भवति अतः तत्र उपमेयस्य सदृशान्तराभावात् तस्योपमेयस्य सादृश्यं तेनोपमेयेनैव वर्ण्यते एतादृशी उपमा असाधारणोपमा भवति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमेय के द्वारा उपमान का तिरस्कार वर्णित करके उपमेय की असाधारणता के कथन द्वारा उपमेय को ही उपमान के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है वह असाधारणोपमा कहलाती है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय मुख की शोभा द्वारा उपमान चन्द्रमा और कमल की शोभा का तिरस्कार दिखलाकर अन्य सादृश्य के अभाव के कारण उपमेय मुख का असाधारण सादृश्य उपमान मुख से ही प्रस्तुत किया गया है अतः यह असाधारणोपमा है।

(अभूतोपमाविवेचनम्)

सर्वपद्मप्रभासारः समाहृत्य[1] इव क्वचित्।
त्वदाननं[2] विभातीति तामभूतोपमां विदुः॥३८॥

अन्वय— त्वदाननं क्वचित् समाहृतः सर्वपद्मप्रभासारः इव विभाति इति ताम् अभूतोपमां विदुः।

शब्दार्थ— त्वदाननं = तुम्हारा मुख। क्वचित् = कहीं। समाहृतः = इकट्ठा

(१) सारं समाहृतम्।
(२) तवाननं।

किये हुए, पुञ्जीभूत। सर्वपद्मप्रभासारः इव = सभी कमलों की शोभा के सार के समान। विभाति = सुशोभित हो रहा है, शोभायमान हो रहा है। इति = इस प्रकार। ताम् = उस (उपमा) को। अभूतोपमां = अभूतोपमा। विदुः = जानना चाहिए।

अनुवाद— (हे सुन्दरि) तुम्हारा मुख कहीं इकट्ठा किए हुए (पुञ्जीभूत) सभी कमलों की शोभा के सार के समान शोभायमान हो रहा है, इस प्रकार इस (उपमा) को अभूतोपमा जानना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्विंशम् अभूतोपमां विवेचयत्यत्र– **सर्वपद्म इति**। हे सुन्दरि, **त्वदाननं** तव सुन्दर्याः आननं मुखं **क्वचित्** कुत्रचिदेकस्थाने **समाहितः** पुञ्जीकृत्य निहितः **सर्वपद्मप्रभासारः इव** सर्वेषां पद्मानां कमलानां प्रभायाः शोभायाः सारमिव सारः यस्य तादृशः **विभाति** शोभायमानः भवति, **इति** एवंविधम् अभूतेन अनिष्पन्नेन उपमानेन उपमायाः वर्णनात् **ताम्** उपमाम् **अभूतोपमां** तन्नामोपमां **विदुः** आहुः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में कविकल्पित अभूत (असम्भव) वाले धर्मों से समानता दिखलायी जाती है वह अभूतोपमा कहलाती है।

(२) तुम्हारा मुख सभी प्रकार के कमलों की कान्ति (शोभा) के एकत्रित किये हुए सार के समान प्रतीत होता है– इस कथन में सर्वपद्मप्रभासार का समाहरण अभूत (असम्भव) है, ऐसी उपमा अभूतोपमा कहलाती है।

(३) कवि ने समाहरण की कल्पना इसलिए किया है कि मुख का सभी कमलों से सादृश्य व्यक्त हो सके।

(४) अभूतोपमा में कविकल्पित अभूतधर्मों का उपन्यास होता है और स्वयं विद्यमान धर्मी का अन्य धर्मी के साथ मिलन होने से जहाँ वैचित्र्य वर्णन होता है, वह अभूतोपमा होती है।

(असम्भावितोपमाविवेचनम्)

चन्द्रबिम्बादिव विषं चन्दनादिव पावकः।
परुषा वागितो वक्त्रादित्यसम्भावितोपमा ॥३९॥

अन्वय— इतः वक्त्रात् परुषा वाक् चन्द्रबिम्बात् विषम् इव चन्दनात् पावकः इव इति असम्भावितोपमा (अस्ति)।

शब्दार्थ— इतः = इस। वक्त्रात् = मुख से। परुषा = कठोर। वाक् = वाणी। चन्द्रबिम्बात् = चन्द्रमण्डल से। विषम् इव = विष के समान। चन्दनात् =

चन्दन से। पावकः इव = अग्नि के समान है। इति = इस प्रकार। असम्भावि-तोपमा = असम्भावितोपमा (है)।

अनुवाद— (हे सुन्दरि, तुम्हारे) इस मुख से कठोर वाणी (निकलना), चन्द्र-मण्डल से विष और चन्दन से अग्नि निकलने के समान है (अर्थात् तुम्हारे इस मुख से कठोर वाणी उसी प्रकार नहीं निकल सकती जिस प्रकार (अमृतमय) चन्द्रमा से विष और (शीतल) चन्दन से अग्नि नहीं निकल सकती-) इस प्रकार (औपम्य का आधार असम्भावित होने के कारण यह) असम्भावितोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— पञ्चविंशम् असम्भावितोपमां विवेचयत्यत्र– **चन्द्रबिम्बादिति**। हे सुन्दरि, **इतः** एतस्मात् **वक्त्रात्** तव मुखात् **परुषा** कठिना **वाक्** वाणी **चन्द्रबिम्बात्** सुधा-मयात् चन्द्रमण्डलात् **विषम् इव** गरलम् इव **चन्दनात्** च **पावकः इव** अग्निः इव असम्भवा विद्यते। तव मुखात् परुषा वाणी तथैव असम्भवा अस्ति यथा सुधा-मयात् चन्द्रमण्डलात् विषं शीतलात् चन्दनात् च अग्निः न सम्भवति, **इति** एवंविधम् उपमा असम्भावितोपमा विद्यते।

विशेष—

(१) जिस उपमा में असम्भावित वस्तु के साथ सादृश्यता का कथन होता है वह उपमा असम्भावितोपमा कहलाती है।

(२) उक्त उदाहरण में उपमान चन्द्रबिम्ब से विष और चन्दन से अग्नि निकलना असम्भव है उसी प्रकार उपमेय तुम्हारे मुख से कठोर वाणी भी निकलना असम्भव है- इस प्रकार असम्भावित वस्तु से समानता का कथन होने से यहाँ असम्भावितोपमा हैं।

(बहूपमाविवेचनम्)

चन्दनोदकचन्द्रांशुचन्द्रकान्तादिशीतलः ।
स्पर्शस्तवेत्यतिशयं बोधयन्ती[१] बहूपमा ।।४०।।

अन्वय— तव स्पर्शः चन्दनोदकचन्द्रांशुचन्द्रकान्तादिशीतलः इति अतिशयं बोधयन्ती बहूपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारा। स्पर्शः = स्पर्श। चन्दनोदकचन्द्रांशुचन्द्रकान्तादि-शीतलः = चन्दन, जल, चन्द्रमा की किरण और चन्द्रकान्त (मणि) आदि के (स्पर्श

---

(१) प्रथयन्ती।

के) समान शीतल है। इति = इस प्रकार। अतिशयं = अतिशय को। बोधयन्ती = बोध कराती हुई, अभिव्यक्त करती हुई। बहूपमा = बहूपमा है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि) तुम्हारा स्पर्श चन्दन, जल, चन्द्रमा की किरण, चन्द्रकान्त (मणि) इत्यादि के (स्पर्श के समान) शीतल है। इस प्रकार (अनेक शीतल पदार्थों के सादृश्यकथन द्वारा नायिका के स्पर्श की) अतिशयता को अभिव्यक्त करती हुई (उपमा) बहूपमा है।

संस्कृतव्याख्या— षड्विंशं बहूपमां विवेचयत्यत्र- **चन्दनेति**। हे सुन्दरि, तव ते सुन्दर्याः **स्पर्शः चन्दनोदकचन्द्रांशुचन्द्रकान्तादिशीतलः** चन्दनवत्, उदकवत् जलवत् चन्द्रांशुवत् चन्द्रकिरणवत् चन्द्रकान्तवत् आदिपदेन एवं प्रकारकं शीतलद्रव्यवत् च तेषां स्पर्शः इव शीतलः अस्ति। **इति** एवम् **अतिशयम्** अनेकशीतलद्रव्यौपम्याद् नायिकस्पर्शस्य शीतलतातिशयं **बोधयन्ती** व्यञ्जयन्ती उपमा **बहूपमा** तन्नामोपमा विद्यते।

विशेष—

(१) जिस उपमा में एक उपमेय के लिए समान धर्म वाले अनेक उपमानों का प्रयोग किया जाता है वह बहूपमा कहलाती है। इसका प्रयोजन एक उपमान के सादृश्य से प्राप्त उत्कर्ष की अपेक्षा उपमेय के साधारण धर्म की अनेक उपमानों की समानता के द्वारा अतिशय बतलाना होता है।

(२) जिस प्रकार चन्दन, जल, चन्द्रकिरण, चन्द्रकान्तमणि इत्यादि के स्पर्श से शीतलता प्राप्त होती है उसी प्रकार नायिका के स्पर्श से शीतलता प्राप्त होती है- यहाँ उपमेय नायिका के स्पर्श का सादृश्य अनेक उपमानों चन्दन, जल, चन्द्रकिरण, चन्द्रकान्तमणि इत्यादि के स्पर्श से होने के कारण उपमेय नायिका के स्पर्श की उत्कृष्टता अभिव्यक्त की गयी है अतः यह उपमा बहूपमा है।

(३) उत्तरवर्ती आचार्यों ने ऐसी उपमा को मालोपमा नाम से अभिहित किया है।

(विक्रियोपमाविवेचनम्)

इन्दुबिम्बादिवोत्कीर्णं पद्मगर्भादिवोद्धृतम्।
तव तन्वङ्गि वदनमित्यसौ विक्रियोपमा ।।४१।।

अन्वय— तन्वङ्गि, तव वदनम् इन्दुबिम्बात् उत्कीर्णम् इव पद्मगर्भात् उद्धृतम् इव (विद्यते) इति असौ विक्रियोपमा (अस्ति)।

शब्दार्थ— तन्वङ्गि = हे पतले शरीर वाली (सुन्दरि)। तव = तुम्हारा। वदनं = मुख। इन्दुबिम्बात् = चन्द्रमण्डल से। उत्कीर्णम् इव = कुरेंद करके बनाये गये के समान। पद्मगर्भात् = कमल के गर्भ (अन्दर वाले भाग) से। उद्धृतम् इव =

निकाले गये के समान (है)। इति = इस प्रकार। असौ = यह। विक्रियोपमपा = विक्रियोपमा (है)।

अनुवाद— हे पतले शरीर वाली (सुन्दरि), तुम्हारा मुख चन्द्रमण्डल से उकेर कर बनाये गये के समान (अथवा) कमल के गर्भ (अन्दर वाले भाग) से निकाले गये के सनान है- इस प्रकार यह विक्रियोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— सप्तविंशं विक्रियोपमां विवेचयत्यत्र- **इन्दुबिम्बादिति**। **तन्वङ्गि** हे कृशाङ्गि **तव** ते कृशाङ्ग्याः **वदनं** मुखम् **इन्दुबिम्बात्** चन्द्रमण्डलात् **उत्कीर्णम् इव** उट्टङ्कितम् इव अथ वा **पद्मगर्भात्** कमलोदराद् उद्धृतम् इव विद्यते **इति** एवंविधम् **असौ** उपमा **विक्रियोपमा** तन्नामोपमा अस्ति। अत्रोपमानभूतौ चन्द्रबिम्बकमलगर्भौ प्रकृती उपमेयः मुखञ्च विकृतिः। प्रकृतिविकृत्योः सादृश्यं विक्रियोपमा भवति।

विशेष—

(१) जिस उपमा में उपमेय को उपमान के विकार के रूप में अभिव्यक्त करके दोनों में सादृश्य दिखलाया जाता है, वह विक्रियोपमा कहलाती है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में नायिका के मुख को कमल और चन्द्रमण्डल के विकार के रूप में बतलाकर मुख का चन्द्रमा और कमल से सादृश्य अभिव्यक्त किया गया है अतः यहाँ विक्रियोपमा।

(मालोपमाविवेचनम्)

पूष्ण्यातप इवाह्नीव पूषा व्योम्नीव वासरः।
विक्रमस्त्वय्यधाल्लक्ष्मीमिति मालोपमा मता ।।४२।।

अन्वय— पूष्णि आतपः इव, अह्नि पूषा इव, व्योम्नि वासरः इव, त्वयि विक्रमः लक्ष्मीम् अधात् इति मालोपमा मता।

शब्दार्थ— पूष्णि = सूर्य में। आतपः इव = आतप (प्रकाश) के समान। अह्नि = दिन में। पूषा इव = सूर्य के समान। व्योम्नि = आकाश में। वासरः इव = दिन के समान। त्वयि = तुममें। विक्रमः = पराक्रम। लक्ष्मीं = शोभा को। अधात् = धारण किया है। इति = इस प्रकार। मालोपमा = मालोपमा। मता = कही गयी है।

अनुवाद— (हे राजन्,) सूर्य में आतप (प्रकाश) के समान, दिन में सूर्य के समान और आकाश में दिन के समान तुममें (राजा) में पराक्रम शोभा को धारण किया है, इस प्रकार (माला में फूलो के समान विभिन्न उपमानों का परस्पर सम्बन्ध होने के कारण) यह मालोपमा है।

संस्कृतव्याख्या— अष्टाविंशं मालोपमां विवेचयत्यत्र- **पूष्ण्यातप इति**। हे राजन्, **पूष्णि** सूर्ये **आतप इव** प्रकाश इव, **अह्नि** दिवसे **पूषा इव** सूर्य इव, **व्योम्नि**

आकाशे **वासरः इव** दिवसः इव **त्वयि** राजनि **विक्रमः** पराक्रमः **लक्ष्मीं** शोभाम् राजलक्ष्मीं वा **अधात्** न्यदधात् अर्थात् यथा सूर्ये प्रकाशः, दिवसे सूर्यः तथा च आकाशे दिवसः शोभां न्यदधात् तथैव त्वयि राजनि पराक्रमः शोभां राज्यलक्ष्मीं वा न्यदधात्। **इति** एवं विधं मालायां पुष्पाणामिव पूर्वोत्तरवाक्यस्य परस्पराभिसम्बन्धाद् **मालोपमा** तन्नामोपमा **मता** कथिता आचार्यैरिति शेषः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में एक धर्म को माला की तरह गूँथे हुए कई उपमानों से समान बताकर उपमेय का इन सबसे सादृश्य का अभिधान किया जाता है, वह मालोपमा कहलाती है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि बहूपमा में अनेक उपमान होते हैं किन्तु वे परस्पर असम्बद्ध होते हैं किन्तु मालोपमा में ये पौर्वापर्य से घटित होने के कारण परस्पर सम्बद्ध होते हैं।

(२) प्रकाश जैसे सूर्य में, सूर्य जैसे दिन में और दिन जैसे आकाश में शोभा का आधान करता है उसी प्रकार पराक्रम भी तुम्हारे अन्दर शोभा का आधान कर दिया है– इस कथन में साधारण धर्म 'शोभा के आधान' का सम्बन्ध माला की तरह गूँथे हुए कई उपमानों से बताकर उपमेय का इन सभी से सादृश्य बतलाया गया है, अतः यहाँ मालोपमा है।

(३) दण्डी के उपमा के इस भेद को भामह से अन्य सभी उत्तरर्ती आचार्यों ने स्वीकार किया है।

(वाक्यार्थोपमाविवेचनम्)

वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थः कोऽपि यद्युपमीयते ।
एकानेकेवशब्दत्वात्सा वाक्यार्थोपमा द्विधा ।।४३।।

अन्वय— यदि कोऽपि वाक्यार्थः वाक्यार्थेन एव उपमीयते, सा वाक्यार्थोपमा (भवति)। एकानेकेवशब्दत्वात् द्विधा।

शब्दार्थ— यदि = यदि। कोऽपि = कोई भी। वाक्यार्थः =वाक्यार्थ। वाक्यार्थेन एव = (दूसरे) वाक्यार्थ से। उपमीयते = उपमित किया जाता है। सा = वह। वाक्यार्थोपमा = वाक्यार्थोपमा (होती है)। एकानेकेवशब्दत्वात् = एक तथा अनेक इव शब्द के भेद से। द्विधा = दो प्रकार की (होती है)।

अनुवाद— यदि कोई भी वाक्यार्थ (वाक्य का अर्थ) (दूसरे) वाक्यार्थ (वाक्य के अर्थ) से उपमित किया जाता है तो वह वाक्यार्थोपमा होती है। एक तथा अनेक 'इव' शब्द (के प्रयोग) के भेद से वह दो प्रकार की होती है।

संस्कृतव्याख्या— एकोनत्रिंशं वाक्यार्थोपमां विवेचयत्यत्र– **वाक्यार्थेनेति । यदि कोऽपि वाक्यार्थः** पदसमूहार्थः अपरेण **वाक्यार्थेन** पदसमुदायार्थेन **एव उपमीयते** उपमायाः विषयं क्रियते तादृशी **वाक्यार्थोपमा** तन्नामोपमा भवति । वाक्यार्थयोरुपमानोपमेयभावेन सादृश्यस्य कथनात् वाक्यार्थोपमेति । सा चोपमा **एकानेकेवशब्दत्वात्** क्वचिदेकेवशब्दघटित्वात् क्वचिच्चानेकेवशब्दघटित्वात् द्विधा द्विप्रकारा विद्यते ।

विशेष—

(१) जिस उपमा में एक वाक्यार्थ की दूसरे वाक्यार्थ से सदृश्यता बतलायी जाती है वह उपमा वाक्यार्थोपमा कहलाती है। यह वाक्यार्थोपमा दो प्रकार की होती है— (क) दोनों वाक्यों के मध्य एक सादृश्य-वाचक 'इव' शब्द के प्रयोग वाली (ख) उपमेय और उपमान वाक्य में अलग-अलग एकाधिक सादृश्य-वाचक 'इव' शब्द के प्रयोग वाली।

(वाक्यार्थोपमयोर्निदर्शनम्)

त्वदाननमधीराक्षमाविर्दशनदीधिति ।
भ्रमद्भृङ्गमिवालक्ष्यकेसरं भाति पङ्कजम् ।।४४।।

अन्वय— अधीराक्षं आविर्दशनदीधिति त्वदाननं भ्रमद्भृङ्गं आलक्ष्यकेसरं पङ्कजम् इव भाति ।

शब्दार्थ— अधीराक्षं = चञ्चल नेत्रों वाला । आविर्दशनदीधिति = प्रकाशित (कुछ-कुछ झलक रही) दन्त-कान्ति से युक्त । त्वदाननं = तुम्हारा मुख । भ्रमद्भृङ्गं = मँडराते हुए भ्रमरों वाले । आलक्ष्यकेसरं = दिखलायी देते हुए केसर (परागकण) से युक्त । पङ्कजम् इव = कमल के समान । भाति = सुशोभित (शोभायमान) है ।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) चञ्चल नेत्रों वाला और प्रकाशित (कुछ-कुछ दिखलायी पड़ रहे) दन्तकान्ति से युक्त तुम्हारा मुख, मँडराते हुए भ्रमरों वाले और दिखलायी देते हुए परागगणों से युक्त कमल के समान सुशोभित है ।

संस्कृतव्याख्या— एकेवशब्दघटितायाः वाक्यार्थोपमायाः निदर्शनं ददात्यत्र– **त्वदाननमिति** । हे सुन्दरि, **अधीराक्षं** चञ्चलनेत्रयुक्तम् **आविर्दशनदीधिति** प्रकटीभवदन्तकान्ति **त्वदाननं** तव सुन्दर्याः आननं मुखं **भ्रमद्भृङ्गं** सञ्चरद्भ्रमरयुक्तम् **आलक्ष्यकेसरं** किञ्चिल्लक्षितपरागसमन्वितं **पङ्कजम् इव** कमलम् इव **भाति** शोभते । अत्र चञ्चलनेत्रं प्रकटीभवद्दन्तकान्तियुतं नायिकामुखमिति वाक्यार्थः सञ्चरद्भ्रमरयुतं किञ्चिल्लक्षितपरागसमन्वितं कमलम् इत्यपरेण वाक्यार्थेन उपमायाः विषयः कृतः । अत्र चञ्चलनेत्रदन्तकान्तिरूपेणाङ्गेन अङ्गवद् उपमेयभूतं मुखं सञ्चरद्भ्रमरकिञ्चिल्लक्षित-

परागरूपेणाङ्गेन अङ्गवता उपमानभूतेन कमलेन उपमितम्, अत एव वाक्यार्थो... विद्यते। अत्र तु एक एव इव शब्दः प्रयुक्तः, अत एव एषा प्रथमप्रकारका वाक्यार्थोपमा अस्ति।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पूर्वार्ध में स्थित वाक्यार्थ उत्तरार्ध में स्थित वाक्यार्थ से उपमित है, अतः यहाँ वाक्यार्थोपमा है। ध्यातव्य है कि नायिका के मुख का कमल से, चञ्चल आखों का मँडराते हुए भौंरों से तथा दन्तकान्ति का पराग से समानता का कथन हुआ है। इस प्रकार यहाँ केवल उपमेय और उपमान की ही समानता नहीं प्रत्युत दोनों वाक्यों में कथित सभी धर्मों से युक्त इन दोनों की समानता दिखलायी गयी है। यहाँ द्वितीय वाक्य के पूरे अर्थ के साथ प्रथम वाक्य के पूरे की समानता की प्रतीति होने से वाक्यार्थोपमा है।

(२) इन दोनों उपमेय और उपमान वाक्यों के अर्थ में समानता दिखलाने के लिए समानतावाचक एक ही इव शब्द का प्रयोग हुआ है अतः यह प्रथम प्रकार वाली वाक्यार्थोपमा है।

नलिन्या इव तन्वङ्ग्यास्तस्याः पद्ममिवाननम् ।
मया मधुव्रतेनेव पायम्पायमरम्यत ।।४५।।

अन्वय— नलिन्याः इव तस्याः तन्वङ्ग्याः पद्मम् इव आननं पायंपायम् मधुव्रतेन इव मया अरम्यत।

शब्दार्थ— नलिन्याः इव = कमलिनी के समान। तस्याः = उस। तन्वङ्ग्याः = कृशाङ्गी (पतले शरीर वाली नायिका) के। पद्मम् इव = कमल के समान। आननं = मुख को। पायंपायं = बार-बार पान करके, बार-बार चूम करके। मधुव्रतेन इव = भ्रमर के समान। मया = मेरे द्वारा। अरम्यत = आनन्द लिया गया है, रमण किया गया है।

अनुवाद— कमलिनी के समान उस कृशाङ्गी (पतले शरीर वाली नायिका) के कमल के समान मुख को बार-बार पान करके (चूम करके) भ्रमर के समान मेरे द्वारा आनन्द लिया गया (रमण किया गया)।

संस्कृतव्याख्या— अपरायाः अनेकेवशब्दघटितायाः वाक्यार्थोपमायाः निदर्शनं ददात्यत्र- **नलिन्या इति**। **नलिन्याः इव** कमलिन्याः इव **तस्याः तन्वङ्ग्याः** कृशाङ्ग्याः **पद्मम् इव** कमलम् इव **आननं** मुखं **पायंपायं** वारं वारं पीत्वा **मधुव्रतेन इव** भ्रमरेण इव **मया** नायकेन **अरम्यत** रतिमासाद्यत। 'अहं कृशाङ्ग्याः मुखम् अस-

कृत्वा तथैव अरंसि यथा भ्रमरः नलिन्याः पुनः पुनः मधु पीत्वा रमते इति भावः। अत्रानेकेवशब्दप्रयोगेण सर्वाङ्गसादृश्यं बोधयतीति अपरा वाक्यार्थोपमा विद्यते।

विशेष—

(१) 'कमलिनी के समान उस कोमलाङ्गी के कमल के समान मुख को बार-बार पीकर भ्रमर के समान मेरे द्वारा रमण किया गया' इस कथन में दो वाक्यार्थ हैं— (क) उस कोमलाङ्गी के मुख को बार-बार पीकर मैंने उसी प्रकार आनन्द विहार किया (ख) जिस प्रकार कोई भ्रमर कमल पर बार-बार मँडराकर उसके रस का पान करके आनन्दित होता है। यहाँ प्रथम (क) उपमेय तथा द्वितीय (ख) उपमान वाक्य है। उपमेय वाक्य के घटक कृशाङ्गी, मुख और मैं पदों की समानता कमलिनी, कमल और भ्रमर पदों से अनेक इव शब्द द्वारा कहकर दोनों वाक्यार्थों की समानता एक साधारण धर्म 'पायम्पायम्' (बार-बार पीकर) के द्वारा बतलायी गयी है, अतः यहाँ अनेक शब्द वाली वाक्यार्थोपमा है।

(प्रतिवस्तूपमाविवेचनम्)

वस्तु किञ्चिदुपन्यस्य न्यसनात्तत्सधर्मणः।
साम्यप्रतीतिरस्तीति प्रतिवस्तूपमा यथा ॥४६॥

अन्वय— किञ्चित् वस्तु उपन्यस्य तत्सधर्मणः न्यसनात् साम्यप्रतीतिः अस्ति इति प्रतिवस्तूपमा (विद्यते)।

शब्दार्थ— किञ्चित् = किसी। वस्तु = वस्तु को। उपन्यस्य = उपन्यस्त करके, वर्णित करके। तत्सधर्मणः = उसके समान धर्म वाले का। न्यसनात् = उपस्थापन (वर्णन) करने से। साम्यप्रतीतिः = समानता (सदृशता) की प्रतीति। अस्ति = होती है। इति = इस प्रकार। प्रतिवस्तूपमा = प्रतिवस्तूपमा (है)।

अनुवाद— किसी (प्रस्तुत) वस्तु (अर्थ) को उपन्यस्त (वर्णित) करके उसके समान धर्म वाले (किसी अन्य अप्रस्तुत वस्तु) के उपस्थापन (वर्णन) से (वाचक शब्दों के बिना ही) जो समानता की प्रतीति होती है। वह प्रतिवस्तूपमा होती है।

संस्कृतव्याख्या— त्रिंशं प्रतिवस्तूपमां विवेचयत्यत्र– **वस्त्विति**। **किञ्चित्** किमपि प्रस्तुतं **वस्तु उपन्यस्य** प्रथममभिधाय **तत्सधर्मणः** तस्य प्रकृतवस्तुनः समानस्य धर्मयुक्तस्य अप्रस्तुतस्य वस्तुनः **न्यसनात्** वर्णनात् या **साम्यप्रतीतिः** वाचकशब्दाभावेनापि सादृश्यबोधः **अस्ति इति** एवंविधं **प्रतिवस्तूपमा** तन्नामोपमा विद्यते। प्रतिवस्तु प्रतिपदार्थं उपमा समानधर्मो यस्यां सा प्रतिवस्तूपमा। यथेत्युदाहरणमुपक्रमते।

उपमायाः भेदोऽयं परवर्तीभिराचार्यैः किञ्चित्व्याख्यानभेदपूर्वकं पृथगलङ्कारत्वेन विवेचितः वर्तते।

विशेष—

(१) पहले किसी वस्तु (अर्थ) को प्रस्तुत करके फिर उसके समानधर्म वाली अन्य वस्तु (अर्थान्तर) को प्रस्तुत करने से जो सादृश्य की प्रतीति होती है, वह प्रतिवस्तूपमा कहलाती है।

(२) वस्तूपमा में पदार्थ के सादृश्य की प्रतीति होती है जबकि प्रतिवस्तूपमा में प्रतिवस्तु के रूप में विद्यमान सादृश्य व्यक्त होता है किन्तु प्रतिवस्तूपमा में प्रतिवस्तु के उपन्यासमात्र से प्रकृत (प्रस्तुत) वस्तु के सादृश्य की प्रतीति होती है साक्षात् शब्द द्वारा वाच्य नहीं होती।

(३) अर्थान्तरन्यास अलङ्कार में प्रस्तुत (उपमेय) को सिद्ध करने वाली प्रतिवस्तु (अर्थान्तर) को लिया जाता है, वह प्रतिवस्तु चाहे वस्तु के सदृश हो या असदृश किन्तु प्रतिवस्तूपमा में सदृश वस्तु का उपन्यास होता है।

(४) परवर्ती आचार्यों ने उपमा के इस भेद प्रतिवस्तूपमा को कुछ व्याख्यानभेद के साथ उपमा से अलग अलङ्कार के रूप में ग्रहण किया है। विश्वनाथ के अनुसार जहाँ एक ही साधारण धर्म गम्यसाम्य वाले दो वाक्यों में अलग-अलग प्रस्तुत किया जाता है, वहाँ प्रतिवस्तूपमा होती है– प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाक्ययोगम्यसाम्ययोः। एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक्।

(प्रतिवस्तूपमानिदर्शनम्)

नैकोऽपि त्वादृशोऽद्यापि जायमानेषु राजसु।
ननु द्वितीयो नास्त्येव पारिजातस्य पादपः ।।४६।।

अन्वय— अद्यापि जायमानेषु त्वादृशः एकः अपि न, ननु पारिजातस्य पादपः द्वितीयः न अस्ति एव।

शब्दार्थ— अद्यापि = आज भी, आजतक। जायमानेषु = उत्पन्न हो चुके। राजसु = राजाओं में। त्वादृशः = तुम्हारे (आपके) समान। एकः अपि = एक भी। न = नहीं (हुआ है)। ननु = निश्चित रूप से। पारिजातस्य = पारिजात का। द्वितीयः = दूसरा। पादपः = वृक्ष। न अस्ति एव = नहीं ही है।

अनुवाद— (हे राजन्,) आज तक उत्पन्न हो चुके राजाओं में आपके समान (दूसरा) एक भी (राजा) नहीं (हुआ) निश्चय रूप से पारिजात (स्वर्ग का वृक्ष विशेष) का कोई दूसरा पेड़ नहीं ही है।

संस्कृतव्याख्या— प्रतिवस्तूपमायाः निदर्शनं ददात्यत्र- **नैक इति**। हे राजन्, **अद्यापि** अद्य यावदपि **जायमानेषु** उपपद्यमानेषु **राजसु** भूपालेषु **त्वादृशः** तव सदृशः **एकः अपि** कोऽपि राजा **न** नाभवत्। **ननु** निश्चयेन **पारिजातस्य** स्वर्गलोकस्य वृक्ष-विशेषस्य **द्वितीयः** एकातिरिक्त अन्यः **पादपः** वृक्षः **न अस्ति एव** नैव विद्यते। अत्र पूर्ववाक्ये त्वादृशः नास्ति परवाक्ये च द्वितीयो नास्ति इति समानमेव सादृश्यप्रतिषे-धाख्यो साधारण धर्मः शब्दान्तरेण द्वयोः वाक्ययोः पृथग्रूपेण प्रस्तुतः, अत एव प्रति-वस्तूपमा विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय वस्तु 'उत्पन्न हुए राजाओं में आज भी आप जैसा कोई राजा नहीं है' तथा उपमान वस्तु 'यह बात प्रसिद्ध है कि पारिजात का नन्दन कानन में विद्यमान पारिजात (कल्पवृक्ष) के अतिरिक्त दूसरा कोई वृक्ष पारिजात नहीं है- इस कथन में उपमेय वस्तु-वाक्य को पहले प्रस्तुत करके पुनः उसी के समान प्रतिवस्तु अप्रस्तुत उपमान को दूसरे वाक्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है। राजाओं में युष्मद् वाच्य राजा की अद्वितीयता और वृक्षों में पारिजात की अद्वितीयता में सादृश्य केवल प्रस्ताव द्वारा प्रतीत होती है। अतः यहाँ प्रतिवस्तूपमा है।

(२) इन दोनों वाक्यों में सादृश्य गम्य है तथा सादृश्य के कारणभूत साधारण धर्म (राजा और पारिजात की अद्वितीयता) का पृथक्-पृथक् शब्दों के द्वारा प्रस्तुती-करण होने के कारण यहाँ परवर्ती आचार्यों द्वारा दिया गया लक्षण घटित हो जाता है, अतः प्रतिवस्तूपमा है जिसे परवर्ती आचार्यों ने पृथक् अलङ्कार के रूप में माना है।

(तुल्ययोगोपमाविवेचनम्)

अधिकेन समीकृत्य[१] हीनमेकक्रियाविधौ ।
यद्ब्रुवन्ति स्मृता सेयं तुल्ययोगोपमा यथा ।।४८।।

अन्वय— एकक्रियाविधौ हीनम् अधिकेन समीकृत्य यत् ब्रुवन्ति सा इयं तुल्ययो-गोपमा स्मृता।

शब्दार्थ— एकक्रियाविधौ = समान क्रिया के विधान में। हीनम् = हीन (कम) को। अधिकेन = अधिक के साथ। समीकृत्य = समानता को (प्रस्तुत) करके। यत् =

(१) समाहृत्य।

जो। ब्रुवन्ति = बोलते हैं, कथन किया जाता है। सा = वह। इयं = यह। तुल्ययोगोपमा = तुल्योगोपमा। स्मृता = कही जाती है।

अनुवाद— समान क्रिया के विधान में हीन (कम) (गुण वाले अर्थात् उपमेय) को अधिक (गुण वाले अर्थात् उपमान) के साथ समानता को प्रस्तुत करके जो कथन किया जाता है, वह यह तुल्ययोगोपमा कहलाती है।

संस्कृतव्याख्या— एकत्रिंशं तुल्ययोगोपमां विवेचयत्यत्र- **अधिकेनेति**। **एकक्रियाविधौ** समानक्रियाविधाने **हीनं** गुणैः न्यूनम् उपमेयमित्यर्थः **अधिकेन** अधिकगुणसम्पन्नेन केनचिद् वस्तुना उपमानेन सहेत्यर्थः, **समीकृत्य** साम्यं प्रस्तुत्य कवयः **यद्** कथनं **ब्रुवन्ति** वर्णयन्ति **सेयं तुल्ययोगोपमा** तन्नामोपमा **स्मृताः** कथिता आचार्यैरिति शेषः। हीनाधिकगुणयोः सादृश्येन योगे वर्णितमौपम्यं तुल्ययोगोपमा इत्यभिधीयत इति भावः।

विशेष—

(१) जाति, गुण तथा क्रिया में से किसी भी दृष्टि से हीन (उपमेय) को एक कार्य करने में जाति, गुण, तथा क्रिया में अन्यतम की दृष्टि से अधिक (उपमान) साथ समानता प्रस्तुत करके कवि लोग जो कथन करते हैं, वह कथन समानता के योग के कारण तुल्ययोगोपमा कहलाता है।

(तुल्ययोगोपमानिदर्शनम्)

दिवो जागर्ति रक्षायै पुलोमारिर्भवान् भुवः।
असुरास्तेन हन्यन्ते सावलेपास्त्वया नृपाः ।।४९।।

अन्वय— पुलोमारिः दिवः रक्षायै जागर्ति भवान् भुवः, तेन असुराः हन्यन्ते त्वया सावलेपाः नृपाः।

शब्दार्थ— पुलोमारिः = पुलोम (राक्षस) के शत्रु अर्थात् इन्द्र। दिवः = स्वर्गलोक की। रक्षायै = रक्षा के लिए। जागर्ति = जागते हैं। भवान् = आप। भुवः = पृथ्वी की। तेन = उस (इन्द्र) के द्वारा। असुराः = राक्षसगण। हन्यन्ते = मारे जाते हैं। त्वया = तुम्हारे (आप) के द्वारा। सावलेपाः = गर्वित, घमण्डी। नृपाः = राजागण।

अनुवाद— (हे राजन्,) इन्द्र स्वर्गलोक की रक्षा के लिए जागते हैं (और) आप पृथ्वी की (रक्षा के लिए जागृत हैं)। उस (इन्द्र) के द्वारा राक्षसगण मारे जाते हैं (और) आप के द्वारा घमण्डी राजागण (मारे जाते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— तुल्ययोगोपमायाः निदर्शनं ददात्यत्र- **दिव इति**। हे राजन्,

पुलोमारिः पुलोमस्य राक्षसस्य अरिः शत्रुः इन्द्रः **दिवः** स्वर्गलोकस्य **रक्षायै जागर्ति** जागरणं करोति **भवान्** नृपस्तु **भुवः** पृथिव्याः रक्षायै जागर्ति । **तेन** इन्द्रेण **असुराः** राक्षसा **हन्यन्ते** हन्तुं विषयीक्रियन्ते **त्वया** भवता राज्ञा **सावलेपाः** गर्वोद्धताः **नृपाः** राजानः हन्यन्ते । अत्र हीनस्य प्रस्तुतस्य राज्ञः गुणाधिकेन इन्द्रेण सह सादृश्यकथना-तुल्ययोगोपमा । अत्र साधर्म्यं व्यङ्ग्यमेव वाचकशब्दप्रयोगाभावात् ।

विशेष—

(१) द्युलोक की रक्षा के लिए इन्द्र जागरूक रहते हैं और आप पृथ्वी की रक्षा के लिए जागरूक हैं; उस (इन्द्र) के द्वारा असुर मारे जाते हैं और तुम्हारे द्वारा घमण्डी राजा लोग मारे जाते हैं— इस कथन में इन्द्र देवजाति होने के कारण अधिक प्रसिद्ध है तथा राजा मनुष्य जाति वाला होने के कारण हीन है किन्तु दोनों को कवि ने पूर्वार्ध में रक्षा के लिए जागरूक होने की क्रिया करने में और उत्तरार्ध में 'मारे जाने' की क्रिया करने में समान बना दिया है। वस्तुतः ये समान नहीं हैं फिर भी कवि द्वारा समानता के कथन के कारण यह तुल्ययोगोपमा है।

(हेतूपमाविवेचनम्)

कान्त्या चन्द्रमसं धाम्ना सूर्यं धैर्येण चार्णवम् ।
राजन्ननुकरोषीति सैषा हेतूपमा मता[१] ।।५०।।

अन्वय— राजन्, कान्त्या चन्द्रमसं धाम्ना सूर्यं धैर्येण च अर्णवम् अनुकरोषि इति सा एषा हेतूपमा मता ।

शब्दार्थ— राजन् = हे राजन्, हे महाराज । कान्त्या = कान्ति से, शोभा से । चन्द्रमसं = चन्द्रमा का । धाम्ना = तेज से । सूर्यं = सूर्य का । धैर्येण च = और धैर्य से । अर्णवम् = समुद्र का । अनुकरोषि = अनुकरण करते हो । इति = इस प्रकार । सा = वह । एषा = यह । हेतूपमा = हेतूपमा । स्मृता = कहलाती है ।

अनुवाद— हे राजन् ! (आप अपने शरीर की) कान्ति से चन्द्रमा का, तेज से सूर्य का और धैर्य से समुद्र का अनुकरण करते हैं, इस प्रकार (राजा की चन्द्रमा इत्यादि से समानता के हेतुओं कान्ति, तेज और धैर्य का कथन होने से) वह यह हेतूपमा कहलाती है ।

संस्कृतव्याख्या— द्वात्रिंशत्याः हेतूपमायाः विवेचनं करोत्यत्र- **कान्त्येति** । **हे राजन्** हे भूपते । **कान्त्या** शरीरप्रभया **चन्द्रमसं** चन्द्रं **धाम्ना** तेजसा **सूर्यं** भानुं **धैर्येण**

---

(१) स्मृता ।

च धृत्या च **अर्णवं** सागरम् **अनुकरोषि** अनुसरणं करोषि **इति** एवंविधं राज्ञः चन्द्रादिभिः साम्यस्य हेतूनां कान्तितेजधैर्याणां कथनात् **सा एषा हेतूपमा** तन्नामोपमा **मता** कथिता। भेदोऽयं परवर्त्तिभिराचार्यैः पृथग्रूपेण न स्वीकृतः।

विशेष—

(१) जिस उपमा में साधारण धर्म को जब साम्यता के हेतु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तब वह उपमा हेतूपमा कहलाती है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में राजा का कान्ति के कारण चन्द्रमा के, तेज के कारण सूर्य के और धैर्य के कारण समुद्र के अनुकरण करने का वर्णन किया गया है। इस प्रकार तत्तत् गुणों के कारण तत्तत् उपमानों से समानता को प्रस्तुत किया गया है। एक ही उपमेय की तीन गुणों के कारण तीन उपमानों से समानता दिखलाने के कारण उपमेय की श्रेष्ठता सूचित होती है। इन हेतुओं द्वारा साम्यता का कथन होने से हेतूपमा है।

(३) परवर्ती आचार्यों ने इसका अलग अलङ्कार के रूप में नहीं ग्रहण किया है।

(उपमादोषाणां दोषनिराकरणम्)

न लिङ्गवचने भिन्ने न हीनाधिकतापि वा।
उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम् ।।५१।।

अन्वय— यत्र धीमताम् उद्वेगः न (तत्र) भिन्ने लिङ्गवचने हीनाधिकता अपि वा उपमादूषणाय अलं न (भवति)।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ, जिस (उपमा) में। धीमतां = बुद्धिमानों का, सहृदयों का। उद्वेगः = वैरस्य। न = न (होता हो)। भिन्ने = (उपमेय और उपमान के) भिन्न (अलग-अलग)। लिङ्गवचने = लिङ्ग और वचन। हीनाधिकता अपि वा = हीनता अथवा अधिकता भी। उपमादूषणाय = उपमा को दूषित करने के लिए। अलं = सक्षम, समर्थ। न = नहीं होते।

अनुवाद— जहाँ (जिस उपमा) में सहृदयों का उद्वेग (वैरस्य) न (होता हो तो) (उपमेय और उपमान के) भिन्न (अलग-अलग) लिङ्ग और वचन तथा हीनता (गुणन्यूनता) अथवा अधिकता (गुणाधिक्य) (ये चार) उपमा को दूषित करने के लिए सक्षम (समर्थ) नहीं होते।

संस्कृतव्याख्या— उपमादोषाणां निराकरणं करोत्यत्र– **नेति**। **यत्र** यस्यामुपमायां **धीमतां** सहृदयानाम् **उद्वेगः** वैरस्यः **न** भवति तत्रोपमायां **भिन्ने** उपमेयोपमानयोः भिन्नेऽपि **लिङ्गवचने** लिङ्गं च वचनं च लिङ्गवचने **हीनाधिकता अपि वा** उपमेयापेक्षया

उपमानस्य हीनता गुणन्यूनता अधिकता गुणाधिक्यम् अपि वा **उपमा-दूषणाय** उपमायाः दूषणाय दूषितकरणाय **अलं** समर्थः **न** भवति। सामान्यरूपेण उपमेयोपमानयोः लिङ्ग-भेदः वचनभेदः उपमानहीनता उपमानाधिक्यं चेति दोषाः सहृदयवैरस्याद् उपमां दूषयन्ति परञ्च ते दोषाः कदाचित् सहृदयचेतसि वैरस्यं न जनयन्ति तत्र ते दोषाः न प्रत्युत अदोषाः भवन्ति।

विशेष—

(१) दण्डी से पूर्ववर्ती आचार्यों ने उपमा के कुछ दोषों का निर्देश किया है। इन दोषों के कारण उपमा का प्रयोग दूषित हो जाता है। दण्डी ने उन दोषों का कुछ निराकरण किया है।

(२) इस कारिका में दण्डी ने लिङ्गभेद, वचनभेद, उपमान की हीनता और उपमान की अधिकता दोष का निराकरण किया है। उपमा में जब उपमेय के लिङ्ग और उपमान के लिङ्ग में भेद होता है अर्थात् उपमेय एक लिङ्ग में और उपमान उससे भिन्न लिङ्ग में प्रयुक्त होता है तो वह लिङ्गभेद दोष कहलाता है। इसी प्रकार उपमेय और उपमान के वचन में भेद को वचनभेद कहा जाता है। कहीं-कहीं उपमान उपमेय की अपेक्षा न्यून गुण (धर्म) वाला होता है वह हीनता दोष होता है और कहीं-कहीं उपमान उपमेय की अपेक्षा अधिक गुण सम्पन्न होता है, वह अधिकता दोष होता है।

(३) दण्डी के अनुसार उपमा के ये दोष तभी दोष होते है जब वे सहृदय के मन में वैरस्य (विरसता) को उत्पन्न करते हैं, जहाँ सहृदय के मन में ये दोष विरसता नहीं उत्पन्न करते वहाँ ये अदोष होते हैं और इनसे उपमा दूषित नहीं होती।

(लिङ्गवचनभेदादोषत्वनिदर्शनम्)

स्त्रीव गच्छति षण्डोऽयं वक्त्येषा स्त्री पुमानिव ।
प्राणा इव प्रियोऽयं मे विद्या धनमिवार्जिताः ।।५२।।

अन्वय— अयं षण्डः स्त्री इव गच्छति, एषा स्त्री पुमान् इव वक्ति, मे अयं प्राणाः इव प्रियः, विद्याः धनम् इव अर्जिताः।

शब्दार्थ— अयं = यह। षण्डः = नपुंसक, हिजड़ा। स्त्री इव = स्त्री के समान। गच्छति = जा रहा है, चल रहा है। एषा = यह। स्त्री = स्त्री। पुमान् इव = पुरुष के समान। वक्ति = बोल रही है। मे = मुझे। अयं = यह (मनुष्य)। प्राणाः इव = प्राणों के समान। प्रियः = प्रिय (है)। विद्याः = विद्या। धनम् इव = धन के समान। अर्जिताः = अर्जित की गयी है; प्राप्त की गयी है, एकत्र की गयी है।

अनुवाद— यह हिजड़ा स्त्री के समान चल रहा है, यह स्त्री पुरुष के समान

बोल रही है, मुझे यह व्यक्ति प्राणों के समान प्रिय है और (मेरे द्वारा) विद्या धन के समान अर्जित की गयी है।

संस्कृतव्याख्या— उपमायाः लिङ्गभेदकृतः दोषस्यादोषत्वं वचनभेदकृतः दोषस्य चादोषत्वं निदर्शयत्यत्र– **स्त्रीवेति**। **अयम्** एषः षण्डः क्लीवः **स्त्री इव** युवती इव **गच्छति** याति, **एषा** इयं **स्त्री** युवती **पुमान् इव** पुरुषः इव **वक्ति** वदति, **मे** मम **अयं** एषः जनः **प्राणाः इव** प्रियः अस्ति; **विद्याः धनम् इव अर्जिताः** गृहीताः विद्यन्ते। अयं षण्डः स्त्रीव गच्छति, एषा स्त्री पुमानिव वक्ति इत्यनयोः द्वयोः उपमावाक्ययोः उपमेयोपमानयोः लिङ्गभेदकृत् दोषः। मे अयं प्राणाः इव प्रियः, विद्याः धनमिव अर्जिताः इत्यनयोः द्वयोः उपमावाक्ययोः उपमेयोपमानयो वचनभेदकृत् दोषः सहृदयवैरस्याय न, अत एवात्र लिङ्गभेदः वचनभेदश्च अदोषः विद्यते, न तु दोषः।

विशेष—

(१) उपमा में उपमेय के धर्म को सुन्दर रूप से प्रस्तुत करने के लिए उपमान के लिङ्ग और वचन उपमेय के अनुसार होने चाहिए– दोनों के लिङ्ग में भेद नहीं होना चाहिए। किन्तु यदि स्त्री में पुरुष या हिजड़े के गुण का कथन करना हो तो यह लिङ्ग-भेद दूषित नहीं होता। हिजड़े की चाल में पुरुषोचित उद्धतता नहीं होती। यदि हिजड़े के चाल की उपमा स्त्री की चाल से दी जाती है तो वह प्रसङ्गानुकूल होने से दोष-कारक नहीं होता है। जैसे हिजड़ा स्त्री के समान चल रहा है। इसी प्रकार किसी स्त्री की बोली को पुरुष के समान कथन करना है तो उपमेय स्त्री का उपमान पुल्लिङ्ग होना दोषकर नहीं होता है। जैसे- स्त्री पुरुष के समान बोल रही है। ऐसे ही नपुंसक लिङ्ग वाले उपमान का स्त्रीलिङ्ग अथवा पुल्लिङ्ग के लिए किया गया प्रयोग भी दोष-कारक नहीं है। जैसे- विद्या धन के समान अर्जित की गयी है।

(२) उपमेय और उपमान में लिङ्ग के अतिरिक्त वचन का भी भेद नहीं होना चाहिए किन्तु यदि उपमान नित्य बहुवचनान्त है तो उसका एकवचनान्त उपमेय के रूप में प्रयोग दोषकारक नहीं होता। जैसे- यह मुझें प्राणों के समान प्रिय है।

(३) इस प्रकार की उपमाएँ अन्य उपमाओं के समान ही हृदयाकर्षक होती है।

(हीनाधिकताभेदादोषत्वनिदर्शनम्)

भवानिव महीपाल देवराजो विराजते।
अलमंशुमतः कक्षा[1]मारोढुं तेजसा नृपः।।५३।।

---

(१) कक्ष्याम्।

अन्वय— महीपाल, देवराजः भवान् इव विराजते, नृपः तेजसा अंशुमतः आरोढुम् अलम् अस्ति।

शब्दार्थ— महीपाल = हे राजन्। देवराजः = इन्द्र। भवान् इव = आपके समान। विराजते = शोभायमान हैं। नृपः = राजा। तेजसा = तेज से, प्रताप से। अंशुमतः = सूर्य की। कक्षां = श्रेणी को, समता को। आरोढुं = चढ़ने के लिए, प्राप्त करने के लिए। अलं = समर्थ (सक्षम) है।

अनुवाद— हे राजन्, इन्द्र आपके समान शोभायमान है। यह राजा (अपने) प्रताप से सूर्य की समानता को प्राप्त करने के लिए समर्थ है।

संस्कृतव्याख्या— उपमानस्य हीनत्वाधिकरूपयोः दोषयोरदोषत्वमुदाहरत्यत्र– भवानिति। **महीपाल** हे राजन्! **देवराजः** इन्द्रः **भवान् इव** त्वं राजा इव विराजते शोभायनानः विद्यते। अत्र उपमेयस्य इन्द्रस्य अपेक्षया उपमानस्य राज्ञः हीनत्वम्। नृपः राजा **तेजसा** स्वप्रतापेन **अंशुमतः** सूर्यस्य **कक्षां** समताम् **आरोढुम्** आक्रमितुं प्राप्तुमित्यर्थः **अलं** समर्थः विद्यते। अत्रोपमानस्य सूर्यस्य उपमेयाद् राज्ञः आधिक्यम्। अनयोर्द्वयो वाक्ययोः उपमानस्य हीनत्वाधिक्ये राज्ञः देवांशभूतया उत्कृष्टतया वैरस्यं न जायते अत एवात्र अदोषः।

विशेष—

(१) उपमा में उपमेय को उपमान से हीन तथा उपमान को उपमेय से अधिक गुण वाला होना चाहिए। इनका विपर्यय होने पर उपमा दूषित हो जाती है किन्तु यह तभी दोष माना जाता है जब वह उद्वेगकारक होता है। यदि वह हीनता अथवा अधिकता उद्वेगकारक नहीं होती तो वह दोष नहीं होता- अदोष होता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण के प्रथम वाक्य 'हे राजन्! इन्द्र आपके समान शोभायमान है; में राजा उपमान है जो पृथ्वीपति होने के कारण उपमेय देवराज इन्द्र से हीन है किन्तु इस उदाहरण में यही हीनता यदि उपमेय की अधिकता में बदल दी जाय तो वर्णित राजा की महिमा अधिक बढ़ जाएगी। अतः यह विपर्यय दोष नहीं प्रत्युत गुण हो जाएगा।

(३) यह राजा प्रताप से सूर्य की समानता करने में सक्षम है- इस द्वितीय वाक्य में राजा के तेज का अतिशय बतलाने के लिए यदि श्रेष्ठ उपमान को हीन और उपमेय को श्रेष्ठ वर्णित कर दिया जाता है तो वह भी दोष नहीं प्रत्युत गुण ही होता है।

(४) राजाओं को देवांशभूत माना जाता है इसलिए देवताओं और राजा के सादृश्य कथन से उपमा दूषित नहीं होती।

(निदर्शनयोरुपसंहारः)

इत्येवमादौ[1] सौभाग्यं न जहात्येव जातुचित् ।
अस्त्येव[2] क्वचिदुद्वेगो प्रयोगे वाग्विदां [3]यथा ।।५४।।

अन्वय— इति एवम् आदौ जातुचित् सौभाग्यं न जहाति एव (तथापि) वाग्विदं प्रयोगे क्वचित् उद्वेगः अस्ति एव ।

शब्दार्थ— इति एवम् = इस प्रकार । आदौ = (उपर्युक्त) इत्यादि (उदाहरणों में । जातुचित् = कहीं, किसी-किसी स्थिति में । सौभाग्यं = सौभाग्य को, सुन्दरता को, काव्य-सौष्ठव को । न एव = निश्चित रूप से ही नहीं । जहाति = छोड़ता है, परित्याग करता है । वाग्विदां = कवियों के । प्रयोगे = प्रयोग में, काव्य-रचना में क्वचित् = कही-कहीं, किसी-किसी स्थान पर । उद्वेगः = उद्वेग, वैरस्य, विरसता अस्ति एव = हो ही जाती है ।

अनुवाद— इस प्रकार (उपर्युक्त) (उदाहरणों) इत्यादि में (कथित लिङ्गभेद इत्यादि दोष) कहीं-कहीं सुन्दरता (काव्य-सौष्ठव) को निश्चित रूप से नहीं परित्याग करता है (तथापि) कवियों के प्रयोग (काव्यरचना) में कहीं कहीं उद्वेग (विरसता) हो ही जाती है ।

संस्कृतव्याख्या— उक्तनिदर्शनयोः उपसंहारं विवेचयत्यत्र– **इतीति** । **इति** एवम् एवंविधम् **अदौ** उदाहरणे लिङ्गवचनभेदयुक्तः हीनाधिकसम्पन्नः प्रयोगश्च **जातुचित्** क्वचित् **सौभाग्यं** सौन्दर्यं काव्यसौष्ठवनित्यर्थः **न जहाति एव** न परित्यजत्येव तथापि **वाग्विदां** कवीनां **प्रयोगे** लिङ्गादिभेददोषसम्पन्ने प्रयोगविशेषे **क्वचित्** कुत्रचित्स्थाने **उद्वेगः** विरसता **अस्ति एव** भवत्येव । **यथा** इति निदशनार्थं प्रयुक्तः ।

विशेष—

(१) उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में दी गयी छवों उपमाओं के प्रयोग में लिङ्गादिभेदकृत दोष दोष नहीं है- प्रत्युत अदोष है किन्तु कहीं-कहीं कवियों की उपमा वाली वाणी में यह दोष वैरस्य होने के कारण हो ही जाता है।

(लिङ्गादिभेदकृद्दोषनिदर्शनम्)

हंसीव धवलश्चन्द्रः सरांसीवामलं नभः ।
भर्तृभक्तो भटः श्वेव खद्योतो भाति भानुवत् ।।५५।।

---

(१) आदि, आदेः ।

(२) अस्ति च । (३) तद्विदां ।

अन्वय— चन्द्रः हंसी इव धवलः नभः सरांसि इव अमलं, भटः श्वाः इव भर्तृभक्तः खद्योतः भानुवत् भाति ।

शब्दार्थ— चन्द्रः = चन्द्रमा । हंसी इव = हंसी (हंसवधू) के समान । धवलः = शुभ्र (सफेद) है । नभः = आकाश । सरांसि इव = सरोवरों (तालाबों) के समान । अमलं = निर्मल (है) । भटः = सैनिक । श्वाः इव = कुत्तों के समान । भर्तृभक्तः = स्वामिभक्त (है) । खद्योतः = खद्योत (जुगनू) । भानुवत् = सूर्य के समान । भाति = चमकता है ।

अनुवाद—चन्द्रमा हंसी के समान शुभ्र (सफेद) है, आकाश सरोवरों (तालाबों) के समान निर्मल है, सैनिक कुत्तों के समान स्वामिभक्त (हैं) (और) खद्योत सूर्य के समान चमकता है ।

संस्कृतव्याख्या—लिङ्गादिभेदकृद्दोषस्य निदर्शनं ददात्यत्र- **हंसीति** । **चन्द्रः** चन्द्रमा **हंसी इव** हंसवधूरिव **धवलः** श्वेतवर्णः लिङ्गभेददोषोऽत्र, **नभः** आकाशः **सरांसि इव** सरोवराणि इव **अमलं** निर्मलं वचनभेददोषोऽत्र, **भटः** सैनिकः **श्वाः इव** कुक्कुराः इव **भर्तृभक्तः** स्वमिभक्तः उपमानहीनदोषोऽत्र **खद्योतः** ज्योतिरिङ्गणः **भानुवत्** सूर्य इव **भाति** प्रकाशते उपमानाधिक्यदोषोऽत्र विद्यते ।

विशेष—

(१) विरसता उत्पन्न करने वाले लिङ्गादिभेद से यदि उपमेय के सौन्दर्य में वृद्धि न हो- उसमें निन्दा या प्रशंसा के रूप में कुछ चमत्कार न आता हो तो ऐसा लिङ्गादि-भेददोष उपमा को दूषित कर देता है । जैसे चन्द्रमा हंसी के समान धवल है । हंसी और हंसी की धवलता में कोई अन्तर नहीं होता । विशिष्ट धवलता की प्रतीति न होने के कारण पुल्लिंग उपमेय चन्द्रमा के लिए उपमान हंस का प्रयोग शोभाधायक है। इस प्रकार लिङ्ग की स्वतन्त्रता होने पर कवि को समान लिङ्ग वाले उपमेय और उपमान का प्रयोग करना चाहिए किन्तु यहाँ ऐसा न होने से लिङ्ग-भेद दोष है।

(२) 'आकाश सरोवरों के समान निर्मल है' इस उपमा में नपुंसक लिङ्ग वाले आकाश की निर्मलता के सादृश्य को प्रस्तुत करने के लिए नपुंसक लिङ्ग वाले सरोवर को उपमान बनाना तो उचित है किन्तु आकाश के एक होने के कारण सरोवर को भी एक वचन में होना चाहिए- जो बहुवचन में प्रयुक्त है । इससे वैरस्य उत्पन्न होता है अतः यह वचनभेदकृत् दोष है ।

(३) हीन उपमान से सादृश्य कथन करने पर उपमेय में उत्कर्ष वृद्धि न होने के कारण हीनदोष हो जाता है । जैसे 'सैनिक कुत्ते के समान स्वामिभक्त है' में कुत्ता

स्वामिभक्त होने का उत्कृष्ट उदाहरण हैं किन्तु अमेध्यता के कारण हेय माना जाता है। अत: यह स्वामिभक्त होने पर भी निन्दा के कारण उपमान के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

(४) इसी प्रकार अधिक गुण वाले उपमान से भी उपमा में चमत्कार होना चाहिए। चमत्कार न होने पर वह उपमा अधिकता-दोष से दूषित हो जाती है। जैसे 'खद्योत सूर्य के समान चमक रहा है' में खद्योत और सूर्य के चमकने में अत्यधिक अन्तर होने के कारण सूर्य से उपमेय जुगुनु का प्रयोग उपादेय नहीं है अत: यहाँ अधिकता दोष हैं !

(लिङ्गादिदोषवर्जनम्)

ईदृशं[1] वर्ज्यते सद्भिः कारणं त्वत्र[2] चिन्त्यताम् ।
गुणदोषविचाराय स्वयमेव मनीषिभिः[3] ।।५६।।

अन्वय— ईदृशं सद्भिः वर्ज्यते, अत्र तु गुणदोषविचाराय मनीषिभिः स्वयम् एव कारणं चिन्त्यताम् ।

शब्दार्थ— ईदृशं = इस प्रकार (का प्रयोग)। सद्भिः = श्रेष्ठ (कवियों) द्वारा। वर्ज्यते = वर्जित्व किया जाता है, परित्यक्त किया जाता है। अत्र तु = इस विषय में तो। गुणदोषविचाराय = गुणों और दोषों के विचार के लिए। मनीषिभिः = मनीषि लोगों द्वारा। स्वयम् एव = स्वयं ही। कारणं = कारण को। चिन्त्यताम् = सोच लिया जाना चाहिए।

अनुवाद— इस प्रकार का प्रयोग श्रेष्ठ (कवियों) द्वारा वर्जित (परित्यक्त) किया जाता है। इस विषय में गुणों तथा दोषों के विचार के लिए मनीषि लोगों द्वारा स्वयं ही कारण सोच लिया जाना चाहिए (= मनीषियों को स्वयं कारण सोच लेना चाहिए)।

संस्कृतव्याख्या— ईदृशस्य प्रयोगस्य सत्कविभिः परिहारः कर्त्तव्यः इत्येवमुपसंहरत्यत्र- **ईदृशमिति**। **ईदृशं** पूर्वोक्तोदाहरणसमानं काव्यं **सद्भिः** सत्कविभिः **वर्ज्यते** परित्यज्यते। **तत्र** तस्मिन्विषये **गुणदोषविचाराय** गुणानां दोषाणाञ्च विचाराय निर्णयाय **मनीषिभिः** सहृदयैः **स्वयमेव कारणं** हेतुः चिन्त्यताम् ऊह्यताम्। सहृदयानां सदसद्विवेचनहृदयमेवात्र प्रमाणमिति भावः।

---

(१) इदृशो।

(२) तत्र।

(३) श्लोकार्धमिदं क्वचिन्नोपलभ्यते।

विशेष—

(१) सत्कवियों द्वारा उपमाविषयक उपर्युक्त दोषों का परित्याग किया जाना चाहिए। उपमा को उत्कृष्ट बनाने के लिए कवि के गुणत्व के प्रयोजक सुरसता का प्रयोग तथा दोषत्व के प्रयोजक विरसता को छोड़ देना चाहिए।

(सादृश्यवाचकाः शब्दाः)

इववद्वायथाशब्दाः समाननिभसन्निभाः ।
तुल्यसङ्काशनीकाशप्रकाशप्रतिरूपकाः ।।५७।।
प्रतिपक्षप्रतिद्वन्द्विप्रत्यनीकविरोधिनः ।
सदृक्सदृशसंवादिसजातीयानुवादिनः ।।५८।।
प्रतिबिम्बप्रतिच्छन्द[1]सरूपसमसम्मिताः[2]।
सलक्षणसदृक्षाभसपक्षोपमितोपमाः ।।५९।।
कल्पदेशीयदेश्यादिः[3] प्रख्यप्रतिनिधी अपि ।
सवर्णतुलितौ शब्दौ ये च तुल्यार्थवाचिनः[4] ।।६०।।

अनुवाद— (इन कारिकाओं में उपमा के वाचक चालीस शब्दों का निर्देश किया गया है जो इस प्रकार हैं-) इव, वत् (प्रत्ययान्त शब्द), वा, यथा- यह शब्द, समान, निभ, सन्निभ, तुल्य, सङ्काश, नीकाश, प्रकाश, प्रतिरूप, प्रतिपक्ष, प्रतिद्वन्द्वि, प्रत्यनीक, विरोधी, सदृक्, सदृश, संवादि, सजातीय, अनुवादि, प्रतिबिम्ब, प्रतिच्छन्द, सरूप, सम, सम्मित, सलक्षण, सदृक्ष, आभ, सपक्ष, उपमित, उपम, कल्प, देशीय, देश्य इत्यादि, प्रख्य और प्रतिनिधि, सवर्ण और तुलित- ये दो शब्द तथा तुल्यार्थ के वाचक (शब्द सादृश्य के वाचक होते हैं)।

(उपमावाचकसमस्तपदः)

समासश्च बहुव्रीहिः शशाङ्कवदनादिषु ।

अन्वय— शशाङ्कवदना आदिषु ब्रहुव्रीहि समासः च।

शब्दार्थ— शशाङ्कवदना = चन्द्रमा के समान मुख है जिसका ऐसी, चन्द्रमा के

---

(१) -च्छत्र- ।

(२) -सप्रभाः ।

(३) -देश्यादिः ।

(४) चान्यूनार्थवादिनः ।

समान मुख वाली। आदिषु = इत्यादि (पदों) में। बहुव्रीहिः = बहुव्रीहि। समास: च = समास वाले भी।

अनुवाद— 'शशाङ्कवदना' इत्यादि बहुव्रीहि समास वाले (पद) भी उपमा के वाचक होते हैं।

(उपमावाचकक्रियापदः)

स्पर्धते जयति द्वेष्टि द्रुह्यति प्रतिगर्जति ।।६१।।
आक्रोशत्यवजानाति कदर्थयति निन्दति ।
विडम्बयति सन्धत्ते हसतीर्ष्यत्यसूयति ।।६२।।

अन्वय— स्पर्धते जयति द्वेष्टि द्रुह्यति प्रतिगर्जति आक्रोशयति अवजानाति कदर्थयति निन्दति विडम्बयति सन्धत्ते हसति ईर्ष्यति असूयति।

शब्दार्थ— स्पर्धते = स्पर्धा (होड़) करता है। जयति = जीतता है। द्वेष्टि= द्वेष करता है। द्रुह्यति = द्रोह करता है। प्रतिगर्जति = डाटता है, मुकाबला करता है। आक्रोशयति = बुराभला कहता है, ललकारता है। अवजानाति = अवज्ञा करता है। कदर्थयति = तिरस्कार करता है। निन्दति = निन्दा करता है। विडम्बयति = उपहास करता है। सन्धत्ते = सुशोभित होता है। हसति = हसता है। ईर्ष्यति = ईर्ष्या करता है। असूयति = असूया (निन्दा) करता है।

अनुवाद— स्पर्धा करता है, जीतता है, द्वेष करता है, द्रोह करता है, डाँटता है (मुकाबला करता है), बुराभला कहता है (ललकारता है); अनादर (अवज्ञा) करता है, तिरस्कार करता है, निन्दा करता है, उपहास करता है, शोभा को धारण करता है, हसता है, ईर्ष्या करता है, असूया (निन्दा) करता है- (ये क्रियापद उपमा के वाचक होते हैं)।

(उपमावाचकाः वाक्यांशाः)

तस्य मुष्णाति सौभाग्यं तस्य कान्तिं विलुम्पति ।
तेन सार्धं विगृह्णाति तुलां तेनाधिरोहति ।।६३।।
तत्पदव्यां पदं धत्ते तस्य कक्ष्यां विगाहते ।
तमन्वेत्यनुबध्नाति तच्छीलं तन्निषेधति ।।६४।।
तस्य चानुकरोतीति शब्दाः सादृश्यसूचकाः ।
उपमायामिमे प्रोक्ताः कवीनां बुद्धिसौख्यदाः ।।६५।।

अन्वय— तस्य सौभाग्यं मुष्णाति तस्य, कान्तिं विलुम्पति, तेन सार्धं विगृह्णाति,

तेन तुलाम् अधिरोहति, तत्पदव्यां पदं धत्ते, तस्य कक्ष्यां विगाहते, तम् अन्वेति, तच्छीलम् अनुबध्नाति, तन्निषेधति, तस्य च अनुकरोति इति शब्दाः सादृश्यसूचकाः सन्ति। कवीनां बुद्धिसौख्यदाः इमें उपमायां प्रोक्ताः ।

शब्दार्थ— तस्य = उसके। सौभाग्यं = सौन्दर्य को। मुष्णति = हरण करता है। तस्य = उसकी। कान्तिं = शोभा को। विलुम्पति = विलुप्त करता है। तेन = उसके। सार्ध = साथ। विगृह्णाति = लड़ता है। तेन = उसके साथ। तुलाम् अधिरोहति = समानता करता है। तत्पदव्यां = उसके मार्ग पर। पदं धत्ते = पैर रखता है। तस्य = उसकी। कक्ष्यां = श्रेणी में। विगाहते = अवगाहन करता है। तम् अन्वेति = उसका अनुसरण करता है। तच्छीलं = उसके स्वभाव का। अनुबध्नाति = अनुगमन करता है। तन्निषेधति = उसका निषेध करता है। तस्य च = और उसका। अनुकरोति = अनुगमन करता है। इति = ये। शब्दाः = शब्द। सादृश्यसूचकाः = समानता के सूचक हैं। कवीनां = कवियों को। बुद्धिसौख्यदाः = बुद्धि और आनन्द को देने वाले। इमे = ये (शब्द और वाक्यांश)। उपमायां = उपमा (के प्रसङ्ग) में। प्रोक्ताः = कहे गये (बतलाए गये) हैं।

अनुवाद— उसके सौभाग्य का हरण करता है, उसकी शोभा को विलुप्त करता है, उसके साथ लड़ता है, उसके साथ समानता करता है, उसके मार्ग पर पैर रखता है (चलता है), उसकी श्रेणी में अवगाहन करता है, उसका अनुसरण करता है, उसके स्वभाव का अनुगमन करता है, उसका निषेध करता है और उसका अनुगमन (अनुकरण) करता है- ये शब्द (और वाक्यांश) समानता के सूचक हैं। कवियों को बुद्धि और आनन्द देने वाले ये (शब्द और वाक्यांश) उपमा के प्रसङ्ग में कहे (बतलाए) गये हैं।

संस्कृतव्याख्या— अत्रोपमायां सादृश्यसूचकान् शब्दान् निर्दिशति- **इवेति**। इवादयः चतुःषष्टिसङ्ख्याकाः शब्दाः वाक्यांशाश्च अभिधालक्षणाव्यञ्जनाभिः सादृश्यसूचकाः भवन्ति। एते शब्दाः वाक्यांशाश्च कवीनां बुद्ध्यानन्ददायकाः सन्ति। अत एवोपमाविधानप्रसङ्गे तेषां दिङ्मात्रं निर्देशः कृतः ।

विशेष—

(१) इन नौ (५७-६५) कारिकाओं में सादृश्य सूचक शब्दों और वाक्यांशों की सूची दी गयी है। इन शब्दों और वाक्यांशों में से कुछ अभिधा द्वारा, कुछ लक्षणा द्वारा तथा कुछ व्यञ्जना द्वारा सादृश्य के सूचक होते हैं।

(२) यहाँ सादृश्य सूचक सभी शब्दों या वाक्यांशों का उल्लेख नहीं हुआ है। ये तो

दिङ्‌निर्देश मात्र है। इसी प्रकार के अन्य शब्द और वाक्यांश भी सादृश्य सूचक होते हैं।

(रूपकनिरूपणम्)

उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते[१] ।
यथा बाहुलता पाणिपद्मं चरणपल्लवः ।।६६।।

अन्वय— तिरोभूतभेदा उपमा एव रूपकम् उच्यते। यथा- बाहुलता पाणिपद्मं चरणपल्लवः।

शब्दार्थ— तिरोभूतभेदा = तिरोहित (निगूढ = छिपा हुआ) है भेद जिसमें ऐसी, तिरोभूत (तिरोहित) भेद वाली। उपमा एव = उपमा ही। रूपकम् = रूपक। उच्यते = कहलाती है। यथा = जैसे। बाहुलता = बाहुरूपी लता। पाणिपद्मं = हाथ-रूपी कमल। चरणपल्लवः = चरणरूपी पल्लव (नये कोमल पत्ते = कोंपल)।

अनुवाद— (उपमेय और उपमान के) तिरोभूत (तिरोहित) भेद वाली उपमा ही रूपक कहलाती है। जैसे- बाहुलता (बाहुरूपी लता), पाणिपद्मं (हाथरूपी कमल), चरणपल्लव (चरणरूपी पल्लव)।

संस्कृतव्याख्या— रूपकं विवेचयत्यत्र- **उपमेति** । **तिरोभूतभेदा** तिरोभूतः तिरोहितः निगूढः वा **भेदः** उपमेयोपमानयोः भेदः यस्यां तादृशी **उपमा एव रूपकम्** अलङ्कारः **उच्यते** अभिधीयते। सादृश्यस्य अतिशयम् अवबोधनाय उपमेयोपमानयोर-भेदकथनं रूपकम् अलङ्कारः। **यथा- बाहुलता** बाहु एव लता **पाणिपद्मं** पाणिः हस्त एव पद्मं **चरणपल्लवः** चरणः एव पल्लवः इति। अत्र बाहुः लता इव, पाणिः पद्ममिव चरणः पल्लवः इव इति विवक्षमाणे बाह्वादीनां लतादीनाञ्च परस्परमभेदः वर्णितः। बाहुलतेत्यादिषु निदर्शनेषु कर्मधारयसमासः अतश्चात्र समस्तं नाम रूपकभेदः विद्यते।

विशेष—

(१) वह उपमा रूपक कहलाती है जिसमें उपमेय और उपमान का भेद, उन दोनों का अतिशय सादृश्य दिखलाने के कारण तिरोहित हो जाता है। जैसे 'बाहुलता' में 'लता के समान बाहु'- यह अर्थ विवक्षित है। इस उपमा के कथन में उपमेय बाहु तथा उपमान लता में परस्पर भेद स्पष्ट है किन्तु यदि इस उपमा को बाहुलता अर्थात् बाहु लता है- इस प्रकार कहने पर उपमान और उपमेय की भिन्नता तिरोहित हो जाती है। उपमेय और उपमान में अतिशय सादृश्य दिखलाने के लिए दोनों के बीच की भिन्नता का तिरोहित हो जाना ही रूपक अलङ्कार है।

इसी प्रकार 'पाणिपद्मम्' इत्यादि उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिए।

(२) वस्तुतः उपमा और रूपक एक ही अलङ्कार के दो रूप हैं। उपमा अलङ्कार में उपमेय तथा उपमान अलग-अलग होने से दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु रूपक अलङ्कार में उपमेय और उपमान की भिन्नता तिरोहित रहती है। उपमेय और उपमान का यह अभेद वास्तविक नहीं प्रत्युत शाब्दिक ही होता है।

(३) **समस्तरूपक**- जब उपमेय और उपमान के अभेद का कथन इन दोनों का समास करके किया जाता है, तो वह समस्त रूपक कहलाता है। जैसे- 'बाहुलता' यहाँ उपमेय बाहु तथा उपमान लता का कर्मधारय समास द्वारा कथन किया गया है अतः यह समस्त रूपक का उदाहरण है।

(४) दण्डी ने रूपक के बीस भेदों को कहा है जो इस प्रकार है- समस्तरूपक, असमस्तरूपक, समस्तव्यस्तरूपक, सकलरूपक, अवयवरूपक, अवयविरूपक, एकाङ्गरूपक, युक्तरूपक, अयुक्तरूपक, विषमरूपक, सविशेषणरूपक, विरुद्धरूपक, हेतुरूपक, श्लिष्टरूपक, उपमारूपक, व्यतिरेकरूपक, आक्षेपरूपक, समाधानरूपक, रूपक-रूपक, और तत्त्वापह्नवरूपक। समस्तरूपक का विवेचन दण्डी ने इस श्लोक में किया है। इनसे अन्य रूपकभेदों का उदाहरण आगे दिया जा रहा है।

(असमस्तरूपकनिदर्शनम्)

अङ्गुल्यः पल्लवान्यासन् कुसुमानि नखार्चिषः।
बाहू लते वसन्तश्रीस्त्वं नः प्रत्यक्षचारिणी।।६७।।
इत्येतदसमस्ताख्यं समस्तं पूर्वरूपकम्।

अन्वय— त्वं नः प्रत्यक्षचारिणी वसन्तश्रीः (यतो हि) अङ्गुल्यः पल्लवानि आसन्, नखार्चिषः कुसुमानि, बाहू लते (आस्ताम्)। इति एतत् असमस्ताख्यं, पूर्वरूपकं समस्तम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— त्वं = तुम। नः = मेरे लिए। प्रत्यक्षचारिणी = साक्षात् सञ्चरण करने वाली, प्रत्यक्ष (सामने) चलती-फिरती। वसन्तश्रीः = वसन्तलक्ष्मी, वासन्ती शोभा। अङ्गुल्यः = अङ्गुलियाँ। पल्लवानि = कोपलों, नये-नये कोमल पत्ते। आसन् = थे, हैं। नखार्चिषः = नखों की किरणें। कुसुमानि = पुष्प। बाहू = दोनों भुजाएँ। लते = दो लताएँ। इति = इस प्रकार। एतत् = यह। असमस्ताख्यं = असमस्त नामक। पूर्वरूपकं = पूर्ववर्ती (उदाहरण में निरूपित) रूपक। समस्तं = समस्त (नामक रूपक) है।

अनुवाद— (हे सुन्दरि !) तुम मेरे लिए साक्षात् सञ्चरण करने वाली वासन्तीशोभा (वसन्तलक्ष्मी) हो। (तुम्हारी) अङ्गुलियाँ (वासन्तिक) नए-नए कोमल पत्ते हैं, नखों की किरणें (वासन्तिक) पुष्प हैं और दोनों भुजाएँ (वासन्तिक) दो लताएँ हैं। इस प्रकार यह असमस्त नामक (रूपक है)। पूर्ववर्ती (उदाहरण में निरूपित) रूप असमस्त (नामक रूपक है)।

संस्कृतव्याख्या— असमस्ताख्यं द्वितीयं रूपकभेदं निदर्शयत्यत्र- **अङ्गुल्य इति**। हे सुन्दरि, **त्वं** सुन्दरी **नः** मह्यं **प्रत्यक्षचारिणी** मूर्तिमती सञ्चारिणी **वसन्तश्रीः** माधवीशोभा असि। यथा हि तव **अङ्गुल्यः** अङ्गुल्याभिधेया हस्तशाखाः **पल्लवानि** किसलयानि सन्ति; तव **नखार्चिषः** नखनिर्भिन्नाः मयूखाः **कुसुमानि** पुष्पाणि सन्ति तथा च **बाहू** करौ लते स्तः। इति एवं प्रकारकम् **एतत्** निदर्शनेऽस्मिन् कथितम् उपमेयभूतानां अङ्गुल्यादीनाम् उपमानभूतैः पल्लवादिभिरभेदकथनाद् रूपकम्। तयोरूपमेयोपमानयोः परस्परमसमस्तत्वाच्च **असमस्ताख्यं** असमस्तं नाम रूपकभेदः विद्यते। पूर्वरूपकं पूर्ववर्तिनिदर्शने निर्दिष्टं रूपकन्तु **समस्तं** नाम रूपकभेद अस्ति।

विशेष—

(१) उपमेय और उपमान समासरहित रूप में अभिन्न करके दिखलाये जाने पर असमस्त नामक रूपक का भेद होता है। जैसे- अङ्गुलियाँ पल्लव हैं, नखकिरणें पुष्प हैं और दोनों भुजाएँ दो लताएँ है, तुम साक्षात् वसन्तलक्ष्मी हो- इन कथनों में उपमेय अङ्गुलियाँ, नखकिरण, दोनों भुजाएँ और तुम तथा उपमान क्रमशः पल्लव, पुष्प, दो लताएँ और वसन्तलक्ष्मी में अभेद का प्रतिपादन असमस्त रूप से किया गया है, अतः यहाँ असमस्त रूपक है।

(समस्तव्यस्तरूपकनिदर्शनम्)

स्मितं मुखेन्दोर्ज्योत्स्नेति समस्तव्यस्तकम् ।।६८।।

अन्वय— स्मितं मुखेन्दोः ज्योत्स्ना इति समस्तव्यस्तकम्।

शब्दार्थ— स्मितं = मुस्कराना। मुखेन्दोः = मुख रूपी चन्द्रमा की। ज्योत्स्ना = चाँदनी। इति = इस प्रकार। समस्तव्यस्तकम् = समस्तव्यस्त (नामक रूपक का भेद है)।

अनुवाद— (हे सुन्दरि ! तुम्हारा) मुस्कराना मुखरूपी चन्द्रमा की चाँदनी हैं। इस प्रकार (यहाँ 'मुखेन्दोः' में समास तथा स्मितं ज्योत्स्ना में समास का अभाव होने से यह) समस्तव्यस्त (नामक रूपक का भेद है)।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयं समस्तव्यस्तरूपकं निदर्शयत्यत्र- **स्मितमिति**। हे सुन्दरि,

तव **स्मितं** लीलाहसितं **मुखेन्दोः** मुखचन्द्रमसः **ज्योत्स्ना** कौमुदी विद्यते **इति** एवं विधमत्र मुखेन्दोः इति समस्तत्वात् स्मितं ज्योत्स्ना इत्यनयोः द्वयोः उपमेयोपमानयोः पदयोः असमस्तत्वाच्च **समस्तव्यस्तकं** तन्नामधेयं रूपकभेदः अस्ति।

विशेष—

(१) जिस रूपक में समस्त और असमस्त दोनों रूपकों का योग होता है, वह समस्तव्यस्त नामक रूपक कहलाता है। जैसे- 'मुस्कराना मुखचन्द्र की चाँदनी है' में मुख-चन्द्र समस्तरूपक और स्मितचाँदनी असमस्तरूपक का योग है अतः यह असमस्तव्यस्तरूपक का उदाहरण है।

(सकलरूपकनिदर्शनम्)

ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि नखदीधितिकेसरम्।
ध्रियते मूर्ध्निभूपालैर्भवच्चरणपङ्कजम् ।।६९।।

अन्वय— ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि नखदीधितिकेसरं भवच्चरणपङ्कजं भूपालैः मूर्ध्नि ध्रियते।

शब्दार्थ— ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि = लाल अङ्गुलियों रूपी पङ्खुड़ियों वाला, लाल अङ्गुलियों रूपी पङ्खुड़ियाँ हैं जिसका ऐसा। नखदीधितिकेसरम् = नखकिरण-रूपी पुष्पपरागों वाला, नखकिरण-रूपी पुष्पपराग हैं जिसमें ऐसा। भवच्चरणपङ्कजं = आपका चरण-कमल। भूपालैः = राजाओं द्वारा। मूर्ध्नि = शिर पर। ध्रियते = धारण किया जाता है।

अनुवाद— लाल अङ्गुलियों रूपी पङ्खुडियों वाला, नखकिरण रूपी पुष्पपरागों वाला आप का चरण-कमल राजाओं द्वारा शिर पर धारण किया जाता है।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्थं सकलरूपकं निदर्शयत्यत्र- **ताम्रेति**। **ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि** ताम्राः रक्ताः अङ्गुलयः एव दलश्रेण्यः पत्रावल्यः यस्य तादृशं **नखदीधितिकेसरं** नखदीधितयः नखांशवः एव केसराणि परागकिञ्जल्कानि यस्मिन् तादृशं **भवच्चरणपङ्कजं** भवतः राज्ञः चरणः एव पङ्कजं कमलं तच्च **भूपालैः** सामन्तनरेशैः **मूर्ध्नि** शिरसि **ध्रियते** धार्यते। भवतः चरणकमले स्वशिरः नमन्ति इति भावः।

(सकलरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

अङ्गुल्यादौ दलादित्वं पादे चारोप्य पद्मताम्।
तद्योग्यस्थानविन्यासादेतत्सकलरूपकम् ।।७०।।

अन्वय— अङ्गुल्यादौ दलादित्वं पादे च पद्मताम् आरोप्य तद्योग्यस्थानविन्यासात् एतत् सकलरूपकम् (अस्ति)।

शब्दार्थ— अङ्गुल्यादौ = अङ्गुलियों इत्यादि पर। दलादित्वं = पङ्खुड़ियों इत्यादि का। पादे च = और पैर पर। पद्मतां = कमल का। आरोप्य = आरोप करके। तद्योग्यस्थानविन्यासात् = (उन दोनों को) उनके उचित स्थान पर। विन्यासात् = विन्यास (कथन) करने के कारण। एतत् = यह (पूर्वोक्त उदाहरण)। सकलरूपकं = सकलरूपक है।

अनुवाद— अङ्गुलियों इत्यादि पर पङ्खुड़ियों इत्यादि का और पैर पर कमल का आरोप करके (उन दोनों-चरण और कमल का) उनके उचित स्थान पर विन्यास (कथन) करने के कारण यह (पूर्वोक्त उदाहरण में कथित) सकलरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— सकलरूपकस्योदाहरणं विश्लेषयत्यत्र- **अङ्गुल्यादौ** इति- **अङ्गुल्यादौ** उपमेये **दलादित्वं** दलपङ्क्त्यादिकत्वं उपमानत्वं **पादे च** चरणे चोपमेये **पद्मतां** कमलत्वम् उपमानत्वम् **आरोप्य** आरोपं कृत्वा तयोः चरणकमलयोः उपमेयोपमानयोः **तद्योग्यस्थानविन्यासात्** तद्योग्ये तदुचिते स्थाने सामन्तनरेशशिरोरूपे स्थाने विन्यासात् धारणात् कथनाद् इत्यर्थः, **एतत्** पूर्वोक्तनिदर्शने कथितं **सकलरूपकं** तन्नामधेयं रूपकभेदः विद्यते।

विशेष—

(१) साङ्गोपाङ्ग उपमेय पर साङ्गोपाङ्ग उपमान का आरोप सकलरूपक कहलाता है। इसे साङ्गरूपक भी कहा जाता है। जैसे- उपर्युक्त उदाहरण में अङ्गीभूत चरण उपमेय तथा अङ्गीभूत कमल उपमान है। चरण के अङ्गभूत अङ्गुलियाँ हैं और नखदीधिति उपाङ्गभूत है। इसी प्रकार कमल के अङ्गभूत पङ्खुड़ियाँ तथा उपाङ्गभूत केसर है। यहाँ साङ्गोपाङ्ग उपमेय चरण पर साङ्गोपाङ्ग उपमान कमल का आरोप होने के कारण सकलरूपक है।

(अवयवरूपकनिदर्शनम्)

अकस्मादेव ते चण्डि स्फुरिताधरपल्लवम् ।
मुखं मुक्तारुचो धत्ते घर्माम्भःकणमञ्जरीः ।।७१।।

अन्वय— चण्डि, अकस्मात् एव स्फुरिताधरपल्लवं ते मुखं मुक्तारुचः घर्माम्भःकणमञ्जरीः धत्ते।

शब्दार्थ— चण्डि = हे मानिनि, हे कठोरहृदये। अकस्मात् = अचानक ही। स्फुरिताधरपल्लवं = कम्पित है अधर रूपी पल्लव जिसमें ऐसा, फड़क रहे अधरों

रूपी पल्लवों (कोपलों) वाला। ते = तुम्हारा। मुखं = मुख। मुक्तारुचः = मोती के दानों के समान। घर्माम्भःकणमञ्जरीः = स्वेदविन्दुरूपी मञ्जरी (पुष्पावली) को। धत्ते = धारण कर रहा है।

अनुवाद— हे कोपने, अचानक ही स्फुरित (फड़क रहे) अधररूपी पल्लवों (कपोलो) वाला तुम्हारा मुख मोती के दानों के समान स्वेदबिन्दु रूपी मञ्जरी (पुष्पावली) को धारण कर रहा है।

संस्कृतव्याख्या— पञ्चमम् अवयवरूपकमुदाहरत्यत्र- **अकस्मादिति**। **चण्डि** हे मानिनि, **अकस्माद् एव** सहसा एव **स्फुरिताधरल्लवं** स्फुरितौ कम्पितौ अधरौ ओष्ठौ एव पल्लवौ यस्मिन्तादृशं **ते** तव कोपनायाः **मुखम्** आननं **मुक्तारुचः** मुक्ताकणसदृशीः **घर्माम्भःकणमञ्जरीः** धर्माम्भःकणाः स्वेदजलबिन्दवः एव मञ्जर्यः पुष्पावल्यः **धत्ते** धारयति। प्रणयकुपितायाः तव मुखं स्विद्यति श्वेदजलबिन्दवश्च मुक्तावद् शोभते इति भावः।

(अवयवरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

मञ्जरीकृत्य घर्माम्भः पल्लवीकृत्य चाधरम्।
नान्यथा कृतमत्रास्यमतोऽवयवरूपकम् ॥७२॥

अन्वय— अत्र घर्माम्भः मञ्जरीकृत्य अधरं च पल्ल्वीकृत्य आस्यम् अन्यथा न कृतम्, अतः अवयवरूपकम्।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण में)। घर्माम्भः = स्वेदकण को। मञ्जरीकृत्य = मञ्जरी के रूप में रूपित करके। अधरं च = और अधर को। पल्लवीकृत्य = पल्लव के रूप में रूपित करके। आस्यं = मुख को। अन्यथा = अन्य रूप से। न कृतम् = प्रस्तुत (रूपित) नहीं किया गया है। अतः = इसलिए। अवयवरूपकम् = अवयवरूपक है।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में स्वेदकण को मञ्जरी के रूप में और अधर को पल्लव के रूप में रूपित (प्रस्तुत) करके (अङ्गी = अवयवी) मुख को किसी अन्य (कमल इत्यादि) के रूप में रूपित (प्रस्तुत) नहीं किया गया है, इसलिए (अङ्ग = अवयव स्वेदकण और होंठ का ही रूपण होने से) अवयवरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वोक्तमवयवरूपकस्योदाहरणं विश्लेषयत्यत्र- **मञ्जरीति**। **घर्माम्भः** स्वेदजलं **मञ्जरीकृत्य** पुष्पमञ्जरीत्वेन रूपयित्वा **अधरं च** ओष्ठश्च **पल्लवीकृत्य** पल्लवत्वेन रूपयित्वा **आस्यं** नायिकामुखम् **अन्यथा** केनापि कमलादिना **न कृतं** न रूपितम्, अत एवात्र अवयवमात्ररूपणाद् **अवयवरूपकं** तन्नाम रूपकभेदः विद्यते। परवर्तिनामाचार्याणां मतेनात्राङ्गरूपणाद् साङ्गरूपकमिति।

विशेष—

(१) जब अङ्गी (अवयवी) उपमेय पर अङ्गीं उपमान का आरोप नहीं किया जाता प्रत्युत केवल उपमेय के अङ्गों (अवयवों) पर उपमान के अङ्गों का ही आरोप किया जाता है तो ऐसा रूपक अवयवरूपक कहलाता है। अङ्गमात्र पर अङ्गमात्र का रूपण होने के कारण परवर्ती आचार्यों ने इसे साङ्गरूपक नाम से अभिहित किया है।

(२) उपर्युक्त उदाहरण में उपमेय अङ्गीं मुख पर उपमान अङ्गी कमल इत्यादि का आरोप नहीं किया गया है केवल मुख के अङ्गभूत (अवयवभूत) उपमेय अधर और स्वेदबिन्दु पर कमल इत्यादि के अङ्गभूत उपमान पल्लव और मञ्जरियों का आरोप किया गया है। केवल उपमेय के अवयव पर ही उपमान के अवयव का आरोप होने के कारण यहाँ अवयवरूपक है।

(अवयविरूपकनिदर्शनम्)

वल्गितभ्रु[1] गलद्घर्मजलमालोहितेक्षणम् ।
विवृणोति मदावस्थामिदं वदनपङ्कजम् ।।७३।।

अन्वय— इदं वल्गितभ्रु गलद्घर्मजलम् आलोहितेक्षणं वदनपङ्कजं मदावस्थां विवृणोति।

शब्दार्थ— वल्गितभ्रु = चञ्चल भौंहों वाला। गलद्घर्मजलं = टपकते हुए स्वेद-जलों वाला। आलोहितेक्षणं = ईषद्रक्त (कुछ-कुछ लाल) आँखों वाला। वदन-पङ्कजं = मुखरूपी कमल। मदावस्थां = मदयुक्त अवस्था को, नशे की अवस्था को। विवृणोति = प्रकट (प्रदर्शित) कर रहा है।

अनुवाद— चञ्चल भौंहों वाला, टपकते हुए स्वेदजलों वाला तथा ईषद्रक्त (कुछ-कुछ लाल) आँखों वाला मुख रूपी कमल (मुख-कमल) (मदिरापान से उत्पन्न) मदयुक्त अवस्था (नशे की अवस्था) को प्रकट (प्रदर्शित) कर रहा है।

संस्कृतव्याख्या— षष्ठम् अवयविरूपकं निदर्शयत्यत्र- **वल्गितेति**। इदं पुरोदृश्यमानं तव **वल्गितभ्रु** चञ्चलभ्रूयुतं **गलद्धर्मजलं** प्रस्रवत्स्वेदजलम् **आलोहितेक्षणम्** ईषद्रक्तनेत्रं **वदनपङ्कजं** मुखकमलं **मदावस्थां** मदविकृतां दशां **विवृणोति** व्यञ्जयति।

(अवयविरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

अविकृत्य मुखाङ्गानि मुखमेवारविन्दताम् ।
आसीद् गमितमत्रेदमतोऽवयविरूपकम् ।।७४।।

---

[1] वलितभ्रु

अन्वय— मुखाङ्गानि अविकृत्य मुखम् एव अरविन्दतां गमितम् आसीत् अतः इदम् अवयविरूपकम्।

शब्दार्थ— मुखाङ्गानि = मुख के अङ्गों (अवयवों) को। अविकृत्य = अविकृत (रूप में ही रख) करके। मुखम् एव = मुख को ही। अरविन्दतां = कमल के रूप में। गमितं = रूपित किया गया। आसीत् = था, है। अतः = इसलिए। अत्र = यहाँ। इदं = यह। अवयविरूपकं = अवयविरूपक है।

अनुवाद— (उपमेय) मुख के अङ्गों को अविकृत (रूप में ही रख) करके (अर्थात् उसके अङ्गों पर उपमान कमल के अङ्गों का आरोप न करके) (अङ्गीभूत) मुख को ही कमल के रूप में रूपित किया है। इसलिए (केवल उपमेय अङ्गी पर उपमान अङ्गी का आरोप होने के कारण) यहाँ यह अवयविरूपक है।

संस्कृतव्याख्या—- अवयविरूपकस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **अविकृत्येति**। **मुखाङ्गानि** मुखस्य भ्रूस्वेदबिन्दुनेत्रादिरूपाणि अङ्गानि अवयवानि **अविकृत्य** उपमानाङ्गभूतैः भ्रमरादिभिः अरूपयित्वा **मुखम्** एव अवयविभूतं मुखम् एव **अरविन्दतां** कमलत्वं **गमितं** रूपितम् **आसीत् अतः** केवलस्य अवयविनः मुखस्य एव रूपणाद् **अत्र** प्रोक्ते निदर्शने **इदं** निरूपितम् **अवयविरूपकं** तन्नाम रूपकभेदो विद्यते।

विशेष—

(१) जिस रूपक में उपमेय के अङ्गों पर उपमान के अङ्गों का आरोप न करके केवल अङ्गीभूत उपमेय पर अङ्गीभूत उपमान का आरोप किया जाता है, वह अवयविरूपक कहलाता है, इसे अङ्गी रूपक भी कहा जा सकता है।

(२) उपर्युक्त उदाहरण में उपमेय मुख के अङ्गभूत भौहों, स्वेदकणों इत्यादि पर उपमान कमल के अङ्गभूत भ्रमर, ओसकणों, पङ्खुड़ियों इत्यादि का आरोप न करके केवल अङ्गीभूत उपमेय मुख पर अङ्गीभूत उपमान कमल का आरोप किया गया है। यहाँ केवल अङ्गीभूत (अवयवी) उपमेय मुख पर अङ्गीभूत (अवयवी) उपमान कमल का आरोप होने के कारण अवयविरूपक है।

(एकाङ्गरूपकनिदर्शनम्)

मदपाटलगण्डेन रक्तनेत्रोत्पलेन ते।
मुखेन मुग्धः सोऽप्येष जनो रागमयः कृतः ।।७५।।

अन्वय— मदपाटलगण्डेन रक्तनेत्रोत्पलेन ते मुखेन मुग्धः सः एषः जनः रागमयः कृतः।

शब्दार्थ— मदपाटलगण्डेन = मदपान के कारण गुलाबी हुए गालों वाले। रक्तनेत्रोत्पलेन = लाल हुए नेत्ररूपी नीलकमल वाले। ते = तुम्हारे। मुखेन = मुख के द्वारा। मुग्धः = मुग्ध, मोहित। सः = वह। एषः = यह। जनः = व्यक्ति। रागमयः = अनुरागयुक्त, प्रेमयुक्त, रागयुक्त। कृतः = कर दिया गया है, बना दिया गया है।

अनुवाद— मदपान के कारण गुलाबी हुए गालों वाले और लाल हुए नेत्ररूपी नीलकमल वाले तुम्हारे मुख के द्वारा मुग्ध (मोहित) वह (प्रेम से अछूता) यह व्यक्ति (मैं) अनुरागयुक्त कर दिया गया (बना दिया गया) है।

संस्कृतव्याख्या— सप्तमम् एकाङ्गरूपकं निदर्शयत्यत्र- **मदेति**। **मदपाटलगण्डेन** मदेन मद्यपानजनितेन मदेन पाटलौ शुभ्ररक्तौ गण्डौ कपोलौ यस्मिन् तादृशेन तथा च **रक्तनेत्रोत्पलेन** रक्ते लोहितवर्णे नेत्रे नयने एव उत्पले नीलकमले यस्मिन् तादृशेन **ते** तव सुन्दर्याः **मुखेन** आननेन **मुग्धः** त्वदाननसौन्दर्यमोहितः **सः** प्रेमानभिज्ञः **एषः** तव पुरोविद्यमानः **जनः** व्यक्तिः अहमित्यर्थः **रागमयः** अनुरागयुक्तः **कृतः** विहितः।

विशेष—

(१) जिस रूपक में उपमेय के केवल एक अङ्ग पर ही आरोप किया जाता है वह एकाङ्गरूपक कहलाता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण में अङ्गी मुख के दो अङ्गों कपोलों और आँखों का वर्णन किया गया है किन्तु केवल एक ही अङ्ग आखों पर उत्पल का आरोप किया गया है। अतः एकाङ्गरूपक है।

(२) अवयव रूपक में वर्णित सभी अङ्गों पर आरोप किया जाता किया जाता है किन्तु एकाङ्गरूपक में वर्णित सभी अङ्गों में से किसी एक अङ्ग पर ही आरोप किया जाता है।

एकाङ्गरूपकं चैतदेवं द्विप्रभृतीन्यपि।
अङ्गानि रूपयन्त्यत्र योगायौगौ भिदाकरौ ।।७६।।

अन्वय— एतत् एकाङ्गरूपकम्, एवम् द्विप्रभृतीनि अपि अङ्गानि रूपयन्ति अत्र योगायोगौ भिदाकरौ (भवतः)।

शब्दार्थ— एतत् = यह। एकाङ्गरूपकं = एकाङ्गरूपक (है)। एवं = इसी प्रकार। द्विप्रभृतीनि = दो इत्यादि। अपि = भी। अङ्गानि = अङ्गों को। रूपयन्ति = रूपित करते हैं, आरोप करते हैं। अत्र = यहाँ। योगायोगौ = परस्परयुक्तता (सङ्गति) और अयुक्तता (असङ्गति)। भिदाकरौ = भेदक तत्त्व होते हैं।

अनुवाद— यह (उदाहरण) (उपमेयभूत एक अङ्ग में ही उपमानभूत अङ्ग नील-

कमल का आरोप होने के कारण) एकाङ्गरूपक है। इस प्रकार (कवि लोग) दो इत्यादि (दो, तीन इत्यादि) अङ्गों को रूपित करते हैं। यहाँ (इस अङ्गरूपक में (उपमानभूत अङ्गों की) युक्तता (सङ्गति) और अयुक्तता (असङ्गति) भेदक तत्त्व होते हैं।

संस्कृतव्याख्या—एकाङ्गरूपकस्योदाहरणं विश्लेषयन् अत्र युक्तायुक्तरूपकं विवेचयति- **एकाङ्गेति** । **एतत्** इदं पूर्वोक्तं निदर्शनं **एकाङ्गरूपकं** तन्नाम रूपक-भेदः विद्यते। **एवम्** अनेन प्रकारेण **द्विप्रभृतीनि अपि** द्वित्रादीनि अपि **अङ्गानि** अव-यवानि **रूपयन्ति** आरोपयन्ति कवयः इति शेषः । **अत्र** अस्मिन्नङ्गरूपके **योगायोगौ** सङ्गतिरसङ्गतिश्च **भिदाकरौ** भेदकतत्त्वौ विद्येते। अर्थात् अत्र आरोपमाणानामुपमाना-नामङ्गानां परस्परं युक्तत्वायुक्तत्वे इति द्वे अङ्गरूपकस्य भेदकौस्तः । एवं योगरूपकं (युक्तरूपकं) अयोगरूपकं (अयुक्तरूपकं) चेति भेदेन एकाङ्गरूपकं द्विधा।

विशेष—

(१) रूपक में वर्णित अङ्गों में से एक अङ्ग पर ही आरोप होने से एकाङ्गरूपक होता है। यदि एकाधिक अङ्गों पर उपमान का आरोप किया जाय तब भी रूपक अलङ्कार होता है और कवि लोग ऐसा प्रयोग भी करते हैं किन्तु इसका नाम-करण एकाङ्गरूपक के समान रूपित एकाधिक अङ्गों में पारस्परिक सङ्गति या विसङ्गति (विरोध) के कारण पड़ता है। इसी सङ्गति या विसङ्गति के कारण यह एक प्रकार से एकाङ्गरूपक से भिन्न है। योग या अयोग एकाधिक रूपक में ही होते हैं, एकाङ्ग रूपक में सम्भव नहीं हैं।

(२) एकाङ्गरूपक, द्व्यङ्गरूपक त्र्यङ्गरूपक इत्यादि अवयव रूपक के ही भेद हैं।

(३) युक्तरूपक और अयुक्तरूपक द्व्यङ्गरूपक, त्र्यङ्गरूपक इत्यादि के उपभेद मात्र हैं। युक्तरूपक और अयुक्तरूपक का स्वरूप आगे उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(युक्तरूपकनिदर्शनम्)

स्मितपुष्पोज्ज्वलं लोलनेत्रभृङ्गमिदं मुखम् ।
इति पुष्पद्विरेफाणां सङ्गत्या युक्तरूपकम् ।।७७।।

अन्वय— स्मितपुष्पोज्ज्वलं लोलनेत्रभृङ्गं इदं मुखं (शोभते) इति पुष्पद्विरेफाणां सङ्गत्या युक्तरूपकम् (अस्ति)।

शब्दार्थ— स्मितपुष्पोज्ज्वलं = मुस्कानरूपी पुष्प से देदीप्यमान। लोलनेत्र-भृङ्गं = चञ्चल नेत्ररूपी भ्रमरों से युक्त। इदं = यह। मुखं = (तुम्हारा) मुख (शोभा-

यमान है)। इति = इस प्रकार। पुष्पद्विरेफाभ्यां = पुष्प और भ्रमरों से (की)। सङ्गत्या = (परस्पर) सङ्गति (उपयुक्तता) के कारण। युक्तरूपकं = युक्तरूपक (है)।

अनुवाद— मुस्कानरूपी पुष्प से देदीप्यमान और चञ्चल नेत्र रूपी भ्रमरों से युक्त यह (तुम्हारा) मुख (शोभायमान है)। इस प्रकार (उपमेयभूत मुख के अङ्गों मुस्कान और नेत्र पर क्रमशः आरोपित) पुष्प और भ्रमरों की (परस्पर) सङ्गति (उपयुक्तता) के कारण यह युक्तरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— अष्टममं युक्तरूपकं निदर्शयत्यत्र- **स्मितेति**। **स्मितपुष्पोज्ज्वलं** स्मितं लीलापूर्वकमिषद्हसितम् एव पुष्पं तेन उज्ज्वलं देदीप्यमानं, **लोलनेत्रभृङ्गं** लोले चञ्चले नेत्रे नयने एव भृङ्गौ यत्र तादृशम् **इदं** पुरोदृश्यमानं तव **मुखम्** आननं सुशोभते इति शेषः। **इति** एवमत्र **पुष्पद्विरेफाणां** पुष्पाणां द्विरेफाणां भ्रमराणाञ्च **सङ्गत्या** परस्परसम्बन्धेन औचित्याद्वा **युक्तरूपकं** तन्नाम द्व्यङ्गरूपकभेदः अस्ति।

विशेष—

(१) युक्तरूपक एकाधिकाङ्गरूपक में होता है। जिस एकाधिकाङ्गरूपक में आरोप्यमाण वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध औचित्य के अनुसार होता है तो वह युक्तरूपक कहलाता है जैसे 'मुस्कानरूपी पुष्प से देंदीप्यमान और चञ्चलनेत्ररूपी भ्रमरों से युक्त मुख शोभायमान है' में आरोप्यमाण पदार्थों पुष्प और भ्रमर का योग सङ्गत है अतः यहाँ युक्तरूपक द्व्यङ्गरूपक का भेद है।

(अयुक्तरूपकनिदर्शनम्)

इदमार्द्रस्मितज्योत्स्नं स्निग्धनेत्रोत्पलं मुखम् ।
इति ज्योत्स्नोत्पलायोगादयुक्तं नाम रूपकम् ।।७८।।

अन्वय— आर्द्रस्मितज्योत्स्नं स्निग्धनेत्रोत्पलं इदं मुखम् (अस्ति) इति ज्योत्स्नोत्पलायोगात् अयुक्तं नाम रूपकं (विद्यते)।

शब्दार्थ— आर्द्रस्मितज्योत्स्नं = (स्नेह से) सिक्त मुस्कानरूपी चाँदनी। स्निग्धनेत्रोत्पलं = स्निग्ध नेत्रों रूपी कमलों से युक्त। इदं = यह। मुखं = (तुम्हारा) मुख (शोभायमान है)। इति = इस प्रकार यहाँ। ज्योत्स्नोत्पलायोगात् = चाँदनी और कमल का अयोग होने के कारण (योग असङ्गत होने के कारण = परस्पर असङ्गति होने के कारण)। अयुक्तं नाम = अयुक्त नामक। रूपकम् = रूपक है।

अनुवाद— (स्नेह से) स्निग्ध मुस्कान रूपी चाँदनी और स्निग्ध नेत्रों रूपी कमलों से युक्त यह (तुम्हारा) मुख (शोभायमान है)- इस प्रकार यहाँ चाँदनी और

कमलों का अयोग (परस्पर असङ्गति) होने के कारण यह अयुक्त नामक रूपक है।

संस्कृतव्याख्या— नवमम् अयुक्तरूपकं निदर्शयत्यत्र- **इदमिति** । **आर्द्रस्मित-ज्योत्स्नम्** आर्द्रं स्नेहसिक्तं स्मितं लीलापूर्वकं हसितम् एव ज्योत्स्नं चन्द्रिका यत्र तादृशं **स्निग्ध-नेत्रोत्पलं** स्निग्धे स्नेहपूर्णे नेत्रे एव उत्पले कमले यत्र तादृशम् **इदं** पुरोविद्यमानं तव **मुखम्** आननं शोभते इति शेषः । **इति** एवमत्र स्मिते, नेत्रयोश्च क्रमशः आरोप्य-माणयोः **ज्योत्स्नोत्पलायोगात्** ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः उत्पलयोश्च कमलयोश्च अयोगात् अन्योऽन्यपरस्परेण विरोधादसङ्गत्या **अयुक्तं नाम** तन्नामकं रूपकं विद्यते ।

विशेष—

(१) अयुक्तरूपक भी एकाधिकाङ्गरूपक में ही होता है। जिस एकाधिकाङ्गरूपक में आरोप्यमाण वस्तुओं का विरोध के कारण परस्पर असङ्गत सम्बन्ध होता है, वह अयुक्तरूपक कहलाता है। जैसे- 'स्नेहसिक्त मुस्कानरूपी चाँदनी और स्निग्ध नेत्रों रूपी कमलों वाला मुख शोभायमान है' में मुस्कान और नेत्र पर आरोप्यमाण पदार्थों चाँदनी और कमल में परस्पर विरोध होने के कारण इन दोनों का परस्पर संयोग असङ्गत हैं अतः यहाँ अयुक्तरूपक है।

(२) चाँदनी होने पर कमल सङ्कुचित हो जाते हैं- कमल तो दिन में खिलते हैं अतः चाँदनी और कमल का विरोध सर्वविदित है।

(विषमरूपकविवेचनम्)

रूपणादङ्गिनोऽङ्गानां रूपणारूपणाश्रयात् ।
रूपकं विषमं नाम ललितं जायते यथा ।।७९।।

अन्वय— अङ्गिनः रूपणात् अङ्गानां रूपणारूपणाश्रयात् विषमं नाम ललितं रूपकं जायते ।

शब्दार्थ— अङ्गिनः = अङ्गी के, अवयवी के। रूपणात् = रूपण करने से। अङ्गानां = अङ्गों का, अवयवों का। रूपणारूपणाश्रयात् = रूपण करने और अरूपण (रूपण न करने) से। विषमं नाम = विषम नामक। ललितं = सुन्दर। रूपकं = रूपक। जायते = होता है।

अनुवाद— अङ्गी (= मुख्य) (उपमेय) का रूपण करने से (और उसके) अङ्गों (में से किसी) का रूपण करने तथा (किसी का) रूपण न करने से विषम नामक सुन्दर रूपक होता है।

संस्कृतव्याख्या— दशमं विषमरूपकं विवेचयत्यत्र- **रूपणादिति** । **अङ्गिनः** अवयविनः मुख्यवर्ण्यस्य रूपणात् तथा च **अङ्गानां** अङ्गिनः अवयवानां **रूपणारूपणाश्रयात्**

रूपणस्य क्वचिदङ्गस्य रूपणस्य अरूपणस्य च क्वचिदरूपणस्य च आश्रयाद् **विषमं नाम** विषमनामकं **ललितं** चमत्कारेण हृदयाकर्षकं रूपकं **जायते** उत्पद्यते।

विशेष—

(१) जिस रूपक में अङ्गी उपमेय पर आरोप किया जाता है किन्तु उसके अङ्गों में किसी पर तो आरोप किया जाता है और किसी पर नहीं किया जाता, ऐसा रूपक विषमरूपक कहलाता है।

(२) सकलरूपक में अवयवी (अङ्गी) और अवयव (अङ्ग) दोनों पर उपमान का आरोप किया जाता है किन्तु विषमरूपक में अङ्गी पर तो आरोप किया जाता है किन्तु उसके अवयवों में से किसी पर आरोप किया जाता है और किसी पर नहीं किया जाता है।

(विषमरूपकनिदर्शनम्)

मदरक्तकपोलेन मन्मथस्त्वन्मुखेन्दुना।
नर्तितभ्रूलतेनालं मर्दितुं भुवनत्रयम्।।८०।।

अन्वय— मदरक्तकपोलेन नर्तितभ्रूलतेन त्वन्मुखेन्दुना मन्मथः भुवनत्रयं मर्दितुम् अलम्।

शब्दार्थ— मदरक्तकपोलेन = मदपान से लाल गालों वाले। नर्तितभ्रूलतेन = नाच रही भौंहों रूपी लताओं वाले। त्वन्मुखेन्दुना = तुम्हारे मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) के द्वारा। मन्मथः = कामदेव। भुवनत्रयं = तीनों लोकों को। मर्दितुं = मसल देने (पराजित कर देने) के लिए। अलं = समर्थ है।

अनुवाद— मदपान से लाल गालों वाले और नाच रही भौंहों रूपी लताओं वाले तुम्हारे मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) के द्वारा कामदेव तीनों लोकों को मसल देने (पराजित कर देने) के लिए समर्थ है।

संस्कृतव्याख्या— विषमरूपकं निदर्शयत्यत्र- **मदेति**। **मदरक्तकपोलेन** मदेन मदपानेन रक्तौ पाटलौ कपौलौ यस्य तादृशेन **नर्तितभ्रूलतेन** नर्तिते चालिते भ्रुवौ एव लते यत्र तेन **त्वन्मुखेन्दुना** तव मुखम् एव इन्दुः चन्द्रः तेन मुखचन्द्रेण **मन्मथः** कामदेवः **भुवनत्रयं** लोकत्रयं **मर्दितुं** जेतुम् **अलं** समर्थः जातः। अत्राङ्गिनः मुखस्य चन्द्रत्वेन रूपणम् अङ्गेषु च भ्रुवोः लतात्वेन रूपणं कपोलयोश्च अरूपणमित्यत्र विषमरूपकम्।

विशेष—

(१) प्रस्तुत श्लोक में अङ्गी मुख पर चन्द्रमा का आरोप किया गया है और उसके अङ्ग भौंहों पर लता का रूपण हुआ है तथा अङ्ग कपोल का रूपण नहीं हुआ है, अतः यहाँ विषमरूपक है।

(सविशेषणरूपकनिदर्शनम्)

हरिपादः शिरोलग्नजह्नुकन्याजलाशुंकः ।
जयत्यसुरनिःशङ्कसुरानन्दोत्सवध्वजः ।।८१।।

अन्वय— शिरोलग्नजह्नुकन्याजलाशुंकः असुरनिःशङ्कसुरानन्दोत्सवध्वजः हरिपादः जयति।

शब्दार्थ— शिरोलग्नजह्नुकन्याजलाशुंकः = अग्रभाग (अङ्गुली-स्थान, शिर) में लगी हुई है गङ्गाजल रूपी वस्त्र जिसके ऐसा, अग्रभाग में लगे हुए गङ्गाजल रूपी वस्त्र वाला। असुरनिःशङ्कसुरानन्दोत्सवध्वजः = असुरों से निःशङ्क (निर्भय) हुए देवताओं के आनन्दोत्सव (हर्षोत्सव) के ध्वजदण्ड रूपी। हरिपादः = विष्णु का चरण। जयति = विजयी होता है, जीतता है, पराजित करता है, सर्वोत्कृष्ट है।

अनुवाद— अग्रभाग (अङ्गुली-स्थान) पर लगे हुए गङ्गाजलरूपी वस्त्र वाला तथा असुरों से निर्भय देवताओं के आनन्दोत्सव का पताकारूपी (वामनरूप धारी) विष्णु का चरण सर्वोत्कृष्ट है।

संस्कृतव्याख्या— एकादशं सविशेषणरूपकं निदर्शयत्यत्र- **हरिपाद इति। शिरोलग्नजह्नुकन्याजलांशुकः** शिरसि अग्रभागे अङ्गुलिस्थाने इत्यर्थः लग्ना संसक्ता या जह्नुकन्या जह्नुतनया तस्याः जलमेव शुभ्रम् अंशुकं वस्त्रं यस्य तादृशः, **असुरनिःशङ्क-सुरानन्दोत्सवध्वजः** असुरेभ्यः विजितेभ्यो बलिप्रमुखेभ्यो दानवेभ्यः **निःशङ्काः** निर्भयाः ये सुराः देवाः तेषां आनन्दोत्सवस्य ध्वजः केतुरूपः **हरिपादः** हरेः वामनरूपधारिणः विष्णोः ऊर्ध्वमुत्क्षिप्तः चरणः जयति।

(सविशेषणरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

विशेषणसमग्रस्य रूपं केतोर्यदीदृशम् ।
पादे तदर्पणादेतत्सविशेषणरूपकम् ।।८२।।

अन्वय— विशेषणसमग्रस्य केतोः ईदृशं रूपं पादे अर्पणात् तत् विशेषणरूपकम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— विशेषणसमग्रस्य = विशेषणों से युक्त। केतोः = पताका के।

ईदृशं = इस प्रकार । रूपं = रूप को । पादे = चरण पर । अर्पणात् = अर्पित करने के कारण, आरोप करने के कारण । तत् = वह । सविशेषणरूपकं = सविशेषण रूपक (है) ।

अनुवाद— विशेषणों से सम्पन्न पताका के ऐसे रूप को चरण पर अर्पित (आरोपित) करने के कारण यह सविशेषण रूपक है ।

संस्कृतव्याख्या— सविशेषणरूपकस्योदाहरणं विश्लेषयत्यत्र- **विशेषणेति**। **विशेषणसमग्रस्य** शिरोलग्नेत्यादिविशेषणेन समग्रस्य सम्पन्नस्य **केतोः** पताकायाः ईदृशं एवंप्रकारकं **रूपं** सपताकं ध्वजरूपं **पादे** वामनरूपधारिणः विष्णोः चरणे **अर्पणात्** समर्पणात् आरोपादित्यर्थः **तत् सविशेषणरूपकं** तन्नामरूपकं विद्यते इति शेषः। उपमेयभूते वामनचरणे उपमानभूतस्य उत्सवध्वजस्य शिरोलग्नेत्यादिविशेषणपद-सम्पन्नस्यात्रारोपः इति सविशेषणरूपकमिति भावः ।

विशेष—

(१) विशेषणसहित उपमेय पर विशेषणसहित उपमान का आरोप होने पर सविशेषण-रूपक होता है ।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में वाभनरूपधारी विष्णु के द्युलोक का भेदन करके ऊपर उठे चरण पर ध्वज का आरोप किया गया है । यहाँ उपमेय हरिपाद की विशेषता है, ऊपर उठे चरण के अग्रभाग पर लगा हुआ गङ्गा का जल और उपमान केतु की विशेषता है, उसके दण्ड पर के सिर पर लगा हुआ वस्त्र । इस प्रकार उस विशेषण युक्त उपमेय पर सविशेषण उपमान का आरोप होने के कारण यहाँ सविशेषण रूपक है ।

(३) इस रूपक में भी सकल रूपक के समान उपमेय अङ्गी और उसके अङ्गों पर अङ्गी और अङ्ग उपमानों का आरोप होता है किन्तु सकलरूपक में अङ्गी और अङ्गों के आरोप द्वारा रूपक में समग्रता लायी जाती है जबकि सविशेषण रूपक में विशेषणों की समग्रता को दिखलाया जाता है, यहीं दोनों में भेद है ।

(विरुद्धरूपकनिदर्शनम्)

न मीलयति[1] पद्मानि न नभोऽवगाहते ।
त्वन्मुखेन्दुर्ममासूनां हरणाय व्यवस्यति[2] ।।८३।।

---

(१) निमीलयति ।

(२) हरणाय कल्पते ।

अन्वय— त्वमुखेन्दुः न पद्मानि मीलयति, न नभः अवगाहते, मम असूनां हरणाय व्यवस्यति।

शब्दार्थ— त्वन्मुखेन्दुः = तुम्हारा मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा)। न = न (तो)। पद्मानि = कमलों को। मीलयति = सङ्कुचित करता है, मुरझित करता है। न = न (तो)। नभः = आकाश में। अवगाहते = अवगाहन करता है, विचरण करता है। मम = मेरे। असूनां = प्राणों को। हरणाय = हरण करने के लिए, लेने के लिए। व्यवस्यति = चेष्टा कर रहा है, प्रयत्न कर रहा है, तुला हुआ है।

अनुवाद— तुम्हारा मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) न (तो) कमलों को सङ्कुचित करता है (और) न (तो) आकाश में अवगाहन (विचरण) करता है (किन्तु) मेरे प्राणों को हरण करने के लिए प्रयत्न कर रहा है।

संस्कृतव्याख्या— द्वादशं विरुद्धरूपकं निदर्शयत्यत्र- **नेति**। **त्वन्मुखेन्दुः** तव सुन्दर्याः मुखचन्द्रः **न** तु **पद्मानि** कमलानि **मीलयति** सङ्कोचयति न च **नभः** आकाशम् **अवगाहते** विचरति परञ्च **मम असूनां** प्राणानां **हरणाय व्यवस्यति** प्रयतते। कमलसङ्कोचनमाकाशविचरणमिति स्वकीयकर्त्तव्यं न सम्पादयन् अकर्त्तव्यं मत्प्राणहरणाय प्रयत्नं करोतीति भावः। वियोगावस्थायां मानिनीप्रियतमां प्रति अधिककष्टप्रदानेन प्रियस्योक्तिरियम्।

(विरुद्धरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

अक्रिया चन्द्रकार्याणामन्यकार्यस्य च क्रिया।
अत्र सन्दर्श्यते यस्माद्विरुद्धं नाम रूपकम् ।।८४।।

अन्वय— अत्र चन्द्रकार्याणाम् अक्रिया अन्यकार्यस्य च क्रिया सन्दर्श्यते यस्मात् विरुद्धं नाम रूपकम्।

शब्दार्थ— अत्र = इस (उदाहरण) में। चन्द्रकार्याणां = चन्द्रमा के कार्यों को। अक्रिया = न करना। अन्यकार्यस्य च = और (उस चन्द्रमा के कार्यों से) अन्य कार्य का करना। सन्दर्श्यते = दिखलाया गया है। यस्मात् = अतः। विरुद्धं नाम = विरुद्ध नामक। रूपकं = रूपक (है)।

अनुवाद— इस उदाहरण में (चन्द्रमा से आरोपित मुख द्वारा) चन्द्रमा के (कमलसङ्कोचन, आकाश में विचरण) कार्य को न करना और अन्य (यमराज द्वारा प्राणहरण) कार्य का करना दिखलाया गया है, अतः विरुद्ध नामक रूपक है।

संस्कृतव्याख्या— विरुद्धरूपकस्योदाहरणं विश्लेषयत्यत्र- **अक्रियेति**। **अत्र** उदाहरणेऽस्मिन् चन्द्रारोपितेन मुखेन **चन्द्रकार्याणां** कमलसङ्कोचनम् आकाशविच-

रणम् आदिकार्याणाम् **अक्रिया** असम्पादनम् **अन्यकार्यस्य** चन्द्रभिन्नस्य प्राणहरण-रूपस्य यमराजस्य कार्यस्य **क्रिया** सम्पादनं **सन्दर्श्यते** वर्ण्यते **यस्मात्** अतः **विरुद्धं नाम** तन्नाम **रूपकं** विद्यते। उपमानरूपेण चन्द्रेण रोपितस्य उपमेयस्य मुखस्य चन्द्रो-चितं कार्यकरणमेवोचितं चन्द्रभिन्नकार्यस्य सम्पादनं विरुद्धमिति विरुद्धरूपकम्।

विशेष—

(१) जिस रूपक में उपमेय पर आरोपित उपमान में उपमान के स्वाभाविक धर्म का निषेध करके उससे भिन्न स्वभावविरुद्ध धर्म का प्रतिपादन होता है, वह विरुद्ध रूपक कहलाता है।

(२) उदाहारण में उपमेय मुख पर उपमान चन्द्रमा का आरोप किया गया है। उपमान चन्द्र का कमल को सङ्कुचित करना, आकाश में विचरण करना इत्यादि स्वभाविक धर्म है। इससे अन्य कार्य प्राण का हरण करना चन्द्रमा के कार्य के विरुद्ध है। इस प्रकार उपमेय मुख का भी कार्य उपमान चन्द्र के अनुकूल होना चाहिए किन्तु यहाँ मुख के द्वारा चन्द्रमा के स्वभाव से विरुद्ध प्राणहरण कार्य का वर्णन हुआ है अतः यहाँ विरुद्ध रूपक है।

(हेतुरूपकनिदर्शनम्)

गाम्भीर्येण समुद्रोऽसि गौरवेणासि पर्वतः ।
कामदत्त्वाच्च लोकानामसि त्वं कल्पपादपः ।।८५।।

अन्वय— त्वं गाम्भीर्येण समुद्रः असि, गौरवेण पर्वतः असि, लोकानां कामदत्वात् कल्पपादपः असि।

शब्दार्थ— त्वं = तुम। गाम्भीर्येण = गम्भीरता के कारण। समुद्रः असि = समुद्र हो। गौरवेण = गौरव (गरिमा) के कारण। पर्वतः असि = पर्वत हो। लोकानां च = और प्रजाओं की, लोगों की। कामदत्वात् = कामना पूरी करने के कारण। कल्पपादपः = कल्पवृक्ष हो।

अनुवाद— (हे राजन्) तुम गम्भीरता के कारण समुद्र हो, गौरव (गरिमा) के कारण पर्वत हो और लोगों (प्रजाओं) की कामना (अभिलाषा) पूरी करने के कारण कल्पवृक्ष हो।

संस्कृतव्याख्या— त्रयोदशं हेतुरूपकं निदर्शयत्यत्र- **गाम्भीर्येणेति**। हे राजन्! त्वं **गाम्भीर्येण** अगाधतया **समुद्रःअसि** सागरः असि; **गौरवेण** सारवत्तया **पर्वतः असि** गिरिः असि, **लोकानां च** जनानां च **कामदत्वात्** अभीष्टदानत्वात् **कल्पपादपः** कल्पवृक्षः असि।

(हेतुरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

गाम्भीर्यप्रमुखैरत्र हेतुभिः सागरो गिरिः ।
कल्पद्रुमश्च क्रियते तदिदं हेतुरूपकम् ।।८६।।

अन्वय— अत्र गाम्भीर्यप्रमुखैः हेतुभिः सागरः गिरिः कल्पद्रुमः च क्रियते तत् इदं हेतुरूपकम् ।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में। गाम्भीर्यप्रमुखैः = गाम्भीर्य इत्यादि। हेतुभिः = हेतुओं (कारणों) द्वारा। सागरः = समुद्र। गिरिः = पर्वत। कल्पद्रुमः च = और कल्पद्रुम। क्रियते = (रूपित) किया गया है। तत् = इसलिए। इदं = यह। हेतुरूपकं = हेतुरूपक है।

अनुवाद— यहाँ (उपर्युक्त उदाहरण में) गाम्भीर्य (गम्भीरता) इत्यादि हेतुओं (कारणों) द्वारा (किसी प्रस्तुत राजा को) समुद्र, पर्वत और कल्पद्रुम (के रूप में रूपित) किया गया है, इसलिए (हेतुओं द्वारा रूपित करने के कारण) यह हेतु-रूपक है।

संस्कृतव्याख्या— हेतुरूपकस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **गाम्भीर्येणेति** । **अत्र** पूर्वोक्ते निदर्शने **गाम्भीर्यप्रमुखैः** गम्भीरतादिभिः **हेतुभिः** कारणैः **सागरः** समुद्रः **गिरिः** पर्वतः **कल्पद्रुमः च** कल्पवृक्षः च **क्रियते** आरोप्यते **तत्** तस्मात् **इदम्** एतत् **हेतुरूपकं** तन्नाम रूपकं विद्यते। अर्वाचीनानामाचार्याणां मतेनात्र रूपकयोगविशिष्टः उल्लेखालङ्कारः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस रूपक में उपमेय और उपमान के समान धर्म को आरोप के हेतु के रूप में बतलाया जाता है, वह हेतुरूपक होता है।

(२) उपर्युक्त उदाहरण में राजा पर समुद्र, पर्वत और कल्पवृक्ष का आरोप करते हुए आरोप के हेतु गम्भीरता, गौरव और प्रजाओं की अभिलाषा को पूर्ण करने को बतलाया गया है अतः यहाँ हेतुरूपक है।

(३) परवर्ती आचार्यों ने इसे रूपक-योगविशिष्ट उल्लेखालङ्कार माना है।

(शिलष्टरूपकनिदर्शनम्)

राजहंसोपभोगार्हं[१] भ्रमरप्रार्थ्यसौरभम् ।
सखि वक्त्राम्बुजं तवेति[२] शिलष्टरूपकम् ।।८७।।

---

(१) भोगार्थं ।　　(२) तदेतद् ।

अन्वय— सखि, तव वक्त्राम्बुजं राजहंसोपभोगार्थं भ्रमरप्रार्थ्यसौरभम् (अस्ति) इति श्लिष्टरूपकम्।

शब्दार्थ— सखि = हे सखि। तव = तुम्हारा। वक्त्राम्बुजं = मुखकमल। राजहंसोपभोगार्थं = राजहंसों (मुख के पक्ष में- श्रेष्ठ राजाओं और कमल के पक्ष में- राजहंस नामक पक्षी विशेषों) के उपभोग (मुखपक्ष में चुम्बन और कमलपक्ष में भक्षण) के योग्य। भ्रमरप्रार्थ्यसौरभं = भ्रमरों (मुखपक्ष में- कामुक लोगों और कमलपक्ष में- भौरों) द्वारा अभिलषित सुगन्ध वाला (है)। इति = इस प्रकार। श्लिष्टरूपकम् = श्लिष्टरूपक (है)।

अनुवाद— हे सखि ! तुम्हारा मुखकमल (मुखरूपी कमल) राजहंसों (मुख पक्ष में- श्रेष्ठ राजाओं और कमलपक्ष में- राजहंस नामक पक्षी विशेषों) के उपयोग (मुखपक्ष में- चुम्बन और कमलपक्ष में- भक्षण) के योग्य तथा भ्रमरों (मुखपक्ष में- कामुक लोगों और कमल पक्ष में- भौरों) द्वारा अभिलषित सुगन्ध वाला है, इस प्रकार (यह) श्लिष्टरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्दशं श्लिष्टरूपकं निदर्शयत्यत्र- **राजहंसेति**। **सखि** हे समवयस्ये **तव** सख्याः **मुखाम्बुजं** मुखकमलं **राजहंसोपभोगार्हं** राजहंसैः मुखपक्षे श्रेष्ठनृपैः कमलपक्षे राजहंसनामकैः पक्षिविशेषैः उपभोगार्हम् उपभोगयोग्यं मुखपक्षे चुम्बनयोग्यं कमलपक्षे भक्षणयोग्यं तथा च **भ्रमरप्रार्थ्यसौरभं** भ्रमरैः मुखपक्षे कामुकजनैः कमलपक्षे मधुकरैः प्रार्थ्यम् अभिलषितं सौरभं सुगन्धं यस्य तादृशं विद्यते, **इति** एवं विधं **श्लिष्टरूपकं** तन्नामरूपकमस्ति। राजहंसोपभोगार्हत्वादौ साधारणधर्मस्य श्लेषरूपेण कथनादत्र श्लिष्टरूपकम्।

विशेष—

(१) जिस रूपक में उपमेय और उपमान के साधारण धर्म को श्लिष्ट पदों द्वारा अभिहित किया जाता है वह श्लिष्टरूपक कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में मुख पर कमल का आरोप किया गया है। इस रूपक वाले पद के लिए ऐसे विशेषण का प्रयोग किया गया है जिसका सम्बन्ध उपमेय मुख और उपमान कमल- दोनों पर घटित होता है। मुख राजारूपी हंसों के उपभोग (चुम्बन) के योग्य है तो कमल राजहंस नामक पक्षी विशेषों के उपभोग (भक्षण) के योग्य है। यहाँ 'राजन्' शब्द दो अर्थों के अभिधायक शब्दों के श्लेष (शब्दश्लेष) से युक्त है। एक राजन् शब्द (राजा) पर हंस का आरोप हुआ है और जातिविशेष का सूचक राजन् शब्द हंस का विशेषण है।

(३) दूसरे विशेषण 'भ्रमरप्रार्थ्यसौरभम्' का अर्थ भी मुख और कमल दोनों पर घटित

होता है। मुख भ्रमरों (कामी लोगों) के लिए अभीष्ट सुगन्ध से युक्त है तो कमल भी भ्रमरों (भौंरों) के लिए अभीष्ट सुगन्ध से युक्त है। यहाँ अर्थश्लेष है।

(४) शब्दश्लेष और अर्थश्लेष दोनों प्रकार के श्लेष से युक्त होने के कारण इस उदाहरण में श्लिष्टरूपक है। वस्तुतः इसमें रूपक और श्लेष अलङ्कारों का संकर है।

(उपमारूपकव्यतिरेकरूपकयोः भेदकथनम्)

इष्टं साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनाद् गौणमुख्ययोः ।
उपमाव्यतिरेकाख्यं रूपकद्वितयं यथा ।।८८।।

अन्वय— गौणमुख्ययोः साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनात् उपमाव्यतिरेकाख्यं रूपकद्वितयम् इष्टम्।

शब्दार्थ— गौणमुख्ययोः = गौण (अप्रस्तुत, अप्रधान) और मुख्य (प्रस्तुत, प्रधान) को। साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनात् = सादृश्य (समानता) और वैधर्म्य (असादृश्य, विषमता) के कथन के कारण। उपमाव्यतिरेकाख्यं = उपमा और व्यतिरेक नामक। रूपकद्वितयं = दो प्रकार के रूपक। इष्टं = अभीष्ट होते हैं, होते हैं।

अनुवाद— अप्रस्तुत (आरोप्यमाण) और प्रस्तुत (प्रधान) के (परस्पर) साधर्म्य (समानता) और वैधर्म्य (विषमता) के कथन के कारण (क्रमशः) उपमा और व्यतिरेक नामक (समानता के कथन के कारण उपमा तथा विषमता के कथन के कारण व्यतिरेक) दो प्रकार के रूपक (होते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— उपमारूपकव्यतिरेकरूपकयोः भेदं प्रतिपादयत्यत्र- **इष्टमिति**। **गौणमुख्ययोः** अप्रधानप्रधानयोः अप्रस्तुतप्रस्तुतयोः वा **साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनात्** साधर्म्यस्य समानतायाः वैधर्म्यस्य असादृश्यस्य च दर्शनात् कथनात् **उपमाव्यतिरेकाख्यम्** क्रमशः उपमा नाम व्यतिरेकाख्यं च व्यतिरेकं नाम च **रूपकद्वितयं** रूपकस्य भेदद्वयम् **इष्टम्** अभीष्टम्। आरोप्यमाणस्य अप्रस्तुतस्य चन्द्रादेः आरोपितविषयस्य प्रस्तुतस्य मुखादेश्च परस्परं सादृश्यकथनाद् उपमारूपकम् असादृश्यकथनाच्च व्यतिरेकरूपकमिति रूपकभेदद्वयं भवति। **यथेति** निदर्शनार्थमुपक्रमते।

विशेष—

(१) **उपमारूपक**– जिस रूपक में अप्रस्तुत उपमान और प्रस्तुत उपमेय में परस्पर समानता का कथन होता है वह उपमानरूपक कहलाता है।

(२) **व्यतिरेकरूपक**– जिस रूपक में उपमान और उपमेय में परस्पर असमानता का कथन होता है, वह व्यतिरेकरूपक कहलाता है।

(उपमारूपकनिदर्शनम्)

अयमालोहितच्छायो मदेन मुखचन्द्रमाः ।
सन्नद्धोदयरागस्य चन्द्रस्य[1] प्रतिगर्जति ।।८९।।

अन्वय— मदेन आलोहितच्छायः अयं मुखचन्द्रमाः सन्नद्धोदयरागस्य चन्द्रस्य प्रतिगर्जति ।

शब्दार्थ— मदेन = मद (उन्माद) के कारण । आलोहितच्छायः = कुछ-कुछ रक्तिम (हल्की लालिमायुक्त) । अयं = यह । मुखचन्द्रमाः = मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) । सन्नद्धोदयरागस्य = विद्यमान (सन्नद्ध) है उदय कालीन लालिमा जिसकी ऐसे, विद्यमान उदयकालीन लालिमा वाले । चन्द्रस्य = चन्द्रमा के प्रति । प्रतिगर्जति = प्रतिगर्जना कर रहा है, होड़ लगा रहा है, स्पर्धा कर रहा है ।

अनुवाद— (मद्यपान से) मद के कारण कुछ-कुछ रक्तिम (हल्की लालिमायुक्त) यह (तुम्हारा) मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) विद्यमान उदयकालीन लालिमा वाले चन्द्रमा के प्रति स्पर्धा कर रहा है (होड़ लगा रहा है) ।

संस्कृतव्याख्या— पञ्चदशम् उपमारूपकं निदर्शयत्यत्र- **अयमिति** । **मदेन** मद्यपान-जनितेनोन्मादेन **आलोहितच्छायः** आलोहिता ईषद्रक्ता छाया कान्तिः यस्य तादृशः **अयम्** एषः तव **मुखचन्द्रमाः** मुखचन्द्रः **सन्नद्धोदयरागस्य** सन्नद्धः विद्यमानः उदयरागः उदयकालिकरक्तिमा यस्य तादृशस्य चन्द्रस्य **प्रतिगर्जति** प्रतिस्पर्धते । चन्द्रेण साम्यं क्रियते इति भावः । अत्रारोप्यमाणस्य अप्रस्तुतस्योपमानस्य चन्द्रस्य तदभिन्नतया रूपितस्य प्रस्तुतस्योपमेयस्य मुखस्य परस्परम् औपम्यसूचकप्रतिगर्जनरूपसाम्यकथ-नाद् उपमारूपकम् ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में मुख पर चन्द्रमा का आरोप हुआ है । आरोपित होने के कारण यह चन्द्रमा गौण है । मुख्य अप्रस्तुत चन्द्रमा और आरोपित प्रस्तुत मुखचन्द्र का 'प्रतिगर्जन' क्रिया के द्वारा सादृश्य कथन होने के कारण यहाँ उपमारूपक है ।

(व्यतिरेकरूपकनिदर्शनम्)

चन्द्रमा पीयते देवैर्मया त्वन्मुखचन्द्रमाः ।
असमग्रो ह्यसौ शश्वदयमापूर्णमण्डलः ।।९०।।

---

(१) मुखस्य ।

अन्वय— देवैः चन्द्रमाः पीयते मया त्वन्मुखचन्द्रमाः (पीयते)। असौ हि असमग्रः (परञ्च) अयं शश्वत् आपूर्णमण्डलः (राजते)।

शब्दार्थ— देवैः = देवताओं द्वारा। चन्द्रमाः = चन्द्रमा। पीयते = पान किया जाता है। मया = मेरे द्वारा। त्वन्मुखचन्द्रमाः = तुम्हारा मुखचन्द्र (पान किया जाता है)। असौ = यह (चन्द्रमा)। हि = निश्चित रूप से। असमग्रः = अपूर्ण, अधूरा। अयम् = यह (मुखचन्द्र)। शश्वत् = निरन्तर, नित्य। आपूर्णमण्डलः = परिपूर्णमण्डल वाला (रहता है)।

अनुवाद— देवताओं के द्वारा चन्द्रमा का पान किया जाता है और मेरे द्वारा तुम्हारे मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) का (पान किया जाता है)। वह चन्द्रमा निश्चित रूप से (देवताओं द्वारा पान किया जाता हुआ) अपूर्ण (मण्डल वाला) (हो जाता है, किन्तु) यह (मुखचन्द्र तो) निरन्तर परिपूर्ण मण्डल वाला (अथवा सम्पूर्ण और कान्तिमय) रहता है।

संस्कृतव्याख्या— षोडशं व्यतिरेकरूपकं निदर्शयत्यत्र- **चन्द्रमा इति**। **देवैः** देवताभिः **चन्द्रमाः** चन्द्रः **पीयते**। **मया** च **त्वन्मुखचन्द्रमाः** तव मुखचन्द्रः पीयते निषेव्यते। असौ हि सः चन्द्रः निश्चितरूपेण देवैः पीयमानः **असमग्रः** अपूर्णः जायते, क्रमेण हीयते इत्यर्थः परञ्च **अयं** तव मुखचन्द्रः **शश्वत्** निरन्तरम् **आपूर्णमण्डलः** सम्पूर्णमण्डलः सम्पूर्णरूपेण कान्तिमान् वा, जायते इति शेषः। अत्रारोप्यमाणस्य अप्रस्तुतस्य चन्द्रस्य आरोपितस्य प्रस्तुतस्य मुखस्य परस्परं वैधर्म्यकथानाद् व्यतिरेकरूपकम्।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में प्रस्तुत आरोप्यमाण चन्द्रमा और आरोपित प्रस्तुत मुखचन्द्र के परस्पर वैधर्म्य का कथन होने के कारण व्यतिरेकरूपक है। चन्द्रमा का क्रमशः क्षीण होना और मुख का निरन्तर सम्पूर्ण कान्ति वाला बने रहना दोनों का वैधर्म्य (असमानता) है। वस्तुतः यहाँ रूपक से उपकृत व्यतिरेक अलङ्कार है।

(आक्षेपरूपकनिदर्शनम्)

मुखचन्द्रस्य चन्द्रत्वमित्थमन्योपतापिनः ।
न ते सुन्दरि संवादीत्येतदाक्षेपरूपकम् ।।९१।।

अन्वय— सुन्दरि, इत्थम् ते अन्योपतादिनः मुखचन्द्रस्य चन्द्रत्वं न संवादि इति एतत् आक्षेपरूपकम्।

शब्दार्थ— सुन्दरि = हे सुन्दरि। ते = तुम्हारे। इत्थं = इस प्रकार। अन्योप-

तापिनः = दूसरे को सन्तप्त करने वाले। मुखचन्द्रस्य = मुखरूपी चन्द्रमा का। चन्द्रत्वं = चन्द्रमा का भाव, चन्द्रत्व। न संवादि = अनुगुण नहीं है, यथार्थ नहीं है। इति = इस प्रकार। एतत् = यह। आक्षेपरूपकं = आक्षेपरूपक है।

अनुवाद— हे सुन्दरी, इस प्रकार दूसरे को (मुझे) सन्तप्त करने वाले तुम्हारे मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा) की चन्द्रता (चन्द्रमा का गुण) यथार्थ नहीं है, इस प्रकार (यहाँ मुख पर पहले चन्द्रमा का आरोप पुनः उसकी चन्द्रता पर आक्षेप होने के कारण) यह आक्षेपरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— सप्तदशम् आक्षेपरूपकं निदर्शयत्यत्र- **मुखेति**। **सुन्दरि** हे मुग्धे, **इत्थम्** अनेन प्रकारेण **अन्योपतापिनः** अन्यस्य त्वद्विरहकातरस्य जनस्य मम उपतापिनः सन्तापकस्य **मुखचन्द्रस्य** तव मुखचन्द्रमसः **चन्द्रत्वं** चन्द्रगुणत्वं **न संवादि** न यथार्थम् **इति** एवं प्रकारेण **एतत्** उदाहरणे प्रस्तुतम् **आक्षेपरूपकं** तन्नाम रूपकं विद्यते। अत्र प्रथमं मुखे चन्दस्यारोपः तदनु तस्य मुखचन्द्रस्य चन्द्रत्वप्रतिषेधरूपः आक्षेपः इति आक्षेपरूपकम्। आक्षेपः प्रतिषेधोक्तिः तदुपादानाद् आक्षेपरूपकम्। सादृश्यप्रतीतेरभावादत्र व्यतिरेकः प्रस्तुतस्य निषेधायोगाद् अपह्नुतिः न स्तः।

विशेष—

(१) जिस रूपक में आरोपित उपमान के स्वरूप पर आक्षेप किया जाता है वह आक्षेपरूपक कहलाता है। प्रस्तुत उदाहरण में 'दूसरे को सन्तप्त करने वाले मुखचन्द्र का चन्द्रत्व मेल नहीं खाता क्योंकि चन्द्रमा तो आह्लादकारी होता है। जब तुम्हारा मुख भी चन्द्रमा है तो उसे आह्लादकारी होना चाहिए किन्तु वह सन्तापजनक है। इस प्रकार मुख पर चन्द्रगा का आरोप करके उसके स्वरूप पर आक्षेप किया गया है अतः यह आक्षेपरूपक है।

(२) सादृश्य की प्रतीति न होने के कारण यहाँ व्यतिरेकालङ्कार और प्रस्तुत का निषेध न होने के कारण अपह्नुति अलङ्कार नहीं है।

(समाधानरूपकनिदर्शनम्)

मुखेन्दुरपि ते चण्डि मां निर्दहति निर्दयम्।
भाग्यदोषान्ममैवेति तत्समाधानरूपकम् ।।९२।।

अन्वय— चण्डि, मम भाग्यदोषात् ते मुखेन्दुः अपि मां निर्दयं निर्दहति इति तत् समाधानरूपकम्।

शब्दार्थ— चण्डि = हे मानिनि। मम = मेरे। भाग्यदोषात् = भाग्य के दोष के कारण। ते = तुम्हारा। मुखेन्दुः अपिः = मुखरूपी चन्द्रमा भी। मां = मुझको

निर्दयं = निर्दयतापूर्वक, कठोरतापूर्वक। निर्दहति = जला रहा है, सन्तप्त कर रहा है। इति = इस प्रकार। तत् = वह। समाधानरूपकं = समाधानरूपक है।

अनुवाद— हे मानिनि ! मेरे भाग्य के दोष के कारण तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा भी मुझे निर्दयतापूर्वक सन्तप्त कर रहा है; इस प्रकार (भाग्य के दोष के कारणरूप के कथन होने से) यह समाधान रूपक है।

संस्तृतव्याख्या— अष्टादशं समाधानरूपकं निदर्शयत्यत्र- **मुखेन्दुरिति**। **चण्डि** हे मानिनि, **मम भाग्यदोषात्** ममाभाग्यात् **ते** तव **मुखेन्दुः** मुखचन्द्रः अपि **मां निर्दयम्** अकरुणत्वेन **निर्दहति** सन्तापयति **इति** अनेन प्रकारेणात्र समाधान कथनेन **तत् समाधानरूपकं** तन्नाम रूपकं विद्यते। चन्द्रस्य प्रीतिकरत्वाद् तदारोपितस्य मुखस्यापि प्रीतिकरत्वं युज्यते परञ्चात्र मुखस्य दाहकारित्वं ममैव भाग्यदोषाद् विद्यत इति समाधानम् अत एव समाधानरूपकम्।

विशेष—

(१) जिस रूपक में आरोपित उपमान के किसी दोष से प्राप्त आक्षेप का समाधान कहा जाय तो वह समाधानरूपक कहलाता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण में मुख पर आरोपित चन्द्रमा में निर्दयतापूर्वक दहन के दोष का समाधान भाग्यदोष को बतलाया गया है अतः यहाँ समाधानरूपक है।

(रूपकरूपकविवेचनम्)

मुखपङ्कजरङ्गेऽस्मिन् भ्रूलतानर्तकी तव।
लीलानृत्यं करोतीति रम्यं रूपकरूपकम् ।।९३।।

अन्वय— तव अस्मिन् मुखपङ्कजरङ्गे भ्रूलतानर्तकी लीलानृत्यं करोति इति रम्यं रूपकरूपकम् (अस्ति)।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारे। अस्मिन् = इस। मुखपङ्कजरङ्गे = मुख-कमलरूपी रङ्गमञ्च पर। भ्रूलतानर्तकी = भ्रूलतारूपी नर्तकी। लीलानृत्यं = लीलाप्रधान (शृङ्गारपूर्ण) नृत्य को। करोति = कर रही है। इति = इस प्रकार। रम्यं = रमणीय, मनोहारी। रूपकरूपकं = रूपकरूपक (है)।

अनुवाद— तुम्हारे इस मुखकमलरूपी रङ्गमञ्च पर भ्रूलतारूपी नर्तकी लीलाप्रधान (शृङ्गारपूर्ण) नृत्य को कर रही है— इस प्रकार (दो बार आरोप-व्यापार होने के कारण यह) रमणीय रूपकरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— एकोनविंशं रूपकरूपकं निदर्शयत्यत्र- **मुखेति**। **तव सुन्दर्याः अस्मिन्** पुरोदृश्यमाने **मुखपङ्कजरङ्गे** मुखमेव पङ्कजं कमलं तदेव रङ्गः रङ्गमञ्चः तत्र

भ्रूलतानर्तकी तव भ्रूः एव लता सा एव नर्तकी **लीलानृत्यं** लीलाप्रधानं शृङ्गारपूर्णं नृत्यं नर्तनं **करोति** सम्पादयति **इति** अनेन प्रकारेण रूपितस्य पुनरपि रूपणाद् **रम्यं** रमणीयं **रूपकरूपकं** तन्नाम रूपकं विद्यते। अत्र प्रथमं मुखे कमलस्यारोपः पुनश्च मुखकमले रङ्गस्यारोपः एवमेव प्रथमं भ्रुवोः लतायाः आरोपः पुनः भ्रूलतायां नर्तक्याः आरोपः। एवं पुनः रूपणाद् रूपकरूपकम् अस्ति।

विशेष—

(१) जिस रूपक में दो बार आरोपकार्य होता है, वह रूपकरूपक कहलाता है। जैसे मुखपङ्कजरङ्ग में पहले मुख पर कमल का पुनः मुखकमल पर रङ्ग का दो बार आरोप हुआ है। इसी प्रकार भ्रूलतानर्तकी में पहले भ्रू पर लता का पुनः भ्रूलता पर नर्तकी का आरोप हुआ है। इस दो बार आरोप होने के कारण यहाँ रूपकरूपक है।

(तत्त्वापह्नवरूपकनिदर्शनम्)

नैतन्मुखमिदं पद्मं न नेत्रे भ्रमराविमौ ।
एतानि केसराण्येव नैता दन्तार्चिषस्तव ।।९४।।

अन्वय— तव एतत् मुखं न इदं पद्मम्, नेत्रे न इमौ भ्रमरौ, एताः दन्तार्चिषः न एतानि केसराणि एव।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारा। एतत् = यह। मुखं = मुख। न = नहीं है। इदं = यह (तो)। पद्मं = कमल (है)। नेत्रे = दोनों आँखें। न = नहीं हैं। इमौ = ये दोनों (तो)। भ्रमरौ = भौंरे हैं। एताः = ये। दन्तार्चिषः = दाँतों की किरणें, दाँतों की चमक। न = नहीं है। एतानि = ये। केसराणि एव = निश्चित रूप से (कमल के) परागकण हैं।

अनुवाद— तुम्हारा यह मुख नहीं है, यह तो कमल है, (तुम्हारी) ये दोनों आँखे नहीं है, ये दोनों (तो) दो भौंरे हैं (और) ये (तुम्हारे) दातों की चमक नहीं है, ये (तो) निश्चितरूप से पराग के कण हैं।

संस्कृतव्याख्या— विंशं तत्त्वापह्नवरूपकं निदर्शयत्यत्र- **नैतन्निति**। **एतत्** पुरोविद्यमानं **तव** सुन्दर्याः **मुखम्** वदनं **न** नैव विद्यते **इदं** एतत्तु निश्चितरूपेण **पद्मं** कमलम् अस्ति। **इमे** पुरोदृश्यमाने तव **नेत्रे न** विद्यते इमौ निश्चितरूपेण **भ्रमरौ** स्तः, **एताः** पुरोदृश्यमानाः तव **दन्तार्चिषः** दन्तकान्तयः **न** नास्ति **एतानि** तु **केसराणि एव** निश्चितरूपेण कमलस्य परागकणानि विद्यन्ते।

(तत्त्वापह्नवरूपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

मुखादित्वं निवर्त्यैव पद्मादित्वेन रूपणात् ।
उद्भावितगुणोत्कर्षं तत्त्वापह्नवरूपकम् ।।९५।।

अन्वय— मुखादित्वं निवर्त्य पद्मादित्वेन रूपणात् उद्भावितगुणोत्कर्षं तत्त्वापह्नवरूपकम् (अस्ति)।

शब्दार्थ— मुखादित्वं = मुखत्व इत्यादि का। निर्वत्य एव = निश्चित रूप से निराकरण (प्रतिषेध, अपह्नव) करके। पद्मादित्वेन = कमलत्व इत्यादि से। रूपणात् = रूपित करने के कारण। उद्भावितगुणोत्कर्षं = व्यञ्जित हो रहा है गुणों का उत्कर्ष जिसमें ऐसा, गुणों की उत्कृष्टता को व्यञ्जित करने वाला। अपह्नवरूपकं = अपह्नवरूपक है।

अनुवाद— मुख इत्यादि का निश्चित रूप से निराकरण (प्रतिषेध) करके कमलत्व इत्यादि से रूपित करने के कारण (यहाँ) गुणों की उत्कृष्टता को व्यञ्जित करने वाला अपह्नवरूपक है।

संस्कृतव्याख्या— अपह्नवरूपकस्योदाहरणं विश्लेषयत्यत्र- **मुखेति**। अत्र प्रस्तुतं तत्त्वं **मुखादित्वं** मुखत्वं नेत्रत्वं दन्तकान्तित्वं च **निवर्त्य एव** निश्चितरूपेण निराकृत्य **पद्मादित्वेन** कमलत्वेन भ्रमरत्वेन परागत्वेन च **रूपणात्** रूपणकरणात् **उद्भावितगुणोत्कर्षम्** उद्भावितं व्यञ्जितं गुणानाम् उपमेयगतधर्माणाम् उत्कर्षः चमत्कारित्वं यत्र तादृशम् **अपह्नवरूपकं** तन्नाम रूपकं विद्यते। मुखादित्वस्य तत्त्वस्य अपह्नवाद् अत्र तत्त्वापह्नवरूपकमिति।

विशेष—

(१) जिस रूपक में तत्त्व उपमेय का निराकरण (अपह्नव) करके उपमान का आरोप किया जाता है तो वह तत्त्वापह्नवरूपक कहलाता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय अवयवी मुख का निषेध करके अलग वाक्य द्वारा उसे कमल बतलाया गया है और अवयव नेत्रों का प्रतिषेध करके उन पर भ्रमरों का और दन्तकान्ति का निषेध करके उन पर केसर का आरोप किया गया है। अवयवी (अङ्गी) और अवयव (अङ्ग) दोनों पर आरोप के कारण यहाँ सकलरूपक है किन्तु इस आरोप को अपह्नवपूर्वक कहने के कारण यहाँ अपह्नवरूपक है।

(२) प्रतिषेधपूर्वक आरोप करने से अपह्नवरूपक में सकलरूपक की अपेक्षा गुणों के चमत्कार का अतिशय प्रकट होता है अतः यह रूपक अतिशय गुणोत्कर्षक होता है।

(३) परवर्ती आचार्यों ने इसे अपह्नुति अलङ्कार के रूप में माना है।

(रूपकोपमयोरुपसंहारः)

न पर्यन्तो विकल्पानां रूपकोपमयोरतः[१] ।
दिङ्मात्रं दर्शितं धीरैरनुक्तमनुमीयताम् ।।९६।।

अन्वय— रूपकोपमयोः विकल्पानां पर्यन्तः न, अतः दिङ्मात्रं दर्शितम् अनुक्तं धीरैः अनुमीयताम्।

शब्दार्थ— रूपकोपमयोः = रूपक और उपमा के। विकल्पानां = विकल्पों का, भेदों का। पर्यन्तं = पर्यन्त, अन्त, सीमा। न = नहीं है। अतः = इसलिए। दिङ्मात्रं = दिग्दर्शन मात्र, केवल दिग्दर्शन। दर्शितं = दिखलाया गया है, किया गया है। अनुक्तं = अकथित को, अनिर्दिष्ट को। धीरैः = बुद्धिमान् लोगों द्वारा, आचार्यों द्वारा, कवियों द्वारा। अनुमीयताम् = अनुमान कर लेना चाहिए, समझ लेना चाहिए।

अनुवाद— रूपक और उपमा के भेदों का अन्त (सीमा) नहीं है, अतः (इस ग्रन्थ में उनका) केवल दिग्दर्शन किया गया है। अकथित (अनिर्दिष्ट) (रूपक और उपमा के भेदों को) बुद्धिमान् (आचार्यों और कवियों) द्वारा अनुमान कर लेना चाहिए (समझ लेना चाहिए)।

संस्कृतव्याख्या— रूपकोपमयोः उपसंहारं करोत्यत्र– **नेति**। **रूपकोपमयोः** रूपकस्य उपमायाश्च **विकल्पानां** भेदानां **पर्यन्तं** सीमा **न** नैवास्ति। **अतः** अस्मिन् ग्रन्थे तयोः भेदानां **दिङ्मात्रं** दिग्दर्शनमात्रं **दर्शितं** प्रदर्शितं, सर्वेषां भेदानां निरूपणमशक्यत्वात्। **अनुक्तम्** अत्रानिर्दिष्टं भेदं **धीरैः** सूरिभिः **अनुमीयतां** स्वयमेवोह्यताम्।

विशेष—

(१) दण्डी ने उपमा के तैंतीस और रूपक के बीस भेदों को इस ग्रन्थ में सोदाहरण विवेचित किया है किन्तु इन भेदों का निरूपण दिग्दर्शनमात्र है। इसी प्रकार उपमा और रूपक के अन्य भेदों की भी कल्पना की जा सकती है। उन सभी का विवेचन करना सम्भव नहीं है, अतः आचार्यों को इन्हीं भेदों के आधार पर अन्य भेदों को भी समझ लेना चाहिए।

(दीपकालङ्कारविवेचनम्)

जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्रवर्तिना ।
सर्ववाक्योपकार[२]श्चेत्तदाहु[३]र्दीपकं यथा ।।९७।।

(१) रूपकोपमयोरपि। (२) वाक्योपकारश्। (३) तमाहुर्।

अन्वय— एकत्रवर्तिना जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिना चेत् सर्ववाक्योपकारः तत् दीपकम् आहुः ।

शब्दार्थ— एकत्रवर्तिना = एकत्र स्थित । जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिना = जाति, क्रिया, गुण अथवा द्रव्य के वाचक (किसी एक पद) द्वारा । चेत् = यदि । सर्ववाक्योपकारः = सभी वाक्यों का उपकार (हो) । तत् = वह । दीपकं = दीपक अलङ्कार । आहुः = कहा जाता है ।

अनुवाद— (पद्य में) एकत्रस्थित जाति, क्रिया, गुण अथवा द्रव्य के वाचक (किसी एक पद) द्वारा यदि सभी वाक्यों का उपकार होवे तो वह दीपक अलङ्कार कहलाता है ।

संस्कृतव्याख्या— दीपकमलङ्कारं विवेचयत्यत्र- **जातीति** । **एकत्रवर्तिना** एकत्र एकस्मिन् स्थाने वाक्ये वर्तिना स्थितेन **जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिना** जात्याद्यन्यतमवाचकेन पदेन **चेत्** यदि **सर्ववाक्योपकारः** सर्वस्य सकलस्यापि वाक्यस्य अन्तरार्थान्वयः भवति **तत् दीपकं** तन्नामालङ्कारः **आहुः** कथ्यते । यत्र जात्यादिवाचकं पदं विद्यते तस्य वाक्यस्य तदितरवाक्यस्य चोपकारत्वम् एव दीपकम् इति । सर्वं वाक्यं देहलीदीपकन्यायेन दीपयतीत्यन्वयेन दीपकं नामालङ्कारः । परवर्तिभिराचार्यैः अलङ्कारोऽयमन्यथा लक्षितः व्याख्यातश्च । विश्वनाथानुसारं प्रस्तुताप्रस्तुतयोरेकधर्माभिसम्बन्धो दीपकम्- 'अप्रस्तुत-प्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते (सा०द०- १।४८) इति । अनेकासु क्रियासु कारकभेदं चेत् दीपकं भवति- अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् (का०प्र०- १०।१०३) इति । तच्चतुर्धा- जातिदीपकं क्रियादीपकं गुणदीपकं द्रव्यदीपकञ्चेति ।

विशेष—

(१) यहाँ दीपक अलङ्कार का विवेचन किया गया है । श्लोक के एक स्थान (आदि, मध्य या अन्त) में स्थित शब्द जाति, क्रिया, गुण अथवा द्रव्य से अन्यतम का यदि श्लोक के सभी वाक्यों के साथ सम्बन्ध होकर उपकार होता है तो वह दीपक अलङ्कार कहलाता है ।

(२) इस अलङ्कार में एक साथ अनेक वाक्यों के सम्बन्ध के कारण उन वाक्यों में परस्पर सादृश्य व्यक्त होता है । कहीं यह सादृश्य चारु होता है तो कहीं वार्त्तामात्र । इसीलिए दण्डी ने भरत के समान प्रधान सादृश्य वाली उपमा और गौण सादृश्य वाले रूपक के बाद इसे निर्दिष्ट किया है ।

(३) दण्डी के अनुसार १२ प्रकार के दीपक होते हैं । दीपन करने वाले शब्दों के अर्थगत- जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य भेद से दीपक चार प्रकार का होता है पुनः वाक्य में इनके प्रयोग के स्थान- आदि, मध्य और अन्त के भेद से प्रत्येक

जात्यादि भेदों के तीन-तीन भेद हो जाते हैं। इस प्रकार दीपक के कुल भेदों की संख्या बारह हो जाती है।

(आदिजातिदीपकनिदर्शनम्)

पवनो दक्षिणः पर्णं जीर्णं हरति वीरुधाम् ।
स एवावनताङ्गीनां मानभङ्गाय कल्पते ।।९८।।

अन्वय— दक्षिणः पवनः वीरुधां जीर्णं पर्णं हरति, सः एव अवनताङ्गीनां मानभङ्गाय कल्पते।

शब्दार्थ— दक्षिणः = दक्षिण दिशा से आने वाला। पवनः = पवन, वायु। वीरुधां = लताओं के। जीर्णं = पुराने, सूखे। पर्णं = पत्ते को। हरति = हर लेता है, तोड़ देता है। सः एव = वह ही। अवनताङ्गीनां = (पीन) अङ्गों के भार से झुकी हुई (सुन्दरियों के)। मानभङ्गाय = मान को भङ्ग करने के लिए। कल्पते = समर्थ (सक्षम) हो जाता है।

अनुवाद— दक्षिण दिशा से आने वाला पवन (मलयानिल) तलाओं के पुराने (सूखे) पत्ते को हर लेता है (तोड़ देता है), और (कामोत्तेजक) वही पवन (पीन) अङ्गों के भार से झुकी हुई (मानयुक्ता) युवतियों के मान को भङ्ग करने के लिए सक्षम होता है।

संस्कृतव्याख्या— आदिजातिदीपकमुदाहरत्यत्र– **पवन इति**। **दक्षिणः** दक्षिणागतः **पवनः** वायुः मलयानिलः इत्यर्थः, **वीरुधां** लतानां **जीर्णं** शिथिलवृन्तं शुष्कं **पर्णं** पत्रं **हरति सः** एव मलयपवनः च **अवनताङ्गीनां** विनम्रगात्रीणां मानिनीनां युवतीनां कामोद्दीपकत्वाद् **मानभङ्गाय** मानस्य सुरतमानस्य भङ्गाय विगलिताय **कल्पते** समर्थः जायते। श्लोकेऽस्मिन् पूर्ववाक्यस्थस्य आदौ विद्यमानस्य पवन इति जातिवाचकस्य पदस्य स इत्यनेन सर्वनाम्ना उत्तरस्य वाक्यस्याप्युकारकत्वादत्र आदिजातिदीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण श्लोक के आदि में विद्यमान 'दक्षिण पवन' इस जातिवाचक पद से 'वह' इस सर्वनाम द्वारा उत्तरवर्ती वाक्य का भी उपकार (अन्वय) होने के कारण यहाँ आदिजातिदीपक नामक अलङ्कार है।

(आदिक्रियादीपकनिदर्शनम्)

चरन्ति चतुरम्भोधिवेलोद्यानेषु दन्तिनः ।
चक्रवालाद्रिकुञ्जेषु कुन्दभासो गुणाश्च ते ।।९९।।

अन्वय— चतुरम्भोधिवेलोद्यानेषु ते दन्तिनः चक्रवालाद्रिकुञ्जेषु च कुन्दभासाः गुणाः चरन्ति।

शब्दार्थ— चतुरम्भोधिवेलोद्यानेषु = चारों समुद्रों के तटों के उद्यानों में। ते = तुम्हारे। दन्तिनः = हाथी। चक्रवालाद्रिकुञ्जेषु च = और चक्रवालगिरि (लोलालोक पर्वत) के कुञ्जों में। कुन्दभासः = कुमुदिनी की कान्ति के समान (निर्मल)। गुणाः = गुण, यश (कीर्ति)। चरन्ति = विचरण कर रहें हैं।

अनुवाद— (हे राजन्) चारों समुद्रों के तटों के उद्यानों में तुम्हारे हाथी विचरण करते है, और चक्रवालगिरि (सीमान्त-प्रान्त में स्थित लोकालोक पर्वत) के कुञ्जों में कुमुदिनी की कान्ति के समान (निर्मल) गुण (यश) फैल रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— आदिक्रियादीपकं निदर्शयत्यत्र- **चरन्तीति**। हे राजन्, **चतुरम्भोधिवेलोद्यानेषु** चतुःसमुद्रतटेषु विद्यमानेषूपवनेषु **ते** तव **दन्तिनः** करिणः **चरन्ति** विचरन्ति। तथा च **चक्रवालाद्रिकुञ्जेषु च** चक्रवालाद्रेः लोलालोकपर्वस्य कुञ्जेषु निकुञ्जेषु तव **गुणाः** शौर्यत्यागादयः **चरन्ति** प्रसरन्ति, श्लोकेऽस्मिन् एकस्थाने प्रथमवाक्यस्यादौ विद्यमानं चरन्तीति क्रियापदं वाक्यद्वयमेवोपकारयति, अत एवात्र आदिक्रियादीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में पूववर्ती वाक्य के आदि में विद्यमान 'चरन्ति' इस क्रिया पद का दोनों वाक्यों के साथ अन्वय होता है अतः यहाँ आदिक्रियादीपक नामक अलङ्कार है।

(आदिगुणदीपकनिदर्शनम्)

श्यामलाः प्रावृषेण्याभिर्दिशो जीमूतपङ्क्तिभिः।
भुवश्च सुकुमाराभिर्नवशाद्वलराजिभिः ।।१००।।

अन्वय— प्रावृषेण्याभिः जीमूतपङ्क्तिभिः दिशः, सुकुमाराभिः च नवशाद्वलराजिभिः भुवः श्यामलाः (सन्ति)।

शब्दार्थ— प्रावृषेण्याभिः = वर्षाकालिक। जीमूतपङ्क्तिभिः = मेघमालाओं से। दिशः = दिशाएं। सुकुमाराभिः च = और सुकुमार। नवशाद्वलराजिभिः = नयी तृणपङ्क्तियों से। भुवः = भू-भाग (भू-प्रदेश)। श्यामलाः = श्यामल हैं।

अनुवाद— वर्षाकालिक मेघमालाओं से दिशाएँ हैं और सुकुमार नयी तृण-पङ्क्तियों से भूभाग (भूप्रदेश) श्यामल हैं।

संस्कृतव्याख्या— आदिगुणदीपकं निदर्शयत्यत्र- **श्यामला इति। प्रावृषेण्याभिः**

वर्षाकालोत्पन्नाभिः **जीमूतपङ्क्तिभिः** मेघमालाभिः **दिशः** दिग्विभागाः **श्यामलाः** श्यामवर्णाः विद्यन्ते **सुकुमाराभिः च** कोमलाभिः च **नवशाद्वलराजिभिः** प्रत्यग्र प्ररूढाभिः शष्पपङ्क्तिभिः **भुवः** भूतलाः श्यामलाः वर्तन्ते। श्लोकेऽस्मिन् एकस्थाने प्रथम वाक्यस्यादौ विद्यमानं श्यामला इति गुणवाचकं पदं वाक्यद्वयमेवोपकारयति अत एवात्र आदिगुणदीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) यहाँ पूर्ववाक्य के आदि में विद्यमान गुणवाचक श्यामल पद का दोनों— पूर्ववर्ती तथा परवर्ती वाक्यों में अन्वय होता है अतः यह आदिगुण दीपक का उदाहरण है।

(आदिद्रव्यदीपकनिदर्शनम्)

विष्णुना विक्रमस्थेन दानवानां विभूतयः।
क्वापि नीताः कुतोऽप्यासन्नानीता देवतर्द्धयः ।।१०१।।

अन्वय— विक्रमस्थेन विष्णुना दानवानां विभूतयः क्वापि नीताः देवतर्द्धयः कुतोऽपि आनीताः आसन्।

शब्दार्थ— विक्रमस्थेन = (बलि के निग्रह के लिए) विक्रम करते हुए। विष्णुना = विष्णु के द्वारा। दानवानां = दानवों की। विभूतयः = सम्पदाएँ। क्वापि = कहीं। नीताः = ले जायी गयीं, पहुँचा दी गयीं। देवतर्द्धयः = देवताओं की समृद्धियाँ। कुतोऽपि = कहीं से। आनीताः = ला दी गयी। आसन् = थीं।

अनुवाद— (बलि के निग्रह के लिए) विक्रम करते हुए विष्णु के द्वारा दानवों की सम्पतियाँ कहीं (अन्यत्र) पहुँचा दी गयी और देवताओं की समृद्धियाँ कहीं से ला दी गयी थीं।

संस्कृतव्याख्या— आदिद्रव्यदीपकं निदर्शयत्यत्र- **विष्णुनेति**। **विक्रमस्थेन** बलिनिग्रहार्थं विक्रममाणेन **विष्णुना** वामनरूपधारिणा हरिणा **दानवानाम्** बलिप्रमुखासुराणां **विभूतयः** सम्पदः **क्वापि** कुत्राप्यन्यत्र **नीताः** अपहृत्य स्थापिताः तेनैव विष्णुना **देवतर्द्धयः** देवतानाम् इन्द्रादीनां देवानाम् **ऋद्धयः** समृद्धयः **कुतोऽपि आनीताः** समुपाहृताः आसन्। विक्रमं विस्तारयता विष्णुना दानवलक्ष्मीर्विनाशिताः देवलक्ष्मीश्च प्रतिष्ठापितेत्यर्थः। उदाहरणेऽस्मिन् पूर्ववाक्यस्यादौ विद्यमानस्य व्यक्तिविशेषरूपवाचकस्य विष्णुना इति पदस्य द्वयोः वाक्ययोरन्वयः इत्यत्र आदिद्रव्यदीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में प्रथम वाक्य के प्रारम्भ में विद्यमान 'विष्णु' पद का दोनों वाक्यों से अन्वय होने के कारण यहाँ आदि-द्रव्य-दीपक है।

(आदिदीपकोपसंहारः मध्यदीपकोपक्रमणञ्च)

इत्यादिदीपकान्युक्तान्येवं मध्यान्तयोरपि ।
वाक्ययोर्दर्शयिष्यामः कानिचित्तानि तद्यथा ।।१०२।।

अन्वय— इति आदिदीपकानि उक्तानि एवं वाक्ययोः मध्यान्तयोः अपि कानिचित् तानि दर्शयिष्यामः । तद्यथा–

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। आदिदीपकानि = आदिदीपकालङ्कार (के भेद)। उक्तानि = कह दिये गये, उदाहरित कर दिये गये। एवं = इसी प्रकार। वाक्ययोः = दो वाक्यों में। मध्यान्तयोः = मध्य और अन्त वाले भी। कानिचित् = कुछ। तानि = उन (दीपकों) को। दर्शयिष्यामः = निदर्शित करेंगे। तद्यथा– वे ये हैं।

अनुवाद— इस प्रकार आदिदीपक अलङ्कार (के भेद) कह दिये गये। इसी प्रकार (अब) दो वाक्यों में मध्य और अन्त वाले भी कुछ (मध्यदीपक और अन्त-दीपक) दीपकों (के भेद) को निर्दिष्ट करेंगे। वे ये हैं—

संस्कृतव्याख्या— आदिदीपकमुपसंहरन् मध्यान्तयोः दीपकयोः कथनमुपक्रमतेऽत्र- **इतीति। इति** अनेन प्रकारेण **आदिदीपकानि** जातिक्रियागुणद्रव्यवाचकानि वाक्यादौ विद्यमानानि दीपकानि **उक्तानि** प्रतिपादितानि। **एवं** अनेनैव प्रकारेण **वाक्ययोः** द्वयोः वाक्ययोः द्वयाधिकानां वाक्यानां वा **मध्यान्तयोः** अपि मध्ये अन्ते चापि विद्यमानानि तानि दीपकानि **दर्शयिष्यामः** विवेचयिष्यामः। तद्यथेति निदर्शनोपक्रमार्थप्रयुक्तम्। पूर्वं वाक्यस्यादौ प्रयुक्तानां जात्यादिवाचकपदानां प्रयोगेण यद्दीपकभेदाः तेषां विवेचनकृतम् तथा च वाक्ययोर्वाक्यानां वा मध्ये अन्ते च तेषां पदानां प्रयोगेण यद्दीपकभेदाः तेषां निर्देशनं क्रियते।

विशेष—

(१) जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य के भेद से दीपक के चार भेदों का कथन किया गया है। इन भेदों में से प्रत्येक भेद के वाक्य में अन्वित पद के प्रयोग की स्थिति के अनुसार आदि, मध्य और अन्त के भेद से तीन-तीन अवान्तर भेद हैं। इस प्रकार दीपक के बारह भेदों का निर्देश किया है।

(२) आदिदीपक वह दीपक होता है जिसमें अन्वित पद का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में होता है। मध्यदीपक में वाक्य के मध्य तथा अन्तदीपक में वाक्य के अन्त में होता है।

(३) सर्वप्रथम दण्डी ने जाति, क्रिया गुण और द्रव्य वाचक अन्वित पदों के आदि में प्रयोग के उदाहरण को निर्दिष्ट करके अब वाक्य के मध्य और अन्त में प्रयुक्त अन्वित पदों के कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करने का उपक्रम कर रहे हैं।

(मध्यजातिदीपकनिदर्शनम्)

नृत्यन्ति निचुलोत्सङ्गे गायन्ति च कलापिनः ।
बध्नन्ति च पयोदेषु दृशो हर्षाश्रुगर्भिणीः ।।१०३।।

अन्वय— कलापिनः निचुलोत्सङ्गे नृत्यन्ति गायन्ति च, पयोदेषु च हर्षाश्रुगर्भिणीः दृशः बध्नन्ति।

शब्दार्थ— कलापिनः = मयूर। निचुलोत्सङ्गे = बेंत (लताओं) की गोदी में। नृत्यन्ति = नाच रहे हैं। गायन्ति च = और गा रहे हैं। पयोदेषु च = और बादलों में। हर्षाश्रुगर्भिणीः = आनन्द से उत्पन्न आँसुओं से भरी हुई। दृशः = दृष्टि, आँखें। बध्नन्ति = बाँधे हुए है, गड़ाए हुए हैं, लगाये हुए हैं।

अनुवाद— मयूर बेंत (लताओं) की गोदी में (बेंत लताओं के नीचे) नाच रहे हैं और गा रहे हैं तथा आनन्द से उत्पन्न आसुओं से भरी हुई दृष्टि बादलों में लगाये (गड़ाये) हुए हैं।

संस्कृतव्याख्या— मध्यजातिदीपकं निदर्शयत्यत्र– **नृत्यन्तीति**। **कलापिनः** मयूराः निचुलोत्सङ्गे वेलसलताधोभागे **नृत्यन्ति** नर्त्तनं कुर्वन्ति **गायन्ति च** गानं च कुर्वन्ति, **पयोदेषु च** मेघेषु च **हर्षाश्रुगर्भिणीः** तदागमानन्दजनिताश्रुपूरिता **दृशः** चक्षूंषि **बध्नन्ति**। अत्र वाक्यद्वयोर्मध्ये प्रयुक्तः जातिवाचकः कलापिनः इत्ययं पदः पूर्वत्रापरत्र च वाक्यद्वये अन्वेतीति मध्यजातिदीपकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में जातिवाचक कलापिनः पद दो वाक्यों के मध्य में प्रयुक्त है जिसका अन्वय दोनों वाक्यों के साथ है, अतः यहाँ मध्यजातिदीपक है।

(मध्यक्रियादीपकनिदर्शनम्)

मन्दो गन्धवतः क्षारो बह्निरिन्दुश्च जायते ।
चर्चाचन्दनपातश्च शस्त्रपातः प्रवासिनाम् ।।१०४।।

अन्वय— प्रवासिनां मन्दः गन्धवहः क्षारः जायते, इन्दुः च बह्निः (जायते) चर्चाचन्दनपातः च शस्त्रपातः (जायते)।

शब्दार्थ— प्रवासिनां = विरहियों के लिए, विदेशियों के लिए। मन्दः = मन्द। गन्धवहः = सुगन्ध को वहन करने या ले जाने वाला पवन, सुगन्धवाही पवन।

क्षारः = क्षार अर्थात् असह्य। जायते = हो जाता है। इन्दुः च = और चन्द्रमा। वह्निः = अग्नि। चर्चाचन्दनपातः च = और (अङ्गों पर) चन्दन का गिरना (अङ्गों पर चन्दन का लेप)। शस्त्रपातः = शस्त्र का गिरना, शस्त्र से प्रहार, शस्त्रप्रहार के समान कष्टदायक।

अनुवाद— विदेश गये लोगों के लिए (विरहियों के लिए) सुगन्धवाही पवन नमक (असह्य) हो जाता है और चन्द्रमा अग्नि (के समान दाहक) (हो जाता है) तथा (अङ्गों पर) चन्दन का गिरना (चन्दन का लेप) शस्त्रपात (शस्त्र से प्रहार के समान कष्टकारक) (हो जाता है)।

संस्कृतव्याख्या— मध्यक्रियादीपकं निदर्शयत्यत्र- **मन्द इति**। **प्रवासिनां** प्रियावियुक्तजनानां कृते **मन्दः** मृदुः **गन्धवहः** सुगन्धवाहकः पवनः **क्षारः** असह्यः **जायते** भवति **इन्दुः च** चन्द्रः च **बह्निः** अग्निः सदृशः दाहकः जायते, **चर्चाचन्दनपातः च** तथा च चर्चारूपः चन्दनपातः अङ्गेषु चन्दनसम्पर्कः **शस्त्रपातः** शस्त्रप्रहारः इव कष्टदायकः जायते। श्लोकेऽस्मिन् वाक्यानां मध्ये प्रयुक्तस्य 'जायते' इति क्रियापदस्य त्रयाणां वाक्यानामन्वयः अत एवात्र मध्यक्रियादीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण श्लोक में दो वाक्यों के मध्य में प्रयुक्त 'जायते' इस क्रियापद का तीन वाक्यों से अन्वय है अतः यहाँ मध्यक्रियादीपक है।

(अन्तजातिदीपकनिदर्शनम्)

जलं जलधरोद्गीर्णं कुलं गृहशिखण्डिनाम्।
चलं च तडितां[1] दाम बलं कुसुमधन्वनः ।।१०५।।

अन्वय— जलधरोद्गीर्णं जलं गृहशिखण्डिनां कुलं तडितां दाम च कुसुमधन्वनः बलं (विद्यते)।

शब्दार्थ— जलधरोद्गीर्णं = मेघों द्वारा उगला गया (बरसाया गया)। जलं = जल। गृहशिखण्डिनां = गृह (पालतू) मयूरों का। कुलं = कुल, समुदाय, समूह। तडितां = विद्युत की। चलं = चञ्चल। दाम = रेखा। कुसुमधन्वनः = पुष्प रूपी धनुष है जिसकी ऐसे, पुष्परूपी धनुष वाले (कामदेव) की। बलं = सेना (है)।

अनुवाद— मेघों द्वारा उगला गया (बरसाया गया) जल, गृह (पालतू) मयूरोंका समुदाय और विद्युत की चञ्चल रेखा पुष्परूपी धनुष वाले (कामदेव) की सेना है।

संस्कृतव्याख्या— अन्तजातिदीपकं निदर्शयत्यत्र- **जलमिति**। **जलधरोद्-**

(१) चलत्तडिलता-।

गीर्णं जलधरैः बादलैः उद्गीर्णं वृष्टं **जलं** तोयं **गृहशिखण्डिनां** गृहे पालितानां मयूराणां **कुलं** समुदायः **तडितां** विद्युतां **चलं** चञ्चलं **दाम** देखा इत्येतत्त्रयं **कुसुम-धन्वनः** पुष्पधन्वनः कामदेवस्य **बलं** सैन्यं विद्यते। वर्षाजलेन प्रासादशिखरस्थमयूर-कुलेन चपलायाः चञ्चलेन दामेन च कामदेवः सकलं विश्वं जयतीति भावः। अत्र बलमिति जातिवाचकस्य वाक्यान्तप्रयुक्तस्य पदस्य सर्वेण वाक्येनान्वयः विद्यते अत एव अन्तजातिदीपकस्योदाहरणमिदम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में 'बल' इस जातिवाचक पद का वाक्यान्त में प्रयोग हुआ है जिसका सभी वाक्यों में अन्वय होता है अतः यहाँ अन्त जातिदीपक है।

(अन्तक्रियादीपकनिदर्शनम्)

त्वया नीलोत्पलं कर्णे स्मरेणास्त्रं शरासने।
मयापि मरणे चेतस्त्रयमेतत्समं कृतम् ।।१०६।।

अन्वय— त्वया कर्णे नीलोत्पलं स्मरेण शरासने अस्त्रं मया अपि मरणे चेतः एतत् त्रयम् समं कृतम्।

शब्दार्थ— त्वया = तुम्हारे द्वारा। कर्णे = कान पर। नीलोत्पलं = नीलकमल। स्मरेण = कामदेव द्वारा। शरासने = धनुष पर। अस्त्रं = बाण। मया अपि = मेरे द्वारा भी। मरणे = मरने पर। चेतः = चित्त। एतत् = यह। त्रयं = तीनों (कार्य)। समं = एक साथ। कृतम् = सम्पादित किया गया।

अनुवाद— (हे सुन्दरि), तुम्हारे द्वारा कान पर नीलकमल (लगाना), कामदेव द्वारा धुनष पर बाण (रखना) और मेरे द्वारा मरने पर चित्त (लगाना)– ये तीनों (कार्य) एक साथ सम्पादित किया गया।

संस्कृतव्याख्या— अन्तक्रियादीपकं निदर्शयत्यत्र– **त्वयेति**। हे सुन्दरि, **त्वया** सुन्दर्याः **कर्णे** श्रोत्रे **नीलोत्पलम्** आभूषणरूपेण नीलकमलं **स्मरेण** कामदेवेन **शरासने** स्वधनुषि **अस्त्रं** बाणः, **मया** च **मरणे** मृत्युकार्ये **चेतः** मनः इति **एतत् त्रयं** कार्यम् त्वया कामेन मया च **समं** युगपत् **कृतं** सम्पादितम्। उदाहरणेऽस्मिन् वाक्यान्ते प्रयुक्तस्य कृतमिति क्रियावाचकपदस्य सर्वैः वाक्यैः सह अन्वयः इत्यत्रान्तक्रिया-दीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में वाक्यान्त में प्रयुक्त 'कृतम्' इस क्रियावाचक पद का सभी वाक्यों से अन्वय है अतः यहाँ अन्तक्रियादीपक है।

(मालादीपकनिदर्शनम्)

शुक्लः श्वेतार्चिषो वृद्ध्यै पक्षः पञ्चशरस्य सः ।
स च रागस्य रागोऽपि यूनां रत्युत्सवश्रियः ।।१०७।।

अन्वय— शुक्लः पक्षः श्वेतार्चिषः वृद्ध्यै सः पञ्चशरस्य (वृद्ध्यै) सः च यूनां रागस्य (वृद्ध्यै) रागः अपि रत्युत्सवश्रियः (वृद्ध्यै भवति)।

शब्दार्थ— शुक्लः पक्षः = शुक्ल पक्ष। श्वेतार्चिषः = श्वेत हैं किरणें जिसकी ऐसे (श्वेत किरणों वाले अर्थात् चन्द्रमा) की। वृद्ध्यै = वृद्धि के लिए। सः = वह (चन्द्रमा)। पञ्चशरस्य = कामदेव की। सः च = और वह (कामदेव)। यूनां = युवकों के। रागस्य = राग की, अनुराग की। रागः अपि = अनुराग भी। रत्युत्सवश्रियः = सुरत उत्सव की शोभा की।

अनुवाद— शुक्लपक्ष चन्द्रमा की वृद्धि के लिए होता है, वह (चन्द्रमा कामोद्दीपक होने के कारण) कामदेव की (वृद्धि के लिए होता है), वह (कामदेव) युवकों के (युवतीविषयक) अनुराग की (वृद्धि के लिए होता है), और अनुराग भी सुरत के उत्सव की शोभा की (वृद्धि के लिए होता है)।

संस्कृतव्याख्या— मालादीपकं निदर्शयत्यत्र- **शुक्ल इति**। **शुक्लः पक्षः** मासस्य द्वितीयः पक्षः **श्वेतार्चिषः** श्वेतः शुभ्रः अर्चिः किरणं यस्य तादृशस्य चन्द्रस्य **वृद्ध्यै** वर्धनाय भवति, **सः** चन्द्रः कामोद्दीपकत्वात् **पञ्चशरस्य** कामदेवस्य वृद्ध्यै भवति, **सः च** कामदेवः **यूनां** युवकजनानां युवतिविषयकस्य **रागस्य** वृद्ध्यै भवति, **रागः अपि** अनुरागोऽपि **रत्युत्सवश्रियः** सुरतलक्ष्म्याः वृद्ध्यै भवति।

(मालादीपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्यादिदीपकत्त्वेऽपि पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी ।
वाक्यमाला प्रयुक्तेति तन्मालादीपकं मतम् ।।१०८।।

अन्वय— इति आदिदीपकत्वे अपि पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी वाक्यमाला प्रयुक्ता इति तन्मालादीपकं मतम्।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। आदिदीपकत्वे अपि = आदि दीपकता होने पर भी। पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी = क्रमशः पूर्ववर्ती पूर्ववर्ती (वाक्य की) अपेक्षा रखने वाली। वाक्यमाला = वाक्यमाला, वाक्यों का समुदाय। प्रयुक्ता = प्रयोग में लायी गयी है, प्रयुक्त है। इति = इस प्रकार। तत् = वह। मालादीपकं = मालादीपक। मतम् = कहा गया है।

अनुवाद— इस प्रकार (यहाँ) आदिदीपकता होने पर भी क्रमशः पूर्ववर्ती-पूर्ववर्ती (वाक्य) की अपेक्षा रखने वाली वाक्यमाला (वाक्यों का समुदाय) प्रयुक्त हुआ है– इस प्रकार वह मालादीपक (नामक अलङ्कार) कहा गया है।

संस्कृतव्याख्या— **इत्यादिति**– इति एवं प्रकारेणात्र **आदिदीपकत्वे** सत्यपि 'वृद्ध्यै' इति वाक्यस्यादौ विद्यमानेन क्रियापदेन सर्ववाक्यान्वयात् क्रियादिदीपके विद्यमानेऽपि **पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी** क्रमेण पूर्वं पूर्वं वाक्यमपेक्षमाणा **वाक्यमाला** वाक्यावलिः **प्रयुक्ता** इति तद् **मालादीपकं** तन्नाम दीपकं **मतं** कथितम्। अत्रोत्तरोत्तरो क्रमेण-पूर्वसापेक्षः, यथा रत्युत्सवश्रीवृद्धि रागसापेक्षा रागवृद्धिः कामसापेक्षा कामवृद्धिः चन्द्र-सापेक्षा चन्द्रवृद्धिश्च शुक्लपक्षसापेक्षेति। अर्वाचीनानामाचार्याणामते मालादीपकं स्व-तन्त्रोऽलङ्कारः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस दीपक अलङ्कार में सभी उत्तरोत्तर वाक्य क्रमशः पूर्ववर्ती वाक्य से माला के समान परस्पर गुँथे होते हैं, वह मालादीपक कहलाता है। जैसे– 'शुक्लः' इत्यादि दीपक के उदाहरण में चार वाक्य प्रयुक्त हैं। प्रथम वाक्य के आदि में प्रयुक्त 'वृद्धि के लिए' पद का चारों वाक्यों से अन्वय होता है अतः यह आदि क्रियादीपक है। इसमें प्रत्येक उत्तरवर्ती वाक्य अपने पूर्ववर्ती वाक्य की अपेक्षा रखता है। जैसे कि रतिलक्ष्मी की वृद्धि के लिए अनुराग अपेक्षित है, अनुराग की वृद्धि के लिए कामभावना अपेक्षित है, कामभावना की वृद्धि के लिए चन्द्रमा अपेक्षित है और चन्द्रमा की वृद्धि के लिए शुक्ल पक्ष अपेक्षित है। अतः यह मालादीपक का उदाहरण है।

(२) उत्तरवर्ती आचार्यों ने मालादीपक को स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में निर्दिष्ट किया है। विश्वनाथ ने इसे स्वतन्त्र अलङ्कार माना है किन्तु जयदेव ने इस अलङ्कार को दीपक और एकावली का योग माना है।

(विरुद्धार्थदीपकनिदर्शनम्)

अवलेपमनङ्गस्य वर्धयन्ति बलाहकाः।
कर्शयन्ति तु[1] धर्मस्य मारुतोद्धूतशीकराः ॥१०९॥

अन्वय— मारुतोद्धूतशीकराः बलाहका अनङ्गस्य अवलेपं वर्धयन्ति, धर्मस्य तु (अवलेपं) कर्शयन्ति।

---

(१) च।

शब्दार्थ— मारुतोद्धूतशीकराः = पवन द्वारा उड़ाये गये हैं जलकण (शीकर) जिसके ऐसे, पवन द्वारा उड़ाये गये जलकणों वाले। बलाहकाः = मेघ। अनङ्गस्य = कामदेव के। अवलेपं = गर्व को, अभिमान को। वर्धयन्ति = बढ़ाते हैं। घर्मस्य तु = किन्तु धूप (गर्मी) को। कर्शयन्ति = घटाते हैं, कम कर देते हैं।

अनुवाद— पवन द्वारा उड़ाये गये जलकणों वाले मेघ (कामोद्दीपक होने के कारण) कामदेव के गर्व को बढ़ाते हैं किन्तु धूप (गर्मी) के (ताप रूप) गर्व को कम कर देते हैं।

संस्कृतव्याख्या— विरुद्धार्थदीपकं निदर्शयत्यत्र- **अवलेपमिति**। **मारुतोद्धूत-शीकराः** मारुतेन वायुना उद्धूताः उत्क्षिप्ताः जलकणाः जलबिन्दवः येषां **तादृशाः बलाहकाः** मेघाः **अनङ्गस्य** अङ्गविहीनस्य कामदेवस्य **अवलेपम्** अभिमानं **वर्धयन्ति** उपचिन्वन्ति **घर्मस्य तु** परञ्च ग्रीष्मस्य अवलेपं **कर्शयन्ति** अपचिन्वन्ति।

(विरुद्धार्थदीपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

अवलेपपदेनात्र बलाहकपदेन च।
क्रिये विरुद्धे संयुक्ते तद्विरुद्धार्थदीपकम् ।।११०।।

अन्वय— अत्र बलाहकपदेन अवलेपपदेन च विरुद्धे क्रिये संयुक्ते तत् विरुद्धार्थदीपकम्।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में। बलाहकपदेन = मेघ शब्द। अवलेपपदेन च = और अवलेप शब्द के साथ। विरुद्धे = विरुद्ध। **क्रिये** = दो क्रियाएँ। संयुक्ते = संयुक्त हुई हैं। तत् = इस कारण। विरुद्धार्थदीपकं = विरुद्धार्थ-दीपक है।

अनुवाद— यहाँ (इस उदाहरण में) (कर्तृवाचक) मेघपद और (कर्मवाचक) अवलेप पद के साथ (परस्पर) विरुद्ध (अर्थ वाली) दो क्रियाएँ (वर्धयन्ति और कर्शयन्ति) संयुक्त हैं, अतः (यह) विरुद्धार्थ दीपक है।

संस्कृतव्याख्या— विरुद्धार्थदीपकोदाहरणं विश्लेषयत्यत्र- **अवलेपेति**। **अत्र** अस्मिन्नुदाहरणे कर्तृवाचकेन **बलाहकपदेन** मेघशब्देन कर्मवाचकेन **अवलेपपदेन** गर्वशब्देन च वर्धनकर्शणरूपे **विरुद्धे** परस्परविरुद्धार्थके **क्रिये** द्वे क्रियावाचके संयुक्ते स्तः। **तत्** तस्माद् अत्र **विरुद्धार्थदीपकं** तन्नाम दीपकं विद्यते।

विशेष—

(१) जिस दीपक अलङ्कार में परस्पर विरुद्ध अर्थ का प्रकाशन होता है, वह विरुद्धार्थ दीपक कहलाता है। प्रोक्त उदाहरण में द्रव्यवाचक पद बलाहक वाक्य के मध्य

में तथा गुण वाचक अवलेप पद आदि में प्रयुक्त हुआ है। इन दोनों पदों का अन्वय दोनों वाक्यों से है। इस प्रकार यहाँ क्रमशः मध्यद्रव्यदीपक और आदिगुणदीपक है किन्तु यहाँ इन दोनों पदों का सम्बन्ध दो परस्पर विरुद्ध अर्थ वाली वर्धन और कर्शण क्रियाओं से है; क्योंकि मेघ धूप की उष्णता को भले ही कम करते है किन्तु काम-सन्ताप को बढ़ाते हैं। परस्पर विरुद्ध अर्थ वाली क्रियाओं से संयोग होने के कारण यहाँ विरुद्धार्थ दीपक है।

(एकार्थदीपकनिदर्शनम्)

हरत्याभोगमाशानां गृह्णाति ज्योतिषां गणम् ।
आदत्ते चाद्य[1] मे प्राणानसौ जलधरावली[2] ।।१११।।

अन्वय— असौ जलधरावली अद्य आशानाम् आभोगं हरति, ज्योतिषां गणं मे प्राणान् च आदत्ते।

शब्दार्थ— असौ = यह। जलधरावली = मेघमाला। अद्य = आज। आशानां = दिशाओं के। आभोगं = विस्तार को। हरति = हर रही है, सङ्कुचित कर रही है। ज्योतिषां = नक्षत्रों के। गणं = समूह को। गृह्णाति = तिरोहित कर रही है, अपने में समाहित कर रही है। मे = मेरे। प्राणान् च = प्राणों को। आदत्ते = हर रही है, हरने की चेष्टा कर रही है।

अनुवाद— यह मेघमाला आज दिशाओं के विस्तार को हर रही है (सङ्कुचित कर रहीं है), नक्षत्रों के समूह को अपने में तिरोहित कर रही है, और मेरे प्राणों को हर रही है (हरने की चेष्टा कर रही है)।

संस्कृतव्याख्या— एकार्थदीपकं निदर्शयत्यत्र– **हरतीति**। **असौ** सम्प्रति दृश्यमाना **जलधरावली** मेघमाला **अद्य अस्मिन्दिवसे आशानां** दिशाम् **आभोगं** विस्तारं **हरति** सङ्कोचयति; **ज्योतिषां** नक्षत्राणां **गणं** समूहं **गृह्णाति** हरति स्वस्मिन् निगूहतीत्यर्थः तथा च **मे** मम प्रियाविरहितस्य **प्राणान्** असून् **आदत्ते** हरति हर्त्तुं चेष्टते इत्यर्थः।

(एकार्थदीपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

अनेकशब्दोपादानात् क्रियैकैवात्र दीप्यते ।
यतो जलधरावल्या तस्मादेकार्थदीपकम् ।।११२।।

अन्वय— यतः अत्र जलधरावल्या एका एव क्रिया अनेकशब्दोपादानात् दीप्यते तस्मात् एकार्थदीपकम् (अस्ति)।

---

(१) चास्य। (२) -वलिः।

शब्दार्थ— यतः = जिससे। अत्र = यहाँ, इस (उदहरण) में। जलधरावल्या = जलधरावली (मेघमाला) के द्वारा। एका एव = एक ही। क्रिया = क्रिया। अनेक-शब्दोपादानात् = अनेक (समानार्थक) शब्दों के प्रयोग से। दीप्यते = दीप्त (प्रकाशित) की गयी है। तस्मात् = इसलिए। एकार्थदीपकं = एकार्थदीपक (है)।

अनुवाद— यहाँ (इस उदाहरण) में (कर्त्ता के रूप में स्थित) जलधरावली (मेघमाला) द्वारा (हरणरूप) एक ही क्रिया अनेक (समानार्थक) शब्दों के प्रयोग से दीप्त (प्रकाशित) की गयी है, इसलिए (समान अर्थ वाले अनेक क्रिया शब्दों से दीप्त किये जाने के कारण) यहाँ एकार्थदीपक है।

संस्कृतव्याख्या— एकार्थदीपकनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **अनेकेति**। **यतः** यस्मात् **अत्र** अस्मिन्नुदाहरणे **जलधरावल्या** कर्तृभूतया मेघमालया **एका एव** हरण-रूपा क्रिया **अनेकशब्दोपादानात्** हरणग्रहणादानात्मकानाम् अनेकेषां समानार्थकानां शब्दानां पदानाम् उपादानात् प्रयोगात् **दीप्यते** प्रकाश्यते, **तस्मात्** कारणादत्र एकार्थ-क्रियादीपनाद् एकार्थदीपकम्।

विशेष—

(१) जिस दीपक अलङ्कार में समानार्थक अनेक शब्दों द्वारा एक अर्थ को दीपित किया जाता है, वह एकार्थदीपक कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण के वाक्यान्त में प्रयुक्त जलधरावली कर्त्ता जाति का सम्बन्ध तीनों वाक्यों के आदि में स्थित एक ही अर्थ वाली हरणक्रिया से अनेक शब्दों– हरण, ग्रहण और आदान द्वारा कहा गया है। एक अर्थ को दीप्त करने के कारण यहाँ एकार्थदीपक है।

(३) परवर्ती आचार्यों के अनुसार इसको कारकदीपक का निदर्शन माना जा सकता है क्योंकि यहाँ एक ही कर्त्ता से अनेक क्रियाओं— दिग्विस्तार को कम करना, नक्षत्रों को तिरोहित करना और प्राणों को हरण करने की चेष्टा करना का प्रदर्शन किया गया है।

(श्लिष्टार्थदीपकनिंदर्शनम्)

हृद्यगन्धवहास्तुङ्गास्तमालश्यामलत्विषः ।
दिवि भ्रमन्ति जीमूता भुवि चैते मतङ्गजाः ।।११३

अन्वय— दिवि हृद्यगन्धवहाः तुङ्गाः तमालश्यामलत्विषः जीमूताः भुवि च एते मतङ्गजाः भ्रमन्ति।

शब्दार्थ— दिवि = आकाश में। हृद्यगन्धवहाः = (मेघपक्ष में) मनोरम पवन से

युक्त (हाथीपक्ष में) मदगन्ध को ढोने वाले। तुङ्गाः = (मेघपक्ष में) ऊँचाई पर स्थित (हाथीपक्ष में) विशाल आकार वाले। तमालश्यामलत्विषः = (मेघपक्ष में) तमाल (वृक्ष) के समान श्यामल शोभा वाले (हाथीपक्ष में) तमाल के समान श्यामल वर्ण वाले। जीमूताः = मेघ। भुवि = धरती पर। मतङ्गजाः = हाथी। भ्रमन्ति = (मेघपक्ष में) मँडरा रहे हैं (हाथीपक्ष में) धूम रहे हैं।

अनुवाद— आकाश में मनोरम पवन से युक्त, ऊँचाई पर स्थित और तमाल-वृक्ष के समान श्यामल शोभा वाले मेघ मँडरा रहे हैं तथा धरती पर मदगन्ध को ढोने वाले, विशाल आकार वाले और तमाल वृक्ष के समान श्यामल वर्ण वाले हाथी घूम रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— शिलष्टार्थदीपकं निदर्शयत्यत्र– **हृद्येति**। **दिवि** गगने **हृद्य-गन्धवहाः** मनोरमपवनयुताः **तुङ्गाः** उन्नताः **तमालश्यामलत्विषः** तमाल इव श्यामलः शोभा येषां तादृशाः जीमूताः मेघाः **भ्रमन्ति** इतस्ततः विचरन्ति **भुवि च** भूतले च **एते** पुरोदृश्यमानाः **हृद्यगन्धवहाः** मदगन्धवहाः **तुङ्गाः** विशालाकाराः **तमाल-श्यामलत्विषः** तमालवत् श्यामलः वर्णः येषां तादृशाः **मतङ्गजाः** करिणः **भ्रमन्ति** इतस्ततः विचरन्ति।

(शिलष्टार्थदीपकनिदर्शनविश्लेषणम्)

अत्र धर्मैरभिन्नानामभ्राणां दन्तिनां तथा[१] ।
भ्रमणेनैव[२] सम्बन्ध इति शिलष्टार्थदीपकम् ।।११४।।

अन्वय— अत्र धर्मैः अभिन्नानाम् अभ्राणां तथा दन्तिनां भ्रमणेन एव सम्बन्धः इति शिलष्टार्थदीपकम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में। धर्मैः = (साधारण) धर्मों से। अभिन्नानां = अभिन्न (एक शब्द से अभिहित), समान। अभ्राणां = मेघों का। तथा दन्तिनां = और हाथियों का। भ्रमणेन एंव = केवल भ्रमण (क्रिया) के कारण। सम्बन्धः = सम्बन्ध (अन्वय) है। इति = इस प्रकार। शिलष्टार्थदीपकं = शिलष्टार्थ-दीपक (है)।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में (साधारण) धर्मों से अभिन्न (एक शब्द द्वारा अभिहित) मेघों और हाथियों का केवल भ्रमण (क्रिया) के कारण सम्बन्ध (अन्वय) है– इस प्रकार (यह) शिलष्टार्थदीपक है।

---

(१) हस्तिनामपि।

(२) भ्रमेणैकेन।

संस्कृतव्याख्या— श्लिष्टार्थदीपकनिदर्शनं विश्लेषणयत्यत्र- **अत्रेति**। **अत्र** अस्मिन्नुदाहरणे **धर्मैः** हृद्यगन्धवहत्वादिभिः सामान्यधर्मैः **अभिन्नानाम्** एकशब्दवाच्य-तयासमानानाम् **अभ्राणां** मेघानां **दन्तिनां** करिणां **भ्रमणेन एव** भ्रमणक्रियया एव **सम्बन्धः** अन्वयः विद्यते, इति श्लिष्टपदोस्थापितसाधारणधर्मयुतयोः मेघगजयोः भ्रम-न्तीति क्रियया दीपनादेतत् श्लिष्टार्थदीपकम्।

विशेष—

(१) जिस दीपक में धर्मों के कारण अभिन्न वस्तुओं का श्लिष्टपदों द्वारा कथन होता है, वह श्लिष्टार्थ दीपक कहलाता है।

(२) उदाहरण में साधारण धर्म के कारण अभिन्न श्लिष्ट पद द्वारा अभिहित मेघों और हाथियों का भ्रमण क्रिया से सम्बन्ध का कथन हुआ है, अतः यहाँ श्लिष्टार्थ-दीपक है।

(दीपकोपसंहारः)

अनेनैव प्रकारेण शेषाणामपि दीपके।
विकल्पानामवगति[१]र्विधातव्या विचक्षणैः।।११५।।

अन्वय— अनेन एव प्रकारेण विचक्षणैः दीपके शेषाणां विकल्पानाम् अवगतिः विधातव्या।

शब्दार्थ— अनेन एव = इसी ही। प्रकारेण = प्रकार से। विचक्षणैः = विज्ञों द्वारा, विद्वानों द्वारा, आचार्यों द्वारा। दीपके = दीपक में। शेषाणां = अवशिष्ट, अविवेचित, अव्याख्यात। विकल्पानां = उद्भावनाओं की, भेदों की। अवगतिः = अवबोध, जानकारी। विधातव्या = कर लिया जाना चाहिए।

अनुवाद— इसी प्रकार आचार्यों (विद्वानों) द्वारा दीपक (के सन्दर्भ) में अवशिष्ट (अविवेचित) उद्भावनाओं (भेदों) का अवबोध (जानकारी) कर लिया जाना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— दीपकमुपसंहरत्यत्र- **अनेनेति**। **अनेन एव** अत्र निरूपितेन एव **प्रकारेण** विधिना **विचक्षणैः** विज्ञैराचार्यैः **दीपके** दीपकालङ्कारे **शेषाणां** अत्रानुक्तानां विकल्पानां **अवगतिः** अवबोधः **विधातव्या** कर्त्तव्या।

विशेष—

(१) दण्डी के अनुसार दीपक के भेद की और भी उद्भावनाएँ की जा सकती हैं किन्तु

---

(१) अनुगतिर्, अपि गतिर्।

उन्होंने यहाँ कतिपय दीपक के भेदों का दिग्दर्शन करा दिया है। इन्हीं के आ पर अन्य उद्भावित भेदों को भी समझ लेना चाहिए।

(२) रत्नश्री ज्ञान ने यहाँ अनिरूपित दीपक के भेदों में उपमादीपक, उत्प्रेक्षादीपक औ आक्षेपदीपक की सोदाहरण व्याख्या किया है।

(३) रत्नश्री ज्ञान द्वारा उदाहृत श्लोक इस प्रकार है—

(क) उपमादीपक—

अधरस्तव तन्वङ्गि रागः साक्षादिवेष्यते।
हृदयं रञ्जयत्येष प्राणान् हरति यन्मम॥

(ख) उत्प्रेक्षादीपक—

हरन्ति हरिणाक्षीणां दृष्टयो रागलालसाः।
वदन्तीव जनान् मुक्तेरायता वयमर्गला॥

(ग) आक्षेपदीपक—

न खड्गधारा निशिता निशाता नापि सायकाः।
हरन्ति च मम प्राणान् मृगक्षि तव विभ्रमाः॥

(आवृतिरलङ्कारनिरूपणम्)

अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरुभयावृत्तिरेव च[1]।
दीपकस्थान एवेष्टमलङ्कारत्रयं यथा॥११६॥

अन्वय— अर्थावृतिः पदावृत्तिः उभयावृत्तिः एव च अलङ्कारत्रयं दीपकस्थाने एव (भवति)।

शब्दार्थ— अर्थावृत्तिः = अर्थावृति। पदावृत्तिः = पदावृति। उभयावृत्तिः एव च = और उभयावृत्ति। अलङ्कारत्रयं = (ये) तीन अलङ्कार। दीपकस्थाने एव = दीपक (अलङ्कार) के स्थान में (होते हैं)।

अनुवाद— अर्थावृत्ति (अलङ्कार) पदावृति (अलङ्कार) और उभयावृत्ति (अलङ्कार) (वे) तीन अलङ्कार दीपक के स्थान में (दीपकजातीय) होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— आवृतिरलङ्कारं निरूपयत्यत्र- **अर्थावृत्तिः इति**। **अर्थावृत्तिः** अर्थस्य वाक्यार्थस्य आवृतिरूपोऽर्थावृत्तिः **पदावृत्तिः** पदस्यावृत्तिः वाक्यान्तरे पुनः विद्यमानत्वरूपः पदावृत्तिः **उभयावृत्तिः** अर्थस्य पदस्य च द्वयोरपि वाक्यान्तरे आवृति-

(१) इत्यपि।

रूपः उभयावृत्तिः एव च एतद् **अलङ्कारत्रयम्** अर्थावृतिरलङ्कारः पदावृत्तिरलङ्कार उभयावृतिरलङ्कारश्च **दीपकस्थाने** दीपकजातीये अलङ्कारे एव अभीष्टमाचार्यैरिति शेषः। यथेति निदर्शनोपक्रमार्थं प्रयुक्तम्।

विशेष—

(१) **आवृति अलङ्कार**— यह दीपक जातीय अलङ्कार है। दीपक अलङ्कार में एक स्थान पर प्रयुक्त एक ही शब्द का अनेक वाक्यों से अन्वय होता है किन्तु आवृति अलङ्कार में अर्थ, पद अथवा दोनों (अर्थ और पद की प्रत्येक वाक्य में आवृत्ति होती है। यही दीपक और आवृत्ति अलङ्कार में भेद है।

(२) प्रत्येक वाक्य में अर्थ, पद अथवा दोनों की आवृत्ति के आधार पर आवृत्ति अलङ्कार तीन प्रकार का होता है– अर्थावृत्ति, पदावृत्ति और उभयावृत्ति। अर्थावृत्ति में प्रत्येक वाक्य में अर्थ की, पदावृत्ति में पद की तथा उभयावृत्ति में अर्थ और पद दोनों की आवृत्ति होती है। इनके उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

(अर्थावृत्तिनिदर्शनम्)

विकसन्ति कदम्बानि[१] स्फुटन्ति[२] कुटजद्रुमाः[३] ।
उन्मीलयन्ति च कन्दल्यो दलन्ति ककुभानि च[४] ।।११७।।

अन्वय— कदम्बानि विकसन्ति, कुटजद्रुमाः स्फुटन्ति, कन्दल्यः च उन्मीलयन्ति, ककुभानि च दलन्ति।

शब्दार्थ— कदम्बानि = कदम्बपुष्प। विकसन्ति = विकसित हो रहे हैं। कुटजद्रुमाः = कुटज (चमेली) के पुष्प। स्फुटन्ति = स्फुटित हो रहे (खिल रहे) हैं। कन्दल्यः = कन्दली पुष्प। उन्मीलयन्ति = उन्मीलित हो रहे (खिल रहे) हैं। ककुभानि च = और कुकुभ के पुष्प। दलन्ति = प्रस्फुटित हो रहे (खिल रहे) हैं।

अनुवाद— कदम्ब पुष्प विकसित हो रहे (खिल रहे) हैं, कुटज (चमेली के पुष्प) स्फुटित हो रहे (खिल रहे) हैं, कन्दली पुष्प उन्मीलित हो रहे (खिल रहे) हैं और ककुभ के पुष्प प्रस्फुटित हो रहे (खिल रहे) हैं।

संस्कृतव्याख्या— अर्थावृत्तिं निदर्शयत्यत्र– **विकसन्तीति**। **कदम्बानि** नीपकुसु-

(१) सरोजानि।
(२) स्फुरन्ति।
(३) -जोद्गमा।
(४) कुमुदानि।

मानि **विकसन्ति; कुटजद्रुमाः** गिरिमल्लिकापुष्पाणि **स्फुटन्ति** उद्भिन्नानि भवन्ति; **कन्दल्यः च** कन्दलीकुसुमानि च **उन्मीलयन्ति** विकसन्ति **ककुभानि च** अर्जुनपुष्पाणि च **दलन्ति** उद्भिन्नानि भवन्ति। अत्र विकसन्ति स्फुटन्ति उन्मीलयन्ति दलन्ति इति चत्वार्यपि क्रियापदानि भिन्नरूपाण्यपि एकार्थानि प्रयुक्तानीति अर्थावृत्तिरत्र।

विशेष—

(१) **अर्थावृत्ति—** जिस आवृत्ति अलङ्कार के नाना वाक्यों में एक ही अर्थ वाले विभिन्न शब्दो का प्रयोग होता है, वह अर्थावृत्ति अलङ्कार कहलाता है। उदाहरण श्लोक के सभी वाक्यो में खिलना अर्थ वाली विभिन्न क्रियापदो विकसन्ति, स्फुटन्ति, उन्मीलयन्ति और दलन्ति की पुनरावृत्ति हुई है अतः यहाँ अर्थावृत्ति है। समानार्थक क्रियापदों की आवृत्ति न होने पर यहाँ आदिक्रिया दीपक होता।

(पदावृत्तिनिदर्शनम्)

उत्कण्ठयति मेघानां माला वृन्दं[१] कलापिनाम्।
यूनां चोत्कण्ठयत्येष[२] मानसं मकरध्वजः ।।११८।।

अन्वय— मेघानां माला कलापिनां वृन्दं उत्कण्ठयति, एषः मकरध्वजः यूनां मानसं च उत्कण्ठयति।

शब्दार्थ— मेघानां = मेघों की। माला = माला, पङ्क्ति। कलापिनां = मयूरों के। वृन्दं = झुण्ड को, समूह को। उत्कण्ठयति = उत्कण्ठित (उद्ग्रीव) कर देते है। एषः = यह। मकरध्वजः = कामदेव। यूनां = युवको के। मानसं = मन को। उत्कण्ठयति = उत्कण्ठित (विलासोत्सुक, पर्युत्सुक) कर देता है।

अनुवाद— मेघो की माला (पङ्क्ति) मयूरो के झुण्ड (समूह) को उत्कण्ठित (ऊपर की ओर उठाये गये गर्दन वाला) कर देती है और कामदेव युवकों के मन को उत्कण्ठित (पर्युत्सुक) कर देता है।

संस्कृतव्याख्या— पदावृतिं निदर्शयत्यत्र- **उत्कण्ठयतीति। मेघानां** जलदानां **माला** पङ्क्तिः **कलापिनां** मयूराणां **वृन्दं** समूहम् **उत्कण्ठयति** उद्ग्रीवं करोति **एषः** अनुभूयमानः **मकध्वजः च** कामदेवश्च **यूनां** युवकानां **मानसं** चेतः **उत्कण्ठयति** पर्युत्सुकीकरोति। निदर्शनेऽस्मिन् 'उत्कण्ठयति' इत्येतस्य पदस्य आवृत्तिः अस्य पदस्य चोभयत्र भिन्नार्थकत्वान्नार्थावृत्तिः। अत एवात्र पदावृत्त्या पदावृत्तिः।

---

(१) वर्ग।

(२) -त्यद्य, -त्येव।

विशेष—

(१) **पदावृत्ति**— जिस आवृत्ति अलङ्कार में भिन्न-भिन्न अर्थ को द्योतित करने वाले एक ही समान पद की आवृत्ति होती है, वह पदावृत्ति अलङ्कार कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में एक ही पद 'उत्कण्ठयति' की आवृत्ति हुई है किन्तु दोनों स्थलों पर उसका अर्थ समान नहीं प्रत्युत भिन्न-भिन्न है अतः यहाँ पदावृत्ति अलङ्कार है। आवृत्ति न होने पर यहाँ आदिक्रियादीपक होता।

(उभयावृत्तिनिदर्शनम्)

जित्वा विश्वं भवानत्र विहरत्यवरोधनैः ।
विहरत्यप्सरोभिस्ते रिपुवर्गो दिवं गतः ।।११९।।

अन्वय— विश्वं जित्वा भवान् अत्र अवरोधनैः विहरति, ते दिवङ्गतः रिपुवर्गः अप्सरोभिः विहरति।

शब्दार्थ— विश्वं = संसार को, समस्त भूमण्डल को। जीत्वा = जीत कर, पराजित करके। भवान् = आप। अत्र = यहाँ, इस (श्लोक) में। अवरोधनैः = अन्तःपुर (की रानियों) के साथ। विहरति = विहार कर रहे हैं। ते = तुम्हारा, आप का। दिवङ्गतः = स्वर्गलोक को प्राप्त। रिपुवर्गः = शत्रुवर्ग, शत्रुओं का समूह। अप्सरोभिः = अप्सराओं (स्वर्गलोक की सुन्दरियों) के साथ। विहरति = विहार कर रहा है।

अनुवाद— (हे राजन्,) संसार (समस्त भूमण्डल) को जीत कर (पराजित करके) आप अन्तःपुर की सुन्दरियों के साथ विहार कर रहे हैं और (युद्ध में आप द्वारा मारे गये अत एव) स्वर्गलोक को प्राप्त आप का शत्रुवर्ग (स्वर्गलोक में) अप्सराओं (स्वर्गलोक की सुन्दरियों) के साथ विहार कर रहा है।

संस्कृतव्याख्या— उभयावृत्तिं निदर्शयत्यत्र- **जित्वेति**। हे राजन् **विश्वं** संसारं सम्पूर्णं भूमण्डलं **जित्वा** पराजित्य **भवान्** राजा **अत्र** अस्मिन् भूलोके **अवरोधनैः** अन्तःपुरस्थाभिः रमणीभिः **विहरति** रमणं करोति **ते** तव **दिवङ्गतः** युद्धे त्वया हतः अत एव स्वर्गं प्राप्तः **रिपुवर्गः** शत्रुवर्गः स्वर्गलोके **अप्सरोभिः** दिव्याङ्गनाभिः विहरति। अत्र विहरति इत्यस्य पदस्य स्वर्गपदस्य तदर्थस्य च द्वयोः वाक्ययोः आवर्तनाद् उभयावृत्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) **उभयावृत्ति अलङ्कार**— जिस आवृत्ति अलङ्कार में समानार्थक पद और उसके अर्थ- दोनों की आवृत्ति होती है, वह उभयावृत्ति अलङ्कार कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में समानार्थक 'विहरति' पद तथा उसके अर्थ– दोनो की दोनो वाक्यों में आवृत्ति हुई है अतः यहाँ उभयावृत्ति अलङ्कार है।

(आक्षेपालङ्कारनिरुपणम्)

प्रतिषेधोक्तिराक्षेपस्त्रैकाल्यापेक्षया त्रिधा।
अथास्य पुनराक्षेप्यभेदानन्त्यादनन्तता ।।१२०।।

अन्वय— प्रतिषेधोक्तिः आक्षेपः। त्रैकाल्यापेक्षया त्रिधा। अथ अस्य आक्षेप्यभेदानन्त्यात् पुनः अनन्तता।

शब्दार्थ— प्रतिषेधोक्तिः = प्रतिषेधकथन। आक्षेपः = आक्षेप (कहलाता है)। त्रैकाल्यापेक्षया = तीनों कालों से सम्बन्धित (अर्थ) की अपेक्षा से। त्रिधा = तीन प्रकार का (होता है)। अथ = तदनन्तर। अस्य = इस (आक्षेप) के। आक्षेप्य-भेदानन्त्यात् = आक्षेप्य (आक्षेप योग्य) (अर्थ = वस्तु) के भेदों की अनन्तता होने के कारण। पुनः = फिर। अनन्तता = अनन्तता (होती है)।

अनुवाद— प्रतिषेध कथन आक्षेप (अलङ्कार) (कहलाता है)। तीनों (भूत, वर्तमान और भविष्य) कालों से सम्बन्धित (अर्थ) की अपेक्षा से (यह) (वृत्ताक्षेप, वर्तमानाक्षेप और भविष्यदाक्षेप) तीन प्रकार का (होता है)। इस आक्षेप्य (आक्षेप योग्य) (वस्तु) के भेदों की अनन्तता होने के कारण (इस अलङ्कार के) पुनः (भेदों की) अनन्तता (होती है)।

संस्कृतव्याख्या— आक्षेपालङ्कारं विवेचयत्यत्र– **प्रतिषेधोक्तिरिति। प्रतिषेधोक्तिः** प्रतिषेधस्य उक्तिः कथनं, न तु प्रतिषेधः **आक्षेपः** आक्षेपनामालङ्कारः भवति। इयञ्च प्रतिषेधोक्तिः किमपि फलमनुसन्धायैव करिष्यते, तच्च फलं विशेषाभिधानरूपम्, प्रतिषेधोऽपि अभीष्टार्थस्यैव, तस्यैव प्रतिषेधे चमत्कारोदयसम्भवात्। तथा च विशेषाभिधानेच्छया अभीष्टार्थस्य प्रतिषेधाभास एव आक्षेपः इति भावः। अयं चाक्षेपः **त्रैकाल्यापेक्षया** भूतवर्तमानभविष्यत्रैकालिकपदार्थसम्बन्धित्वेन **त्रिधा** वृत्ताक्षेपः वर्तमानाक्षेपः भविष्यदाक्षेपश्चेति त्रिधा भवति। **अथ** तदनन्तरम् **अस्य** आक्षेपस्य **आक्षेप्यभेदानन्त्यात्** आक्षेप्यभेदानाम् आक्षेपविषयप्रकाराणाम् आनन्त्याद् **अनन्तत्वात्** अनन्तता अनन्तरूपता सम्भाव्यते इति शेषः।

विशेष—

(१) अभिधान की इच्छा से अभीष्ट वस्तु के प्रतिषेधकथन (प्रतिषेधाभास = निषेधाभास) को आक्षेप अलङ्कार माना जाता है।

(२) दण्डी के अनुसार काल के आधार पर आक्षेप अलङ्कार तीन प्रकार का होता है–

वृत्ताक्षेप, वर्तमानाक्षेप और भविष्यदाक्षेप; क्योंकि प्रतिषेध-कथन भूत, वर्तमान और भविष्य– इन त्रिकालिक पदार्थों का ही होता है। चूंकि प्रतिषेध्य पदार्थों के अनन्त (अगणित) प्रकार होते हैं इसलिए इन पदार्थों की अनन्तता के आधार पर इन आक्षेपालङ्कार के भेदों की भी अनन्तता होती है।

(वृत्ताक्षेपनिदर्शनम्)

अनङ्गः पञ्चभिः पौष्पै[१]र्विश्वं व्यजयतेषुभिः[२]।
इत्यसम्भाव्यमथवा विचित्रा वस्तुशक्तयः ।।१२१।।

अन्वय— अनङ्गः पञ्चभिः पौष्पैः इषुभिः विश्वं व्यजयत इति असम्भाव्यम् अथवा वस्तुशक्तयः विचित्राः (भवन्ति)।

शब्दार्थ— अनङ्गः = अङ्गविहीन (कामदेव)। पञ्चभिः = पाँच। पौष्पैः = पुष्पनिर्मित, पुष्पयुक्त। इषुभिः = बाणों से। विश्वं = (सम्पूर्ण चराचर) जगत् को। व्यजयत = जीत लिया, पराजित कर दिया। इति = यह। असम्भाव्यम् = असम्भव (है)। अथवा = अथवा। वस्तुशक्तयः = वस्तुओं (पदार्थों) की शक्तियाँ। विचित्राः = विचित्र, (अद्भुत, अकल्पनीय) (होती हैं)।

अनुवाद— अङ्गविहीन (कामदेव) (अपने) पाँच पुष्पनिर्मित बाणों से (सम्पूर्ण चराचर) जगत् को पराजित कर दिया, यह असम्भव है अथवा वस्तुओं (पदार्थों) की (कार्य को सिद्ध करने वाली) शक्तियाँ विचित्र (अकल्पनीय) होती हैं।

संस्कृतव्याख्या— आक्षेपालङ्कारस्य प्रथमं भेदं वृत्ताक्षेपं निदर्शयति– **अनङ्ग इति**। **अनङ्गः** अङ्गविहीनः कामदेवः **पञ्चभिः** पञ्चसङ्ख्याकैः **पौष्पैः** पुष्पनिर्मितैः **असुभिः** बाणैः **विश्वं** सम्पूर्णं चराचरं जगत् **व्यजयत** पराजयत **इति** एतद् **असम्भाव्यम्** असम्भावनीयं विद्यते **अथवा वस्तुशक्तयः** वस्तूनां पदार्थानां शक्तयः कार्यसम्पादकसामर्थ्यानि **विचित्राः** अद्भुताः कल्पनातीताः वा भवन्तीति शेषः।

विशेष—

(१) अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलकमल– ये पाँच पुष्प कामदेव के पाँच बाण माने गये हैं।

---

(१) पुष्पैर्।

(२) विजयते।

(वृत्ताक्षेपनिदर्शनविश्लेषाणम्)

इत्यनङ्गजयायोगबुद्धिर्हेतुबलादिह ।
प्रवृत्तैव यदाक्षिप्ता वृत्ताक्षेपः स ईदृशः[१] ।।१२२।।

अन्वय— इति प्रवृता एव अनङ्गजयायोगबुद्धिः इह हेतुबलात् एव यत् आक्षिप्ता ईदृशः सः वृत्ताक्षेपः।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार यहाँ। प्रवृत्ता एव = भूतविषयक ही, अतीत-काल-विषयक, भूतकालिक। अनङ्गजयायोगबुद्धिः = अङ्गविहीन (कामदेव) द्वारा विश्वविजय की असङ्गति (असम्भावना) का ज्ञान (बोध, अयोगबुद्धि)। इह = यहाँ। हेतुबलात् = हेतु के बल से, हेतु के निर्देश के कारण। यद् आक्षिप्ता = जो प्रतिषेध (निषेध) किया गया है। ईदृशः = इस प्रकार का। सः = वह (आक्षेप)। वृत्ताक्षेपः = वृत्ताक्षेप (है)।

अनुवाद— इस प्रकार (इस कथन में) भूतकालिक (भूतविषयक) ही अङ्गविहीन (कामदेव) द्वारा विश्वविजय की असङ्गति (असम्भावना) का (प्रथम स्थापित), यहाँ (वस्तुशक्तियाँ विचित्र होती है- इस) हेतु के निर्देश (बल) के कारण जो प्रतिषेध किया गया है (अर्थात् कामदेव द्वारा चराचर जगत् के पराजित करने की सम्भावना को स्वीकार कर लिया गया है), वह इस प्रकार का (आक्षेप) (भूतकालिक अर्थ का प्रतिषेधरूप होने के कारण) वृत्ताक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— वृत्ताक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** एवं प्रकारेण **प्रवृता एव** भूतकालसम्बन्धिनी एव **अनङ्गजयायोगबुद्धिः** कामकर्तृकविश्व-विजयासम्भवत्वज्ञानम् **इह** अत्र **हेतुबलात्** विचित्रा वस्तुशक्तयः इति कारणप्रदर्शनाद् एव **यद् आक्षिप्ता** प्रतिषिद्धा, न कामदेवेन विश्वविजयोऽसम्भवः एवं प्रकारेण निषिद्धा **ईदृशः** एवंविधः **सः** आक्षेपः **वृत्ताक्षेपः** विद्यते। अत्र कामकर्तृकपुष्पमयबाणकरणेन समस्तचराचरजयकर्मकजयस्य असम्भाव्यताबोधः प्रवृत्तः सतः वस्तुमाहात्म्यनिर्देशेन प्रतिषिध्यत इत्येवं प्रकारकोऽयम् आक्षेपो वृत्ताक्षेपः।

विशेष—

(१) **वृत्ताक्षेप**—जिस आक्षेप आलङ्कार में भूतकालिक पदार्थ का प्रतिषेध हेतु बताकर किया जाता है, वह वृत्ताक्षेप कहलाता है। इसे भूताक्षेप या अतीताक्षेप भी कहा जा सकता है।

---

(१) क्षेपस्तदीदृशम्, तदीदृशः।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में अङ्गविहीन कामदेव कर्त्ता है, वह सुकुमार पुष्पबाण करण से सम्पूर्ण विश्व को पराजित कर लिया– इस असम्भाव्य भूतकालिक पदार्थ का प्रतिषेध वस्तुशक्ति की विचित्रतारूप हेतु को बताकर किया गया है अतः यहाँ वृत्ताक्षेप नामक आक्षेपालङ्कार का भेद है।

(वर्त्तमानाक्षेपनिदर्शनम्)

कुतः कुवलयं कर्णे करोषि कलभाषिणि ।
किमपाङ्गमपर्याप्तमस्मिन्कर्मणि मन्यसे ।।१२३।।

अन्वय— कलभाषिणि, कर्णे कुवलयं कुतः करोषि, किम अस्मिन कर्मणि अपाङ्गम् अपर्याप्तं मन्यसे?

शब्दार्थ— कलभाषिणि = हे मञ्जुभाषिणि, हे मधुरभाषिणि (मधुर बोलने वाली)। कर्णे = कान में। कुवलयं = नीलकमल को। कुतः करोषि = क्यों लगा रही हो। किम् = क्या। अस्मिन् = इस। कर्मणि = काम में। अपाङ्गम् = (कानों तक पहुँची) कटाक्षदृष्टि को। अपर्याप्तं = अपर्याप्त, असफल, कम। मन्यसे = मान रही हो, समझ रही हो।

अनुवाद— हे मधुरभाषिणि (प्रियतमे), कानों में (आभूषणस्वरूप) नीलकमल को क्यों लगा रही हो तथा इस (अपने कान को सजाने के अथवा मुझे कामबाण से आहत करने के) कान में (कानों तक पहुँची अपनी) कटाक्षदृष्टि को असफल (कम) मान रहीं हो (समझ रही हो)।

(वर्तमानाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

स वर्तमानाक्षेपोऽयं कुर्वत्येवासितोत्पलम् ।
कर्णे काचित् प्रियेणैवं चाटुकारेण रुध्यते ।।१२४।।

अन्वय— कर्णे असितोत्पलं कुर्वतीं काचित् चाटुकारेण प्रियेण एवं निरुध्यते सः अयं वर्तमानाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— कर्णे = कान में। असितोत्पलं = नीलकमल को। कुर्वती = (आभूषण के रूप में) लगाती हुई। काचित् = कोई (नायिका)। चाटुकारेण = चाटुकारिता करने वाले। प्रियेण = प्रियतम के द्वारा। एवं = इस प्रकार से। रुध्यते = (नीलकमल धारण करने के काम से) रोकी जा रही है। सः = वह। अयं = यह। वर्त्तमानाक्षेपः = वर्त्तमानाक्षेप (है)।

अनुवाद—कान में नीलकमल को (आभूषण के रूप में) लगाती हुई (नायिका) चाटुकारिता करने वाले प्रियतम द्वारा इस प्रकार से (नीलकमल धारण करने के काम

से) रोकी जा रही है, (अतः यहाँ) वह (नीलकमल-धारणरूप वर्तमानकालिक अर्थ का प्रतिषेध होने के कारण) यह वर्तमानाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— वर्त्तमानाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **स इति**। **कर्णे** श्रोत्रे **असितोत्पलम्** आभूषणरूपं नीलकमलं **कुर्वती** धारयन्ती **काचित्** नयिका **चाटुकारेण** चाटुक्तिकर्तृणा **प्रियेण** प्रियतमेन **एवम्** अनेन प्रकारेण **रुध्यते** नीलकमलधारणात् प्रतिषिध्यते इत्यस्मात् कारणात् **सः** उदाहरणे प्रोक्तः **अयम्** आक्षेपः **वर्त्तमानाक्षेपः** तत्रामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप अलङ्कार में वर्त्तमानकालिक पदार्थ का हेतु बताकर आक्षेप (प्रतिषेध) किया जाता है, वह वर्तमानाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में वर्तमानकालिक कान में नीलकमल के लगाने का कार्य, कानों तक कटाक्ष दृष्टि के विस्तृत होने से कर्णाभूषणत्व का कार्य सम्पन्न होता हुआ हेतु बताकर प्रतिषिद्ध किया जा रहा है। इस प्रतिषेध से नायिका की आँखों की अतिशय आयतता और नीलकमलसदृशता दोनों व्यक्त हो रही है। अतः वर्तमानकालिक क्रिया 'करोषि' के प्रतिषेध के कारण वर्त्तमानाक्षेप है।

(भविष्यदाक्षेपनिदर्शनम्)

सत्यं ब्रवीमि न त्वं मां द्रष्टुं वल्लभ लप्स्यसे।
अन्यचुम्बनसङ्क्रान्तलाक्षारक्तेन चक्षुषा।।१२५।।

अन्वय— वल्लभ, सत्यं ब्रवीमि, अन्यचुम्बनसङ्क्रान्तलाक्षारक्तेन चक्षुषा मां द्रष्टुं त्वं न लप्स्यसे।

शब्दार्थ— वल्लभ = हे प्रियतम, हे कान्त। सत्यं = सच। ब्रवीमि = कहती हूँ। अन्यचुम्बनसङ्क्रान्तलाक्षारक्तेन = अन्य (दूसरी युवती) के चुम्बन के कारण लगे हुए लाक्षारस से लाल हुई। चक्षुषा = आँख के द्वारा। मां = मुझको। द्रष्टुं = देखने के लिए। त्वं = तुम। न लप्स्यसे = नहीं पाओगे, नहीं प्राप्त करोगे।

अनुवाद— हे प्रियतम! मैं सच कह रही हूँ कि अन्य (दूसरी युवती) के चुम्बन के कारण लगे हुए लाक्षारस से लाल हुई (अपनी) आँखों द्वारा मुझको देखने के लिए तुम नहीं प्राप्त करोगे।

संस्कृतव्याख्या— भविष्यदाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **सत्यमिति**। **वल्लभ** हे प्रियतम **सत्यं** यथार्थं **ब्रवीमि** कथयामि यद् **अन्यचुम्बनसङ्क्रान्तलाक्षारक्तेन** अन्यायाः मदतिरिक्तायाः नायिकायाः चुम्बनेन चुम्बनव्यापारेण सङ्क्रान्तया लग्नया लाक्षया अधर-

लिप्तया रक्तेन अरुणीकृतेन **चक्षुषा** नेत्रेण **मां द्रष्टुं** दर्शनाय **त्वं** वल्लभः **न लप्स्यसे** न प्राप्स्यसि। अन्यायाः नायिकायाः सम्पर्केण चेत्त्वं दूषितः भविष्यति तन्मम लोकान्तरप्रस्थानमपि निश्चितरूपेण भविष्यतीति भावः।

(भविष्यदाक्षेपानिदर्शनविश्लेषणम्)

सोऽयं भविष्यदाक्षेपः प्रागेवातिमनस्विनी।
कदाचिदपराधोऽस्य भावीत्येवमरुन्द्ध यत्॥१२६॥

अन्वय— यत् अतिमनस्विनी अस्य भावी अपराधः कदाचित् प्राक् एव अरुन्द्ध सः अयं भविष्यदाक्षेपः।

शब्दार्थ— यत् = जो। अतिमनस्विनी = स्वाभिमानशीला (नायिका)। अस्य = इस (नायक) का। भावी = भविष्य में होने वाले। **कदाचित्** = कहीं, सम्भावित। अपराधः = अपराध। प्राक् एव = (होने से) पूर्व ही। अरुन्द्ध = रोक दिया है, प्रतिषेध कर दिया है। सः = वह। अयं = यह। भविष्यदाक्षेपः = भविष्यदाक्षेप है।

अनुवाद— (यह) जो स्वाभिमानशीला (नायिका) ने इस (नायक) के भविष्य में होने वाले सम्भावित (अन्य नायिका से सम्पर्कस्थापन-रूप) अपराध को (होने से) पूर्व ही प्रतिषेध कर दिया है, वह (भविष्य में होने वाली वस्तु का प्रतिषेध रूप) यह भविष्यदाक्षेप (अलङ्कार) है।

संस्कृतव्याख्या— भविष्यदाक्षेपनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **सोऽयमिति**। **यद् अतिमनस्विनी** स्वाभिमानशीला नायिका **अस्य** नायकस्य **भावी** भविष्यत्कालिकः **कदाचित्** सम्भावितः **अपराधः** अन्यनायिकासम्पर्करूपः **प्राक् एव** अपराधाचरणात्पूर्वमेव **अरुन्द्ध** प्रतिषेधवती। अत एव **सः** उदाहरणे प्रोक्तः भविष्यदर्थप्रतिषेधरूपत्वाद् **अयं भविष्यदाक्षेपः** तन्नाम आक्षेपालङ्कारभेदः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप में भविष्यत्कालिक पदार्थ का प्रतिषेध किया जाता है, वह भविष्यदाक्षेप होता है।

(२) उक्त उदाहरण में स्वाभिमानशीला नायिका ने प्रियतम के भविष्यत्कालिक सम्भावित अन्यस्त्रीसम्पर्करूप अपराध होने से पूर्व ही प्रतिषेध कर दिया है, अतः यहाँ भविष्यदाक्षेप है।

(३) इस प्रकार दण्डी ने भूत, वर्तमान और भविष्यत्- इन त्रिकालों पर आधारित आक्षेप के तीन भेदों वृत्ताक्षेप, वर्तमानाक्षेप और भविष्यदाक्षेप को प्रतिपादित

किया है। आगे आक्षेपयोग्य वस्तु के आधार पर आपेक्षालङ्कार के भेदों का दिग्दर्शन कराया है।

(धर्माक्षेपनिदर्शनम्)

तव तन्वङ्गि मिथ्यैव रूढमङ्गेषु मार्दवम् ।
यदि सत्यं मृदून्येव किमकाण्डे रुजन्ति माम् ।।१२७।।

अन्वय— तन्वङ्गि, तव अङ्गेषु मार्दवं मिथ्या एव रूढं यदि सत्यं मृदूनि एव (तर्हि) अकाण्डे माम् किं रुजन्ति।

शब्दार्थ— तन्वङ्गि = हे कृशङ्गि, हे पतले शरीर वाली। तव = तुम्हारे। अङ्गेषु = अङ्गों में। मार्दवं = मृदुता, कोमलता, सुकुमारता। मिथ्या एव = झूठी ही ही, अवास्तविक ही, अयथार्थ ही। रूढं = प्रसिद्ध है। यदि = यदि। सत्यं = सचमुच, वास्तविक, यथार्थ। मृदूनि = मृदुता, कोमलता, सुकुमारता। अकाण्डे = एकाएक, सहसा। मां = मुझको। किं = क्यों। रुजन्ति = पीड़ित करते।

अनुवाद— हे कृशाङ्गि ! तुम्हारे अङ्गों में स्थित (विद्यमान) कोमलता (सुकुमारता) झूठी (अयथार्थ) ही प्रसिद्ध है। यदि (तुम्हारे अङ्ग) सचमुच (यथार्थतः) कोमल होते तो) सहसा मुझको क्यों पीड़ित करते (अर्थात् पीड़ित नहीं करते)।

संस्कृतव्याख्या— धर्माक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **तवेति**। **तन्वङ्गि** हे कृशाङ्गि **तव** कृशाङ्ग्याः **अङ्गेषु** शरीरावयवेषु **रूढं** व्याप्तं **मार्दवं** सुकुमारत्वं **मिथ्या एव** अयथार्थ एव, **यदि** चेत् तवाङ्गानि **सत्यं** यथार्थतः **मृदूनि** एव कोमलानि सन्ति तत् **अकाण्डे** अकारणं मां **किं** किमर्थं **रुजन्ति** पीडयन्ति। किञ्चित् मृदु वस्तु पीडादायकं न भवति कठोरस्यैव पीडनस्वभावात्।

(धर्माक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

धर्माक्षेपोऽयमाक्षिप्तमङ्गनागात्रमार्दवम् ।
कामुकेन यदत्रैवं कर्मणा तद्विरोधिना ।।१२८।।

अन्वय— अङ्गनागात्रमार्दवं कामुकेन एवं तद्विरोधिना कर्मणा यत् आक्षिप्तम् अयं धर्माक्षेपः।

शब्दार्थ— अङ्गनागात्रमार्दवं = युवती के अङ्गों की सुकुमारता। कामुकेन = प्रियतम (कामुक) द्वारा। एवं = इस प्रकार। तद्विरोधिना = उस (सुकुमारता) के (परपीडनरूप) विरोधी। कर्मणा = कार्य से, व्यापार से। आक्षिप्तं = आक्षेप (प्रतिषेध) किया गया है। अयं = यह। धर्माक्षेपः = धर्माक्षेप है।

अनुवाद— युवती के अङ्गों की सुकुमारता का (उसके) प्रियतम (कामुक) द्वारा इस प्रकार उस (सुकुमारता) के (परपीडनरूप) विरोधी व्यापार से जो आक्षेप (प्रतिषेध) किया गया है, वह धर्माक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— धर्माक्षेपनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **धर्माक्षेप इति । अङ्गनागात्रमार्दवं** अङ्गनायाः कस्याश्चिद् युवत्याः अङ्गानां मार्दवं सुकोमलत्वं **कामुकेन** तत्प्रियतमेन (कामुकेन वा) **एवं** अनेन प्रकारेण **तद्विरोधिना** तस्य सौकुमार्यस्य विरोधिना प्रतिकूलेन पीडनरूपेण **कर्मणा** व्यापारेण **यत् आक्षिप्तं** प्रतिषेधं कृतम् तस्मात्कारणाद् **अयम्** आक्षेपः अङ्गनाङ्गधर्मस्य आक्षेपाद् **धर्माक्षेपः** तन्नामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप अलङ्कार में पदार्थ के धर्म का प्रतिषेध किया जाता है, वह धर्माक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में युवती के अङ्गों की मृदुता का प्रतिषेध पीडन द्वारा किया गया है। पीडन मृदुता का धर्म (गुण) नहीं प्रत्युत कठोरता का धर्म होता है। इस प्रकार पीडन क्रिया द्वारा मृदुता के धर्म पर आक्षेप किया गया है, अतः यहाँ धर्माक्षेप है।

(धर्म्याक्षेपनिदर्शनम्)

सुन्दरी सा न वेत्येष[1] विवेकः केन[2] जायते।
प्रभामात्रं हि तरलं दृश्यते न तदाश्रयः[3] ।।१२९।।

अन्वय— सा सुन्दरी, न वा इति एषः विवेकः कस्य जायते, हि तरलं प्रभामात्रं दृश्यते, तदाश्रयः न (दृश्यते)।

शब्दार्थ— सा = वह। सुन्दरी = रमणी (है)। न वा = अथवा नहीं। इति = इस प्रकार। एषः = यह। विवेकः = निश्चयात्मक ज्ञान। केन = किस प्रकार से। जायते = हो सकता है, उत्पन्न हो सकता है। हि = क्योंकि। तरलं = चञ्चल। प्रभामात्रं = प्रभामात्र, ज्योतिमात्र। दृश्यते = दिखलायी पड़ रही है, दृष्टिगोचर हो रही है। **तदाश्रयः** = उस (प्रभा) का आश्रय। न = (दृष्टिगोचर) नहीं (हो रहा है)।

अनुवाद— वह रमणी है अथवा नहीं, इस प्रकार का निश्चयात्मक ज्ञान किस प्रकार से हो सकता है (अर्थात् यह ज्ञान किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता क्योंकि

(१) भवत्येवं, वा न वेत्येष, सा सुन्दरीयमित्ययेष।
(२) कस्य।
(३) तत्र न-।

चञ्चल प्रभामात्र (ज्योतिमात्र) ही दिखलायी पड़ रही है, उस (प्रभा) का आश्रय (अर्थात् रमणी का शरीर) नहीं (दृष्टिगोचर हो रहा है)।

संस्कृतव्याख्या— धर्म्याक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **सुन्दरीति** । **सा** पुरोदृश्यमाना **सुन्दरी** रमणी अस्ति **न वा** अथवा नास्ति **इति** तद्भावाभावनिर्णयरूपो **विवेकः** निश्चयात्मकं ज्ञानं केन प्रकारेण **जायते** उत्पद्यते, **हि** यतो हि **तरलं** चञ्चलम् अत एव सर्वतः प्रसरिततया दृष्टिविघातकं **प्रभामात्रं** ज्योतिमात्रं **दृश्यते** दृष्टिगोचरं भवति, **तदाश्रयः** तस्याः प्रभायाः आश्रयः आधारः सुन्दर्याः शरीरं **न** दृश्यते।

(धर्म्याक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

धर्म्याक्षेपोऽयमाक्षिप्तो धर्मी धर्मं प्रभाह्वयम् ।

अनुज्ञायैव[1] यद्रूप[2]मत्याश्चर्यं विवक्षता ।।१३०।।

अन्वय— अत्याश्चर्यं रूपं विवक्षता प्रभाह्वयं धर्मम् अनुज्ञाय एव धर्मी यद् आक्षिप्तः धर्म्याक्षेपः।

शब्दार्थ— अत्याश्चर्यं = (सुन्दरी के) अत्यन्त आश्चर्यजनक। रूपं = रूप को। विवक्षता = कहने की इच्छा वाले (नायक) के द्वारा। प्रभाह्वयं = प्रभा-नामक। धर्म = धर्म को। अनुज्ञाय एव = स्वीकार करके ही। धर्मी = धर्मी। यद् आक्षिप्तः = जो प्रतिषेध किया गया है, जो निषेध किया गया है। अयं = यह। धर्म्याक्षेपः = धर्म्याक्षेप है।

अनुवाद— (सुन्दरी के) अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप को कहने की इच्छा वाले (नायक) के द्वारा प्रभानामक धर्म को स्वीकार करके धर्मी का जो प्रतिषेध किया गया है, यह (धर्मी का प्रतिषेध होने के कारण) धर्म्याक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— धर्म्याक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **धर्म्याक्षेप इति** । **अत्याश्चर्यं** सुन्दर्याः अत्यन्तम् आश्चर्यजनकं **रूपं विवक्षता** वक्तुमभिलषमाणेन नायकेन **प्रभाह्वयं** प्रभानामकं **धर्मं** नायिकाशरीरगुणम् **अनुज्ञाय** स्वीकृत्य **एव धर्मी** प्रभाश्रयभूतः नायिकादेहः **आक्षिप्तः** प्रतिषिद्धः । **अयम्** एषः धर्मिणः नायिकादेहस्य आक्षेपात् **धर्म्याक्षेपः** तत्रामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप अलङ्कार में धर्मी का आक्षेप किया जाता है, वह धर्म्याक्षेप कहलाता है।

---

(१) अनुज्ञायेव, -यात्र।

(२) तद्रूपम्।

(२) उक्त उदाहरण में सुन्दरी के शरीर के धर्म प्रभा का तो कथन हुआ है किन्तु प्रभा के आश्रयभूत धर्मी शरीर का प्रतिषेध (आक्षेप) किया गया है। सुन्दरी के अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रभामय रूप का प्रतिपादन व्यङ्ग्य-प्रयोजन है। अङ्गों की कान्ति इतनी अधिक है कि उसकी चकाचौंध में अङ्ग दिखलायी ही नहीं पड़ते। इस प्रकार शरीर का आक्षेप होने से धर्म्याक्षेप है।

(कारणाक्षेपनिदर्शनम्)

चक्षुषी तव रज्येते स्फुरत्यधरपल्लवः[१]।
भ्रुवौ च भुग्नौ[२] न तथाप्यदुष्टस्यास्ति मे भयम् ।।१३१।।

अन्वय— तव चक्षुषी रज्येते, अधरपल्लवः स्फुरति, भ्रुवौ च भुग्नौ, तथापि अदुष्टस्य मे भयम् न अस्ति।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारी। चक्षुषी = दोनों आँखें। रज्येते = लाल हो रही है। अधरपल्लवः = ओष्ठरूपी पल्लव। स्फुरति = फड़क रहे हैं। भ्रुवौ च = और दोनों भौंहें। भुग्नौ = टेढ़ी (हो गयी है)। तथापि = तो भी। अदुष्टस्य = दोषरहित। मे = मुझे। भयं = डर। न अस्ति = नहीं है।

अनुवाद— (हे मान करने वाली प्रियतमे), (यद्यपि) तुम्हारी दोनों आँखें (क्रोध से) लाल हो रहीं हैं, ओष्ठरूपी पल्लव फड़क रहें है और दोनों भौहें टेढ़ी (हो गयी है) तो भी (किसी अन्य स्त्री के साथ सम्पर्क न करने के कारण) दोष (अपराध) से रहित मुझे डर नहीं (लग रहा) है।

संस्कृतव्याख्या— कारणाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **चक्षुषीति**। मानिनीं प्रियां प्रति प्रियस्योक्तिरियम्। हे मानिनि, यद्यपि **तव** मानिन्याः **चक्षुषी** नेत्रे क्रोधेन **रजयेते** आरक्ते भवतः, **अधरपल्लवः** ओष्ठरूपः पल्लवः कोपेन **स्फुरति** कम्पते, **भ्रुवौ च** क्रोध-वशात् **भुग्नौ** वक्रतामाप्नुतः **तथापि** अनेन प्रकारेण त्वयि कुपितायामपि **अदुष्टस्य** अन्यस्त्रीसम्पर्कस्थापनरूपापराधरहितस्य **मे** मम किञ्चिदपि **भयं नास्ति** न विद्यते।

(कारणाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

स एषः कारणाक्षेपः प्रधानं कारणं भियः।
स्वापराधो निषिद्धोऽत्र यत्प्रियेण पटीयसा ।।१३२।।

अन्वय— अत्र पटीयसा प्रियेण भियः यत् प्रधानं स्वापराधः निषिद्धः सः एषः कारणाक्षेपः (विद्यते)।

---

(१) पल्लवम्। (२) भुग्ने।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में। पटीयसा = कुशल, निपुण, चतुर। प्रियेण = प्रियतम के द्वारा। भियः = भय का। यत् = जो। प्रधानं = प्रधान, मुख्य, मूल। कारणं = कारण। स्वापराधः = अपना अपराध (दोष)। निषिद्धः = प्रतिषिद्ध किया गया है, आक्षिप्त किया गया है, सः = वह। एषः = यह। कारणाक्षेपः = कारणाक्षेप है।

अनुवाद— यहाँ (इस उदाहरण में) (मानिनी प्रियतमा को मनाने में) कुशल प्रियतम के द्वारा भय का मूल कारण (अन्य युवती से न सम्पर्क करने के आपने) अपराध का जो प्रतिषिद्ध किया गया है, वह (अपराध के कारण का प्रतिषेध) यह कारणाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— कारणाक्षेपनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **स एष इति**। अत्र उदाहरणेऽस्मिन् **पटीयसा** मानिनीनायिकानुनयकुशलेन **प्रियेण** नायकेन **भियः** मानिनीहेतुकस्य भयस्य **यत् प्रधानं** प्रमुखं **कारणं** हेतुः **स्वापराधः** अन्ययुवतीसम्पर्कस्थापनरूपः स्वदोषः **निषिद्धः** आत्मानमपराधरहितकथनेन प्रतिषिद्धः तस्मात् कारणात् **सः** स्वापराधरूपस्य भयकारणस्य आक्षेपः **एषः** अयं **कारणाक्षेपः** तन्नामाक्षेपः। भयरूपस्य कार्यस्याक्षेपात् कार्याक्षेपोऽपि विद्यते। अत एवात्राक्षेपद्वयस्य सङ्करः अस्ति।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में कार्य के कारण का प्रतिषेध होता है, वह कारणाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में भय के कारणभूत अन्यस्त्रीसम्पर्कविषयक अपराध का प्रतिषेध किया गया है अतः यहाँ कारणाक्षेप है।

(३) इस उदाहरण भयरूप कार्य का भी प्रतिषेध हुआ है, अतः कार्याक्षेप भी होने से कारणाक्षेप और कार्याक्षेप का सङ्कर है।

(कार्याक्षेपनिदर्शनम्)

दूरे प्रियतमः सोऽयमागतो जलदागमः।
दृष्टाश्च फुल्ला निचुला न मृता चास्मि किन्विदम्[१] ।।१३३।।

अन्वय— प्रियतमः दूरे (अस्ति) सः च अयं जलदागमः आगतः, निचुलाः फुल्लाः दृष्टाः, न च मृता अस्मि, इदं किं नु (विद्यते)।

शब्दार्थ— प्रियतमः = प्रियतम। दूरे = दूर (स्थान पर), विदेश में। सः = वह। अयं = यह। जलदागमः = वर्षाकाल। आगतः = आ गया है। फुल्लाः =

(१) न्वहम्।

फूले हुए, विकसित पुष्पों वाले। निचुलाः = बेंत। दृष्टाः = दिखलायी पड़ रहे हैं। मृता = मरी, मृत्यु को प्राप्त। न अस्मि = नहीं हुई हूं। इदम् = यह। किं नु = कैसा आश्चर्य है, क्या बात है।

अनुवाद— प्रियतम दूर (स्थान पर, विदेश में) हैं और वह (विरहिणियों को पर्युत्सुक करने वाला) यह वर्षाकाल आ गया है, फूले हुए (पुष्पों से लदे हुए) बेंत दिखलायी पड़ रहे हैं (फिर भी) मैं मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई हूँ (अभी जीवित ही हूँ) यह क्या बात है (यह आश्चर्य-जनक है)।

संस्कृतव्याख्या— कार्याक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **दूरे इति**। **प्रियतमः** कान्तः **दूरे** स्थाने विदेशे विद्यते इति शेषः, **सः** विरहिजनान् पर्युत्सुककर्त्ता **जलदागमः** वर्षाकालः आगतः समुपस्थितः, **फुल्लाः** विकसितपुष्पाः **निचुलाः** स्थलवेतसाः **दृष्टाः** प्रत्यक्षरूपेणावलोकिताः; तथापि न चाहं **मृताः** विरहादुपरता **अस्मि** प्रोषितभर्त्तृकाहं विरहिणीसन्तापके वर्षाकालेऽपि जीवनं धारयामीति **किं न इदं** कथमिदं भवति। आश्चर्यजनकमिदमिति भावः।

(कार्याक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

कार्याक्षेपः स कार्यस्य मरणस्य निवर्तनात्।
तत्कारणमुपन्यस्य दारुणं जलदागमम्॥१३४॥

अन्वय— तत्कारणम् दारुणं जलदागमम् उपन्यस्य मरणस्य कार्यस्य निवर्तनात् सः कार्याक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— तत्कारणं = उस (विरहिणी की मृत्यु) के कारणभूत। दारुणं = क्रूर (कठोर अथवा असह्य)। जलदागमं = वर्षाकाल को। उपन्यस्य = उपस्थापित करके, उपस्थित दिखलाकर। मरणस्य = मृत्युरूप। कार्यस्य = कार्य के। निवर्तनात् = प्रतिषेध होने के कारण। सः = वह। कार्याक्षेपः = कार्याक्षेप है।

अनुवाद— उस (विरहिणी की मृत्यु) के कारणभूत क्रूर (कठोर अथवा असह्य) वर्षाकाल को उपस्थापित करके (उपस्थित दिखलाकर) मृत्युरूप कार्य के प्रतिषेध होने के कारण वह कार्याक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या—कार्याक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **कार्याक्षेप इति**। **तत्कारणं** तस्याः विरहिण्याः मरणस्य कारणभूतं हेतुभूतं **दारुणं** क्रूरं **जलदागमं** वर्षाकालम् **उपन्यस्य** उपस्थाप्य **मरणस्य** मृत्युरूपस्य **कार्यस्य निवर्तनात्** प्रतिषेधादत्र **सः कार्याक्षेपः** तत्रामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप अलङ्कार में कारण को उपस्थापित करके कार्य का प्रतिषेध किया जाता है, वह कार्याक्षेप कहलाता है। यह अलङ्कार परवर्ती-काल में उद्भावित विशेषोक्ति अलङ्कार के अधिक सन्निकट है।

(२) उक्त उदाहरण में विरहिणी की मृत्यु के कारणभूत वर्षाकाल को उपस्थापित करके मरणरूप कार्य का प्रतिषेध किया गया है अतः यहाँ कार्याक्षेप है।

(अनुज्ञाक्षेपनिदर्शनम्)

न चिरं मम तापाय तव यात्रा भविष्यति।
यदि यांस्यसि यातव्य[1]मलमाशङ्कयात्र[2] ते ।।१३५।।

अन्वय— तव यात्रा चिरं मम तापाय न भविष्यति। यदि यास्यसि यातव्यम्, अत्र आशङ्कया अलम्।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारी। यात्रा = विदेशयात्रा। चिरं = बहुत समय तक। मम = मेरे। तापाय = दुःख के लिए। न भविष्यति = नहीं होगी। यदि = यदि। यास्यसि = तुम जायोगे। यातव्यम् = जाना चाहिए, जाओ। अत्र = इस विषय में। आशङ्कया अलम् = आशङ्का करना व्यर्थ है; आशङ्का करने से क्या लाभ है; आशङ्का मत करो।

अनुवाद— तुम्हारी यह विदेशयात्रा बहुत समय तक मेरे दुःख के लिए (कारण) नहीं होगी (क्योंकि तुम्हारे विरह में मैं शीघ्र ही मर जाऊँगी)। (अतः) यदि तुम (निश्चितरूप से) जाओगे (तो तुम्हें) अवश्य जाना चाहिए (अर्थात् अवश्य जाओ)। इस (मैं तुम्हारे विरह में बहुत समय तक दुःखी रहूँगी) विषय में आशङ्का मत करो।

संस्कृतव्याख्या— अनुज्ञाक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **न चिरमिति। तव** प्रियतमस्य **यात्रा** विदेशगमनं **चिरं** दीर्घकालपर्यन्तं **मम** युवत्याः **तापाय** दुःखाय **न भविष्यति** यतो हि त्वद्विरहे सद्यः एव मृताहं चिरकालं यावद् दुःखं नानुभविष्यामीति गूढार्थः। अस्मात्कारणाद् **यदि यास्यसि** निश्चितरूपेण गमिष्यसि तत्त्वया **यातव्यं** गन्तव्यमेव **अत्र** अस्मिन् मद्विरहदुःखस्य विषये **आशङ्कया अलम्** आशङ्का नैव कर्त्तव्या।

---

(१) याहि त्वम्।

(२) आशङ्कयापि।

विशेष—

(१) तुम्हारे न रहने पर तुम्हारे विरह में अधिक समय तक दुःखी नहीं रहूँगी क्योंकि मैं सद्यः मर जाऊँगी और विरह दुःख का अनुभव अधिक समय तक नहीं करना होगा- यह निगूढ़ार्थ है।

(अनुज्ञानिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्यनुज्ञामुखेनैवं[1] कान्तस्याक्षिप्यते गतिः ।
मरणं सूचयन्त्यैव[2] सोऽनुज्ञाक्षेप इष्यते[3] ।।१३६।।

अन्वय— इति मरणं सूचयन्त्या एव एवम् अनुज्ञामुखेन कान्तस्य गतिः आक्षिप्यते, सः अनुज्ञाक्षेपः इष्यते।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। मरणं = मृत्यु को। सूचयन्त्या एव = सूचित करती हुई (किसी युवती) के द्वारा ही। अनुज्ञामुखेन = अनुमति दिये जाने के कारण। कान्तस्य = प्रियतम की। गतिः = विदेशगमन। आक्षिप्यते = निषिद्ध कर दिया गया। सः = वह। अनुज्ञाक्षेपः = अनुज्ञाक्षेप है।

अनुवाद— इस प्रकार (अपनी) मृत्यु को सूचित करती हुई (किसी युवती) द्वारा ही इस प्रकार से अनुमति दिये जाने के कारण (उसके) प्रियतम का विदेशगमन निषिद्ध कर दिया गया। (अनुमति द्वारा निषेध किये जाने के कारण) वह अनुज्ञाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— अनुज्ञाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **मरणं** स्वस्य मृत्युं **सूचयन्त्या** व्यञ्जयन्त्या एव **एवं** अनेन प्रकारेण **अनुज्ञामुखेन** अनुमतिद्वारा **कान्तस्य** तस्याः प्रियतमस्य **गतिः** विदेशगमनम् **आक्षिप्यते** निषिध्यते, तस्माद् अनुमतिद्वारा विदेशगमनप्रतिषेधत्वात् **सः** उक्तः **अनुज्ञाक्षेपः** तन्नामाक्षेपः विद्यत इति शेषः।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में अनुज्ञा (अनुमति) द्वारा प्रतिषेध किया जाता है, वह अनुज्ञाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में मृत्यु की सूचना देने वाली किसी युवती द्वारा उसके प्रियतम के विदेशगमन का अनुमति देकर प्रतिषेध किया गया है, अतः यह अनुज्ञाक्षेप है।

---

(१) - नैव।
(२) - यन्त्येति।
(३) उच्यते।

(३) इस आक्षेप से युवक के प्रति युवती का अत्यधिक प्रेम (रतिभाव) व्यक्त हो है किन्तु यहाँ उसकी छाया मात्र है, वह पुष्टरूप में रसपेशल नहीं है अतः अलङ्कार की श्रेणी को नहीं प्राप्त किया है।

(४) यहाँ आक्षेप अर्थ प्रिय का विदेशगमन है, जो अनुमति, अनादरभाव, आ इत्यादि द्वारा निषिद्ध हुआ है।

(प्रभुत्वाक्षेपनिदर्शनम्)

धनं च बहु लभ्यं ते सुखं क्षेमं च वर्त्मनि ।
न च मे प्राणसन्देहस्तथापि प्रिय मा स्म गाः ।।१३७।।

अन्वय— प्रिय, ते बहु धनं च लभ्यं वर्त्मनि सुखं क्षेमं च, मे प्राणसन्देहः च न तथापि मा गाः स्म।

शब्दार्थ— प्रिय = हे प्रियतम। ते = तुम्हारे लिए, तुमको। बहु = अत्यधिक। धनं = धन भी। लभ्यं = प्राप्य होगा, प्राप्त करोगे। वर्त्मनि = मार्ग में। सुखं = सुख। क्षेमं च = और कल्याण। मे = मेरे। प्राणसन्देहः च = प्राणों के विषय में सन्देह भी। न = नहीं है। तथापि = तो भी। मा गाः स्म = तुम मत जाओ।

अनुवाद— हे प्रियतम ! तुमको (विदेश में व्यापार इत्यादि से) अत्यधिक धन भी प्राप्त होगा, मार्ग में सुख और कल्याण (भी प्राप्त होगा), (विरहावस्था में) मेरे प्राणों के विषय में सन्देह भी नहीं है, तो भी तुम (विदेश) मत जाओ।

संस्कृतव्याख्या— प्रभुत्वाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **धनमिति**। **प्रिय** हे प्रियतम, प्रवासगमने व्यापारादिना **ते** तुभ्यं **बहु** प्रचुरं **धनं** सम्पत्यादि **लभ्यं** प्राप्तं भविष्यति **वर्त्मनि** मार्गे **सुखं** सौख्यं **क्षेमं च** कल्याणमपि भविष्यति; तत्र विरहे **मे** मम **प्राणसन्देहः** च मृत्युविषयकाशङ्कापि **न** विद्यते, **तथापि** त्वं प्रवासं **मा गाः स्म** न गच्छ। अहं तव प्रवासगमनं निवारयामीति भावः।

(प्रभुत्वाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्याचक्षमाणया[१] हेतून् प्रिययात्रानुबन्धिनः[२] ।
प्रभुत्वेनैव रुद्धस्तत्[३] प्रभुत्वाक्षेप इष्यते[४] ।।१३८।।

अन्वय— इति प्रिययात्रानुबन्धिनः हेतून् आचक्षमाणया प्रभुत्वेन एव रुद्धः, तत् प्रभुत्वाक्षेपः इष्यते।

---

(१) प्रत्या-। (२) - सोरोधिनः, -निबन्धिनः, -नुरोधिनः, -यात्रां विबध्नतः।
(३) तु। (४) उच्यते, ईदृशः।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। प्रिययात्रानुबन्धिनः = प्रियतम के विदेशगमन के औचित्य वाले। हेतून् = कारणों को। आचक्षमाणया = कहती हुई (प्रियतमा) के द्वारा। प्रभुत्वेन = (प्रियतमविषयक) प्रभुत्व (अधिकार) से। रुद्धः = (विदेशगमन) रोक दिया गया, निषिद्ध कर दिया गया। तत् = इसी कारण। प्रभुत्वाक्षेपः = प्रभुत्वाक्षेप। इष्यते = कहलाता है।

अनुवाद— इस प्रकार प्रियतम के विदेशगमन के औचित्य वाले कारणों को कहती हुई (प्रियतमा) के द्वारा (प्रियतमविषयक) प्रभुत्व (स्वामित्व = अधिकार) से (प्रियतम का विदेशगमन) रोक दिया गया (निषिद्ध कर दिया गया), इस कारण (यहाँ) प्रभुत्वाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— प्रभुत्वाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **प्रिययात्रानुबन्धिनः** प्रियतमस्य विदेशगमनौचित्ययुक्तान् **हेतून्** कारणन् **आचक्षमाणया** कथयन्त्या प्रियतमया **प्रभुत्वेन** प्रियतमविषयकस्वामित्वेन प्रियस्य प्रवासः **रुद्धः** निषिद्धः, **तत्** तस्मादत्र **प्रभुत्वाक्षेप** तन्नामाक्षेपः **इष्यते** कथ्यते। अत्र प्रियतमविषयकप्रियाधिष्ठितप्रभुत्वात् प्रियतमप्रवासगमनप्रतिषेधस्य आक्षेपः प्रभुत्वाक्षेपः इति।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में प्रभुत्त्वशक्ति से प्रतिषेध किया जाता है, वह प्रभुत्वाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में विदेशगमन के हेतुओं का औचित्य प्रस्तुत किया गया है फिर भी प्रियतमविषयक प्रभुत्व से प्रियतम के भविष्यत्कालिक विदेशगमन का प्रतिषेध प्रियतमा द्वारा किया गया है अतः प्रभुत्वाक्षेप है।

(अनादराक्षेपनिदर्शनम्)

जीविताशा बलवती धनाशा दुर्बला मम।
गच्छ वा तिष्ठ वा कान्त स्वावस्था तु निवेदिता ।।१३९।।

अन्वय— मम जीविताशा बलवती धनाशा दुर्बला (अस्ति)। कान्त, गच्छ वा तिष्ठ वा, स्वावस्था तु निवेदिता।

शब्दार्थ— मम = मेरी। जीविताशा = जीवित रहने की इच्छा। बलवती = प्रबल (है)। धनाशा = धन प्राप्त करने की इच्छा। दुर्बला = दुर्बल है। कान्त = हे प्रियतम। गच्छ वा = जाओ। तिष्ठ वा = अथवा रहो। स्वावस्था तु = अपने (मन की) स्थिति तो। निवेदिता = निवेदित कर दी गयी, कह दी गयी, बतला दी गयी।

अनुवाद— मेरी जीवित रहने की इच्छा प्रबल है और धन प्राप्त करने की इच्छा (जीवित रहने की इच्छा की अपेक्षा) दुर्बल है। हे प्रियतम ! तुम जाओ अथवा रहो, (मेरे द्वारा) अपने (मन) की स्थिति (तुमको) बतला दी गयी।

संस्कृतव्याख्या— अनादराक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **जीविताशेति**। **मम** नायिकायाः **जीविताशा** जीवनधारणेच्छा **बलवती** प्रबला विद्यते इति शेषः, **धनाशा** धनेच्छा च जीवनधारणेच्छापेक्षया **दुर्बला** अस्ति। **कान्त** हे प्रियतम, यथेच्छया **गच्छ वा तिष्ठ वा** मया विषयेऽस्मिन् न किञ्चिदपि वक्तव्यम्। मया तु केवलं **स्वावस्था** स्वस्य मनसः दशा **निवेदिता** कथिता।

(अनादराक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

असावनादराक्षेप यदनादरवद्वचः ।
प्रियप्रयाणं रुन्धत्या प्रयुक्तमिह रक्तया ।।१४०।।

अन्वय— इह रक्तया प्रियप्रयाणं रुन्धत्या अनादरवत् वचः यत् प्रयुक्तम्, असौ अनादराक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ—इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में। रक्तया = (प्रियतम में) अनुरक्त। प्रियप्रयाणं = प्रियतम के प्रवासगमन को। रुन्धन्त्या = रोकती हुई (नायिका) के द्वारा। अनादरवत् = अनादरयुक्त, उदासीनता-सूचक। वचः = वाणी, कथन। यत् = जो। प्रयुक्तं = प्रयोग में लाया गया, प्रयोग किया गया। असौ = यह। अनादराक्षेपः = अनादराक्षेप (है)।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में (प्रियतम में) अनुरक्त (अत एव) प्रियतम के प्रवासगमन को रोकती हुई (नायिका) के द्वारा (तुम जाओ या रहो- इस प्रकार) अनादरयुक्त (उदासीनता-सूचक) जो वचन (शब्द, वाणी) प्रयोग में लाया गया, वह अनादराक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— अनादराक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **असाविति**। **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **रक्तया** प्रियतमेऽनुरागयुक्तया **प्रियप्रयाणं** प्रियतमस्य प्रवासगमनं **रुन्ध-त्या** निवारयन्त्या नायिकया **अनादरवत्** गच्छ वा तिष्ठ वा इति अनादरयुतं यद् **वचः** वचनं **प्रयुक्तं** प्रयोगं कृतम् **असौ** एषः **अनादराक्षेपः** तन्नामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप में अनादरयुक्त कथन से प्रतिषेध किया जाता है, वह अनादराक्षेप कहलाता है।

(१) उक्त उदाहरण में 'जाओ या रुको' के द्वारा प्रवासगमन के प्रति अनादर व्यक्त करते हुए जीवित रहने की इच्छा और धन के प्रति अनिच्छा से प्रवासगमन का प्रतिषेध व्यक्त किया गया है अतः यह अनादराक्षेप है।

(२) यहाँ आक्षेप वाच्य नहीं प्रत्युत व्यङ्ग्य है।

(आशीर्वचनाक्षेपनिदर्शनम्)

गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः ।
ममापि जन्म तत्रैव भूयाद् यत्र गतो भवान् ।।१४१।।

अन्वय— कान्त, गच्छसि चेत् गच्छ, ते पन्थानः शिवाः सन्तु, यत्र भवान् गतः तत्र एव मम जन्म भूयात्।

शब्दार्थ— कान्त = हे प्रियतम। गच्छसि चेत् = यदि जा रहे हो तो। गच्छ = जाओ। ते = तुम्हारे। पन्थानः = मार्ग। शिवाः = कल्याणकारी, निर्विघ्न। सन्तु = होवें। यत्र = जहाँ। भवान् = आप। गताः = गये हुए हैं। तत्र एव = वहीं ही। मम = मेरा। जन्म = भूयात् = होवे।

अनुवाद— हे प्रियतम! यदि जा रहे हो तो जाओ, तुम्हारे मार्ग निर्विघ्न (कल्याणकारी) होंवे। (मैं चाहती हूँ कि) जहाँ आप गये हैं (तुम्हारे विरह में मरने के बाद) मेरा जन्म भी वहीं ही होवे।

संस्कृतव्याख्या— आशीर्वचनाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **गच्छेति**। **कान्त** हे प्रियतम, **गच्छसि चेत्** यदि यासि तर्हि **गच्छ** यासि। प्रस्थितस्य **ते** तव **पन्थानः** मार्गाः **शिवाः** कल्याणकारिणः **सन्तु** भवन्तु। वाञ्छाम्यहं यद् **यत्र** यस्मिन्स्थाने **भवान्** प्रियतमः **गतः** यातः असि **तत्र एव** तस्मिन्स्थाने एव त्वद्विरहदुःखोपरतायाः **मम जन्म** अपि **भूयात्**। प्रस्थिते त्वयि त्वद्विरहदुःखाद् मम मरणं निश्चितं पुनर्जन्मापि ध्रुवम् एवं सति मम पुनर्जन्म तत्रैव भवतु यत्र प्रवासकाले भवान् निवसतीति कामयेऽहमिति भावः।

(आशीर्वचनाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्याशीर्वचनाक्षेपो यदाशीर्वादवर्त्मना ।
स्वावस्थां सूचयन्त्यैव कान्तयात्रा निषिध्यते ।।१४२।।

अन्वय— इति आशीर्वादवर्त्मना स्वावस्थां सूचयन्त्या कान्तयात्रा यत् निषिध्यते, आशीर्वचनाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। आशीर्वादवर्त्मना = आशीर्वाद (कथन) के माध्यम (मार्ग) से। स्वावस्थां = अपनी अवस्था को। सूचयन्त्या एव = सूचित करती

हुई (नायिका) के द्वारा। कान्तयात्रा = प्रियतम का प्रवासगमन। यत् = जो। निषिध्यते = निषिद्ध (प्रतिषिद्ध) किया गया है। आशीर्वचनाक्षेपः = आशीर्वचनाक्षेप (है)।

अनुवाद— इस प्रकार (अपने पुनर्जन्म के सम्बन्ध में) आशीर्वाद के माध्यम (मार्ग) से (विरहावस्था में होने वाली) अपने (मरण) की अवस्था को सूचित करती हुई (नायिका) के द्वारा प्रियतम का प्रवासगमन जो निषिद्ध किया गया है, वह आशीर्वचनादाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— आशीर्वचनाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण स्वपुनर्जन्मविषये **आशीर्वादवर्त्मना** शुभाशंसामाध्यमेन **स्वावस्थां** स्वस्य विरहदुःखेन मरणस्य **अवस्थां** मृत्युप्राप्तरूपां स्थितिं **सूचयन्त्या** व्यञ्जयन्त्या नायिकया **एव कान्तयात्रा** कान्तस्य प्रियतमस्य यात्रा प्रवासगमनं यत् **निषिध्यते** प्रतिषिध्यतेऽयम् **आशीर्वचनाक्षेपः** तन्नामाक्षेपः विद्यते इति शेषः।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में आशीर्वाद (शुभाशंसा) के माध्यम से पदार्थ का प्रतिषेध किया जाता है वह आशीर्वचनाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में 'तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी होंवे' के माध्यम से पुनर्जन्म की शुभाशंसा द्वारा विरहावस्था में 'उसकी मृत्यु तथा नायक के प्रवासस्थान पर पुनर्जन्म' को सूचित करती हुई नायिका द्वारा प्रियतम के प्रवासगमन का प्रतिषेध किया गया है, अतः यहाँ आशीर्वचनाक्षेप है।

(परुषाक्षेपनिदर्शनम्)

यदि सत्यैव यात्रा ते काप्यन्यां मृग्यतां[1]त्वया।
अहमद्यैव रुद्धास्मि रन्ध्राक्षेपेण[2] मृत्युना ।।१४३।।

अन्वय— यदि ते यात्रा सत्या एव त्वया कापि अन्या मृग्यताम्, अहम् अद्य एव रन्ध्राक्षेपेण मृत्युना रुद्धा अस्मि।

शब्दार्थ— यदि = यदि। ते = तुम्हारी। यात्रा = प्रवागगमन। सत्या एव = निश्चित ही है। त्वया = तुम्हारे द्वारा। कापि = कोई भी। अन्या = दूसरी (प्रेयसी)। मृग्यतां = खोज लेनी चाहिए, ढूढ़ लेनी चाहिए। अहं = मैं। अद्य एव = आज ही।

---

(१) काप्यनुग्राह्यतां।

(२) -वेक्षेण, न्येषेण -न्वेषण।

रन्ध्राक्षेपेण = रन्ध्र (छिद्र, दुर्बलता, बहाना) की अपेक्षा करने वाली। मृत्युना = मृत्यु के द्वारा। रुद्धा अस्मि = रोक ली गयी हूँ, घेर ली गयी हूँ।

अनुवाद— (हे प्रिय,) यदि तुम्हारा प्रवासगमन निश्चित है (यदि तुम विदेश अवश्य जाओगे) तो तुम्हारे द्वारा कोई भी अन्य (प्रेयसी) खोज लेनी चाहिए (क्योंकि) मैं तो आज (तुम्हारे प्रस्थानकाल में) ही (तुम्हारे विरह को सहन न कर सकने वाली) दुर्बलता की अपेक्षा रखने वाली मृत्यु के द्वारा रोक ली गयी हूँ (अर्थात् तुम्हारे प्रस्थान-काल में ही मृत्यु मेरे प्राण को लेने के लिए रोक लिया है)।

(परुषाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्येष परुषाक्षेपः परुषाक्षरपूर्वकम् ।
कान्तस्याक्षिप्यते यस्मात्प्रस्थानं प्रेमनिघ्नया ।।१४४।।

अन्वय— इति प्रेमनिघ्नया कान्तस्य प्रस्थानं परुषाक्षरपूर्वकम् आक्षिप्यते यस्मात् एषः परुषाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। प्रेमनिघ्नया = प्रेमपरवश (प्रेमाभूत, प्रेमाधीन) (नायिका) के द्वारा। कान्तस्य = प्रियतम का। प्रस्थानं = प्रस्थान, प्रवासगमन, विदेशगमन। परुषाक्षरपूर्वकं = कठोर अक्षरों (शब्दों, वचनों) के प्रयोग से। आक्षिप्यते = निषिद्ध (प्रतिषिद्ध) कर दिया गया है। यस्मात् = जिससे, जिस कारण से। एषः = यह। परुषाक्षेपः = परुषाक्षेप (है)।

अनुवाद— इस प्रकार प्रेमाभूत (किसी नायिका) के द्वारा प्रियतम का प्रस्थान (विदेशगमन) (कोई दूसरी प्रेयसी खोज लो- इस) कठोर अक्षरों (शब्दों) के प्रयोग से निषिद्ध (प्रतिषिद्ध) कर दिया गया है जिससे यह परुषाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— परुषाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** एवं प्रकारेण **प्रेमनिघ्नया** प्रेमाभूतया कयाचिद् नायिकया **कान्तस्य** प्रियतमस्य **प्रस्थानं** प्रवासगमनं **परुषाक्षरपूर्वकम्** अन्यां प्रेयसीं मृग्यतामिति निष्ठुरवाक्प्रयोगेण **आक्षिप्यते** निषिध्यते; **यस्मात्** कारणाद् **एषः** अयं **परुषाक्षेपः** तत्रामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में कठोर शब्दों द्वारा प्रतिषेध किया जाता है, वह परुषाक्षेप कहलाता है।
(२) उक्त उदाहरण में प्रेमाभूत नायिका द्वारा 'दूसरी प्रेयसी खोज लो' इस कठोर शब्दों से प्रियतम का प्रवासगमन निषिद्ध किया गया है अतः यहाँ परुषाक्षेप है।
(३) यहाँ अनादराक्षेप के समान परुषाक्षेप वाच्य नहीं प्रत्युत व्यङ्ग्य है।

(साचिव्याक्षेपनिदर्शनम्)

गन्ता चेत् गच्छ तूर्णं न ते कर्णे यान्ति[1] पुरा रवाः ।
आर्तबन्धुमुखोद्गीर्णाः[2] प्रयाणपरिपन्थिनः[3] ।।१४५।।

अन्वय— गन्ता चेत् तूर्णं गच्छ, आर्तबन्धुमुखोद्गीर्णाः प्रयाणपरिपन्थिनः रवाः ते कर्णौ पुरा यान्ति ।

शब्दार्थ— गन्ता चेत् = यदि जाने वाले हो । तूर्णं गच्छ = शीघ्र चले जाओ। आर्तबन्धुमुखोद्गीर्णाः = व्याकुल बान्धवों (बन्धु लोगों) के मुख से निकली हुई। प्रयाणपरिपन्थिनः = प्रवासगमन का प्रतिरोध करने वाली । रवाः = क्रन्दन ध्वनियाँ (रूलाई) । ते = तुम्हारे । कर्णौ = कान में । पुरा = पहले । यान्ति = जाने वाली है, पड़ने वाली हैं ।

अनुवाद— (हे प्रियतम) यदि (विदेश) जाने वाले हो तो शीघ्र चले ज़ाओ, (अन्यथा मेरी मृत्यु के शोक में) व्याकुल बान्धवों (बन्धुजनों) के मुख से निकली हुई तथा प्रवासगमन की प्रतिरोध करने वाली (प्रवासगमन को रोकने वाली) क्रन्दन-ध्वनियाँ (करुणक्रन्दन) तुम्हारे कानों में जाने वाली हैं ।

संस्कृतव्याख्या— साचिव्याक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **गन्तेति** । **गन्ता चेत्** यदि त्वं अवश्यमेव प्रवासगामी गन्तुमना वा असि तत् **तूर्णं** शीघ्रं **गच्छ** प्रस्थानं कुरु अन्यथा **आर्त्तबन्धुमुखोद्गीर्णा** आर्ताः मम मरणेन व्याकुलाः ये बन्धवः बन्धुजनाः तेषां मुखेभ्यः आननेभ्यः उद्गीर्णाः निःसृताः; **प्रयाणपरिपन्थिनः** प्रस्थानावरोधिनः **रवाः** मम मरणोपरान्तस्य करुणक्रन्दनध्वनयः **ते** तव **कर्णे** श्रोत्रे प्रस्थानात्पूर्वमेव **यान्ति** पतन्ति । यावत्तव गमनप्रतिरोधकं मम मरणशोकोत्पन्नं करुणक्रन्दनं न श्रुतगोचरं भवति तावत्पूर्वमेव त्वया प्रस्थानं कर्त्तव्यम् अत्र विलम्बं न करणीयमिति भावः ।

(साचिव्याक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

साचिव्याक्षेप एवैष यदत्र प्रतिषिध्यते ।
प्रियप्रयाणं साचिव्यं कुर्वत्यैवा[4]तिरक्तया ।।१४६।।

---

(१) यन्ति ।

(२) -जनोद्गीर्णाः ।

(३) -प्रति, -प्रतिबन्धिनः ।

(४) कुर्वत्येवा-, कुर्वत्येकान्त- ।

अन्वय— अत्र अतिरक्तया साचिव्यं कुर्वत्या एव यत् प्रियप्रमाणं प्रतिषिध्यते एष: साचिव्याक्षेप: (विद्यते)।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में। अतिरक्तया = (प्रियतम के प्रति) अत्यधिक अनुरक्त (अनुराग से युक्त)। साचिव्यं = साचिव्यभाव को, मन्त्रणा को, परामर्श को। कुर्वत्या एव = करती हुई (देती हुई) (नायिका) के द्वारा ही। यत् = जो। प्रियप्रयाणं = प्रियतम का प्रवासगमन (प्रवासप्रस्थान)। प्रतिषिध्यते = प्रतिषिद्ध (निषिद्ध) किया गया है। एष: = यह। साचिव्याक्षेप: = साचिव्याक्षेप (है)।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में (प्रियतम के प्रति) अत्यधिक अनुरक्त और (प्रवासगमन के लिए) मन्त्रणा (परामर्श) देती हुई (नायिका) के द्वारा ही जो प्रियतम का प्रवासगमन प्रतिषिद्ध (निषिद्ध) किया गया है, वह साचिव्याक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— साचिव्याक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **साचिव्याक्षेप इति**। **अत्र** अस्मिन्नुदाहरणे **अतिरक्तया** प्रियतमं प्रति अत्यनुरक्तया **साचिव्यं** शीघ्रं गच्छ इत्यनेन कथनेन मन्त्रिभावं परामर्शभावं वा **कुर्वत्या** विरचयन्त्या नायिकया एव यत् **प्रियप्रमाणं** प्रियस्य कान्तस्य प्रयाणं प्रवासगमनं **प्रतिषिध्यते** निरुध्यते एष: **साचि-व्याक्षेप:** विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में सचिवभाव (मन्त्रणाभाव) से प्रतिषेध किया जाता है, वह साचिव्याक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में नायिका नायक के प्रति इतना अनुरक्त है कि प्रवासगमन जानकर उसके प्राण निकलने वाले हैं। यदि उसका प्रिय प्रवासगमन में थोड़ा भी विलम्ब करेगा तो वह इतनी दूर तक नहीं जा पाएगा कि उसके मृत्यु के कारण होने वाला बन्धुजनों का करुणक्रन्दन उसे सुनायी पड़ जाएगा। परिणामत: मृतक की अन्तिम क्रिया करने के लिए अपने प्रवासगमन का प्रतिषेध करना पड़ेगा। इस प्रकार नायिका द्वारा 'शीघ्र जाओ' की मन्त्रणा देकर उसके कारण (नायिका की मृत्यु) का कथन होने से प्रवासगमन का निषेध किया गया है अत: यह साचिव्याक्षेप है।

(३) यहाँ आक्षेप अभिधा द्वारा उक्त नहीं हुआ है, प्रत्युत व्यञ्जना द्वारा सूचित होता है।

(यत्नाक्षेपनिदर्शनम्)

गच्छेति वक्तुमिच्छामि त्वत्प्रियं मत्प्रियैषिणी[१] ।
निर्गच्छति मुखाद्वाणी मा गा इति करोमि किम् ।।१४७।।

अन्वय— त्वत्प्रियं गच्छ इति वक्तुम् इच्छामि, मत्प्रियैषिणी मा गा इति वाणी मुखात् निर्गच्छति इति किम् करोमि ।

शब्दार्थ— त्वत्प्रियं = तुम्हारे लिए प्रिय लगने वाली, तुम्हारी इच्छा के अनुसार । गच्छ = जाओ । इति = इस प्रकार । वक्तुम् = कहने के लिए । इच्छामि = इच्छा कर रही हूँ । मत्प्रियैषिणी = मेरे लिए प्रिय लगने वाली, मेरी इच्छा के अनुसार । मा गा = मत जाओ । इति = इस प्रकार की । वाणी = शब्द । मुखात् = (मेरे) मुख से । निर्गच्छति = निकल रहा है । इति = इस प्रकार, ऐसी दशा में । किं = करोमि = मैं क्या करूँ ।

अनुवाद— तुम्हारे लिए प्रिय लगने वाली (तुम्हारी इच्छा के अनुसार) 'जाओ' इस प्रकार कहने के लिए इच्छा कर रही हूँ (इस प्रकार कहना चाह रही हूँ किन्तु) मेरे लिए प्रिय लगने वाली (मेरी इच्छा के अनुसार) 'मत जाओ' इस प्रकार का शब्द मुख से निकल रहा है, ऐसी दशा में मैं क्या करूँ ।

संस्कृतव्याख्या— यत्नाक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **गच्छेति** । **त्वत्प्रियं** त्वदनुकूलं **गच्छ** इति **वक्तुं** कथितुम् **इच्छामि** वाञ्छामि परञ्च **मत्प्रियैषिणी** ममानुकूला **मा गा** इति **वाणी** वाग् **मुखात्** मम मुखात् **निर्गच्छति** निःसरति **इति** एतस्यां दशायां **किं करोमि** अहं किं करवाणि, किंकर्त्तव्यविमूढ़ा जाता अस्मीति भावः ।

(यत्नाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

यत्नाक्षेपः स यत्नस्य कृतस्यानिष्टवस्तुनि ।
विपरीतफलोत्पत्तेरानर्थक्योपदर्शनात्[२] ।।१४८।।

अन्वय— अनिष्टवस्तुनि कृतस्य यत्नस्य विपरीतफलोत्पत्तेः आनर्थक्योपदर्शनात् सः यत्नाक्षेपः (विद्यते) ।

शब्दार्थ— अनिष्टवस्तुनि = अनिष्ट (अनभीष्ट, अनभिमत) वस्तु के विषय में । कृतस्य = किये गये । यत्नस्य = प्रयत्न के । विपरीतफलोत्पतेः = प्रतिकूल परिणाम की उत्पत्ति के कारण । आनर्थक्योपदर्शनात् = अनर्थकता (व्यर्थता) दृष्टिगोचर होने से । सः = वह । यत्नाक्षेपः = यत्नाक्षेप (है) ।

---

(१) मत्प्रियं त्वत्प्रियैषिणी । (२) सूचनात् ।

अनुवाद— अनिष्ट (अनभीष्ट) वस्तु के विषय में किये गये प्रयत्न के प्रतिकूल परिणाम की उत्पत्ति होने के कारण अनर्थता (व्यर्थता) दृष्टिगोचर होने के कारण यह यत्नाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— यत्नाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **यत्नाक्षेप इति। अनिष्टवस्तूनि** अनिष्टे गच्छेति वचनोच्चारणरूपे **वस्तुनि** पदार्थे **कृतस्य** सम्पादितस्य **यत्नस्य** प्रयत्नस्य **विपरीतफलोत्पत्तेः** विपरीतं प्रतिकूलं यत् फलं परिणामः तस्य उत्पत्तेः सम्भवात् **आनर्थक्योपदर्शनात्** सम्पादितप्रयत्नस्य आनर्थक्यं व्यर्थत्वं दर्शनात् सूचनात् तेन च प्रियगमनाक्षेपात् **सः यत्नाक्षेपः** विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में अनभीष्ट वस्तु के विषय में किये गये प्रयत्न का विपरीत परिणाम होने के कारण प्रयत्न की व्यर्थता सूचित होती है, वह यत्नाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में प्रिय का परदेशगमन नायक को अभीष्ट है, नायिका को नहीं। फिर भी अपने अनभीष्ट 'प्रिय के परदेशगमन की अनुमति देने का प्रयत्न किया किन्तु उसके मुख से प्रयत्न के विपरीत फल वाले 'मत जाओ' शब्द ही निकला, जिससे इसका प्रयत्न व्यर्थ ही हुआ। इस प्रकार यहाँ यत्नाक्षेप है।

(३) यहाँ भी आक्षेप वाच्य नहीं प्रत्युत व्यङ्ग्य है।

(परवशाक्षेपनिदर्शनम्)

क्षणं[1] दर्शनविघ्नाय पक्ष्मस्पन्दाय[2] कुप्यतः।
प्रेम्णः प्रयाणं त्वं[3] ब्रूहि मया तस्येष्टमिष्यते ।।१४९।।

अन्वय— क्षणं दर्शनविघ्नाय पक्ष्मस्पन्दाय कुप्यतः प्रेम्णः त्वं प्रयाणं ब्रूहि। तस्य इष्टं मया इष्यते।

शब्दार्थ— क्षणं = क्षण भर तक, क्षण भर के लिए। दर्शनविघ्नाय = दर्शन में बाधा करने वाले। पक्ष्मस्पन्दाय = पलकों के स्पन्दन के लिए, पलक झपकने के लिए। कुप्यतः = कुपित होते हुए, क्रोध करते हुए। प्रेम्णः = प्रेम से, प्रणय से, अनुराग से। त्वं = तुम। प्रयाणं = प्रवासगमन को, विदेशगमन के लिए। ब्रूहि = कहो, अनुमति लो। तस्य = उस (प्रेम) का। इष्टं = अभीष्ट। मया = मेरे द्वारा। इष्यते = चाहा जाता है, इच्छित है, अभीष्ट है।

---

(१) क्षण–। (२) पक्ष्मा–। (३) ते।

अनुवाद— क्षणभर के लिए (तुम्हारे) दर्शन मे बाधा करने वाले (विघ्न डालने वाले) पलकों के स्पन्दन (पलक झपकने) के लिए क्रोध करते हुए प्रेम (प्रणय) से प्रवासगमन के लिए कहो (अनुमति लो) (क्योंकि) इस (प्रेम) का अभीष्ट ही मेरा भी इच्छित है (अर्थात् जो प्रेम को अभीष्ट है वही मुझे भी अभीष्ट है)।

संस्कृतव्याख्या— परवशाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **क्षणमिति**। **क्षणं** क्षणमात्रं **दर्शनविघ्नाय** तव दर्शने अवलोकने विघ्नाय विघ्नकर्तृणे **पक्ष्मस्पन्दाय** पक्ष्मस्पन्दाय स्पन्दनक्रियायै अपि **कुप्यतः** कोपं कुर्वतः **प्रेम्णः** अनुरागस्य समीपे **प्रयाणं** स्वप्रवासगमनं **ब्रूहि** निवेदय यतो हि **तस्य** अनुरागस्य यद् **इष्टम्** अभीष्टं **मया अपि** तदभीष्टमेव **इष्यते** अभिलषते। अहन्तु प्रेम्णः परवशवर्तिनी अत एव यथा प्रेम दर्शनविघ्नाय कुप्यति तथैवाहमपि इति भावः।

(**परवशाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्**)

सोऽयं[१] परवशाक्षेपो यत्प्रेमपरतन्त्रया।
तया निषिध्यते यात्रान्यस्योपसूचनात्[२] ॥१५०॥

अन्वय— प्रेमपरतन्त्रया तया अन्यस्य उपसूचनात् यात्रा निषिध्यते सः अयं परवशाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— प्रेमपरतन्त्रया = प्रेम के वशीभूत। तया = उस (नायिका) के द्वारा। अन्यस्य = (अपने से) अन्य (प्रेम) के। उपसूचनात् = निर्देश से। यात्रा = प्रवासगमन। निषिध्यते = प्रतिषिद्ध (निषिद्ध) की गयी है। सः = वह। अयं = यह परवशाक्षेपः = परवशाक्षेप (है)।

अनुवाद— प्रेम के वशीभूत उस (नायिका) के द्वारा (अपने से) अन्य (प्रवासगमन की अनुमति देने में समर्थ प्रेम) के निर्देश से (प्रिय का) प्रवासगमन प्रतिषिद्ध (निषिद्ध) किया गया है, वह यह परवशाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— परवशाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **सोऽयमिति**। **प्रेमपरतन्त्रया** अनुरागवशवर्तिन्या **तया** उदाहरणोक्तया नायिकया **अन्यस्य** स्वकीयान्यप्रमाणस्य **उपसूचनात्** निर्देशात् **यात्रा** प्रियस्य प्रवासगमनम् **अवरुध्यते** प्रतिषिध्यते **सः** प्रतिषेधः **अयम्** एषः **परवशाक्षेपः** तत्रामाक्षेपः विद्यते इति शेषः।

---

(१) अयं।

(२) यात्रेत्यस्यार्थस्योप-, यात्रा तस्यार्थस्योष-, यात्रेत्यन्यार्थस्योपदर्शनात्, यत्र तस्यार्थस्यो- तस्यार्थस्यैवसूच-।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में अपनी परवशता सूचित करके अन्य के बहाने से आक्षेप किया जाता है, वह परवशाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में नायिका प्रेम के परवश है। इसलिए जो प्रेम को अभीष्ट होगा वही नायिका को भी अभीष्ट होगा। प्रेम एक क्षण के लिए प्रिय के दर्शन में बाधा डालने वाले पलक-स्पन्दन पर क्रोधित हो जाता है तो प्रवासकाल तक प्रिय के दर्शन न होने को सहन नहीं कर सकता, अतः प्रेम को सर्वदा प्रिय का दर्शन अभीष्ट है। परवश होने के कारण नायिका को भी यही प्रवासगमन न होना अभीष्ट है। इस प्रकार प्रेम के परवश नायिका द्वारा अन्य (प्रेम) के बहाने से प्रवासगमन का प्रतिषेध किया गया है, अतः यह परवशाक्षेप है।

(३) यहाँ भी आक्षेप वाच्य नहीं प्रत्युत व्यङ्ग द्वारा सूचित हो रहा है।

(उपायाक्षेपनिदर्शनम्)

सहिष्ये विरहं नाथ देह्यदृश्याञ्जनं मम[१]।
यदक्तनेत्रां[२] कन्दर्पः प्रहर्त्ता[३] मां न पश्यति ।।१५१।।

अन्वय— नाथ, विरहं सहिष्ये, अदृश्याञ्जनं मम देहि, यदक्तनेत्रां मां प्रहर्त्ता कन्दर्पः न पश्यति।

शब्दार्थ— नाथ = हे स्वामिन्, हे प्राणनाथ। विरहं = (तुम्हारे) वियोग को। सहिष्ये = मैं सहन कर लूँगी। मम = मेरे लिए। अदृश्याञ्जनं = अदृश्य (देखने वाले को अन्धा कर देने वाला) अञ्जन। देहि = दे दो। यदक्तनेत्रां = जिसको आखों में लगा लेने वाली, जिसे आखों में लगा लेने पर। मां = मुझे। प्रहर्त्ता = प्रहार करने वाला। कन्दर्पः = कामदेव। न पश्यति = न देख पाये, न देख सके।

अनुवाद— हे स्वामिन् (हे प्राणनाथ), (तुम्हारे) वियोग को मैं सहन कर लूँगी (किन्तु एक उपाय है कि) तुम (मुझे) अदृश्य (कर देने वाला) अञ्जन दे दो (जिससे) उसको आँखों में लगा लेने पर मुझे (विरही-जनों पर बाणों का) प्रहार करने वाला कामदेव न देख सके।

संस्कृतव्याख्या— उपायाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **सहिष्ये इति। नाथ** हे प्राणनाथ,

---

(१) यथा।

(२) यद्रक्त-।

(३) प्रहर्तु।

विरहं तव वियोगं **सहिष्ये** सहनं करिष्यामि तन्निमित्तं तदुपायरूपं **अदृश्याञ्जनम्** अदृश्यकारकं अञ्जनविशेषं **मम** मह्यं **देहि** प्रयच्छ **यदक्तनेत्रां** येनाञ्जनेन रञ्जितनयनां **मां** निश्चयेन **प्रहर्त्ता** प्रियवियुक्तजनेषु स्वबाणस्य प्रहारकर्त्ता उत्पीडको वा **कन्दर्पः** कामदेवः **न पश्यति** द्रष्टुं समर्थः न भवति।

(उपायाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

दुष्करं जीवनोपायमुपन्यस्योपरुद्ध्यते ।
पत्युः प्रस्थानमित्याहुरुपायाक्षेपमीदृशम् ।।१५२।।

अन्वय— दुष्करं जीवनोपायाम् उपन्यस्य पत्युः प्रस्थानम् अवरुध्यते इति ईदृशम् उपायाक्षेपम् आहुः।

शब्दार्थ— दुष्करं = दुष्कर, कठिनतापूर्वक किये जाने वाले। जीवनोपायं = जीवित रह सकने के उपाय को। उपन्यस्य = उपस्थापित करके, प्रस्तुत करके, प्रयोग में लाकर। पत्युः = पति के, प्रियतम के। प्रस्थानं = प्रस्थान को, प्रवासगमन को, परदेशगमन को। उपरुध्यते = रोका गया है, निषिद्ध (प्रतिषिद्ध) किया गया है। इति = इस प्रकार। ईदृशं = ऐसे (आक्षेप) को। उपायाक्षेपं = उपायाक्षेप। आहुः = कहा जाता है।

अनुवाद— कठिनतापूर्वक किये जाने वाले जीवित रहने के उपाय को प्रस्तुत करके (नायिका द्वारा) पति का प्रवासगमन रोका गया (निषिद्ध किया गया) है, इस प्रकार ऐसे (आक्षेप) को उपायाक्षेप कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— उपायाक्षेपस्यं निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **दुष्करमिति**। **दुष्करं** कठिनं **जीवनोपायं** अदृश्याञ्जनप्रदानरूपं नायिकायाः जीवनधारणस्य उपायम् **उपन्यस्य** प्रस्तावरूपेण प्रयुज्य नायिकया **पत्युः** भर्त्तुः **प्रस्थानं** प्रवासगमनम् **अवरुध्यते** प्रतिषिध्यते **इति** अनेन प्रकारेण **ईदृशम्** एवंविधम् आक्षेपम् **उपायाक्षेपं** तन्नामाक्षेपं आहुः।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप में दुष्कर उपाय द्वारा प्रतिषेध किया जाता है, वह उपायाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में प्रेमानुरक्त तथा सम्भावित विरह से भयभीत नायिका ने विरहकाल में अपनी जीवनरक्षा के लिए अदृश्याञ्जन प्रदान रूप ऐसा उपाय बतलाया, जो दुष्कर है क्योंकि ऐसा अदृश्याञ्जन जिसे आखों में लगाने से लगाने वाले को प्राणहर कामदेव भी नहीं देख पायेगा जिससे उसके ऊपर बाणो का प्रहार नहीं कर पाएगा। इस प्रकार दुष्कर उपाय बतलाकर नायिका के द्वारा

प्रवासगमन का निषेध किया गया है, अतः यहाँ उपायाक्षेप है।

(३) यहाँ भी पूववर्ती उदाहरणों के समान प्रतिषेध अभिधा द्वारा नहीं प्रत्युत व्यञ्जना द्वारा व्यञ्जित किया गया है।

(रोषाक्षेपनिदर्शनम्)

प्रवृत्तैव प्रयामीति वाणी वल्लभ ते मुखात् ।
अयतापि त्वयेदानीं मन्दप्रेम्णा ममास्ति किम् ।।१५३।।

अन्वय— वल्लभ, ते मुखात् प्रयामि इति वाणी प्रवृत्ता एव, इदानीम् अयता अपि मन्दप्रेम्णा त्वया मम किम् (प्रयोजनम्)।

शब्दार्थ— वल्लभ = हे प्रियतम ! ते = तुम्हारे। मुखात् = मुख से। प्रयामि = मैं जा रहा हूँ। इति = इस प्रकार की। वाणी = बात। प्रवृत्ता = निकल गयी। इदानीं = अब। अयता अपि = न जाते हुए भी। मन्दप्रेम्णा = शिथिल प्रेम वाले। त्वया = तुमसे। मम = मेरा। किम् = क्या (प्रयोजन), क्या लेना देना।

अनुवाद— हे प्रियतम ! तुम्हारे मुख से 'मैं जा रहा हूँ' ऐसी बात निकल ही गयी (यदि तु न भी जाओं तो) न जाते हुए भी शिथिल प्रेम वाले तुमसे मेरा क्या (प्रयोजन) है।

संस्कृतव्याख्या— रोषाक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **प्रवृत्तेति**। **वल्लभ** हे प्रिय, **ते** तव वल्लभस्य **मुखात् प्रयामि** प्रवासगमनं करोमि **इति** ईदृशी **वाणी** वाक् **प्रवृत्ता एव** निःसृता एव एतस्मात् **अयता अपि** प्रवासमगच्छता अपि **मन्दप्रेम्णा** अनुरागशैथिल्येन **त्वया** वल्लभेन **मम किं** प्रयोजनं, न किमपि प्रयोजनं विद्यते।

(रोषाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

रोषाक्षेपोऽयमुद्रिक्तस्नेहनिर्यन्त्रणात्मना[१] ।
संरब्धया प्रियारब्धं प्रयाणं यन्निषिध्यते[२] ।।१५४।।

अन्वय— उद्रिक्तस्नेहनिर्यन्त्रणात्मना संरब्धया प्रियारब्धं प्रयाणं यत् निषिध्यते, अयं रोषाक्षेपः।

शब्दार्थ— उद्रिक्तस्नेहनिर्यन्त्रणात्मना = पराकाष्ठा तक पहुँचे (उद्रिक्त) प्रेम (स्नेह) के कारण उच्छृङ्खल (अनियन्त्रित, निर्यन्त्रण) आत्मा (हृदय) है जिसका ऐसी, पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए प्रेम के कारण अनियन्त्रित (उच्छृङ्खल) आत्मा (हृदय)

---

(१) -निर्यन्त्रिता-, -त्मया।
(२) निवार्यते।

वाली। संरब्धया = अत्यधिक रुष्ट (नायिका) के द्वारा। प्रियारब्धं = प्रिय द्वारा प्रस्तावित। प्रयाणं = प्रवासगमन। यत् = जो। निषिध्यते = निषिद्ध किया गया है; अयम् = यह। रोषाक्षेपः = रोषाक्षेप (है)।

अनुवाद— पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए प्रेम के कारण अनियन्त्रित (उच्छृङ्खल) आत्मा (हृदय) वाली अत्यधिक रुष्ट (नायिका) के द्वारा प्रिय का प्रस्तावित प्रवासगमन जो निषिद्ध किया गया है वह रोषाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— रोषाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **रोषाक्षेप इति**। **उद्रिक्तस्नेहनिर्यन्त्रणात्मना** उद्रिक्तेन पराकाष्ठां प्राप्तेन स्नेहेन प्रेम्णा निर्यन्त्रणः अनियन्त्रितः उच्छृङ्खलः वा आत्मा हृदयं यस्याः तया **संरब्धया** अत्यधिकं रुष्टया नायिकया **प्रियारब्धं** प्रियेण प्रस्तावितं **प्रयाणं** प्रवासगमनं यद् **निषिध्यते** आक्षिप्यते **अयम्** एषः रोषाक्षेपः।

विशेष—

(१) जिस आक्षेप अलङ्कार में रोषपूर्ण कथन द्वारा प्रतिषेध किया जाता है, वह रोषाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में प्रिय द्वारा प्रस्तावित प्रवासगमन 'मैं जा रहा हूँ' की मुख से निकली बात सुनकर नायक के प्रति पराकाष्ठित प्रेम से हृदय की अनियन्त्रिता के कारण नायिका को क्रोध आ गया और उसके द्वारा रोषपूर्ण कथन ' यदि तुम न भी जाओ तो भी तुम्हारा प्रेम कम हो गया है- ऐसा व्यक्त होता है,' के द्वारा प्रवासगमन का प्रतिषेध किया गया- नायक के प्रति अत्यधिक अपने प्रेम के कारण उसके द्वारा प्रस्तावित प्रवासयात्रा को सुनकर नायिका अपने पर काबू नहीं रख सकी अतः उसने रोषपूर्ण वचन द्वारा प्रवासगमन का निषेध कर दिया, अतः यहा रोषाक्षेप है।

(मूर्च्छाक्षेपनिदर्शनम्)

मुग्धा कान्तस्य यात्रोक्तिश्रवणादेव मूर्च्छिता।
बुद्ध्वा वक्ति प्रियं दृष्ट्वा[1] किं चिरेणागतो भवान् ।।१५५।।

अन्वय— कान्तस्य यात्रोक्तिश्रवणात् एव मूर्च्छिता मुग्धा बुद्ध्वा प्रियं दृष्ट्वा 'भवान् किं चिरेण आगतः' (इति) वक्ति।

शब्दार्थ— कान्तस्य = प्रियतम के। यात्रोक्तिश्रवणाद् एव = प्रवासगमन के

(१) प्रियाश्लिष्टा।

कथन को केवल सुनने के कारण ही। मूर्च्छिता = मूर्च्छित हुई। मुग्धा = प्रागल्भ्य को अप्राप्त नवयौवना (नायिका)। बुद्ध्वा = (मूर्च्छा के बाद) होश में आकर। प्रियं = प्रियतम को। दृष्ट्वा = (सामने) देखकर। भवान् = आप। किम् = क्यों। चिरेण = देर से, बहुत समय बाद। आगतः = आये। वक्ति = कहने लगती है।

अनुवाद— प्रियतम को प्रवासगमन के कथन को केवल सुनने के कारण ही मूर्च्छित हुई मुग्धा (प्रागल्भ्य को अप्राप्त नवयौवना) नायिका (मूर्च्छा के बाद) होश में आकर और प्रियतम को (सामने) देखकर 'आप (प्रवास से) क्यों देर से (बहुत समय बाद) आये'- (इस प्रकार) कहने लगी।

संस्कृतव्याख्या— मूर्च्छाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **मुग्धेति**। **कान्तस्य** प्रियतमस्य **यात्रोक्तिश्रवणाद् एव** यात्रायाः प्रवासगमनस्य उक्तिं कथनं श्रवणाद् आकर्णाद् एव **मुग्धा** प्रगल्भतामप्राप्ता नवयौवना नायिका **बुद्ध्वा** मूर्च्छापगमे चैतन्यं लब्ध्वा **प्रियं** कान्तं **दृष्ट्वा** अवलोक्य **भवान्** प्रियतमः **किं** कथम् **चिरेण** चिरकालं यावत् **आगतः** प्रवासाद् आयातः अनेन प्रकारेण **वक्ति** पृच्छति।

(मूर्च्छाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति तत्कालसम्भूतमूर्च्छयाक्षिप्यते गतिः।
कान्तस्य कातराक्ष्या यन्मूर्च्छाक्षेपः सः ईदृशः[1]।।१५६।।

अन्वय— इति तत्कालसम्भूतमूर्च्छया कातराक्ष्या कान्तस्य गतिः यत् आक्षिप्यते ईदृशः सः मूर्च्छाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। तत्कालसम्भूतमूर्च्छया = तत्काल (प्रियतम के प्रवासगमन को सुनते ही) उत्पन्न मूर्च्छा वाली। कातराक्ष्या = अधीर (घबड़ाये हुए नेत्रों वाली (नायिका) के द्वारा। कान्तस्य = प्रियतम का। गतिः = प्रवासगमन। यत् = जो। आक्षिप्यते = निषिद्ध किया गया है। ईदृशः = इस प्रकार वाला। सः = वह। मूर्च्छाक्षेपः = मूर्च्छाक्षेप (है)।

अनुवाद— इस प्रकार तत्काल (प्रियतम के प्रवासगमन को सुनते ही) उत्पन्न मूर्च्छा से अधीर (घबड़ाये हुए) नेत्रों वाली (नायिका) के द्वारा प्रियतम का प्रवासगमन जो निषिद्ध किया गया है- इस प्रकार वाला वह मूर्च्छाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— मूर्च्छाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **तत्कालसम्भूतमूर्च्छया** तत्काले प्रियप्रवासगमनश्रवणकाले सम्भूता उत्पन्ना

(१) कोलकाताविश्वविद्यालयस्य संस्करणे, दरभङ्गासंस्करणे, दिल्लीसंस्करणे च मूर्च्छाक्षेपविषयकं श्लोकद्वयं न विद्येते।

जायमाना या मूर्च्छा चैतन्यापगमः यस्याः तया **कातराक्ष्या** कातरे अधीरे अक्षिणी नेत्रे यस्याः तादृश्या नायिकया **कान्तस्य** प्रियतमस्य **गतिः** प्रवासयात्रा यद् **आक्षिप्यते** प्रतिषिध्यते **ईदृशः** एवंप्रकारकः **सः** मूर्च्छाक्षेपः तन्नामाक्षेपः विश्रुतं।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में मूर्च्छा द्वारा प्रतिषेध किया जाता है वह मूर्च्छाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में प्रियतम के प्रवासगमन को सुनते ही मूर्च्छित हुई कातराक्षी नायिका ने मूर्च्छा के द्वारा कान्त के प्रवासगमन का निषेध किया है अतः यह मूर्च्छाक्षेप है।

(अनुक्रोशाक्षेपनिदर्शनम्)

नाघ्रातं न कृतं कर्णे स्त्रीभिर्मधुनि नार्पितम्।
त्वदद्विषां[१] दीर्घिकास्वेव विशीर्णं नील[२]मुत्पलम् ।।१५७।।

अन्वय— त्वदद्विषां स्त्रीभिः नीलम् उत्पलं न आघ्रातं न कर्णे कृतं न मधुनि अर्पितं, दीर्घिकासु एव विशीर्णम् (जातम्)।

शब्दार्थ— त्वदद्विषां = तुम्हारे शत्रुओं की। स्त्रीभिः = पत्नियों द्वारा। नीलम् उत्पलं = नीलाकमल। न आघ्रातं = न सूँघा गया। न कर्णे = न (आभूषण के रूप में) कान पर। कृतम् = किया गया, लगाया गया। न मधूनि = न मदिरा में। अर्पितं = डाला गया, समर्पित किया गया। दीर्घिकासु एव = बावलियों में ही। विशीर्णं = झड़ गया।

अनुवाद— (हे राजन्), (युद्ध में मारे गये) तुम्हारे शत्रुओं की पत्नियों द्वारा नीलाकमल न सूँघा गया, न (आभूषण के रूप में) कान पर लगाया गया और न (तो) मदिरा में (सुगन्धित करने के लिए) डाला गया, (केवल) बावलियों में ही (सूख कर) झड़ गया।

संस्कृतव्याख्या— अनुक्रोशाक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **नाघ्रातमिति**। हे राजन् त्वया युद्धे निहतानां **त्वदद्विषां** तव शत्रूणां **स्त्रीभिः** प्रमदाभिः **नीलम् उत्पलं** नीलं कमलं **न आघ्रातं** न घ्राणस्य विषयीकृतं **न कर्णे** आभूषणरूपेण श्रोत्रे **कृतं** धारितं **न च मधूनि** तत्सुवासाय मदिरायाम् **अर्पितम्** आहितम् अनेन प्रकारेण प्रयोगाभावात् तद् नीलकमलं **दीर्घिकासु** वापीषु **एव विशीर्णं** म्लानं भूत्वा परिक्षतं जातम्।

---

(१) तदद्विषां। (२) जीर्णम्।

(अनुक्रोशाक्षेपनिदर्शविश्लेषणम्)

असावनुक्रोशाक्षेपः[१] सानुक्रोशमिवोत्पले ।
व्यावृत्य कर्म तद्योग्यं शोच्यावस्थोपवर्णनात् ।।१५८।।

अन्वय— उत्पले सानुक्रोशम् इव तद्योग्यं कर्म शोच्यावस्थोपवर्णनात् असौ अनुक्रोशाक्षेपम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— उत्पले = नीलकमल के प्रति। सानुक्रोशम् इव = अनुक्रोश (दयाभाव) के समान। तद्योग्यं = उसके योग्य। कर्म = कर्म अथवा व्यापार को। व्यावृत्य = निषिद्ध करके, प्रतिषिद्ध करके। शोच्यावस्थोपवर्णनात् = शोचनीय अवस्था के वर्णन के कारण। असौ = यह। अनुक्रोशाक्षेपः = अनुक्रोशाक्षेप (है)।

अनुवाद— नीलकमल के प्रति अनुक्रोश (दयाभाव) के समान (स्त्रियों द्वारा सूँघे जाने इत्यादि) उस (नीलकमल) के योग्य कर्म अथवा व्यापार को निषिद्ध करके शोचनीय अवस्था के वर्णन के कारण यह अनुक्रोशाक्षेप (है)।

संस्कृतव्याख्या— अनुक्रोशाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **असाविति**। **उत्पले** नीलकमले **सानुक्रोशम् इव** दयापूर्वकम् इव **तद्योग्यं** तस्य नीलकमलस्य योग्यम् अर्हं **कर्म** व्यापारं **व्यावृत्य** निषिध्य **शोच्यावस्थोपवर्णनात्** शोच्यावस्थायाः उपवर्णनात् प्रकाशनाद् **असौ** अयम् **अनुक्रोशाक्षेपः** तन्नामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में अनुक्रोशपूर्वक (दया के साथ) आक्षेप किया जाता है, वह अनुक्रोशाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में कमल के प्रति दयाभाव-सा वर्णन करते हुए उसके शोभामयता के अनुरूप कार्यव्यापार सूँघना, कर्णाभूषण बनाना और मदिरा को सुवासित करने के लिए प्रयोग में लाना' का निषेध करके उसकी शोचनीय दशा बावली में झर जाने का वर्णन हुआ है। दयाभाव से आक्षेप (निषेध) करने के कारण यहाँ अनुक्रोशाक्षेप है।

(श्लिष्टाक्षेपनिदर्शनम्)

अमृतात्मनि पद्मानां द्वेष्टरि स्निग्धतारके ।
मुखेन्दौ तव सत्यस्मिन्नपरेण किमिन्दुना ।।१५९।।

---

(१) इत्यनु-, सानुक्रोशोऽयमाक्षेपः ।

अन्वय— अमृतात्मनि पद्मानां द्वेष्टरि स्निग्धतारके तव अस्मिन् मुखेन्दौ अपरेण इन्दुना किम्।

शब्दार्थ— अमृतात्मनि = (मुखपक्ष में) अमृत है आत्मा जिसकी ऐसे, अमृत रूपी आत्मा (स्वरूप) वाले, (चन्द्रमापक्ष में) अमृत (सुधा) से पूर्ण। पद्मानां = कमलों के। द्वेष्टरि = (मुखपक्ष में) कमलों को पराजित कर देने वाले (चन्द्रमापक्ष में) कमलो के (सङ्कुचित करने के कारण उनके) शत्रु। स्निग्धतारके = (मुखपक्ष में) स्निग्ध पुतलियों वाले (चन्द्रमापक्ष में) नक्षत्रों (ताराओं) के स्नेही। तव = तुम्हारे। अस्मिन् = इस। मुखेन्दौ सति = मुखरूपी चन्द्रमा के (विद्यमान) होने पर। अपरेण = (तुम्हारे मुख से) अन्य। इन्दुना = चन्द्रमा से। किम् = क्या प्रयोजन (है)।

अनुवाद— (हे सुन्दरि), (आह्लादक होने के कारण) अमृतरूप स्वरूप वाले, (अपनी सुन्दरता से) कमलों को पराजित कर देने वाले तथा स्निग्ध पुतलियों से युक्त (आखों) वाले तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा के (विद्यमान) होने पर (तुम्हारे मुख से) अन्य सुधा से पूर्ण, कमलों के (सङ्कुचित करने के कारण) शत्रु तथा नक्षत्रों (ताराओं) के स्नेही (आकाशस्थ) चन्द्रमा से क्या प्रयोजन है।

संस्कृतव्याख्या— श्लिष्टाक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **अमृतेति**। **अमृतात्मनि** अमृतमिव आत्मा यस्य तादृशे आह्लादकत्वात् अमृतस्वरूपे इत्यर्थः, **पद्मानां** कमलानां **द्वेष्टरि** सौन्दर्याधिक्येन विजेतरि **स्निग्धतारके** स्निग्धे नेत्रकनीनिके यस्य तादृशे **तव** सुन्दर्याः **मुखेन्दौ** मुखरूपे चन्द्रे विद्यमाने **सति अपरेण** तव मुखादन्येन सुधामयेन कमलानां शत्रुणा नक्षत्रप्रियेण **इन्दुना** चन्द्रेण **किम्** प्रयोजनम्।

(श्लिष्टाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति मुख्येन्दुराक्षिप्तो गुणान् गौणेन्दुवर्तिनः।
तत्समान् दर्शयित्वेह[1] श्लिष्टाक्षेपस्तथाविधः[2] ॥१६०॥

अन्वय— इति इह गौणेन्दुवर्तिनः गुणान् तत्समान् दर्शयित्वा मुख्येन्दुः अक्षिप्तः तथाविधः श्लिष्टाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में। गौणेन्दुवर्तिनः = गौण चन्द्रमा में विद्यमान। गुणान् = गुणों को। तत्समान् = उस (मुख्य आकाशस्थ चन्द्रमा) के समान। दर्शयित्वा = दिखला कर। मुख्येन्दुः = मुख्य (उपमानभूत आकाशस्थ चन्द्रमा (का)। आक्षिप्तः = आक्षेप (प्रतिषेध = निषेध) किया गया है।

(१) –त्वेति।
(२) –विधिः।

तथाविधः = (श्लिष्ट विशेषण के प्रयोग से उत्पन्न होने के कारण) इस प्रकार वाला (आक्षेप)। श्लिष्टाक्षेपः = श्लिष्टाक्षेप (है)।

अनुवाद— इस प्रकार इस (उदाहरण) में गौण (मुख और आरोपित) चन्द्रमा में विद्यमान गुणों (धर्मों) को उस (मुख्य आकाशस्थ चन्द्रमा) के समान (श्लिष्ट विशेषण द्वारा) दिखलाकर मुख्य (आकाशस्थ) चन्द्रमा का आक्षेप किया गया है। इस प्रकार वाला (आक्षेप) श्लिष्टाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— श्लिष्टाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **गौणेन्दुवर्तिनः** गौणे उपमेयभूते मुखरूपे अमुख्ये इन्दौ चन्द्रमसि विद्यमानान् **गुणान्** धर्मान् **तत्समान्** तस्य मुख्यस्य आकाशस्थस्य चन्द्रस्य समान् सदृशान् **दर्शयित्वा** श्लिष्टैः विशेषणैः प्रदर्श्य **मुख्येन्दुः** मुख्यः उपमानभूतः प्रधानः इन्दुः आकाशस्थः चन्द्रः **आक्षिप्तः** प्रतिषिद्धः **तथाविधः** एषः आक्षेपः **श्लिष्टाक्षेपः** तत्रामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में श्लिष्ट विशेषणों द्वारा आक्षेप (प्रतिषेध) किया जाता है, वह श्लिष्टाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में मुख पर आरोपित गौण चन्द्र में अमृतमयता, कमलद्वेषता इत्यादि मुख्य आकाशस्थ चन्द्र के गुण श्लिष्ट पद द्वारा बतलाये गये हैं। इन गुणों से युक्त मुखारोपित गौण चन्द्र के कथन द्वारा मुख्य आकाशस्थ चन्द्र का प्रतिषेध किया गया है, अतः यहाँ श्लिष्टाक्षेप है।

(३) उपमेय मुख पर आरोपित चन्द्रमा के उत्कर्ष के कथन से मुख का उत्कृष्ट (अतिशय) सौन्दर्य व्यक्त होता है।

(अनुशयाक्षेपनिदर्शनम्)

अर्थो न सम्भृतः कश्चिन्न विद्या काचिदर्जिता।
न तपः सञ्चितं किञ्चिद् गतं च सकलं वयः ।।१६१।।

अन्वय— कश्चित् अर्थः न सम्भृतः, काचित् विद्या न अर्जिता, किञ्चित् तपः न सञ्चितं, सकलं च वयः गतः।

शब्दार्थ— कश्चित् = कोई। अर्थः = धन। न = नहीं। सम्भृतः = उपार्जित (पैदा) किया गया। काचित् = कोई। विद्या = विद्या। न = नहीं। अर्जिता = इकट्ठा की गयी, प्राप्त की गयी। किञ्चित् = कोई। तपः = तपस्या। न = नहीं। सञ्चितं = सञ्चित की गयी। सकलं च = और सम्पूर्ण। आयुः = अवस्था, उम्र, जीवन। गतः = चला गया, समाप्त हो गया, व्यतीत हो गया।

अनुवाद— (मेरे द्वारा) कोई (सुवर्णादि) धन नहीं उपार्जित किया गया, कोई विद्या नहीं प्राप्त की गयी, कोई तपस्या नहीं सञ्चित की गयी और आयु (जीवन) व्यतीति हो गया।

संस्कृतव्याख्या— अनुराशयाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **अर्थ** इति। **कश्चित् अर्थः** सुवर्णादिरूपं धनं। न **सम्भृतः** उपर्जितः, **काचित् विद्या** व्याकरणादिशास्त्रज्ञानं न **अर्जिता** प्राप्तं कृता **किञ्चित् तपः** तपनादिकं न **सञ्चितं** नानुष्ठितं **सकलं च** सम्पूर्णं च **वयः** जीवनं **गतं** व्यतीतं जातम्।

(अनुशयाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

असावनुशयाक्षेपो यस्मादनुशयोत्तरम्।
अर्थार्जनादेर्व्यावृत्तिर्दर्शितेह[1] गतायुषा ।।१६२।।

अन्वय— इह गतायुषा अनुशयोत्तरं अर्थार्जनादेः व्यावृतिः दर्शिता तस्मात् असौ अनुशयाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में। गतायुषा = व्यतीत हो गयी है आयु जिसकी ऐसे (वृद्ध मनुष्य) द्वारा, व्यतीत हो गयी आयु वाले (वृद्ध मनुष्य) द्वारा। अनुशयोत्तरं = पश्चात्ताप (पछतावा, अनुशय) के पश्चात्। अर्थार्जनादेः = धनार्जन इत्यादि का। व्यावृत्तिः = निषेध, प्रतिषेध। दर्शिता = दिखलाया गया है, प्रदर्शित किया गया है। तस्मात् = इसलिए। असौ = यह। अनुशयाक्षेपः = अनुशयाक्षेप (है)।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में व्यतीत हो गयी आयु वाले (किसी) (वृद्ध मनुष्य) द्वारा पश्चात्ताप के बाद धन इत्यादि का प्रतिषेध दिखलाया गया है, इसलिए यह अनुशयाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— अनुशयाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **असाविति**। **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **गतायुषा** गतं व्यतीतं आयुः वयः यस्य तेन केनचित् वृद्धेन पुरुषेण **अनुशयोत्तरं** अनुशयात् पश्चात्तापाद् उत्तरं पश्चात् **अर्थार्जनादेः** धनसञ्चयनादेः **व्यावृतिः** प्रतिषेधः **दर्शिता** प्रदर्शिता तस्मात् कारणाद् **असौ** अयम् **अनुशयाक्षेपः** विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में पश्चात्ताप (अनुशय) द्वारा आक्षेप किया जाता है, वह अनुशयाक्षेप कहलाता है।

---

(१) दर्शितेय।

(२) उक्त उदाहरण में किसी वृद्ध पुरुष द्वारा पश्चात्ताप के बाद धनार्जन इत्यादि का प्रतिषेध किया गया है, अतः यह अनुशयाक्षेप है।

(संशयाक्षेपनिदर्शनम्)

किमयं शरदम्भोदः किं वा हंसकदम्बकम् ।
रुतं नूपुरसंवादि श्रूयते तन्न तोयदः ।।१६३।।

अन्वय— किम् अयं शरदम्भोदः किं वा हंसकदम्बकम्, नूपुरसंवादि रुतं श्रूयते तत् तोयदः न (विद्यते)।

शब्दार्थ— किम् = क्या? । अयं = यह (आकाश में दिखलायी पड़ने वाला)। शरदम्भोदः = शरत्कालीन बादल है। किं वा = अथवा क्या? । हंसकदम्बकम् = हंसों का समूह (है)। नूपुरसंवादि = नूपुर के समान ध्वनि वाली। रुतं = ध्वनि। श्रूयते = सुनायी पड़ रही है। तत् = तो। तोयदः = बादल। न = नहीं (हो सकता)।

अनुवाद— क्या यह (आकाश में दिखलायी पड़ने वाला) शरत्कालीन बादल है अथवा क्या (यह) हंसों का समूह है (किन्तु) नूपुर की ध्वनि के समान ध्वनि सुनायी पड़ रही है, इससे (प्रतीत हो रहा है कि यह) बादल नहीं हो सकता।

संस्कृतव्याख्या— संशयाक्षेपं निदर्शयत्यत्र- **किमिति। किम् अयम्** आकाशे दृश्यमानः **शरदम्भोदः** शरत्कालिकः बादलः विद्यते **किं वा** अथवा किं इदं **हंस-कदम्बकं** हंसानां पक्षिविशेषाणां कदम्बकं वृन्दं विद्यते। परञ्च तत्सम्बन्धि **नूपुर-संवादि** नूपुरस्य मञ्जीरकस्य संवादं ध्वनि इव ध्वनि यस्य तादृशं **रुतं** ध्वनिः **श्रूयते** श्रुतिगोचरं जायते, **तत्** तस्मात्कारणाद् अयं **तोयदः** बादल **न** भवितुम् अर्हति।

(संशयाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्ययं संशयाक्षेपः संशयो यन्निवर्त्यते ।
धर्मेण हंससुलभेनास्पृष्टघनजातिना ।।१६४।।

अन्वय— इति हंससुलभेन अस्पृष्टघनजातिना धर्मेण यत् संशयः निवर्त्यते अयं संशयाक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। हंससुलभेन = हंसों में सुलभ (स्वाभाविक)। अस्पृष्टघनजातिना = बादलों में लक्षित न होने वाले। धर्मेण = धर्म के द्वारा। यत् = जो। संशयः = संशय (सन्देह का)। निवर्त्यते = निवारण (आक्षेप) हुआ है। अयं = यह। संशयाक्षेपः = संशयाक्षेप (है)।

अनुवाद— इस प्रकार हंसों में सुलभ तथा बादल जाति में लक्षित न होने वाले

(नूपुरध्वनि के समान ध्वनि वाले) धर्म के द्वारा जो सन्देह का निवारण (प्रतिषेध, आक्षेप) हुआ है, यह संशयाक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— संशयाक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **हंससुलभेन** हंसेषु पक्षिविशेषु सुलभेन सुलभतया लक्ष्यमाणेन **अस्पृष्टघनजातिना** अस्पृष्टा न स्पर्शं गता घनजतिः येन तादृशेन मेघेषु अलक्ष्यमाणेन नूपुरसंवादिरूपेण **धर्मेण** गुणेन यत् **संशयः** सन्देहः **निवर्त्यते** प्रतिषिध्यते, **अयम्** एषः **संशयाक्षेपः** विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अलङ्कार में सन्देह प्रदर्शित करके विशिष्ट धर्म द्वारा आक्षेप किया जाता है, वह संशयाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में 'शरत्कालीन बादल है अथवा हंसों का समूह' यह सन्देह प्रस्तुत करके हंसों के स्वाभाविक धर्म-नूपुरध्वनि के समान ध्वनि द्वारा बादल का प्रतिषेध किया गया है, अतः यह संशयाक्षेप है।

(अर्थान्तराक्षेपनिदर्शनम्)

चित्रमाक्रान्तविश्वोऽपि विक्रमस्ते न तृप्यति[१] ।
कदा वा दृश्यते तृप्तिरुदीर्णस्य हविर्भुजः।।१६५।।

अन्वय— ते आक्रान्तविश्वः अपि विक्रमः न तृप्यति इति चित्रम्। कदा वा उदीर्णस्य हविर्भुजः तृप्तिः दृश्यते।

शब्दार्थ— ते = तुम्हारा। आक्रान्तविश्वः = आक्रान्त (अभिभूत) कर दिया गया है सम्पूर्ण संसार जिसके द्वारा ऐसा होने पर भी, सम्पूर्ण संसार को आक्रान्त कर देने वाला होने पर भी। विक्रमः = पराक्रम। न तृप्यति = तृप्त (सन्तुष्ट, शान्त) नहीं हुआ है। चित्रम् = विचित्र है, आश्चर्यजनक है। कदा वा = अथवा। उदीर्णस्य = प्रचण्ड, भड़की हुई। हविर्भुजः = अग्नि की। तृप्तिः = तृप्ति, सन्तुष्टता। दृश्यते = दिखलायी पड़ती है।

अनुवाद— संसार को आक्रान्त (अभिभूत) कर देने वाला होने पर भी तुम्हारा पराक्रम अभी तृप्त (सन्तुष्ट) नहीं हुआ है– यह आश्चर्यजनक है (अथवा आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि) प्रचण्ड (भड़के हुए) अग्नि की तृप्ति (सन्तुष्टता) कब (कहाँ) दिखलायी पड़ती है (अर्थात् नहीं दिखलायी पड़ती)।

---

(१) शाम्यति।

संस्कृतव्याख्या— अर्थान्तराक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **चित्रमिति**। हे राजन् **ते** तव राज्ञः **आक्रान्तविश्वः अपि** आक्रान्तम् अभिभूतं विश्वं सकलं जगत् येन तादृशः अपि विक्रमः पराक्रमः **न तृप्यति** तृप्तिं न प्राप्नोति एतत् **चित्रम्** आश्चर्यजनकं विद्यते। अथवा न आश्चर्यजनकं यतो हि कदा कस्मिन् काले **उदीर्णस्य** उद्दीप्तस्य **हविर्भुजः** अग्नेः तृप्तिः **दृश्यते** दृष्टिगोचरं जायते, दृष्टिगोचरं न जायते इत्यर्थः।

(अर्थान्तराक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

अयमर्थान्तराक्षेपः प्रक्रान्तो यन्निवर्त्यते[१]।
विस्मयोऽर्थान्तरस्येह दर्शनात्तत्सधर्मणः ।।१६६।।

अन्वय— इह तत्सधर्मणः अर्थान्तरस्य दर्शनात् यत् प्रक्रान्तः निवर्त्यते अयम् अर्थान्तराक्षेपः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में। तत्सधर्मणः = उस (पराक्रम) के समान धर्म वाले। अर्थान्तरस्य = अन्य अर्थ के (प्रदर्शन, उपस्थापन) द्वारा। यत् = जो। प्रक्रान्तः = विस्मय (आश्चर्य) (का)। निवर्त्यते = निवारण (निषेध) हुआ है। अयम् = यह। अर्थान्तराक्षेपः = अर्थान्तराक्षेप है।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में उस (पराक्रम) के समान धर्म वाले अन्य अर्थ के (प्रदर्शन के) द्वारा जो विस्मय (आश्चर्य) का निषेध हुआ है, यह अर्थान्तराक्षेप है।

संस्कृतव्याख्या— अर्थान्तराक्षेपस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **अयमिति**। **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **तत्सधर्मिणः** तस्य पराक्रमस्य सधर्मिणः तुल्यगुणस्य **अर्थान्तरस्य** अन्यस्यार्थस्य **दर्शनात्** प्रदर्शनात् **यत् प्रकान्तः** विस्मयः **निवर्त्यते** निषिध्यते **अयम्** एषः **अर्थान्तराक्षेपः** तन्नामाक्षेपः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में अर्थान्तर द्वारा आक्षेप किया जाता है, वह अर्थान्तराक्षेप कहलाता है। यहाँ आक्षेप का विषय अर्थान्तर नहीं होता वह तो आक्षेप का साधनमात्र है।

(२) उक्त उदाहरण के पूर्वार्ध में उक्त 'आश्चर्य' का निवारण (निषेध) इसी पराक्रम के समान धर्म वाले अन्य अर्थ 'अग्नि की प्रचण्डता' से प्रदर्शित करके किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तराक्षेप है।

---

(१) निवार्यते।

(३) राजा के पराक्रम का अग्नि की प्रचण्डता से समानता दिखलाकर पराक्रम की उत्कृष्टता को व्यक्त किया गया है।

(हेत्वाक्षेपनिदर्शनम्)

न स्तूयते[१] नरेन्द्र त्वं ददासीति कदाचन।
स्वयमेव मत्वा गृह्णन्ति यत त्वद्धनमर्थिनः।।१६७।।

अन्वय— नरेन्द्र, त्वं ददासि इति कदाचन न स्तूयसे; यतः अर्थिनः त्वद्धनम् स्वयम् एव मत्वा गृहणन्ति।

शब्दार्थ— नरेन्द्र = हे राजन्। त्वं = तुम, आप। ददासि = देते हो, देते हैं। इति = इस प्रकार। कदाचन = कभी भी। न स्तूयसे = प्रशंसित नहीं किये जाते हो। यतः = क्योंकि। अर्थिनः = याचक लोग। त्वद्धनम् = आप के धन को। स्वयम् एव = अपना ही। मत्वा = मानकर, समझकर। गृहणन्ति = ग्रहण करते हैं, लेते हैं।

अनुवाद— हे राजन्! आप (याचकों को धन) देते हैं– इस प्रकार (आप) प्रशंसित नहीं किये जाते हैं (अर्थात् आप की प्रशंसा नहीं की जाती) (क्योंकि) याचक लोग आप के धन को अपना ही समझ कर लेते हैं।

संस्कृतव्याख्या— हेत्वाक्षेपं निदर्शयत्यत्र– **नेति**। **नरेन्द्र** हे राजन्, **त्वं** राजा याचकेभ्यः धनं **ददासि** प्रयच्छसि **इति** एवंविधं **कदाचन** कदापि न **स्तूयसे** प्रशस्यसे **यतः** यतो हि **अर्थिनः** याचकाः **त्वद्धनम्** तव धनम् **स्वयम् एव** निजम् एव **मत्वा** अवबुध्य **गृहणन्ति** ग्रहणं कुर्वन्ति।

(हेत्वाक्षेपनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्येवमादिराक्षेपो हेत्वाक्षेप इति स्मृतः।
अनयैव दिशान्येऽपि विकल्पाः शक्य[२]मूहितुम्।।१६८।।

अन्वय— इति एवम् आदिः आक्षेपः हेत्वाक्षेपः इति स्मृतः। अनया एव दिशा अन्ये अपि विकल्पाः ऊहितुं शक्यम्।

शब्दार्थ— इति एवम् आदिः = इस प्रकार वाला तज्जातीय अन्य। आक्षेपः = आक्षेप। हेत्वाक्षेपः = हेत्वाक्षेप। इति = इस (नाम) से। स्मृतः = अभिहित किया जाता है, कहा जाता है। अनया एव = इसी ही। दिशा = प्रकार से, विधि से, पद्धति से। अन्ये अपि = अन्य भी। विकल्पाः = विकल्प, उद्भावनाएँ, भेद। ऊहितुं =

---

(१) श्रूयसे।

(२) दिशान्योऽपि विकल्पः शक्य ऊहितुम्।

अनुमान (निरूपण) करने के लिए। शक्यम् = समर्थ (सक्षम) हुआ जा सकता है।

अनुवाद— इस प्रकार (हेतुप्रदर्शन) वाला (तज्जातीय अन्य) आक्षेप हेत्वाक्षेप कहलाता है। इसी विधि (पद्धति) से ही अन्य भी (आक्षेप के) भेदों को अनुमित (निर्दिष्ट) किया जा सकता है।

संस्कृतव्याख्या— हेत्वाक्षेपनिदर्शनं विश्लेषणपूर्वकम् आक्षेपमुपसंहरत्यत्र- इत्येवमिति। **इत्येवमादिः** निदर्शने प्रदर्शितः तज्जातीयकश्च **आक्षेपः** आक्षेपालङ्कार **हेत्वाक्षेपः** इति नाम्ना **स्मृतः** कथितः। **अनया एव दिशा** विधिना **अन्येऽपि** अपरेऽपि **विकल्पाः** आक्षेपस्य भेदाः **ऊहितुं** अनुमातुं **शक्यम्**। अनया पद्धत्या एव अन्येऽपि आक्षेपभेदाः विवेचितुं शक्यते इति भावः।

विशेष—

(१) जिस आक्षेपालङ्कार में हेतुप्रदर्शन द्वारा प्रतिषेध किया जाता है, वह हेत्वाक्षेप कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में राजा के दान की प्रशंसा का निषेध 'अपना ही मानकर लेते हैं' इस हेतु को प्रदर्शित करके किया गया है अतः यह हेत्वाक्षेप है।

(३) यहाँ आक्षेप के भेदों का दिग्दर्शन मात्र कराया है। इसी विधि से आक्षेप के अन्य भेदों की भी उद्भावना की जा सकती है।

(अर्थान्तरन्यासविवेचनम्)

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः ॥१६९॥

अन्वय— किञ्चन वस्तु प्रस्तुत्य तत्साधनसमर्थस्य अन्यस्य वस्तुनः यः न्यासः सः अर्थान्तन्यासः ज्ञेयः।

शब्दार्थ— किञ्चन = किसी। वस्तु = वस्तु को, पदार्थ को। प्रस्तुत्य = प्रस्तुत करके, उपस्थापित करके। तत्साधनसमर्थस्य = उस (पदार्थ) के समर्थन (साधन) में समर्थ। अन्यस्य = अन्य। वस्तुनः = पदार्थ का। यः = जो। न्यासः = न्यास (उपस्थापन) (किया जाता है)। सः = वह। अर्थान्तरन्यासः = अर्थान्तरन्यास (अलङ्कार)। ज्ञेयः = जानना चाहिए, कहना चाहिए, कहलाता है।

अनुवाद— किसी (विवक्षित) पदार्थ को (प्रस्तुत के रूप में) उपस्थापित करके उस (पदार्थ) के समर्थन में समर्थ अन्य पदार्थ का जो न्यास (उपस्थापन) (किया जाता है) वह अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— अर्थान्तरन्यासालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **ज्ञेयः इति**। **किञ्चन** किमपि विवक्षितं वस्तु पदार्थ **प्रस्तुत्य** प्रस्तुतरूपेण उपस्थाप्य **तत्साधनसमर्थस्य** तस्य प्रस्तुतस्य पदार्थस्य साधने समर्थने समर्थस्य सक्षमस्य **अन्यस्य** तस्मात्प्रस्तुतपदार्थाद् अपरस्य अप्रस्तुतस्य **वस्तुनः** पदार्थस्य **यः न्यासः** उपस्थापनं निवेशो वा क्रियते **सः** अयम् उपन्यासः **अर्थान्तरन्यासः** तन्नामालङ्कारः **ज्ञेयः** अवबोधव्यः। कस्यापि प्रस्तुतस्य वस्तुनः पूर्वम् उपन्यस्य उपस्थाप्य वा तदनन्तरं तस्य प्रस्तुतस्य वस्तुनः समर्थने सामर्थ्ययुक्तस्य अप्रस्तुतस्य वस्तुनः यदुपन्यासः सः अर्थान्तरन्यास इति भावः। परवर्तिनामाचार्याणां मते समर्थ्यसमर्थकयोः पदार्थयोः सामान्यविशेषभावं विशेषसामान्यभावं कारणकार्यभावं साधर्म्यमात्रं विद्यते।

विशेष—

(१) अर्थान्तरन्यास का अर्थ है- अन्य अर्थ का उपन्यास। जिस अलङ्कार में किसी विवक्षित बात (पदार्थ) को कहकर उसे सिद्ध करने में समर्थ अन्य बात (पदार्थ) को कहा जाता है, वह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार कहलाता है। इन दोनों पदार्थों में सादृश्य आवश्यक नहीं है- समानता हो भी सकती है और नहीं भी, किन्तु साध्य-साधन-भाव होना आवश्यक है।

(२) सामान्यतः इस अलङ्कार में समर्थ्य का उपन्यास पहले होता है तथा समर्थक अर्थान्तर का न्यास (उपस्थापन) बाद में। दण्डी के कथन से इसी तथ्य का उद्घाटन होता है किन्तु सरस्वतीकण्ठाभरण के अनुसार समर्थक अर्थान्तर का न्यास पहले भी सम्भव है।

(३) परवर्ती आचार्यों ने समर्थक अर्थान्तर को सामान्य या विशेष अथवा कार्य या कारण के रूप में लक्षित किया है। जैसा कि विश्वनाथ ने कहा है—

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कारणेन च समर्थ्यते॥

(सा० द० १०.६१-६२)

— किन्तु मम्मट के अनुसार सामान्य-विशेषभाव की स्थिति में ही अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है (द्रष्टव्य, काव्यप्रकाश १०.१०९)।

(अर्थान्तरन्यासभेदविवेचनम्)

विश्वव्यापी विशेषस्थः श्लेषाविद्धो विरोधवान्।
अयुक्तकारी युक्तात्मा युक्तायुक्तो विपर्ययः॥१७०॥

इत्येवमादयो भेदाः प्रयोगेष्वस्य लक्षिताः[१] ।
उदाहरणमालैषां रूपव्यक्तै[२] निदर्श्यते[३] ।।१७१।।

अन्वय— विश्वव्यापी विशेषस्थः श्लेषाविद्धः विरोधवान् अयुक्तकारी युक्तात्मा युक्तायुक्तः विपर्ययः इति एवम् आदयः अस्य भेदाः प्रयोगेषु लक्षिताः । एषाम् रूपव्यक्तै उदाहरणमाला निदर्श्यते ।

शब्दार्थ— विश्वव्यापी = सर्वव्यापी (सबको व्याप्त करने वाला, सामान्य)। विशेषस्थः = विशेषस्थ (किसी विशेष विषय में विद्यमान)। श्लेषाविद्धः = श्लेषाविद्ध (शब्दगत अथवा अर्थगत श्लेष से अनुगत)। विरोधवान् = विरोधी (परस्पर विरोध से युक्त)। अयुक्तकारी = अयुक्तकारी (अनुचित करने वाला। युक्तात्मा = युक्तात्मा (उचित स्वरूप वाला)। युक्तायुक्तः = युक्त और अयुक्त। विपर्ययः = युक्तायुक्त के विपर्यय (विपरीत) वाला। इति एवम् आदयः = आदि इस प्रकार वाले। अस्य = इस (अर्थान्तरन्यास) के। भेदाः = भेद। प्रयोगेषु = (काव्य) प्रयोगों में। लक्षिताः = लक्षित होते हैं। एषां = इनका। रूपव्यक्तै = स्वरूप स्पष्ट करने के लिए। उदाहरणमाला = उदाहरण-समुदाय। निदर्श्यते = निर्दिष्ट किया जा रहा है।

अनुवाद— विश्वव्यापी, विशेषस्थ, श्लेषाविद्ध, विरोधवान्, अयुक्तकारी, युक्तात्मा, युक्तायुक्त, और (युक्तायुक्त का) विपर्यय आदि इस प्रकार वाले इस (अर्थान्तरन्यास) के भेद काव्यप्रयोगों (काव्य रचनाओं) में लक्षित होते हैं (दिखलायी पड़ते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— अर्थन्तरन्यासस्य भेदान् निदर्शयत्यत्र- **विश्वव्यापीति**। **विश्वव्यापी** सर्वव्यापी **विशेषस्थः** विशिष्ट वस्तूनि एव विद्यमानः **श्लेषाविद्धः** श्लेषेण अनुगतः **विरोधवान्** विरुद्धार्थयुक्तः **अयुक्तकारी** स्वभावेनानुचितकार्यकर्त्ता **युक्तात्मा** औचित्ययुक्तः, **युक्तायुक्तः** युक्तः उचितः अपि अयुक्तः अनुचितकर्त्ता **विपर्ययः** युक्तायुक्तस्य विपरीतः **इति एवम् आदयः** इत्यादयः अन्येऽपि ईदृशाः **अस्य** अर्थान्तरन्यासस्य **भेदाः** प्रकाराः **प्रयोगेषु** काव्यप्रबन्धेषु **लक्षिताः** प्रतीताः परिलक्षिताः भवन्ति। **एषाम्** अर्थान्तरन्यासस्य भेदानां **रूपव्यक्तैः** स्वरूपज्ञानाय **उदाहरणमाला** उदाहरण-समुदायः **निदर्श्यते** प्रस्तूयते।

---

(१) विकल्पे- ।

(२) -युक्त्यै, -व्यक्तौ ।

(३) निगद्यते ।

(विश्वव्याप्यर्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

भगवन्तौ जगन्नेत्रे सूर्याचन्द्रमसावपि ।
पश्य गच्छत एवास्तं नियतिः केन लङ्घ्यते ।।१७२।।

अन्वय— पश्य, भगवन्तौ जगन्नेत्रे सूर्याचन्द्रमसौ अपि अस्तं गच्छतः एव, नियतिः केन लङ्घ्यते ।

शब्दार्थ— पश्य = देखो । भगवन्तौ = ऐश्वर्ययुक्त, सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न । जगन्नेत्रे = संसार के नेत्र स्वरूप । **सूर्याचन्द्रमसौ** अपि = सूर्य और चन्द्रमा भी । **अस्तं गच्छतः** = अस्त हो जाते हैं । **नियतिः** = भाग्य । केन = किसके द्वारा । लङ्घ्यते = उलङ्घित किया जा सकता है, अतिक्रमित किया जा सकता है ।

अनुवाद— देखो, सर्वसामर्थ्यसम्पन्न (ऐश्वर्ययुक्त) तथा संसार के नेत्रस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा भी अस्त हो जाते हैं (अन्ततः) भाग्य किसके द्वारा उलङ्घित किया जा सकता है, (अर्थात् भाग्य को कौन लाँघ सकता है, कोई नहीं) ।

संस्कृतव्याख्या— विश्वव्यापिनं अर्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र- **भगवन्ताविति**। **भगवन्तौ** ऐश्वर्यसम्पन्नौ सर्वसामर्थ्ययुक्तौ वा **जगन्नेत्रे** जगतः संसारस्य नेत्रे नेत्रस्वरूपे **सूर्याचन्द्रमसौ** सूर्यश्च चन्द्रमाश्च **अस्तं गच्छतः** नियमेनास्तं भवतः । उक्तं पदार्थं प्रस्तुत्य तत्समर्थनसमर्थमर्थं प्रस्तौति- **नियतिः** भाग्यं **केन लङ्घ्यते** समतिक्रम्यते, न केनापि अतिक्रम्यते इति भावः । समर्थनसक्षमस्य अर्थान्तरस्य भाग्यातिक्रमणरूपस्य सर्वव्यापित्वादत्र विश्वव्यापी नामार्थान्तरन्यासः ।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यास में समर्थनसमर्थ अन्य अर्थ सर्वव्यापी होता है, वह विश्वव्यापी नामक अर्थान्तरन्यास कहलाता है ।

(२) उक्त उदाहरण में विशेष पदार्थ सूर्य और चन्द्रमा के अस्तगमन को प्रस्तुत करके उसके समर्थन में समर्थ अर्थान्तर 'भाग्य की अनुलङ्घ्नता' का न्यास किया गया है । यह समर्थक अर्थ 'भाग्य की अनुलङ्घनीयता' सर्वव्यापी (सर्वप्रसिद्ध) है। सर्व-व्यापी होने के कारण यह सर्वव्यापी नामक अर्थान्तरन्यास है ।

(विशेषस्थार्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

पयोमुचः परीतापं हरन्त्येते[1] शरीरिणाम् ।
नन्वात्मलाभो महतां परदुःखोपशान्तये ।।१७३।।

---

(१) हरन्त्येव ।

अन्वय— एते पयोमुचः शरीरिणां परीतापं हरन्ति, ननु महताम् आत्मलाभः परदुःखोपशान्तये (भवति)।

शब्दार्थ— एते = ये। पयोमुचः = मेघ। शरीरिणां = शरीरधारियों के। परीतापं = ताप को, गर्मी को। हरन्ति = हर लेते हैं, दूर कर देते हैं। ननु = निश्चय ही। महतां = महात्माओं का, बड़े लोगों का। आत्मलाभः = जन्मग्रहण। परदुःखो-पशान्तये = दूसरों के दुःखों (सन्ताप) को दूर करने के लिए (होता है)।

अनुवाद— ये मेघ शरीरधारियों के (ग्रीष्मकालीन) ताप (गर्मी) को हर लेते हैं, (दूर कर देते हैं), निश्चय ही महात्माओं का जन्मग्रहण दूसरों के दुःखों (सन्तापों) को दूर करने के लिए होता है।

संस्कृतव्याख्या— विशेषस्थमर्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र- **पयोमुचः इति**। **एते** पुरोदृश्यमानाः **पयोमुचः** मेघाः **शरीरिणां** शरीरधारिणां **परीतापं** ग्रीष्मकालिकं तापं **हरन्ति** दूरीकुर्वन्ति, **ननु** निश्चितरूपेण **महतां** महात्मनाम् **आत्मलाभः** जन्मग्रहणं **परदुःखोपशान्तये** परेषां अन्येषां दुःखानां सन्तापानाम् उपशान्तये दूरीकरणार्थं भव-तीति शेषः। अत्र समर्थकार्थेन महतामिति कथनेन सामान्यप्राणिनां, न प्रत्युत महात्म-नामेव विशेषस्थत्त्वम्। महात्मविशेषस्थत्वादत्र विशेषस्थो नाम अर्थान्तरन्यासः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यास में समर्थनसमर्थ अर्थान्तर सामान्य नहीं होता प्रत्युत विशेषस्थ होता है, वह विशेषस्थ नामक अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में पूर्वविवक्षित अर्थ 'मेघों द्वारा शरीरधारियों के ताप के हरण' को प्रस्तुत करके उसके समर्थन के लिए समर्थ अर्थान्तर 'परसन्तापहरण के लिए महात्माओं का जन्मग्रहण' साधारणप्राणियों का न होकर विशेष- अर्थात् महात्माओं में स्थित है क्योंकि सभी लोगों का जन्म परदुःखनिवारण के लिए नहीं होता। विशेष में स्थित होने के कारण यहाँ विशेषस्थ नामक अर्थान्तर-न्यास है।

(श्लेषाविद्धार्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

उत्पादयति लोकस्य प्रीतिं मलयमारुतः[१]।
ननु दाक्षिण्यसम्पन्नः सर्वस्य भवति प्रियः[२] ॥१७४॥

---

(१) दक्षिण-।

(२) सर्वस्यावहति प्रियम्।

अन्वय— मलयमारुतः लोकस्य प्रीतिम् उत्पादयति, ननु दाक्षिण्यसम्पन्नः सर्वस्य प्रियः भवति।

शब्दार्थ— मलयमारुतः = मलयपवन। लोकस्य = सभी लोगों में। प्रीतिं = प्रीति को, प्रेम को, आनन्द को। उत्पादयति = उत्पन्न करता है, देता है। ननु = निश्चित रूप से। दाक्षिण्यसम्पन्नः = दाक्षिण्य (=सौजन्य = दाक्षिणात्यत्त्व) से सम्पन्न (जन अथवा पदार्थ)। सर्वस्य = सभी लोगों का। प्रियः = प्रिय। भवति = होता है।

अनुवाद— मलयपवन सभी लोगों के लिए आनन्द को उत्पन्न करता है (देता है), निश्चित ही दाक्षिण्य (सौजन्य = दाक्षित्यत्त्व) से सम्पन्न (जन अथवा पदार्थ) सभी लोगों के लिए प्रिय होता है।

संस्कृतव्याख्या— श्लेषाविद्धम् अर्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र- **उत्पादयतीति**। **मलयमारुतः** मलयपवनः **लोकस्य** संसारस्य **प्रीतिम्** आनन्दम् **उत्पादयति** जनयति, **ननु** निश्चितरूपेण **दाक्षिण्यसम्पन्नः** दाक्षिण्येन सौजन्येन दाक्षिणात्यत्वेन सम्पन्नः जनः पदार्थः वा **सर्वस्य जनस्य प्रियः** प्रीतिकारकः भवति। प्रस्तुतार्थस्य समर्थकेऽर्थान्तरे उभयपदार्थगामिनः दाक्षिण्यपदस्य श्लिष्टत्वात् श्लेषाविद्धः अर्थान्तरन्यासः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यास में प्रस्तुत किये गये अर्थ के समर्थन में उपस्थापित अर्थान्तर में श्लिष्ट पद प्रयुक्त होता है, वह श्लेषाविद्ध नामक अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में प्रस्तुत किये गये अर्थ 'मलयपवन सभी लोगों को आनन्द देता है' के समर्थन में समर्थ अर्थान्तर में 'दाक्षिण्य' यह श्लिष्टपद प्रयुक्त है अतः यह श्लेषाविद्ध अर्थान्तरन्यास है।

(विरोधवानर्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

जगदानन्दयत्येषः मलिनोऽपि निशाकरः।
अनुगृह्णाति हि परान् सदोषोऽपि द्विजेश्वरः ।।१७५।।

अन्वय— एषः मलिनः अपि निशाकरः जगत् आनन्दयति, हि सदोषः अपि द्विजेश्वरः अनुगृह्णाति।

शब्दार्थ— एषः = यह। मलिनः = कलङ्कयुक्त। अपि = भी। निशाकरः = चन्द्रमा। जगत् = संसार को। आनन्दयति = आनन्दित करता है, आनन्द देता है। हि = निश्चितरूप से। सदोषः = दोषयुक्त। द्विजेश्वरः = ब्राह्मण। परान् = दूसरे (लोगों) को। अनुग्रहणाति = अनुगृहीत करता है।

---

(१) आह्लाद- ।

अनुवाद— यह कलङ्कयुक्त भी चन्द्रमा संसार को आनन्द देता है, निश्चितरूप से सदोष (दोषयुक्त) ब्राह्मण (अपने उपदेश से) दूसरे लोगों को अनुगृहीत करता है।

संस्कृतव्याख्या— विरोधवानर्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र- **जगदिति**। एषः पुरो-दृश्यमानः **मलिनः अपि निशाकरः** चन्द्रः **जगत्** संसारं **आनन्दयति** प्रीणयति। दोष-युक्तः पदार्थः प्रीतिकरः न प्रत्युत अप्रीतिकरः भवति परञ्च चन्द्रविषये विरुद्धमेतत्। तं विवक्षितार्थं प्रस्तुत्य तत्समर्थनसमर्थमर्थान्तरं विरुद्धत्वेन उपन्यस्यति- **सदोषः** दोष-युक्तः अपि **द्विजेश्वरः** ब्राह्मणः **हि** निश्चितरूपेण स्वोपदेशद्वारा **परान्** अन्यान् जनान् **अनुगृह्णाति** उपकरोति। मलिनत्वानन्दकयोः परस्परं विरुद्धत्वं दृश्यते। तद्विरुद्धत्वो-पलक्षितो प्रस्तुतोऽर्थः विरुद्धवानिति। सदोषत्वानन्दकाभ्यां विरुद्धधर्माभ्यां सङ्गृहीतेन समर्थकेनार्थान्तरेण समर्थितः अर्थः, अत एवात्र विरोधवान् अर्थान्तरन्यासः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यास अलङ्कार में परस्पर विरुद्ध अर्थ को प्रस्तुत करके उसका समर्थन परस्पर विरुद्ध अर्थान्तर से किया जाता है वह विरोधवान् अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में चन्द्रमा का मलिनत्व और अह्लादकत्व परस्पर विरुद्ध है। इस विरुद्ध अर्थ को प्रस्तुत करके इसका समर्थन ब्राह्मण के 'सदोषकत्व और उपकारकत्व' इस अर्थान्तर से किया गया है अतः विरोधवान् अर्थान्तरन्यास है।

(अयुक्तकार्यार्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

मधुपानकलात् कण्ठान्निर्गतोऽप्यलिनां ध्वनिः।
कटुर्भवति कर्णस्य कामिनां पापमीदृशम्॥१७६॥

अन्वय— मधुपानकलात् कण्ठात् अपि निर्गतः अलिनां ध्वनिः कामिनां कर्णस्य कटुः भवति, पापम् ईदृशम्।

शब्दार्थ— मधुपानकलात् = मधुपान के कारण मधुर। कण्ठात् अपि = कण्ठ से भी। निर्गतः = निकला हुआ। आलिनां = भ्रमरों का। ध्वनि = ध्वनि, गुञ्जन। कामिनां = कामीजनों के, प्रेमीजनों के। कर्णस्य = कानों की, कानों के लिए। कटुः = तीक्ष्ण, असहनीय। भवति = होती है। पापं = पाप। ईदृशं = ऐसा ही होता है।

अनुवाद— (पुष्पों के) मधुपान के कारण मधुर हुए कण्ठ से भी निकला हुआ भ्रमरों का गुञ्जन (गुञ्जार) कामीजनों के कानों के लिए कटु (तीक्ष्ण, असहनीय) होता है निश्चित ही पाप ऐसा ही (होता है) (अर्थात् मधुर पदार्थ को कड़वा बना देता है)।

संस्कृतव्याख्या— अयुक्तकारिणम् अर्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र- **मधुपानेति**।

मधुपानकलात् पुष्पाणां मधुपानेन परागपानेन कलात् मधुरात् **अपि कण्ठात्** गल-विलात् **निर्गतः** निःसृतः **भ्रमणानां** मधुपानां **ध्वनिः** गुञ्जारवः **कामिनां** कामपीडितानां **कर्णस्य** श्रोत्रस्य कृते **कटुः** उद्वेगजनकः **भवति** जायते उत्कण्ठाजननेन पीडा-दायकः भवतीत्यर्थः, विवक्षितार्थोऽयम् अर्थान्तरेण समर्थयति– **पापं** कामासक्तिरूपं पापकर्म **ईदृशम्** एवं विधं कष्टदायकमेव भवति। मधुराज्जायमानो मधुरध्वनिः आनन्द-दायकः भवति न तु पीडादायकः। पीडादायक इति विवक्षितार्थः अनुचितः अयुक्तः विद्यते। तदयुक्तकर्मरूपार्थम् अर्थान्तरेण पापमीदृशमित्यनेन समर्थयति। अत एवायम् अयुक्तकारी नामार्थान्तरन्यासः।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यासालङ्कार में अयुक्त समर्थ्य पदार्थ का समर्थन अयुक्तकारी पदार्थ से किया जाता है, वह अयुक्तकारी अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में मधुर कण्ठ से कड़वी ध्वनि निकलना अयुक्त (अनुचित) है। इस अयुक्त समर्थ्य पदार्थ का समर्थन कामियों के पाप को हेतु बतला कर किया गया है कि ध्वनि तो मधुर ही है, ये तो कामियों के ही कान हैं कि उन्हें मधुर ध्वनि कड़वी लगती है। इस प्रकार यहाँ अयुक्तकारी वस्तु से समर्थन होने के कारण अयुक्तकारी नामक अर्थान्तरन्यास है।

(युक्तात्मार्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

अयं मम दहत्यङ्गमम्भोजदलसंस्तरः ।
हुताशनप्रतिनिधिर्दाहात्मा ननु युज्यते ।।१७७।।

अन्वय— अयम् अम्भोजदलसंस्तरः मम अङ्गं दहति ननु हुताशनप्रतिनिधिः दाहात्मा युज्यते।

शब्दार्थ— अयम् = यह। अम्भोजदलसंस्तरः = कमल की पङ्खुड़ियों वाली शय्या। मम = मेरे। अङ्गं = अङ्ग को। दहति = जला रही है। ननु = निश्चितरूप से। हुताशनप्रतिनिधिः = (कुछ कुछ लाल वर्ण का होने कारण) अग्नि का प्रतिनिधि-भूत (यह)। दाहात्मा = दाहक स्वभाव वाला होना। युज्यते = उचित ही है।

अनुवाद— यह कमल की पङ्खुड़ियों वाली शय्या मेरे अङ्गों को जला रही है, निश्चित रूप से (कुछ कुछ लाल वर्ण वाला होने के कारण) अग्नि का प्रतिनिधिभूत (कमल का) दाहक स्वभाव वाला होना उचित ही है।

संस्कृतव्याख्या— युक्तात्मार्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र– **अयमिति**। **अयं** पुरो-दृश्यमानः **अम्भोजदलसंस्तरः** अम्भोजानां कमलानां दलैः पत्रैः निर्मितः संस्तरः

शयनीयं **मम अङ्गं** शरीरावयवं **दहति** सन्तापयति शीतलतया प्रथितानां कमल-दलानां सन्तापकत्वं समर्थयति **ननु** निश्चितरूपेण **हुताशनप्रतिनिधिः** ईषद्रक्तवर्णत्वेन हुताशनस्य अग्नेः प्रतिकृतिभूतः **दाहात्मा** दाहकस्वभावयुक्तः इति **युज्यते** उचितमेव वर्तते। अग्निरिव वर्णः यस्य तादृशः पदार्थः अग्निरिव दहनस्वभावशीलः भवतीति युक्तात्मायमर्थः। हुताशनप्रतिनिधित्वरूपसामान्येनार्थेन तत्प्रतिनिधिविशेषस्य कमल-दलशयनीयस्याङ्गदाहकत्वस्य औचित्यं समर्थितम्। अत एवात्र युक्तात्मार्थान्तन्यासः।

विशेष—

१) जिस अर्थान्तरन्यासालङ्कार में लोक में अप्रसिद्ध अत एव अनुपपन्न समर्थ्य पदार्थ की युक्तात्मता (उपपन्नता) का समर्थन अर्थान्तर से किया जाता है, वह युक्तात्मा नामक अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

२) उक्त उदाहरण में शीतल स्वभाव वाले कमलपत्रों से बनी शय्या की दाहकता सामान्यतः लोक में अप्रसिद्ध होने से अनुपपन्न है। इसकी युक्तात्मता अथवा उपपन्नता यहाँ समर्थ्य पदार्थ है जिसका समर्थन अर्थान्तर 'अग्निसदृश वर्ण वाले पदार्थ की दाहात्मकता उचित है' के द्वारा किया गया है। इस प्रकार विवक्षित समर्थ्य पदार्थ युक्तात्मकता का समर्थन होने के कारण यहाँ युक्तात्मा नामक अर्थालङ्कार है।

(युक्तायुक्तार्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

क्षिणोतु कामं शीतांशुः किं वसन्तो दुनोति माम्।
मालिनाचरितं कर्म सुरभेर्नन्वसाम्प्रतम्।।१७८।।

अन्वय— मां शीतांशुः कामं क्षिणोतु, वसन्तः किम् दुनोति। ननु मलिनाचरितं कर्म सुरभेः असाम्प्रतम्।

शब्दार्थ— मां = मुझको। शीतांशुः = चन्द्रमा। कामं = भले ही। क्षिणोतु = पीड़ित करे। वसन्तः = वसन्त ऋतु। किम् = क्यो, किसलिए। दुनोति = सता रहा है। ननु = निश्चित ही। मलिनाचरितं = मलिन (कलङ्कित) व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला। कर्म = कर्म। सुरभेः = विख्यात कीर्ति वाले के लिए। असाम्प्रतं = अयुक्त होता है, अनुचित होता है, अशोभनीय होता है।

अनुवाद— मुझको चन्द्रमा भले ही पीड़ित करे (किन्तु) वसन्त क्यों सता रहा है, निश्चय ही (चन्द्रमा जैसे) मलिन (कलङ्कित व्यक्ति) द्वारा किया जाने वाला कर्म (वसन्त जैसे) विख्यात (अथवा स्वच्छ) कीर्ति वाले (व्यक्ति) के लिए अनुचित (अयुक्त, अशोभनीय) होता है।

संस्कृतव्याख्या— युक्तायुक्तार्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र– **क्षिणोत्विति**। मां विरहिणं **शीतांशुः** चन्द्रमाः **कामं** स्वेच्छानुसारं क्षिणोतु पीडयतु परञ्च **वसन्तः** सुरभि-कालः **किं** किमर्थं **दुनोति** सन्तापयति अर्थमिमर्थान्तरेण समर्थयति– **ननु** निश्चित-रूपेण **मालिनाचरितं** मलिनैः चन्द्रसदृशैः सकलङ्कैः आचरितं पीडनरूपं सम्पादितं **कर्म** **सुरभेः** सुरभियुक्तवसन्तरूपस्य विख्यातकीर्तेः कृते **असाम्प्रतम्** अयुक्तमनुचितमशोभ-नीयं वा भवतीति शेषः। विवक्षिते समर्थ्ये पदार्थे चन्द्रमसः पीडकत्वं युक्तम् (उचितं) कलङ्कित्वात्, परञ्च वसन्तस्य कृते अयुक्तम् (अनुचितं) स्वच्छगुणत्वात्। अत्र युक्ता-युक्तयोः समर्थ्यसमर्थकयोः पदार्थयोः कथनाद् युक्तायुक्तनामा अर्थान्तरन्यासः।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यास अलङ्कार में उचित पदार्थ का अनुचित अर्थान्तर द्वारा समर्थन होता है, वह युक्तायुक्त नामक अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में चन्द्रमा द्वारा पीड़ित करने का कार्य उचित है क्योंकि वह मलिन (कलङ्कयुक्त) है, किन्तु वही कार्य स्वच्छ या प्रख्यात गुण वाले वसन्त के लिए अनुचित है। इस प्रकार यहाँ समर्थ्य अर्थ चन्द्रमा द्वारा पीड़ित किये जाने के कार्य का समर्थन समर्थक अयुक्त अर्थान्तर वसन्त द्वारा 'पीड़ित करने के कर्म' से किया गया है, अतः यह युक्तायुक्त नामक अर्थान्तरन्यास है।

(युक्तायुक्तविपर्ययार्थान्तरन्यासनिदर्शनम्)

कुमुदान्यपि तापाय[१] किमयं[२] कमलाकरः।
नहीन्दुगृह्येषूग्रेषु सूर्यगृह्यो मृदुर्भवेत् ॥१७९॥

अन्वय— कुमुदानि अपि तापाय (तत्) अयं कमलाकरः किम्? हि उग्रेषु इन्दुगृह्येषु सूर्यगृह्यः मृदुः न भवेत्।

शब्दार्थ— कुमुदानि अपि = कुमुदिनी भी। तापाय = सन्तप्त करने के लिए, जलाने के लिए। अयं = यह। कमलाकरः = कमलवन, कमलों का समूह। किम् = क्या (कहना)। हि = निश्चित ही। इन्दुगृह्येषु = चन्द्रमा के पक्ष वाले (कुमुदों) के। **उग्रेषु** = उग्र (तापकारी) होने पर। सूर्यगृह्यः = सूर्य के पक्ष वाले (कमल)। मृदुः = कोमल, शीतल। न भवेत् = नहीं हो सकते।

अनुवाद— (शीतल चन्द्रमा के द्वारा विकसित होने वाली) (जब) कुमुदिनी भी सन्तप्त करने के लिए है तो तप्त सूर्य द्वारा विकसित होने वाले) इस कमलवन का

(१) दाहाय।
(२) किमङ्ग।

क्या (कहना)। निश्चित रूप से चन्द्रमा के पक्ष वाली (कुमुदिनी) के उग्र होने पर सूर्य के पक्ष वाले (कमलवन) शीतल नहीं हो सकते।

संस्कृतव्याख्या— युक्तायुक्तविपर्ययार्थान्तरन्यासं निदर्शयत्यत्र- **कुमुदानीति**। शीतलेन चन्द्रेण विकसितानि **कुमुदानि** कैरवाणि **तापाय** मम विरहिणं सन्तापाय सन्ति तद् उष्णेन सूर्येण विकसितः **अयम्** एषः **कमलाकरः** कमलानाम् समूहः कमलसमुदायः **किं** किमु वक्तव्यम् इत्यर्थः, प्रस्तुतमर्थं समर्थयति- **हि** निश्चयेन **इन्दुगृहेषु** चन्द्रपक्षीयेषु कुमुदेषु **उग्रेषु** सन्तापकेषु सत्सु **सूर्यगृह्यः** सूर्यपक्षीयः कमलाकरः **मृदुः** शीतलः **न भवेत्** न सम्भवेत्। अत्र कुमुदानां सन्तापकरित्वम् अयुक्तं कमलानाञ्च युक्तम्। अयुक्तार्थस्य युक्तेनार्थान्तरेण समर्थनात् पूर्वोक्तस्य युक्तायुक्तस्य विपरीत्वम्। अत एवात्र विपर्ययो नामार्थान्तरन्यासः।

विशेष—

(१) जिस अर्थान्तरन्यास अलङ्कार में विवक्षित अयुक्त (अनुचित) वस्तु का युक्त (उचित) वस्तु (अर्थ) के द्वारा समर्थन किया जाता है वह (युक्तायुक्त का) विपर्यय नामक अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में शीतल चन्द्रमा द्वारा विकसित किये गये कुमुदों का सन्ताप कारक होना अनुचित (अयुक्त) है तथा उष्ण सूर्य द्वारा विकसित किये गये कमलों का सन्तापकारक होना उचित (युक्त) है। इस प्रकार यहाँ अयुक्त वस्तु कुमुदों के सन्तापकारक होने का समर्थन युक्त वस्तु कमलों के सन्तापकारक होने से किया गया है अतः यहाँ अयुक्तयुक्त अर्थात् युक्तायुक्त का विपर्यय होने से विपर्यय नामक अर्थान्तरन्यास है।

(व्यतिरेकालङ्कारविवेचनम्)

शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः।
तत्र यद्भेदकथनं व्यतिरेकः स कथ्यते[१] ।।१८०।

अन्वय— द्वयो वस्तुनोः शब्दोपाते प्रतीते वा सादृश्ये तत्र यत् भेदकथनं तत्र सः व्यतिरेकः कथ्यते।

शब्दार्थ— द्वयोः वस्तुनोः = दो पदार्थों में। शब्दोपात्ते = शब्द द्वारा अभिहित होने पर। प्रतीते वा = अथवा (लक्षणा से या पूर्वापर प्रसङ्ग से) प्रतीत होने पर। सादृश्ये = समानता के होने पर। तत्र = वहाँ, उस दोनों में। यद्भेदकथनं = जो भेद

---

(१) उच्यते।

का कथन होता है। सः = वह। व्यतिरेकः = व्यतिरेक (अलङ्कार)। कथ्यते = कहा जाता है, कहलाता है।

अनुवाद— दो पदार्थों (उपमेय और उपमान) में शब्द द्वारा अभिहित अथवा (लक्षणा या पूर्वापर) से प्रतीत समानता के होने पर वहाँ जो उन दोनों (पदार्थों) में (उपमेय के उत्कर्ष के प्रतिपादन के लिए) जो भेद का कथन होता है, वह व्यतिरेक (अलङ्कार) कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— व्यतिरेकालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **शब्दोपात्त इति**। **द्वयोः वस्तुनोः** द्वयोः पदार्थयोः उपमेयोपमानयोः **शब्दोपात्ते** शब्देनाभिधीयमाने **प्रतीते वा** लक्षणया पूर्वापरप्रसङ्गेन वा प्रतीते प्रतीयमाने जाते **सादृश्ये** साम्ये सति **तत्र** तयोः द्वयोः **यद्भेदकथनं** केनचिद् धर्मविशेषेण उपमेयोत्कर्षप्रदर्शनाय भेदप्रतिपादनं भवति **सः व्यतिरेकः** व्यतिरेकनामालङ्कारः **कथ्यते** उच्यते।

विशेष—

(१) विवक्षित दो वस्तुओं (उपमेय और उपमान) की समानता जब शब्द द्वारा अभिहित अथवा लक्षणा या पूर्वापर प्रसङ्ग से प्रतीत हो तो उन दोनों (उपमेय और उपमान) में उपमेय के उत्कर्ष के लिए के लिए जो भेद (पृथकता) का प्रतिपादन किया जाता है, वह व्यतिरेक अलङ्कार कहलाता है।

(२) परवर्ती आचार्यों ने इस अलङ्कार का स्पष्ट रूप से लक्षण प्रस्तुत किया है। विश्वनाथ के अनुसार— आधिक्यमुपमेयस्योपमानन्न्यूनताथवा। व्यतिरेकः .... (सा० द० १०.५२)। मम्मट ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है— उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः एव सः (का० प्र० १०.१०५)।

(३) दण्डी ने इस अलङ्कार को (क) सादृश्य की शब्दोपात्तता तथा प्रतीयमानता (ख) एकत्रवर्ती तथा उभयत्रवर्ती धर्मकथन (ग) भेदमात्रकथन तथा उत्कर्षकथन (घ) उपमेय और उपमान की सजातीयता तथा विजातीयता (ङ) अन्य श्लेषादि अलङ्कारों के सङ्कर के आधार पर विभाजित किया है। इन भेदों का दिग्दर्शनमात्र आगे प्रतिपादित उदाहरणों द्वारा कराया गया है।

(एकव्यतिरेकनिदर्शनम्)

धैर्यलावण्यगाम्भीर्य[१]प्रमुखैस्त्वमुदन्वतः ।
गुणैस्तुल्योऽसि भेदस्तु वपुषैवेदृशेन ते ।।१८१।।

---

(२) -माहात्म्य- ।

अन्वय— धैर्यलावण्यगाम्भीर्यप्रमुखैः गुणैः त्वं उदन्वतः तुल्यः असि भेदः तु ते ईदृशेन वपुषा एव (विद्यते)।

शब्दार्थ— धैर्यलावण्यगाम्भीर्यप्रमुखैः = धैर्य (राजा पक्ष में- धीरता, समुद्रपक्ष में- मर्यादा में रहना), लावण्य (राजापक्ष में- सुन्दरता, समुद्र पक्ष में- नमकयुक्तता), और गाम्भीर्य (राजापक्ष में स्वभाव की गम्भीरता, समुद्रपक्ष में- गहराई) इत्यादि। गुणैः = गुणों से। त्वं = तुम। उदन्वतः = समुद्र के। तुल्यः = समान। असि = हो। भेदः तु = भेद तो। ते = तुम्हारे। ईदृशेन = इस प्रकार वाले। वपुषा = शरीर से। एव = ही है।

अनुवाद— हे राजन्, धैर्य (राजापक्ष में- धीरता और समुद्र पक्ष में- मर्यादा में रहना), लावण्य (राजापक्ष में सुन्दरता और समुद्रपक्ष में नमकयुक्तता) तथा गाम्भीर्य (राजापक्ष में- गम्भीरता और समुद्रपक्ष में गहराई) इत्यादि गुणों से तुम समुद्र के समान हो (तुम्हारे तथा समुद्र में) भेद तो तुम्हारे इस प्रकार वाले शरीर से ही है।

संस्कृतव्याख्या— एकव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **धैर्येति**। हे राजन्, **धैर्यलावण्यगाम्भीर्यप्रमुखैः** धैर्येण राजापक्षे धीरत्वं समुद्रपक्षे मर्यादत्वञ्च तेन, लावण्येन राजापक्षे सौन्दर्यं समुद्रपक्षे लवणमयत्वं च तेन, गाम्भीर्येण राजापक्षे स्वभावगम्भीरतया समुद्रपक्षे अगाधत्वं च तेन प्रमुखैः आदिभिः **गुणैः** धर्मैः **त्वं** राजा **उदन्वतः** समुद्रस्य **तुल्यः** सदृशः विद्यसे। त्वत्समुद्रयोः परस्परं भेदः वैधर्म्यं **तु ते** तव राज्ञः **ईदृशेन** हस्तपादादिना शरीरावयवयुतेन पुरोदृश्यमानेन शरीरेण **एव** विद्यते।

(एकव्यतिरेकनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्येकव्यतिरेकोऽयं धर्मेणैकत्रवर्तिना।
प्रतीति[1]विषयप्राप्तेर्भेदस्योभयवर्तिनः ॥१८२॥

अन्वय— एकत्रवर्तिना धर्मेण उभयवर्तिनः भेदस्य प्रतीतिविषयप्राप्तेः अयम् एकव्यतिरेकः (विद्यते)।

शब्दार्थ— एकत्रवर्तिना = केवल एक में विद्यमान। धर्मेण = धर्म (गुण) के द्वारा। उभयवर्तिनः = दोनों में विद्यमान। भेदस्य = भेद की। प्रतीतिविषयप्राप्तेः = प्रतीति का विषय प्राप्त होने के कारण, प्रतीति होने के कारण। अयं = यह। एकव्यतिरेकः = एकव्यतिरेक (है)।

अनुवाद— केवल एक (राजा) में विद्यमान शरीररूप धर्म (गुण) के द्वारा दोनों (राजा और समुद्र) में विद्यमान भेद की प्रतीति होने के कारण यह एकव्यतिरेक है।

(१) प्रतीत-।

संस्कृतव्याख्या— एकव्यतिरेकस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इत्यकेति**। **एकत्र-वर्तिना** एकस्मिन् राजनि विद्यमानेन **धर्मेण** विशिष्टशरीरत्वरूपेण गुणेन **उभय-वर्तिनः** उभयोः उपमेयोपमानयोः राजासमुद्रयोः विद्यमानस्य भेदस्य **प्रतीतिविषय-प्राप्तेः** प्रतीयमानत्वाद् **अयं** एषः द्वयोरपि भेदप्रतीतिजनकः **एकव्यतिरेकः** नाम व्यतिरेकालङ्कारः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में शब्दोपात्त अथवा प्रतीत होने वाला धर्म केवल एक उपमेय अथवा उपमान में ही प्रस्तुत किया जाता है वह दोनों में भेदकारक एकव्यतिरेक कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में केवल राजा में ही विद्यमान विशिष्ट धर्म शरीरधारण के कथन से दोनों उपमेय राजा तथा उपमान समुद्र में भेद प्रतीत हो जाता हैं। केवल एक उपमेय राजा में ही विशिष्ट धर्म के विद्यमान होने के कारण यह एक व्यतिरेक है।

(३) इस व्यतिरेक में भेद शब्दोपात्त नहीं, प्रत्युत प्रतीयमान है अतः यहाँ प्रतीति-व्यतिरेक भी है।

(उभयव्यतिरेकनिदर्शनम्)

अभिन्नवेलौ गम्भीरावम्बुराशिर्भवानपि।
असावञ्जनसङ्काशस्त्वं तु चामीरकच्छविः[1] ।।१८३।।

अन्वय— अम्बुराशिः भवान् अपि अभिन्नवेलौ गम्भीरौ (स्तः) असौ अञ्जनसङ्काशः त्वं च तु आमीरकच्छविः (विद्यते)।

शब्दार्थ— अम्बुराशिः = समुद्र। भवान् अपि = और आप भी। अभिन्नवेलौ = मर्यादा का उलङ्घन न करने वाले अथवा समान मर्यादा वाले। गम्भीरौ = गम्भीर (राजापक्ष में- स्वभाव से गम्भीर और समुद्रपक्ष में अगाधता-युक्त) हैं। असौ = वह (समुद्र)। अञ्जनसङ्काशः = अञ्जन के समान (नीलवर्ण वाला)। त्वं च = और तुम। तु = तो। आमीरकच्छविः = सुवर्ण के समान कान्ति वाले हो।

अनुवाद— (हे राजन्) समुद्र और आप भी पर्यादा (राजापक्ष में गम्भीरता और समुद्रपक्ष में तट = सीमा) का उल्लङ्घन न करने वाले (अथवा समान मर्यादा वाले) हैं। (दोनों में भेद केवल इतना है कि) वह (समुद्र) अञ्जन के समान (नीलवर्ण वाला) है और तुम तो सुवर्ण के समान (पीली) कान्ति वाले हो।

---

(१) -द्युतिः।

संस्कृतव्याख्या— उभयव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **अभिन्नेति**। हे राजन् **अम्बुराशिः** जलनिधिः समुद्रः **भवान्** राजा **अपि अभिन्नवेलौ** अनुलङ्घनीयमर्यादौ **गम्भीरौ** अगाधौ दुरवगाहस्वभावौ वा विद्यते। द्वयोः परस्परमेषः एव भेदः यत् **असौ** समुद्रः **अञ्जनसङ्काशः** अञ्जसदृशः नीलवर्णः विद्यते **त्वं च तु आमीरकच्छविः** सुवर्णवत् पीतकान्तियुतः असि।

(उभयव्यतिरेकनिदर्शनविश्लेषणम्)

उभयव्यतिरेकोऽयमुभयोर्भेदकौ गुणौ।
कार्ष्ण्यं पिशङ्गता चोभौ यत्पृथग्दर्शितविह[1]॥१८४॥

अन्वय— इह उभयोः कार्ष्ण्यं पिशङ्गता च उभौ भेदकौ गुणौ यत् पृथग्दर्शितौ अयम् उभयव्यतिरेकः (विद्यते)।

शब्दार्थ— इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में। उभयोः = दोनों के। कार्ष्ण्यं = कृष्णता, नीलवर्णता। पिशङ्गता च = और सुवर्णवर्णता। उभौ = दोनों। भेदकौ = भेदक, भेद करने वाले। गुणौ = गुण। यत् = जो। पृथग्दर्शितौ = पृथग्रूप से दिखलाये गये हैं। अयं = यह। उभयव्यतिरेकः = उभयव्यतिरेक है।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में दोनों (उपमान और उपमेय) के (क्रमशः) नीलवर्णता और सुवर्णवर्णता– दोनों भेदक गुण जो पृथग्रूप से (अलग-अलग दोनों में) दिखलाये गये हैं, यह उभयव्यतिरेक है।

संस्कृतव्याख्या— उभयव्यतिरेकस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **उभयेति**। **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **उभयोः** द्वयोः उपमानोपमेययोः **कार्ष्ण्यं** कृष्णता नीलवर्णता वा **पिशङ्गता** सुवर्णवर्णता च **उभौ** द्वौ **भेदकौ** पस्परभेदकत्तारौ **गुणौ** धर्मौ **पृथक्** पृथग्रूपेण **दर्शितौ** प्रस्तुतौ तेन कारणेन **अयम्** एषः **उभयव्यतिरेकः** तन्नाम व्यतिरेकालङ्कारः विद्यते इति शेषः।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में उपमेय और उपमान दोनों के भेदक गुणों का अलग-अलग शब्दोपात्त अथवा प्रतीयमान कथन होता है, वह उभयव्यतिरेकालङ्कार कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में उपमानभूत समुद्र के भेदक गुण कृष्णता और उपमेयभूत राजा के भेदक गुण सुवर्णवर्णता का अलग-अलग प्रदर्शन हुआ है अतः यह उभय-व्यतिरेक है।

---

(१) पृथक्त्वेन दर्शितौ।

(सश्लेषव्यतिरेकनिदर्शनम्)

त्वं समुद्रश्च दुर्वारौ महासत्त्वौ च तेजसौ ।
अयन्तु[1] युवयोर्भेद स जड़ात्मा[2] पटुर्भवान्[3] ।।१८५।।

अन्वय— त्वं समुद्रः च दुर्वारौ महासत्त्वौ सतेजसौ युवयोः सः जडात्मा भवान् पटुः तु अयं भेदः (विद्यते)।

शब्दार्थ— त्वं = तुम। समुद्रः च = और समुद्र। दुर्वारौ = दुर्वार (राजापक्ष में दुर्घर्ष और समुद्रपक्ष में बुरे अर्थात् खारे जल वाला)। महासत्त्वौ = महान् सत्त्व वाले (राजापक्ष में- महाशक्तिशाली और समुद्रपक्ष में- विशाल जीवों से युक्त); सतेजसौ = तेज वाले (राजापक्ष में- तेजस्वी और समुद्रपक्ष में- वडवाग्नि से सम्पन्न) हो। तु = फिर भी। युवयोः = तुम दोनों में। सः = वह। जडात्मा = जड़ प्रकृति वाला अथवा जल से परिपूर्ण। भवान् = आप, तुम। पटुः = चेतनशील अथवा (निपुण, कुशल)। तु = फिर भी तुम दोनों में। अयं = यही। भेदः = भेद है।

अनुवाद— (हे राजन्) तुम और समुद्र (दोनों) दुर्वार (राजापक्ष में- दुर्घर्ष और समुद्रपक्ष में– बुरे अर्थात् खारे जल वाला), महान सत्त्व वाले (राजा के पक्ष में– महाशक्तिशाली और समुद्रपक्ष में– विशाल जीवों से युक्त) तथा तेज वाले (राजापक्ष में- तेजस्वी और समुद्रपक्ष में- वडवाग्नि से सम्पन्न) हो (इस प्रकार दोनों में समानता है। फिर भी तुम दोनों (राजा और समुद्र) में वह (समुद्र) जड़ प्रकृति वाला (अचेतन अथवा जल से परिपूर्ण है) और तुम चेतनशील (अथवा चतुर) हो, यही भेद है।

संस्कृतव्याख्या— सश्लेषव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र– **त्वमिति**। हे राजन्, **त्वं समुद्रः च** सागरः च **दुर्वारौ** राजापक्षे दुर्घर्षः समुद्रपक्षे क्षारजलयुतः, **महासत्त्वौ** राजापक्षे अतिशयबलसम्पन्नः समुद्रपक्षे महद्भिः सत्त्वैः जलजन्तुभिः सम्पन्नः, **सतेजसौ** राजापक्षे तेजस्वी समुद्रपक्षे वडवाग्निना युक्तः स्तः। एवं द्वयोः सादृश्यमेव विद्यते। **युवयोः** द्वयोर्मध्ये **सः** सागरः **जडात्मा** जडप्रकृतियुतः जलस्वरूपो वा **भवान्** पटुः चेतनशीलः चतुरो वा इति **अयम्** एषः अत्रोक्तः **भेदः** वैभिन्न्यं विद्यते।

(सश्लेषव्यतिरेकनिदर्शनविश्लेषणम्)

स एषः[4] श्लेषस्वरूपत्वात्सश्लेषः इति गृह्यताम् ।
साक्षेपश्च सहेतुश्च दर्श्यते[5] तदपि द्वयम् ।।१८६।।

---

(१) ह्यता। (२) जलात्मा। (३) तथापि भवतः कक्षां जडात्मनायमर्हति।
(४) एष। (५) दृश्यते।

अन्वय— श्लेषरूपत्वात् सः एषः सश्लेष इति गृह्यताम् । साक्षेपः च सहेतुः च तत् अपि द्वयं दर्श्यते ।

शब्दार्थ— श्लेषरूपत्वात् = श्लेष युक्त होने के कारण । **सः** = वह । एषः = यह । सश्लेषः = सश्लेष (व्यतिरेक) । गृह्यताम् = जानना चाहिए । साक्षेपः च = साक्षेप (आक्षेपसहित) । सहेतुः च = और सहेतु (हेतुसहित) । तत् अपि = यह भी । द्वयं= दो (भेद) । दर्श्यते = निर्दिष्ट किये जाते हैं ।

अनुवाद— श्लेष (शिलष्टपदों से) युक्त होने के कारण उस (व्यतिरेक) को सश्लेष व्यतिरेक जानना चाहिए । साक्षेप (आक्षेपसहित) और सहेतु (हेतुसहित) ये भी (व्यतिरेक के) दो भेद निर्दिष्ट किये जाते हैं ।

संस्कृतव्याख्या— सश्लेषव्यतिरेकस्य निदशनं विश्लेषयत्यत्र- **स एष इति** । **श्लेषरूपत्वात्** श्लेषयुक्तत्वात् **सः** व्यतिरेकः **एषः** अयं **सश्लेषः** सश्लेषव्यतिरेकः इति **गृह्यतां** ज्ञायताम् । **साक्षेपः च** आक्षेपयुक्तश्च **सहेतु च** हेतुसहितः च इति **तद् द्वयं** व्यतिरेकभेदद्वयं अपि **दर्श्यते** निदर्यते ।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में उपमेय तथा उपमान के सादृश्य और भेद को श्लेषयुक्त पदों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, वह सश्लेषव्यतिरेक कहलाता है ।

(२) उक्त उदाहरण में राजा और समुद्र की समानता को श्लेषयुक्त पदों दुर्वार, महासत्त्व और सतेज द्वारा तथा भेद को जडात्मा और पटु इन शिलष्ट पदों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । शिलष्ट पदों से युक्त होने के कारण यह सशिलष्टव्यतिरेक है ।

(३) आचार्यों ने व्यतिरेक के और दो भेदों- साक्षेपव्यतिरेक और सहेतुव्यतिरेक का निर्देश किया है । इनका स्पष्टीकरण उदाहरणों द्वारा आगे किया जा रहा है ।

(साक्षेपव्यतिरेकनिदर्शनम्)

स्थितिमानमपि धीरोऽपि रत्नानामाकरोऽपि सन् ।
तव कक्षां[1] न यात्येव मलिनो मकरालयः ।।१८७।।

अन्वय— स्थितिमानम् अपि, धीरः अपि, रत्नानाम् आकरः अपि सन् मलिनः मकरालयः तव कक्षां न याति एव ।

शब्दार्थ— स्थितिमानम् अपि = मर्यादायुक्त भी । धीरः अपि = प्रशान्तः । रत्नानाम् आकरः अपि = रत्नों का आकर (भण्डार, खान, भवन, उत्पत्तिस्थान) होते

(१) कक्ष्यां ।

हुए भी। मलिनः = नीलवर्ण वाला अथवा खारे जल वाला। मकरालयः = समुद्र तव कक्षां = तुम्हारी श्रेणी को, तुम्हारी समानता को। न याति एव = निश्चित रूप से नहीं प्राप्त करता है।

अनुवाद— (हे राजन् तुम्हारे समान) मर्यादायुक्त, प्रशान्त और रत्नों का उत्पत्तिस्थान (भण्डार) होते हुए भी मलिन (नीलवर्ण वाला अथवा खारे जल वाला) समुद्र तुम्हारी श्रेणी (समानता) को निश्चित रूप से नहीं प्राप्त करता है।

संस्कृतव्याख्या— साक्षेपव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र– **स्थितिमानमिति**। हे राजन् तव सदृशः **स्थितिमानम् अपि** मर्यादायुक्तमपि **धीरः अपि** प्रशान्तः अपि **रत्नानां** मुक्तादीनाम् **आकरः अपि** उत्पत्तिस्थानमपि **मलिनः** नीलवर्णः क्षारजलयुक्तः वा **मकरालयः** समुद्रः **तव** राज्ञः **कक्षां** श्रेणीं साधर्म्यम् इत्यर्थः **न याति एव** निश्चितरूपेण न प्राप्यते। पूर्वः प्रथमं समुद्रराज्ञयोः सादृश्यं प्रस्तुत्य तदनन्तरं निषेधद्वारा तदाक्षिप्यते अत एवात्र साक्षेपव्यतिरेकः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में उपमेय और उपमान के समानता को प्रस्तुत करके तत्पश्चात् उसका निषेध द्वारा आक्षेप किया जाता है, वह साक्षेपव्यतिरेक कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय राजा तथा उपमान समुद्र में पहले 'स्थितिमानम्' इत्यादि द्वारा समानता दिखलायी गयी है। तत्पश्चात् उस समानता का निषेध द्वारा आक्षेप करके भेदप्रदर्शन किया गया है, इस प्रकार यहाँ साक्षेप व्यतिरेक है।

(सहेतुव्यतिरेकनिदर्शनम्)

वहन्नपि महीं कृत्स्नां सशैलद्वीपसागराम्।
भर्तृभावाद् भुजङ्गानां शेषस्त्वत्तो निकृष्यते ।।१८८।।

अन्वय— सशैलद्वीपसागरां कृत्स्नां महीं वहन् शेषः भुजङ्गानां भर्तृभावात् त्वत्तः निकृष्यते।

शब्दार्थ— सशैलदीपसागरं = पर्वतों, द्वीपों और समुद्रों के सहित। कृत्स्नां = सम्पूर्ण। महीं = पृथ्वी को। वहन् अपि = धारण करते हुए भी। शेषः = शेषनाग। भुजङ्गानां = भुजङ्गों (सर्पों, दुष्टों) के। भर्तृभावात् = भर्ता (पोषक, पालक) होने के कारण। त्वत्तः = तुमसे, तुम्हारी समानता में। निकृष्यते = निकृष्ट हैं।

अनुवाद— (हे राजन् तुम्हारे समान) पर्वतों, द्वीपों और समुद्रों के सहित

सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करते हुए भी शेषनाग भुजङ्गों (सर्पों = दुष्टों) के भर्त्ता (पालक) होने के कारण तुम्हारी समानता में निकृष्ट (निम्न, कम) हैं।

संस्कृतव्याख्या— सहेतुव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **वहन्निति**। हे राजन्, त्वद्वत् **सशैलद्वीपसागरां** शैलैः पर्वतैः द्वीपैः समुद्रमेखलैः भूप्रदेशैः सागरैः समुद्रैश्च सहितां **कृत्स्नां** सकलां **महीं** पृथ्वीं **वहन्** धारयन् **शेषः** शेषनागः **भुजङ्गानां** नागानां दुष्टानामिति भावः **भर्तृभावात्** पालकत्वात् **त्वत्तः** तवापेक्षया **निकृष्यते** निष्कृष्टत्वं प्राप्यते। सम्पूर्णपृथ्वीधारणेन तव सादृश्यं प्राप्तोऽपि शेषनागः सर्पाणां पालनात् तवापेक्षया निकृष्टः न त्वत्सदृशः इति भावः। अत्र उपमानोपमेययोः शेषनागराज्ञयोः भेदप्रतिपादने 'भुजङ्गानां भर्तृभावाद्' इति हेतुः। तद्धेतूपस्थापनादत्र सहेतुव्यतिरेकः।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में उपमेय तथा उपमान में समानता दिखलाकर उनमें भेद का प्रदर्शन हेतु के द्वारा किया जाता है वह सहेतुव्यतिरेक कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय राजा तथा उपमान शेषनाग में सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने के कारण समानता दिखलाकर सर्पों के पालन को हेतु रूप में प्रस्तुत करके उनमें भेद प्रस्तुत किया गया है अतः सहेतु व्यतिरेक है।

(शब्दोपात्तसादृश्यव्यतिरेकोपसंहारः)

शब्दोपादानसादृश्यव्यतिरेकोऽयमीदृशः ।
प्रतीयमानसादृश्योऽप्यस्ति सोऽनुविधीयते[1] ।।१८९।।

अन्वय— अयम् ईदृशः शब्दोपादानसादृश्यव्यत्तिरेकः। प्रतीयमानसादृश्यः अपि अस्ति, सः अनुविधीयते।

शब्दार्थ— अयम् = यह। ईदृशः = इस (पूर्वोक्त) प्रकार वाला। शब्दोपादानसादृश्यव्यतिरेकः = शब्दोपात्त सादृश्य व्यतिरेक है। **प्रतीयमानसादृश्यः** = प्रतीयमानसादृश्य (व्यतिरेक)। अपि = भी। अस्ति = है। सः = वह। अनुविधीयते = (उनका) विधान (व्याख्या) किया जा रहा है।

अनुवाद— यह (इस पूर्वोक्त) प्रकार वाला (शब्दोपात्त होने के कारण) शब्दोपात्त सादृश्यव्यतिरेक है। (इसके अतिरिक्त) प्रतीयमान सादृश्य व्यतिरेक भी है, उसका विधान (व्याख्या) किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— शब्दोपात्तसादृश्यव्यतिरेकमुपसंहरन् प्रतीयमानसादृश्यव्यति-

---

(१) सोऽप्यभिधीयते, सोऽत्रा-।

रेकमुपक्रमतेऽत्र- **शब्दोपात्तेत्ति इति**। **अयम्** एषः **ईदृशः** पूर्वोक्तप्रकारकः **शब्दोपादानसादृश्यव्यतिरेकः** शब्दोपात्तव्यतिरेकः विहितः। तदन्यः **प्रतीयमानसादृश्यः** प्रतीयमान सादृश्यव्यतिरेकः अपि **अस्ति। सः** प्रतीयमानसादृश्यव्यतिरेकः **अनुविधीयते** अग्रे विधीयमानः व्याख्यायमानः भवति।

विशेष—

(१) उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा शब्दोपात्त (शब्द द्वारा अभिधीयमान) सादृश्य वाले व्यतिरेक अलङ्कार निर्दिष्ट कर दिया गया है। अब उससे अन्य प्रतीयमान सादृश्य वाले व्यतिरेक अलङ्कार को निर्दिष्ट किया जा रहा है।

(उक्तिमूलकप्रतीयमानव्यतिरेकनिदर्शनम्)

त्वन्मुखं कमलञ्चेति द्वयोरप्यनयोर्भिदा ।
कमलं जलसंरोहि त्वन्मुखं त्वदुपाश्रयम् ।।१९०।।

अन्वय— त्वन्मुखं कमलं च अनयोः द्वयोः अपि भिदा। कमलं जलसंरोहि त्वन्मुखं त्वदुपाश्रयम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— त्वन्मुखं = तुम्हारे मुख। कमलं च = और कमल। अनयोः = इन। द्वयोः अपि = दोनों में भी। भिदा = भेद (है)। कमलं = कमल। जलसंरोहि = जल में उगने वाला (है) अर्थात् जल पर आश्रित है। त्वन्मुखं = तुम्हारा मुख। त्वदुपाश्रयं = तुम्हारे पर ही आश्रित (है)।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) तुम्हारे मुख और कमल- इन दोनों में भी भेद है क्योंकि कमल जल में उगने वाला है (अर्थात् जल पर आश्रित है) (जबकि) तुम्हारा मुख तुम्हारे पर ही आश्रित है।

संस्कृतव्याख्या— उक्तिमूलकं प्रतीयमानव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **त्वन्मुखमिति** हे सुन्दरि **त्वन्मुखं** तवाननं **कमलम्** अरविन्दं **च इति अनयोः** एतयोः **द्वयोः** उभयोः **अपि भिदा** भेदः विद्यते। यतो हि **कमलम्** अरविन्दं **जलसंरोहि** जले जायमानं जलाश्रितं भवति परञ्च **त्वन्मुखं** तव मुखं **त्वदुपाश्रयम्** तवाश्रयमेव गृह्णाति, कमलमिव अन्यस्य वस्तुनः न। वाचकपदाप्रयुक्तत्त्वादत्र सादृश्यं प्रतीयमानं, न तु शब्दोपात्तं, अत एवात्र अनेन प्रकारेण प्रतीयमाने सादृश्ये सत्याश्रयभेदकथनरूप उक्तिमूलः प्रतीयमानव्यतिरेकः।

विशेष—

(१) जिस अलङ्कार में सादृश्य शब्दोपात्त नहीं होता प्रत्युत प्रतीयमान होता है, ऐसा भेद का कथन उक्त प्रतीयमान व्यतिरेक कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में उपमेय मुख और उपमान कमल में सादृश्य शब्द द्वारा अभिहित न होकर प्रतीयमान है तथा कमल के पराश्रित (= जलाश्रित) और मुख के स्वाश्रित (= सुन्दरी पर आश्रित) होने के कथन द्वारा दोनों में भेद प्रस्तुत किया गया है अतः उक्त मूलक प्रतीयमान व्यतिरेक है।

(आधिक्यदर्शनमूलकप्रतीयमानव्यतिरेकनिदर्शनम्)

अभ्रूविलासमस्पृष्टमदरागं मृगेक्षणम्।
इदन्तु नयनद्वन्द्वं तव तद्गुणभूषितम् ।।१९१।।

अन्वय— मृगेक्षणम् अभ्रूविलासम् अस्पृष्टमदरागं (विद्यते), इदं तु तव नयन-द्वन्द्वं तद्गुणभूषितं (वर्तते)।

शब्दार्थ— मृगेक्षणं = मृगी के नेत्र। अभ्रूविलासं = भ्रूविलास (भौहों की कुटिलता या चञ्चलता) से रहित। अस्पृष्टमदरागं = मद की लाली से अस्पृष्ट (शून्य) है। **इदं तु** = किन्तु ये। तव = तुम्हारे। नयनद्वन्द्वं = दोनों नेत्र। तद्गुणभूषितं = उन गुणों से शोभायमान हैं।

अनुवाद— (हे सुन्दरि) मृगी के नेत्र तो भ्रूविलास (भौहों की कुटिलता या चञ्चलता) से रहित (और) मद की लाली से अस्पृष्ट (शून्य) हैं (किन्तु) तुम्हारे नेत्र उन गुणों (भ्रूविलास और मद-लालिमा) से शोभायमान हैं।

संस्कृतव्याख्या— आधिक्यमूलकं प्रतीयमानव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र— **अभ्रू-विलासेति**। **मृगेक्षणं** हरिणनेत्रं तु **अभ्रूविलासं** भ्रूविलासरहितं तथा च **अस्पृष्ट-मदरागम्** अस्पृष्टः स्पर्शरहितः मदरागः मदिरापानेनोत्पन्नरक्तिमा येन तादृशं मदराग-रहितः इत्यर्थः विद्यते **इदं तु** परञ्च एवत्पुरोदृश्यमानं **तव** सुन्दर्याः **नयनद्वन्द्वं** नेत्र-द्वयं **तदगुणभूषितं** ताभ्यां भ्रूविलासमदरागाभ्यां गुणाभ्यां धर्माभ्यां भूषितं शोभायमानं विद्यते। उपमानोपमेययोः मृगनेत्रसुन्दरिनेत्रयोः शब्दाभिधानेनं अकथनादत्र सादृश्यं प्रतीयमानमेव, न तु शब्दोपात्तम्। तथा सत्यपि उपमेये नायिकानेत्रद्वये भ्रूविलासमद-रागयोः आधिक्यं भेदरूपेण प्रस्तुतम्। अत एवात्र प्रतीयमाने सादृश्ये आधिक्यभेद-कथनाद् आधिक्यमूलकः प्रतीयमानव्यतिरेकः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में सादृश्य प्रतीयमान होता है तथा भेदकथन उपमेय में गुणों की अधिकता दिखलाकर किया जाता है, वह आधिक्यमूलक प्रतीयमान व्यतिरेक कहलाता है।

(२) परन्तु उदाहरण में उपमेय नायिका के नेत्र और उपमान मृगनेत्र में सादृश्य वाच्य

(शब्दोपात्त = शब्द द्वारा अभिहित) नहीं, प्रत्युत प्रतीयमान है। इस प्रतीयमान सादृश्य में भेद का कथन उपमेय नायिकानेत्र में भ्रूविलास और मदराग इन दो गुणों की अधिकता को दिखलाकार किया गया है अतः यह आधिक्यमूलक प्रतीयमानव्यतिरेक है।

(निदर्शनद्वयस्य विश्लेषणं व्यतिरेकान्तरभेदोपक्रमणञ्च)

पूर्वस्मिन् भेदमात्रोक्तिरस्मिन्नाधिक्यदर्शनात् ।
सदृशव्यतिरेकश्च पुनरन्यः प्रदर्श्यते ।।१९२।।

अन्वय— पूर्वस्मिन् भेदमात्रोक्तिः, अस्मिन् आधिक्यदर्शनं (विद्यते)। पुनः च अन्यः सदृशव्यतिरेकः प्रदर्श्यते।

शब्दार्थ— पूर्वस्मिन् = पूर्ववर्ती (प्रथम पद्य) में। भेदमात्रोक्तिः = भेदमात्र का कथन, केवल भेद का कथन। अस्मिन् = इस (पद्य) में। आधिक्यदर्शनं = अधिकता (उत्कर्ष) का प्रदर्शन (प्रस्तुतीकरण)। पुनः च = और फिर, और इनके बाद। अन्यः = दूसरा (भेद)। सदृशव्यतिरेकः = सदृशव्यतिरेक। प्रदशर्यते = प्रदर्शित (प्रस्तुत) किया जा रहा है।

अनुवाद— पूर्ववर्ती (त्वन्मुखं कमलं च ..... इस पद्य) में केवल भेद (आश्रयभेद) का कथन (तथा) इस (अभ्रूविलासम् .... इस पद्य) में (गुणों का) आधिक्य (उत्कर्ष) का प्रदर्शन (किया गया है)। इसके बाद (व्यतिरेक का) दूसरा (भेद) सदृशव्यतिरेक निर्दिष्ट किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— त्वन्मुखं कमलञ्चेति अभ्रूविलासञ्चेति निदर्शनद्वयं विश्लेषयन् सदृशव्यतिरेकं उपक्रमतेऽत्र– **पूर्वस्मिन्निति**। **पूर्वस्मिन्** कमलञ्चेत्यत्र **भेदमात्रोक्तिः** उपमेयोपमानयोः मुखकमलयोः भेदमात्रस्य केवलमाश्रयभेदस्य उक्तिः कथनं **अस्मिन्** अभ्रूविलासमित्यत्र उपमानस्य मृगनेत्रस्यापेक्षा उपमेयस्य मुखस्य **आधिक्यदर्शनम्** औत्कर्ष्यप्रदर्शनं विद्यते। एवञ्च प्रतीयमानव्यतिरेकस्य भेदद्वयं भेदमात्रोक्तिमूलः आधिक्यदर्शनमूलः विद्यते। **पुनश्च** तदनन्तरं व्यतिरेकस्य **अन्यः** अपरः भेदः **सदृशव्यतिरेकः** तन्नाम व्यतिरेकः **प्रदर्श्यते** निदर्श्यते।

विशेष—

(१) प्रथम उदाहरण 'त्वन्मुखं कमलञ्च' में प्रतीयमान सादृश्य वाले उपमेय मुख और उपमान कमल में केवल भेद का कथन किया गया है। इस प्रकार यह भेदमात्रोक्तिमूलक प्रतीयमान व्यतिरेक है। द्वितीय उदाहरण 'अभ्रूविलासम् ...' में प्रतीयमान सादृश्य वाले उपमेय नायिका नेत्र और उपमान मृगनेत्र में उपमान

मृगनेत्र की अपेक्षा उपमेय नायिकानेत्र में गुणों की अधिकता दिखलाकर भेद का कथन हुआ है— इस प्रकार यह आधिक्यमूलक प्रतीयमान व्यतिरेक है। इस प्रकार प्रतीयमान सादृश्य व्यतिरेक के भेद हैं- भेदमात्रोक्तिमूलक प्रतीयमान-व्यतिरेक और आधिक्यमूलक प्रतीयमानव्यतिरेक।

(२) इसके अतिरिक्त व्यतिरेक का अन्य सदृशव्यतिरेक भी भेद है। यह सदृशव्यतिरेक भी दो प्रकार का होता है- शब्दोपात्तसदृशव्यतिरेक और प्रतीयमानसदृशव्यतिरेक। इनको आगे निर्दिष्ट किया जा रहा है।

(शब्दोपात्तसादृश्यसदृशव्यतिरेकनिदर्शनम्)

त्वन्मुखं पुण्डरीकञ्च फुल्ले सुरभिगन्धिनी ।
भ्रमद्भ्रमरमम्भोजं लोलनेत्रं मुखं तु ते ।।१९३।।

अन्वय— त्वन्मुखं पुण्डरीकं च फुल्ले सुरभिगन्धिनी (स्तः)। अम्भोजं भ्रमद्-भ्रमरं ते मुखं तु लोलनेत्रं (विद्यते)।

शब्दार्थ— त्वन्मुखं = तुम्हारा मुख। पुण्डरीकं च = और कमल। फुल्ले = विकसित, खिले हुए। सुरभिगन्धिनी = अभीष्ट गन्ध युक्त (हैं)। अम्भोजं = कमल। भ्रमद् भ्रमरं = मँडरा रहे हैं भौंरे जिस पर ऐसा, मँडराते हुए भौंरों से युक्त, मँडराते हुए भौंरों वाला है। ते = तुम्हारा। मुखं तु = मुख तो। **लोलनेत्रं** = चञ्चल हैं नेत्र जिस पर ऐसा, चञ्चल नेत्रों वाला, चञ्चल नेत्रों से युक्त (है)।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) तुम्हारा मुख और कमल- दोनों विकसित (खिले हुए) हैं, किन्तु कमल मँडराते हुए भौंरों वाला है (अर्थात् कमल पर भौंरे मँड़रा रहे हैं) और तुम्हारा मुख चञ्चल नेत्रों वाला (चञ्चलनेत्र युक्त है)।

संस्कृतव्याख्या— शब्दोपात्तं सादृश्यं सदृशव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **त्वन्मुख**-मिति। हे सुन्दरि, **त्वन्मुखं** त्वदाननं **पुण्डरीकं** च कमलञ्च इति द्वे **फुल्ले** विकसिते अत एव **सुरभिगन्धिनी** सुगन्धयुक्ते अभीष्टगन्धसम्पन्ने वा स्तः। किन्तु तयोः मुखकमलयोः **अम्भोजं** कमलं **भ्रमद्भ्रमरं** भ्रमन्तौ भ्रमरौ यत्र तादृशं विद्यते **ते मुखं तु** तव सुन्दर्याः आननं तु **लोलनेत्रं** लोले चञ्चले नेत्रे नयने यत्र तादृशं वर्तते। फुल्लत्वसुरभिगन्धत्वरूपस्य साधारणधर्मस्य कथनादत्र उपमेयोपमानयोः मुखकमलयोः शब्दोपात्तं सादृश्यं विद्यते। उपमानोपमेययोः भेदकधर्मयोः भ्रमद्भ्रमरयुक्तत्वचञ्चलनेत्रत्वयोरपि परस्परं सादृश्य-वर्णनाद् अत्र शब्दोपात्तसादृश्यः सदृशव्यतिरेकः अस्ति।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में शब्द द्वारा उक्त सादृश्य में समानधर्म वाले विशेषणों

वाले दो पदों से भेदमात्र प्रस्तुत किया जाता है वह शब्दोपात्त सादृश्य वाला सदृशव्यतिरेक कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में श्लिष्ट पद फुल्ल और सुरभिगन्धि पद से उपमेय मुख और उपमान कमल में समानता दिखलायी गयी है। यह समानता शब्दों द्वारा वाच्य होने के कारण शब्दोपात्त है। पुनः लोल नेत्र और भ्रमद्भ्रमर की युक्तता द्वारा इसमें भेद प्रस्तुत किया गया है। लोल और भ्रमद् एक ही धर्म चञ्चलता के वाचक है। इस प्रकार सदृश क्रमशः भ्रमद्भ्रमर और लोलनेत्र से युक्त होने के कारण कमल और मुख दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। अतः यहाँ शब्दोपात्त सादृश्य वाला सदृशव्यतिरेक है।

(३) इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य व्यतिरेकालङ्कार के भेदों का भी सङ्कर है। भेदकतत्त्वों भ्रमर और नेत्र का उपमान और उपमेय दोनों के साथ अलग-अलग प्रयोग होने से उभयव्यतिरेक है जिनकी एकत्र प्राप्ति होने के कारण यहाँ शब्दोपात्तसादृश्य वाला सदृश उभयव्यतिरेक अलङ्कार हो जाता है।

(प्रतीयमानसादृश्यसदृशव्यतिरेकनिदर्शनम्)

चन्द्रोऽयमम्बरोत्तंसो हंसोऽयं तोयभूषणम्[१] ।
नभो नक्षत्रमालीदमिदमुत्कुमुदं[२] पयः ।।१९४।।

अन्वय— अयं चन्द्रः अम्बरोत्तंसः, अयं हंसः तोयभूषणम्, इदं नभः नक्षत्रमालि, इदं पयः उत्कुमुदं (विद्यते)।

शब्दार्थ— अयं = यह। चन्द्रः = चन्द्रमा। अम्बरोत्तंसः = आकाश का आभूषण (है)। अयं = यह। हंसः = हंस (पक्षी-विशेष)। तोयभूषणं = जल का आभूषण (है)। इदं = यह। नभः = आकाश। नक्षत्रमालि = नक्षत्रों (तारागणों) से शोभायमान (है)। इदं = यह। पयः = जल। उत्कुमुदं = खिले हुए कुमुदों से शोभायमान (है)।

अनुवाद— यह चन्द्रमा आकाश का आभूषण है, यह हंस जल का आभूषण है, यह आकाश नक्षत्रों (तारामण्डल) से शोभायमान है (और) यह जल खिले हुए कुमुदों से शोभायमान है।

संस्कृतव्याख्या— प्रतीयमानसादृश्यं सदृशव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **चन्द्रः** इति। **अयम्** एषः पुरोऽवलोक्यमाणः **चन्द्रः** चन्द्रमा **अम्बरोत्तंसः** अम्बरस्य आकाशस्य

(१) -भूषणः।
(२) उत्फुल्लकुमुदं।

नभः आभूषणः विद्यते, **अयम्** एषः **च हंसः** पक्षिविशेषः **तोयभूषणं** तोयस्य जलस्य भूषणः अलङ्कारः विद्यते। तथा च **इदम्** एतत् **नभः** आकाशः **नक्षत्रमालि** तारा-समूहशोभितम्, **इदं** एतत् **पयः** जलं च **उत्कुमुदं** उद्गतकमलैः शोभायमानं विद्यते। अत्र चन्द्रहंसयोः आकाशजलयोश्च सादृश्यं प्रतीयमानं, न तु शब्दोपात्तम्। तथा च चन्द्रहंसयोः क्रमेण भेदकगुणः आकाशभूषणत्वं जलभूषणत्वञ्च एवमेव आकाशजलयोः भेदकगुणः क्रमेण नक्षत्रयुक्तत्वं कमलयुक्तत्वं च। चन्द्रहंसयोः आकाशजलयोश्च परस्पर-सादृश्यं प्रतीयमानत्वाद् तयोः भेदकधर्मयोः कथनत्वाच्च प्रतीयमानसादृश्यः सदृश-व्यतिरेकः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेक अलङ्कार में उपमान और उपमेय में सादृश्य प्रतीयमान होता है तथा दोनों के भेदक धर्म समान होते हैं, वह प्रतीयमानसादृश्य वाला सदृश व्यतिरेक कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रमा और हंस का शुभ्रत्वरूप तथा आकाश और जल का सूक्ष्मत्वरूप परस्पर साधर्म्य यहाँ प्रतीयमान है तथा चन्द्रमा और हंस के भेदकधर्मों आकाशभूषणत्व और जलभूषणत्व तथा आकाश और जल के भेदक धर्मों नक्षत्रयुक्तत्व और कुमुदयुक्तत्व के परस्पर समान होने के कारण यह प्रतीयमान सादृश्य वाला सदृश व्यतिरेक है।

(सदृशव्यतिरेकनिदर्शनद्वयविश्लेषणम्)

प्रतीयमानसौक्ष्म्यादि[१] साम्ययोर्वियदम्भसोः[२] ।
कृतः प्रतीतशुद्ध्योश्च भेदोऽस्मिंश्चन्द्रहंसयोः[३] ।।१९५।।
पूर्वत्र शब्दवत्साम्यमुभयत्रापि भेदकम् ।
भृङ्गनेत्रादि तुल्यं तत्सदृशव्यतिरेकता ।।१९६।।

अन्वय— अस्मिन् प्रतीयमानसौक्ष्म्यादिसाम्ययोः वियदम्भसाः प्रतीतशुद्ध्योः चन्द्रहंसयोः भेदः कृतः। पूर्वत्र शब्दवत् साम्यम् अस्ति। उभयत्र अपि भृङ्गनेत्रादि भेदकं तुल्यं तत् सदृशव्यतिरेकता (विद्यते)।

शब्दार्थ— अस्मिन् = इस (उदाहरण) मे। प्रतीयमानसौक्ष्म्यादिसाम्ययोः =

---

(१) -शौक्ल्यादि-।

(२) साम्ययोश्चन्द्रहंसयोः।

(३) -स्मिन्विदम्भसोः, हंसचन्द्रयोः।

प्रतीत होने वाले सूक्ष्मता इत्यादि सादृश्यों वाले । वियदम्भयो: = आकाश और जल का । प्रतीतशुद्ध्यो: = प्रतीयमान शुभ्रता वाले । चन्द्रहंसयो: = चन्द्रमा और हंस का। भेदः = परस्पर भेद । कृतः = किया गया है । पूर्वत्र = इससे पूर्ववर्ती (उदाहरण) में। शब्दवत् = शब्दोपात्त । साम्यं = सदृशता है । उभयत्र = इन दोनों (उदाहरणों) में। भृङ्गनेत्रादिभेदकं = भ्रमर और नेत्र आदि का भेदक । तुल्यं = समान है । तत् = इसी कारण । सदृशव्यतिरेकता = सदृशव्यतिरेक (है) ।

अनुवाद— (चन्द्रोऽयं ....) इस (उदाहरण) में प्रतीयमान सूक्ष्मता इत्यादि सादृश्य वाले आकाश और जल तथा प्रतीयमान शुभ्रता वाले चन्द्रमा और हंस में शब्दोपात्त सदृशता है । दोनों (उदाहरणों) में भ्रमर और नेत्र इत्यादि (उपमेय और उपमानों) का भेदक (धर्म परस्पर) समान है । इस कारण (इनमें) सदृशव्यतिरेक है।

संस्कृतव्याख्या— शब्दोपातसादृश्यस्य प्रतीयमानसादृश्यस्य च सदृशव्यतिरेकस्य निदर्शनयोः विश्लेषयत्यत्र– **प्रतीयमानेति** । **अस्मिन्** चन्द्रोऽयमित्यस्मिन्नुदाहरणे **प्रतीयमानसौक्ष्म्यादिसाम्ययोः** प्रतीयमानं शब्देनानभिहितत्वात् केनापि प्रकारेण प्रतीयमानसौम्यादिसूक्ष्मत्वादिरूपं साम्यं सादृश्यं ययोः तादृशयोः **वियदम्भसोः** आकाशजलयोः, **प्रतीतशुद्धयोः** प्रतीता प्रतीयमाना शुद्धिः शुभ्रत्वं शुक्लत्वं वा ययोः तादृशयोः चन्द्रहंसयोः च **भेदः** परस्परं भेदकथनं **कृतः** प्रदर्शितः । तथा च **पूर्वत्र** 'त्वन्मुखं पुण्डरीकं च–' इत्यस्मिन्नुदाहरणे **शब्दवत्** शब्दाभिधानेन कथनात् शब्दोपात्तं **साम्यं** सादृश्यं विद्यते । एवम् **उभयत्र** उदाहरणद्वये **अपि भृङ्गनेत्रादि** भृङ्गनेत्रयोः इत्यादयोः उपमानोपमेययोः **भेदकं** भेदकधर्मः **तुल्यं** समानं विद्यते **तत्** तस्मात्कारणादत्र **सदृशव्यतिरेकता** तन्नामा व्यतिरेकालङ्कारः विद्यते ।

विशेष—

(१) 'चन्द्रोऽयम् .....' इस पूर्वोक्त उदाहरण में आकाश और जल का सादृश्यधर्म सूक्ष्मत्व शब्दोपात्त नहीं है, प्रत्युत कल्पनीय है किन्तु चन्द्रमा और हंस का सादृश्यधर्म शुभ्रत्व सर्वविदित है। इन दोनों स्थानों में आकाश और जल में नक्षत्रयुक्तत्व और कुमुदयुक्तत्व से तथा चन्द्रमा और हंस में आकाशभूषणत्व और जलभूषणत्व से भेद किया गया है ।

(२) 'त्वन्मुखं पुण्डरीकञ्च ...' इस उदाहरण में मुख और कमल का सादृश्य धर्म फुल्लत्व इत्यादि शब्द द्वारा अभिहित होने के कारण शब्दोपात्त है । इन मुख और कमल में नेत्रयुक्तत्व और भ्रमरयुक्तत्व से भेद किया गया है ।

(३) इन दोनों उदाहरणों में भेदक धर्म नक्षत्रयुक्तत्व और कुमुदयुक्तत्व में नक्षत्र और कुमुद का आकृति के कारण सादृश्य, आकाशभूषत्व और जलभूषणत्व में

आकाश और जल में सूक्ष्मत्व के कारण सादृश्य तथा नेत्रयुक्तत्व और भ्रमरयुक्तत्व में नेत्र और भ्रमर में चञ्चलता के कारण सादृश्य है। इस प्रकार ये भेदक धर्म समान है, अतः इन उदाहरणों में सदृश व्यतिरेक है।

(सजातिव्यतिरेकनिदर्शनम्)

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः ।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः ।।१९७।।

अन्वय— यूनां यौवनप्रभवं तमः अरत्नालोकसंहार्यं सूर्यरश्मिभिः अवार्यं दृष्टि-रोधकरं (भवति)।

शब्दार्थ— यूनां = युवकों का। यौवनप्रभवं = यौवनावस्था में (युवावस्था के कारण) उत्पन्न। तमः = अन्धकार। अरत्नालोकसंहार्यं = रत्नों के आलोक (प्रकाश) से भी न हटाये जा सकने वाला। सूर्यरश्मिभिः = सूर्य की किरणों द्वारा भी दूर न किया जा सकने वाला। दृष्टिरोधकरः = दृष्टिरोध पैदा करने वाला (होता है)।

अनुवाद— युवकों का यौवनवस्था में (युवावस्था के कारण) उत्पन्न (मानसिक) अन्धकार रत्नों के प्रकाश से भी न हटाये जा सकने वाला तथा सूर्य की किरणों द्वारा भी दूर न किया जा सकने वाला (अत एव) दृष्टिरोध पैदा करने वाला हो जाता है।

संस्कृतव्याख्या— सजातिव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **अरत्नेति**। **यूनां** युवकानां **यौवनप्रभवं** यौवनोत्पन्नं **तमः** अन्धकारः **अरत्नालोकसंहार्यं** रत्नानां मणीनाम् आलोकेन प्रकाशेन असंहार्यम् अभेद्यं **सूर्यरश्मिभिः** सूर्यस्य दिनकरस्य रश्मिभिः **अवार्यं** न वार्यं नापनेयम् अत एव **दृष्टिरोधकरं** दर्शनशक्तिरोधकं भवतीति शेषः।

(सजातिव्यतिरेकनिदर्शनविश्लेषणम्)

सजाति[१]व्यतिरेकोऽयं तमोजातेरिदं तमः ।
दृष्टिरोधितया तुल्यं भिन्नैर्धर्मैरदर्शि[२] यत् ।।१९८।।

अन्वय— दृष्टिरोधितया तमोजातेः तुल्यम् इदं तमः भिन्नैः धर्मैः यत् अदर्शि अयं सजातिव्यतिरेकः (विद्यते)।

शब्दार्थ— दृष्टिरोधितया = दृष्टिरोधन के कारण। तमोजातेः = अन्धकार-जाति के। तुल्यं = समान। इदं = यह। तमः = अन्धकार। **भिन्नैः धर्मैः** = भिन्नधर्मों द्वारा।

(१) स्वजाति-।

(२) भिन्नमन्यैरदर्शि, अदर्शयत्।

यत् = जो। अदर्शि = दिखलाया गया है, प्रदर्शित किया गया है, प्रस्तुत किया है। अयं = यह। सजातिव्यतिरेकः = सजातिव्यतिरेक (है)।

अनुवाद— दृष्टिरोधन के कारण अन्धकारजाति के समान यह (यौवनं से उत्पन्न मोहरूप) अन्धकार जो (रत्न के द्वारा न हटाये जा सकने वाला और सूर्य की किरणों द्वारा दूर न किया जा सकने वाला- इन दो) भिन्न धर्मों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह सजातिव्यतिरेक है।

संस्कृतव्याख्या— सजातिव्यतिरेकस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **सजातीति**। **दृष्टिरोधितया** दृष्टिरोधकत्वेन **तमोजातेः** अन्धकारसजातीयस्य **तुल्यं** सदृशम् **इदम्** एतद् यौवनोत्पन्नं **तमः** अन्धकारः यद् **भिन्नैः धर्मैः** भिन्नैः रत्नालोकसंहार्यत्व-सूर्यकिरणावार्यत्वरूपैः धर्मैः भेदकगुणैः **यद् अदर्शि** प्रदर्शितं **अयम्** एषः **सजातिव्यतिरेकः** तन्नामव्यतिरेकः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस व्यतिरेकालङ्कार में सजातीय वस्तु को ही उपमेय तथा उपमान के रूप में प्रयुक्त करके उनके भेद का कथन किया जाता है, वह सजातिव्यतिरेक कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में तमोजाति के दो भेद को ही उपमेय तथा उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। उपमेय यौवनोत्पन्न अन्धकार और उपमान मुख्य अन्धकार दोनों दृष्टिरोधक हैं। उपमेय यौवनोत्पन्न अन्धकार विवेक विनाशकारी होने के कारण तथा उपमान मुख्य अन्धकार नेत्रप्रत्यक्षरोधकर होने के कारण दृष्टिरोधक है- इस प्रकार दोनों के दृष्टिरोधन करने से दोनों में सादृश्य है। इस समानता के होते हुए भी दोनों में भेद है- उपमेय यौवनोत्पन्न अन्धकार रत्नों के आलोक से और सूर्य की किरणों से भी दूर नहीं होता जबकि उपमान मुख्य अन्धकार दूर हो जाता है। जातिसादृश्य वाले दोनों अन्धकारों में भेद कथन के कारण यह सजातिव्यतिरेक है।

(३) इस उदाहरण में भेदमात्र का कथन नहीं हुआ है प्रत्युत उपमेय यौवनोत्पन्न अन्धकार में असंहार्य और अहार्य रूप भेदाधिक्य भी है।

(विभावनालङ्कारविवेचनम्)

प्रसिद्धहेतुव्यावृत्या यत्किञ्चित्कारणान्तरम्।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना ।।१९९।।

अन्वय— यत्र प्रसिद्धहेतुव्यावृत्या यत्किञ्चिद् कारणान्तरं स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ, जिस (कथन) में। प्रसिद्धहेतुव्यावृत्या = प्रसिद्ध कारण के निषेध द्वारा। यत्किञ्चित् = किसी। कारणान्तरं = अन्य कारण की। स्वाभाविकत्वं वा = अथवा स्वाभाविकता की। विभाव्यं = विभावना, विशिष्ट भावना, विशेष-कल्पना। सा = वह। विभावना = विभावना (नामक अलङ्कार) है।

अनुवाद— जिस (कथन) में प्रसिद्ध कारण के निषेध द्वारा किसी अन्य कारण की अथवा स्वाभाविकता (स्वभाव सिद्धता) की विभावना (विशिष्ट भावना = विशेष कल्पना) (की जाती है) वह विभावना (नामक अलङ्कार (है)।

संस्कृतव्याख्या— विभावनालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **प्रसिद्धेति**। **यत्र** यस्मिन् कथने **प्रसिद्धहेतुव्यावृत्या** प्रसिद्धस्य लोकप्रतीतस्य हेतोः कारणस्य व्यावृत्या निषेधेन **कारणान्तरं** अन्यं कारणं **स्वाभाविकत्वं वा** कार्यस्य स्वभावसिद्धत्वं वा **विभाव्यं** विशिष्टरूपेण कल्पितं भवति **सा** ईदृशी **विभावना** तन्नामालङ्कार विद्यते।

विशेष—

(१) किसी कार्य के जनक अथवा व्यापक रूप से प्रसिद्ध कारण का निषेध करके जब किसी अन्य कारण की स्वाभाविकता (स्वभावसिद्धता) की विशिष्ट कल्पना की जाती है तो वह विभावना अलङ्कार कहलाता है।

(२) इसमें कारणान्तर अथवा स्वाभाविकता वाच्य अथवा गम्य दोनों हो सकती है किन्तु प्रायः गम्य (प्रतीत) ही होती है।

(३) इस अलङ्कार के मूल में अतिशयोक्ति होती है किन्तु कारणान्तर या स्वाभाविकता की प्रधानता होने के कारण विभावना (विशेष-कल्पना) ही मुख्य होती है। इस प्रकार इसमें सादृश्य गौण तथा व्यङ्ग्यार्थ ही मुख्य होता है। यहीं कारण है कि शाब्द या आर्थ होने के कारण पुष्टतर सादृश्य वाले व्यतिरेक के पश्चात् इसको स्थान दिया गया है।

(४) परवर्ती आचार्यों ने इस अलङ्कार का अधिक स्पष्ट लक्षण दिया है। उनके अनुसार कारण के विना ही कार्य की उत्पत्ति हो जाने का कथन विभावना कहलाता है। जैसा कि विश्वनाथ ने कहा है- 'विभावना विना हेतुं कार्योत्पति-र्यदुच्यते' इति (सा० द०- १०.६६)।

(कारणान्तरविभावनानिदर्शनम्)

अपीतक्षिबकादम्बमसम्मृष्टा[१]मलाम्बरम् ।
अप्रसादितशुद्धाम्बु[२] जगदासीन्मनोहरम्[३] ।।२००।।

अन्वय— अपीतक्षिबकादम्बम्, असम्मृष्टामलाम्बरम् अप्रसादितशुद्धाम्बु जगत् मनोहरम् आसीत् ।

शब्दार्थ— अपीताक्षिबकादम्बम् = मधुपान किये विना (अपीत) मतवाले (क्षीब) हो गये हैं कलहंस (कादम्ब) जिसमें ऐसा, मधुपान किये विना ही मतवाले कलहंसों वाला । असम्मृष्टामलाम्बरम् = (पानी से) धोये (साफ किये) बिना (असम्मृष्ट) ही स्वच्छ (अमल) हो गया है आकाश जिसमें ऐसा, पानी से धोये (साफ किये) विना ही स्वच्छ आकाश वाला । अप्रसादितशुद्धाम्बु = परिष्कृत किये विना (अप्रसादित) ही स्वच्छ (शुद्ध) हो गया है जल जिसमें ऐसा, परिष्कृत किये विना ही स्वच्छ हुए जल वाला । जगत् = जगत्, संसार । मनोहरम् = मनोहर, रमणीय । आसीत् = हो गया है ।

अनुवाद— मधुपान किये विना ही मतवाले कलहंसों वाला, (पानी से) धोये विना ही स्वच्छ आकाश वाला तथा परिष्कृत किये विना ही स्वच्छ हुए जल वाला (शरत्कालीन) जगत् मनोहर (रमणीय) हो गया है ।

संस्कृतव्याख्या— कारणान्तरविभावनां निदर्शयत्यत्र– **अपीतेति** । **अपीताक्षिबकादम्बम्** अपीताः अकृतमधुपानाः अपि क्षीबाः मत्ता कादम्बाः कलहंसाः यस्मिन् तादृशं **असम्मृष्टामलाम्बरम्** असम्मृष्टं जलेनाप्रक्षालितम् अपि अमलं निर्मलम् अम्बरम् आकाशं यस्मिन् तादृशम् **अप्रसादितशुद्धाम्बु** अप्रसादितम् अपरिशोधितम् अपि शुद्धं स्वच्छं अम्बु जलं यस्मिन् तादृशं शरत्कालिकं **जगद् मनोहरं** रमणीयं **आसीत्** अवर्तत् ।

विशेष—

(१) जिस अलङ्कार में प्रसिद्ध कारण का निषेध करके अन्य कारण की कल्पना की जाती है वह कारणान्तर विभावना कहलाता है ।

(२) लोक मे मधुपान के कारण मतवाला होना, धोने के कारण स्वच्छ होना तथा

---

(१) असंसृष्ट- ।

(२) -सूक्ष्मा- ।

(३) -रमम्- ।

शोधन के कारण जल का निर्मल होना प्रसिद्ध है। इन कारणों के अभाव में इनसे होने वाले कार्य नहीं होते।

(३) उक्त उदाहरण मधुपान न होने पर भी कलहंसों का मतवाला हो जाना, धोये विना ही आकाश का स्वच्छ हो जाना और परिशोधन के विना ही जल का निर्मल हो जाना– इस प्रकार इन कार्यों में प्रसिद्ध कारणों का निषेध हुआ है, किन्तु कारण के विना कोई कार्य नहीं होता, अतः इन प्रसिद्ध कारणों के स्थान पर एक अन्य कारण शरद् ऋतु के आगमन की कल्पना की गयी है। इस कारणान्तर की कल्पना से यहाँ कारणान्तर विभावना है।

(स्वाभाविकत्वविभावनानिदर्शनम्)

अनाञ्जितासिता दृष्टिर्भ्रूरनावर्जितानता ।
अरञ्जितोऽरुण[१]श्चायमधरस्तव सुन्दरि ।।२०१।।

अन्वय— सुन्दरि, तव दृष्टिः अनञ्जिता असिता, भ्रूः अनावर्जिता नता, अयम् अधरः अपि अरुणः (विद्यते)।

शब्दार्थ— सुन्दरि = हे सुन्दरि ! तव = तुम्हारी। दृष्टिः = आँखें। अनञ्जिता = काजल लगाये बिना ही। असिता = काली (हैं)। भ्रूः = भौंहें। अनावर्जिता = झुकाये विना ही। नता = झुक गयी हैं, नीचे की ओर झुकी हुई (टेढ़ी हो गयी) हैं। अयम् = यह। अधरः = ओठ। अरञ्जितः अपि = (लाक्षारस से) रँगे विना ही। अरुणः = लाल है।

अनुवाद— हे सुन्दरि, तुम्हारी आँखें काजल लगाये विना ही काली हैं (तुम्हारी) भौंहें झुकाये विना ही नीचे की ओर झुकीं हुई हैं और (तुम्हारे) ओठ (लक्षारस से) विना रंगे ही लाल हैं।

संस्कृतव्याख्या— स्वाभाविकत्वविभावनां निदर्शयत्यत्र– **अनारञ्जितेति**। **सुन्दरि** हे सुन्दरशरीरे ! **तव** सुन्दर्याः **दृष्टिः** नेत्रं **अनञ्जिता** अञ्जनेन अनुलिप्ता अपि **असिता** कृष्णवर्णा विद्यते। **भ्रूः अनावर्जिता** अनाकृष्टा अपि **नता** वक्रीभूता अस्ति, **अधरः** ओष्ठः **अरञ्जितः** लाक्षादिरञ्जनद्रव्येण अरक्तीकृतोऽपि **अरुणः** रक्तिमः वर्तते। कृष्णत्व-रक्तिमत्वरूपाणि कार्याणि अञ्जनवर्जनरञ्जनरूपैः प्रसिद्धैः कारणैः विनापि भवन्ति अत एवात्र स्वाभाविकत्वं व्यञ्जयन्ति। एवमत्र स्वाभाविकत्वविभावना विद्यते।

---

(१) अरञ्जितारुणश्- ।

विशेष—

(१) जिस विभावना अलङ्कार में प्रसिद्ध कारण के निषेध होने पर भी स्वाभाविक रूप से कार्य की निष्पत्ति होती है वह स्वाभाविकत्व विभावना कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में आँखों को काला बनाने के लिए काजल लगाना, भौहों को नीचे करने के लिए झुकाना तथा ओठों को लाल करने के लिए लाक्षरस इत्यादि लगाना कारण है।

(३) इन काजल के लगाये, भौहों को झुकाये और लाक्षादि से रंगे विना ही आँखों का काला हो जाना, भौहों का नत होना और ओठों का लाल होना स्वभावसिद्ध है अतः यहाँ स्वाभाविकत्व विभावना है।

(विभावनादिर्शनद्वयविश्लेषणम्)

यदपीतादिजन्यं[1] स्यात् क्षीबत्वाद्यन्यहेतुजम्[2] ।
अहेतुजं च तस्येह विवक्षेत्यविरुद्धता ।।२०२।।

अन्वय— अपीतादिजन्यं यत् क्षीबत्वादि अन्यहेतुजम् अहेतुजम् तस्य विवक्षा इति अविरुद्धता।

शब्दार्थ— अपीतादिजन्यं = मधुपान इत्यादि से न उत्पन्न होने वाली। यत् = जो। क्षीबत्वादि = मत्तता इत्यादि (कार्य)। अन्यहेतुजं = (शरत्कालारम्भरूप) अन्य कारण से उत्पन्न। अहेतुजं = विना कारण से उत्पन्न। तस्य = उसके। विवक्षा = कहने की अभिलाषा (होने से)। अविरुद्धता = अविरोध है, विरोध नहीं है।

अनुवाद— इस (उदाहरण में) मधुपान इत्यादि से न उत्पन्न होने वाली जो मत्तता इत्यादि (कार्य) (शरत्कालारम्भ रूप) अन्य कारण से (तथा इससे पूर्ववर्ती अनञ्जिता इत्यादि उदाहरण में) विना कारण से उत्पन्न (अर्थात् स्वाभाविक रूप वाला कार्य है,) उस (अन्यहेतुज और अहेतुज कार्य) की यहाँ विवक्षा (कहने की अभिलाषा होने) से विरोध नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— विभावनानिदर्शनद्वयं विश्लेषयत्यत्र– **यदिति**। **इह** उदाहरणेऽस्मिन् मधुपानाद्यजन्यं **यत्** क्षीबत्वादि मत्ततादि कार्यम् **अन्यहेतुजं** शरत्कालागमनरूपकारणान्तरजन्यम् अतो पूर्वस्मिन् अनञ्जिता इत्यस्मिन्नुदाहरणे **अहेतुजं** कारणं विनैवोत्पन्नं स्वभावजमित्यर्थः कार्यं भवति, **तस्य** अन्यहेतुजस्य अहेतुजस्य च **इह** अत्र

---

(१) – हेतुकम्।
(२) अत्यन्त– ।

विवक्षा कथनाभिलाषः विद्यते **इति** अत एव **अविरुद्धता** विरोधः नास्ति। कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्न जायते इति सिद्धान्तः। परञ्च विभावनायाः निर्दिष्टे उदाहरणद्वये च अपीतादिकारणाभावेऽपि क्षीबत्वादिकार्योत्पत्तिर्जायते एव अत एवेदं सिद्धान्तविरोधः। तद्विरोधनिराकरणं यद् अत्र कार्योत्पत्तेः विवक्षावशात् शरदागमनरूपेण अन्यकारणेन स्वभावसिद्धत्वेन च कार्योत्पत्तिः अत एव नात्र विरोधः।

विशेष—

(१) कारण के न होने पर कार्य की उत्पत्ति नहीं होती– यह सिद्धान्त है, किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में मधुपान इत्यादि कारण के न होने पर भी मत्तता इत्यादि कार्य का तथा पूर्ववर्ती उदाहरण में कारण के अभाव में भी आखों का काला होना कार्य होने का कथन हुआ है जो सिद्धान्त के विरुद्ध है। इसी विरुद्धत्व का निराकरण यहाँ किया गया है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में मधुपान इत्यादि प्रसिद्ध कारण के न होने पर भी प्रतीयमान शरदागमन मत्तता इत्यादि में अन्यकारण है तथा पूर्ववर्ती उदाहरण में कारणाभाव होने पर भी स्वभावसिद्ध कार्य हुआ है अतः यहाँ सिद्धान्त का विरोध नहीं हुआ है।

(शाब्दीविभावनानिदर्शनम्)

वक्त्रं निसर्गसुरभि वपुरव्याजसुन्दरम्।
अकारणरिपुश्चन्द्रो निर्निमित्तासुहृत्स्मरः ॥२०३॥

अन्वय— वक्त्रं निसर्गसुरभि वपुः अव्याजसुन्दरम्, चन्द्रः अकारणरिपुः, स्मरः निर्निमित्तासुहृत् (अस्ति)।

शब्दार्थ— वक्त्रं = मुख। निसर्गसुरभि = स्वभावतः सुगन्धयुक्त (है)। वपुः = शरीर। अव्याजसुन्दरं = सजावट के विना भी सुन्दर (मनोहर) (है)। चन्द्रः = चन्द्रमा। अकारणरिपुः = विना कारण के शत्रु (हो गया है)। स्मरः = कामदेव। निर्निमित्तासुहृत् = विना निमित्त (कारण) के शत्रु (बना हुआ है)।

अनुवाद— (प्रियतमा का) मुख स्वभावतः सुगन्धयुक्त है, शरीर सजावट के विना भी सुन्दर (मनोहर) है, चन्द्रमा विना कारण के ही (मेरा) शत्रु हो गया है और कामदेव विना निमित्त (कारण) के शत्रु बना हुआ है।

संस्कृतव्याख्या— शाब्दीविभावनां निदर्शयत्यत्र– **वक्त्रमिति**। प्रियायाः **वक्त्रं** मुखं **निसर्गसुरभिः** स्वाभाविकसुगन्धयुक्तं **वपुः** शरीरं **अव्याजसुन्दरं** अव्याजं प्रसाधनं विनापि सुन्दरं मनोहरं **चन्द्रः** चन्द्रमाः प्रियाविरहितस्य मम **अकारणरिपुः**

अकारणं कारणं विनापि रिपुः शत्रुः अथ च **स्मरः** कामदेवः **निर्निमित्तासुहृत्** निर्निमित्तं निमित्तं विनापि असुहृत् अमित्रः शत्रुः जातः।

(शाब्दीविभावनानिदर्शनविश्लेषणम्)

निसर्गादिपदैरत्र हेतुः साक्षान्निवर्तितः।
उक्तं च सुरभित्वादि[1] फलं तत्सा[2]विभावना ॥२०४॥

अन्वय— अत्र निसर्गादिपदैः हेतुः साक्षात् निवर्तितः सुरभित्वादि च फलं उक्तं तत् सा विभावना (विद्यते)।

शब्दार्थ— अत्र = इस (उदाहरण) में। निसर्गादिपदैः = निसर्ग इत्यादि पदों द्वारा। हेतुः = कारण। साक्षात् = साक्षात् रूप से (कहकर)। निवर्तितः = निवृत्त (निषिद्ध) कर दिया गया है। सुरभित्वादि च = और सौरभ (सुगन्ध) इत्यादि। फलं = कार्य को। उक्तं = कहा गया है। तत् = इसलिए, इसी कारण से। सा = वह। विभावना = विभावना (है)।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में निसर्ग इत्यादि पदों द्वारा कारण प्रत्यक्षरूप से (कथन करके) निवृत्त (निषिद्ध) कर दिया गया है और सौरभ (सुगन्ध) इत्यादि फल (कार्य) को कहा गया है, इसलिए यहाँ (शाब्दी) विभावना है।

संस्कृतव्याख्या— शाब्दीविभावनायाः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **निसर्गेति**। **अत्र** उदाहरणेऽस्मिन् **निसर्गादिपदैः** निसर्गाव्याजाकारणनिर्निमित्तेति पदैः **हेतुः** कारणं **निवर्तितः** निवारितः **सुरभित्वादि च** सौरभ-सौन्दर्य-रिपुता-असुहृत्त्वं च फलं कार्यं **साक्षात्** प्रत्यक्षरूपेण शब्दद्वारा **उक्तं** कथितं **तत्** तस्मात्कारणात् **सा विभावना** शब्दोपात्तत्वात् शाब्दी विभावना (विद्यते)।

विशेष—

(१) जिस विभावना में शब्दों द्वारा कारण का निषेध करके कार्य का शब्दों द्वारा अभिधान किया जाता है, वह शाब्दी विभावना कहलाती है।

(२) उक्त उदाहरण में निसर्ग, अव्याज, अकारण और निर्निमित शब्दों द्वारा कारण का निषेध करके उनके सौरभ, सौन्दर्य, रिपुता, असुहृत्त्व कार्य का शब्द द्वारा कथन हुआ है, अतः यह शाब्दी विभावना है।

(३) निसर्ग पद से स्वाभाविकत्व का अभिधान करके कारणान्तर का निषेध सूचित करते हुए सुरभित्व फल की विभावना की गयी है। अव्याज पद से कारणान्तर

(१) सुरभीत्यादि।

(२) तस्माद्।

के निषेध के अभिधान को व्यक्त करके सुन्दरत्व की विभावना की गयी है। अतः इनमें क्रमशः शाब्दी और आर्थी विभावनाएँ हैं।

(४) अकारण और निर्निमित्त पदों द्वारा सामान्य हेतुमात्र का साक्षात् निषेध करके चन्द्रमा की शत्रुता और कामदेव की शत्रुतारूप फल उक्त है। चन्द्र के शत्रुत्व की उपपत्ति विरह से होती है अतः वही कारणान्तर के रूप में उद्भावित होता है। इसी प्रकार कामदेव को असुहृत् कहने से असुहृत्त्व की उपपत्ति विरहगम्य ही है। इस प्रकार इनमें दो आर्थी विभावनाएँ हैं। अतः उदाहरण में विभावनाओं का सङ्कर है।

७० (समासोक्त्यलङ्कारविवेचनम्)

वस्तु किञ्चिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः ।
उक्तिः सङ्क्षिप्तरूपत्वात्[१] सा समासोक्तिरिष्यते ।।२०५।।

अन्वय— किञ्चित् वस्तु अभिप्रेत्य ततुल्यस्य अन्यवस्तुनः सा उक्तिः सङ्क्षिप्तरूपत्वात् समासोक्तिः इष्यते।

शब्दार्थ— किञ्चित् = किसी। वस्तु = वस्तु को, पदार्थ को। **अभिप्रेत्य** = अभिप्राय में रखकर, उद्देश्य में रखकर। तत्तुल्यस्य = उसी की समानता वाली। अन्यवस्तुनः = दूसरे वस्तु (पदार्थ) का। सा = वह। उक्तिः = उक्ति, कथन। सङ्क्षिप्तरूपत्वात् = संक्षिप्त रूप से (संक्षेप) में होने के कारण। समासोक्तिः = समासोक्ति। इष्यते = अभीष्ट होती है।

अनुवाद— किसी (प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत) वस्तु (पदार्थ) को अभिप्राय (उद्देश्य) में रखकर (शब्द के विना प्रतिपादित करने की इच्छा करके) उसी (उद्दिष्ट वस्तु) की समानता वाली दूसरी वस्तु (पदार्थ) का वह कथन संक्षिप्त रूप से होने के कारण समासोक्ति अभीष्ट होती है।

संस्कृतव्याख्या— समासोक्त्यलङ्कारं विवेचयत्यत्र– **वस्त्विति**। किञ्चित् प्रस्तुताप्रस्तुतं वा **वस्तु** पदार्थम् **अभिप्रेत्य** शब्दव्यापारं विना प्रतिपादयितुमभिलष्य **तत्तुल्यस्य** तेन प्रतिपादयितुमभिलषितेन वस्तुना तुल्यस्य समानस्य **अन्यवस्तुनः** कस्याचिदपरस्य प्रस्तुतस्याप्रस्तुतस्य वा वस्तुनः **सा उक्तिः** कथनं **संक्षिप्तरूपत्वात्** समासभावात् **समासोक्तिः** तन्नामालङ्कारः **इष्यते** अभिलषते। एकस्याभिधानेन द्वयोरभिधानः

(१) सङ्क्षेप-।

संक्षेप: । संक्षेप: समासश्च समानार्थक: । तथा च प्रस्तुताप्रस्तुतयोरन्यतरस्य कथनेन तदन्यस्य प्रतीति: समासोक्तिरिति स्पष्टम् । प्रस्तुताप्रस्तुतयोरन्यतरस्य शब्देनाभिधाने ऽन्यस्य जायमानोऽशाब्दो बोधश्चमत्कारविशेषोत्पादयतीति अस्या: अलङ्कारत्वं विज्ञेयम्

विशेष—

(१) जहाँ किसी वस्तु को अभिप्राय (उद्देश्य) में रख कर उसको व्यक्त करने की इच्छा से उस वस्तु की समानता वाली किसी अन्य वस्तु का संक्षिप्त रूप से अभिधान किया जाता है तो वह समासोक्ति अलङ्कार कहलता है। इस प्रकार लक्षण के अनुसार अप्रस्तुत उपमान का कथन और उससे प्रस्तुत उपमेय की प्रतीति समासोक्ति होती है।

(२) एक के कथन से दोनों उपमान और उपमेय का अभिधान संक्षेप कहलाता है। संक्षेप और समास दोनों समान अर्थ वाले है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों में से एक के कथन से दूसरे की प्रतीति होना समासोक्ति कहलाता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों में एक का शब्द द्वारा कथन होने पर दूसरे में उत्पन्न शब्दबोध एक विशिष्ट चमत्कार को उत्पन्न करता है, अत: यह समासोक्ति की अलङ्कारता है अर्थात् चमत्कारजनक होने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है।

(समासोक्तिनिदर्शनम्)

पिबन्मधु यथाकाम भ्रमर फुल्लपङ्कजे ।
अप्यसन्नद्धसौरभ्यं पश्य चुम्बति कुड्मलम् ।।१०६।।

अन्वय— पश्य भ्रमर: फुल्लपङ्कजे यथाकाम मधुपिबन् असन्नद्धसौरभ्यं कुड्मलम् अपि चुम्बन्ति।

शब्दार्थ— पश्य = तुम देखो। भ्रमर: = भ्रमर। फुल्लपङ्कजे = विकसित (खिले हुए) कमल पर। यथाकाम = अपनी इच्छानुसार। मधुपिबन् = मधुरस (पुष्प-रस) को पीता हुआ। असन्नद्धसौरभ्यं = अनुत्पन्न मधुगन्ध वाले। कुड्मलं = कलिका को। चुम्बति = चूम रहा है, चुम्बन ले रहा है।

अनुवाद— तुम (यह) देखो कि भ्रमर विकसित (खिले हुए) कमल पर अपनी इच्छानुसार मधुरस को पीता हुआ भी अनुत्पन्न मधुगन्ध वाली कलिका को चूम रहा है।

संस्कृतव्याख्या— समासोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **पिबन्निति**। **पश्य** त्वमवलोकय यत् **भ्रमर:** मधुलिह: **फुल्लपङ्कजे** विकसितकमले **यथाकाम** स्वेच्छानुसारं **मधु** मक-

न्दं **पिबन्** पानं कुर्वन् पीत्वापि इत्यर्थः, **असन्नद्धसौरभ्यम्** अनुत्पन्नमधुगन्धं **कुड्मलं** कलिकाम **अपि चुम्बति** चुम्बनं करोति ।

(समासोक्तिनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति प्रौढाङ्गनाबद्धरतिलीलस्य रागिणः ।
कस्यांश्चिदिह[1] बालायामिच्छावृत्तिर्विभाव्यते ।।२०७।।

अन्वय— इति इह प्रौढाङ्गनाबद्धरतिलीलस्य रागिणः कस्यांश्चित् बालायाम् इच्छावृतिं विभाव्यते ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में । प्रौढाङ्गनाबद्ध-रतिलीलस्य = प्रौढ़ (युवती) रमणी के साथ सुरतक्रीडा में लीन (लगे हुए) । रागिणः = अनुरागी की, अनुरागपूर्ण (नायक) की । कस्यांश्चित् = किसी (अप्राप्त यौवना) । बालायां = बाला के प्रति । इच्छावृत्तिः = इच्छाव्यापार । विभाव्यते = प्रतीत हो रहा है ।

अनुवाद— इस प्रकार इस (उदाहरण) में प्रौढ़ (युवती) रमणी से रतिक्रीडा में लीन अनुरागपूर्ण (नायक) की किसी (अप्राप्तयौवना) बाला के प्रति इच्छाव्यापार प्रतीत हो रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— समासोक्तेः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति** । **इति** अनेन-प्रकारेण **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **प्रौढाङ्गनाबद्धरतिलीलस्य** प्रौढाङ्गनायां प्राप्तयौवनायां रमण्यां आबद्धा निबद्धा रतिलीला सुरतक्रीडा येन तादृशस्य **रागिणः** अनुरागिणः नायकस्य **कस्यांश्चिद्** अप्राप्तयौवनायां **बालायां इच्छावृत्तिः** प्राप्तेच्छाव्यापारः **विभाव्यते** प्रतीयते । प्रौढयुवत्यां रतिक्रीडासंलग्नस्य नायकस्य अप्राप्तयौवनायां कस्याश्चिद् बालायां इच्छाव्यापारं अभिप्रेत्य तत्तुल्यम् अन्यद्वस्तु विकसितकमले मधुपान-रतस्य भ्रमरस्य कलिकाचुम्बनरूपव्यापारं वर्णितम्, अत एवात्र समासोक्तिः ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में प्रस्तुत वस्तु प्रौढा युवती रमणी के प्रति रतिक्रिया में संलग्न कामुक नायक के अप्राप्तयौवना बाला के प्रति इच्छा व्यापार को अभिप्रेत करके (वर्ण्यवस्तु के रूप में अभिलषित करके) उसी के समान अप्रस्तुत वस्तु- खिले हुए कमल में मधुपान क्रिया में संलग्न भ्रमर के अविकसित कली के प्रति चुम्बन द्वारा इच्छाव्यापार को वर्णित किया गया है, अतः यहाँ समासोक्ति है ।

(१) अपि ।

(समासोक्तिभेदनिरूपणम्)

विशेष्यमात्रभिन्नापि तुल्याकारविशेषणा ।
अस्त्यसावपराप्यस्ति भिन्नाभिन्नविशेषणा ।।२०८।।

अन्वय— असौ विशेष्यमात्रभिन्ना अपि तुल्याकारविशेषणा अस्ति अपरा अपि भिन्नाभिन्नविशेषणा अस्ति ।

शब्दार्थ— असौ = यह (समासोक्ति) । विशेष्यमात्रभिन्ना अपि भिन्न विशेष्य-मात्र वाली भी । तुल्याकारविशेषणा = समान आकार वाले (अभिन्न) विशेषण से युक्त । अस्ति = है । अपरा अपि = दूसरी भी । भिन्नाभिन्नविशेषणा = भिन्न और अभिन्न विशेषणों वाली है ।

अनुवाद— यह (समासोक्ति) भिन्न विशेष्यमात्र वाली भी तुल्य (समान) आकार वाले (अभिन्न) विशेषण से युक्त होती है और दूसरी (समासोक्ति) (किसी अंश में) भिन्न तथा (किसी अंश में) अभिन्न विशेषणों वाली होती है ।

संस्कृतव्याख्या— समासोक्तेः भेदद्वयं निरूपयत्यत्र– **विशेष्येति** । **असौ** एषा समासोक्तिः **विशेष्यमात्रभिन्ना अपि** विशेष्यमात्रं अभीष्टाभिहितवस्तुद्वयबोधकं विशे-ष्यपदमात्रं भिन्नं श्लेषभावात् पृथग्त्वं यत्र तादृशीं सती अपि **तुल्याकारविशेषणा** तुल्याकारम् अभिन्नस्वरूपं विशेषणं तादृशी अस्ति । **अपरा** अन्या समासोक्तिः **भिन्ना-भिन्नविशेषणा** क्वचित् श्लेषाभावे भिन्नाकारविशेषणत्का क्वचिच्च श्लेषाद् अभिन्ना-कारविशेषणयुक्ता अस्ति । एवं समासोक्तिः द्विधा— तुल्याकारविशेषणा भिन्नाभिन्न-विशेषणा च । तत्र तुल्याकारविशेषणा समासोक्ति विशेष्यमात्रभिन्ने सत्यपि श्लेष-प्रयोगात् अभिप्रेताभिहितोभयगामिविशेषणयुता भवति अपरा भिन्नाभिन्नविशेषणा समा-सोक्तिः क्वचिद श्लेषाद् भिन्नाकारविशेषणयुता क्वचिच्च श्लोषाद् अभिन्नाकारविशेषण-युता भवति ।

विशेष—

(१) समासोक्ति अलङ्कार दो प्रकार का होता है– तुल्याकारविशेषणा और भिन्नाभिन्न-विशेषणा । विशेष्यमात्र के भिन्न होने पर भी श्लिष्ट पदों के कारण जिस विशेषोक्ति में विशेषणों का स्वरूप समान होता है वह तुल्याकारविशेषणा (समान स्वरूप वाले विशेषणों से युक्त) समासोक्ति कहलाती है और जिस समासोक्ति में कुछ विशेषण श्लिष्ट पद के प्रयुक्त न होने के कारण भिन्न आकार वाले होते हैं और कुछ श्लिष्टपद के प्रयोग के कारण समान (अभिन्न) स्वरूप वाले होते हैं वह भिन्नाभिन्नविशेषणा (समान और असमान स्वरूप वाले विशेषणों से युक्त) समासोक्ति कहलाती है ।

(२) समानस्वरूप वाले और असमान स्वरूप वाले विशेषणों की सत्ता श्लिष्ट पदों पर आश्रित होती है। श्लिष्ट पदों के प्रयोग से विशेषण समान स्वरूप वाले तथा अश्लिष्ट पदों के प्रयोग से विशेषण भिन्नस्वरूप वाले होते हैं। इनका स्पष्टीकरण आगे उदाहरणों द्वारा किया गया है।

(तुल्याकारविशेषणसमासोक्तिनिदर्शनम्)

रूढमूलः फलभरैः पुष्णन्ननिशमर्थिनः ।
सान्द्रच्छायो महावृक्षः सोऽयमासादितो मया ।।२०९।।

अन्वय— रूढमूलः फलभरैः अर्थिनः अनिशं पुष्णन् सान्द्रच्छायः सः अयं महावृक्षः मया आसादितः।

शब्दार्थ— रूढमूलः = (वृक्षपक्ष में) बढ़ी हुई (मजबूत) हैं जड़े जिनकी ऐसा, प्रवृद्ध (बढ़ी हुई, दृढ़) मूल (जड़) वाला (महापुरुषपक्ष में) दृढ मूलधन से युक्त। फलभरैः = (वृक्षपक्ष में) फल के भार से, फलों द्वारा (महापुरुषपक्ष में) अभ्यर्चित (याचित) धन से। अर्थिनः = (वृक्षपक्ष में) (फल की) इच्छा करने वालों को (महापुरुषपक्ष में) धन के अभिलाषियों को। अनिशं = सतत्, निरन्तर, रात-दिन। पुष्णन् = (वृक्षपक्ष में) पुष्ट करता हुआ (महपुरुषपक्ष में) उपकृत करता हुआ। सान्द्रच्छायः = (वृक्षपक्ष में) घनी छाया वाला (महापुरुषपक्ष में) स्निग्ध (मुख) से युक्त। अयं = यह (अभीष्ट)। महावृक्षः = विशाल वृक्ष। मया = मेरे द्वारा। आसा-दितः = प्राप्त कर लिया गया है।

अनुवाद— (**वृक्षपक्ष** में) प्रवृद्ध मूल (जड़) वाला और अपने फल के भार से (फल की) इच्छा करने वाले लोगों को निरन्तर पुष्ट करता हुआ घनी छाया वाला यह विशाल वृक्ष मेरे द्वारा प्राप्त कर लिया गया है। (**महापुरुषपक्ष** में) दृढ़ मूलधन से युक्त, अभ्यर्चित धन से धन के अभिलाषियों को निरन्तर उपकृत करता हुआ स्निग्ध मुख वाला यह विशालवृक्षरूपी महात्मा मुझको प्राप्त हो गया है।

संस्कृतव्याख्या— तुल्याकारविशेषणव्यतिरेकं निदर्शयत्यत्र- **रूढमूल इति**। **रूढमूलः** वृक्षपक्षे रूढं प्रबृद्धं मूलं तलं यस्य तादृशः महापुरुषपक्षे दृढं मूलधनं यस्य तादृशः **फलभरैः** वृक्षपक्षे फलसमूहैः महापुरुषपक्षे धनसमूहैः **अर्थिनः** वृक्षपक्षे फला-र्थिनः महापुरुषपक्षे धनार्थिनः याचकान् **पुष्णन्** वृक्षपक्षे उपकुर्वन् महापुरुषपक्षे सन्तुष्टं कुर्वन्, **सान्द्रच्छायः** वृक्षपक्षे घनच्छायः महापुरुषपक्षे स्निग्धमुखकान्तिसम्पन्नः **अयम्** एषः **महावृक्षः** विशालवृक्षः **मया आसादितः** प्राप्तः। अत्र महापुरुषोऽभिप्रेतः। तदस्थाने तस्य सदृशाकारविशेषणयुक्तस्य महावृक्षस्य वर्णनादत्र तुल्याकारविशेषण-व्यतिरेकः विद्यते।

विशेष—

(१) उक्त उदाहरण में दानी किसी महापुरुष का वर्णन अभिप्रेत है किन्तु उसके स्थान पर उस महापुरुष के सदृश स्वरूप वाले विशेषणों से युक्त किसी विशाल वृक्ष का वर्णन किया गया है अतः यह तुल्याकारविशेषण वाला व्यतिरेक है।

(२) महापुरुष में प्राप्त प्रवृद्धमूल, फलभार से अभिलाषियों को सन्तृप्त करना, सान्द्रच्छाया युक्त होना विशेषण उसी के समान विशालवृक्ष में भी प्राप्त होते हैं। अतः ये तुल्याकार (सदृशस्वरूप वाले) विशेषण हैं।

(३) ये विशेषण वाले पद श्लिष्ट हैं। वृक्ष के रूप में वर्णित महापुरुष का कथन शब्द द्वारा अभिहित नहीं है, उसकी व्यञ्जना होती है।

(भिन्नाभिन्नविशेषणसमासोक्तिनिदर्शनम्)

अनल्पविटपाभोगः फलपुष्पसमृद्धिवान् ।
सच्छायः[1] स्थैर्यवान् दैवादेव लब्धो मया ।।२१०।।

अन्वय— अनल्पविटपाभोगः फलपुष्पसमृद्धिवान् सच्छायः स्थैर्यवान् एषः मया दैवात् लब्धः।

शब्दार्थ— अनल्पविटपाभोगः = बहुत सी शाखाओं का विस्तार है जिसमे ऐसा, बहुत सी शाखाओं के विस्तार वाला। फलपुष्पसमृद्धिवान् = फलों और फूलों की समृद्धि की अधिकता (सम्पन्नता) है जिसकी ऐसा, फलों और फूलों की समृद्धि से युक्त। सच्छायः = (वृक्षपक्ष में) सुन्दर (घनी) छाया वाला (महापुरुषपक्ष में) सुन्दर कान्ति से युक्त। स्थैर्यवान् = (वृक्षपक्ष में) स्थिरतायुक्त अर्थात् प्रवृद्ध जड़ वाला (महापुरुष पक्ष में) दृढ़तायुक्त। एषः = यह। मया = मेरे द्वारा। दैवात् = सौभाग्य से। लब्धः = प्राप्त कर लिया गया है।

अनुवाद— बहुत सी शाखाओं के विस्तार वाला, फलों और फूलों की समृद्धि से युक्त, सुन्दर (घनी) छाया वाला तथा स्थिरतायुक्त (= प्रवृद्ध जड़ वाला) यह (वृक्ष) मेरे द्वारा सौभाग्य से प्राप्त कर लिया गया है।

संस्कृतव्याख्या— भिन्नाभिन्नविशेषणसमासोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **अनल्पेति।** **अनल्पविटपाभोगः** अनल्पः अधिकः विटपानां शाखानाम् आभोगः विस्तारः यस्य तादृशः **फलपुष्पसमृद्धिवान्** फलानां पुष्पाणां च समृद्धिः आधिक्यं विद्यते यस्य तादृशः **सच्छायः** वृक्षपक्षे शोभनछायासम्पन्नः महापुरुषपक्षे शोभनकान्तियुक्तः **स्थैर्यवान्**

---

(१) सुच्छायः, सोच्छ्रायः।

वृक्षपक्षे दृढमूल. महापुरुषपक्षे दृढतायुक्तः **एषः** अयं वृक्षः **मया दैवात्** सौभाग्यवशात् **लब्धः** प्राप्तः। अत्रापि कश्चिनद् महापुरुषः अभिप्रेतः तदस्थाने तत्समधर्मणः वृक्षस्य वर्णनं विद्यते। अत्र प्रयुक्तेषु चतुर्षु विशेषणेषु केवलं द्वे प्रथमे विशेषणे वृक्षमात्रगते भिन्ने अपरे द्वे विशेषणे सुच्छायः स्थैर्यवान् चेति वृक्षमहापुरुषयोरुभयोः पक्षे योजयितुं शक्यते अत एवेमे अभिन्ने विद्यते। एवं भिन्नाभिन्नयोः विशेषणयोः प्रयोगादत्र भिन्नाभिन्नविशेषणा समासोक्ति विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में महापुरुष का वर्णन अभिप्रेत है किन्तु उसके स्थान पर वृक्ष का वर्णन किया गया है जिससे महापुरुष का वर्णन व्यञ्जित होता है।

(२) इस उदाहरण में अनल्पविटपाभोग, फलपुष्पसमृद्धिवान् सच्छाय और स्थिरवान्- - इन चार विशेषणों का प्रयोग हुआ है जिनमें से पहले दो विशेषण केवल वृक्ष के साथ ही जोड़े जा सकते है– महापुरुष के साथ नहीं। दोनों पक्षों में योजनीय न होने के कारण ये भिन्न विशेषण है तथा अन्तिम दो विशेषण वृक्ष और महापुरुष दोनों के साथ जोड़े जा सकते हैं। ये दोनों के साथ जोड़े जाने के कारण अभिन्न विशेषण है। इस प्रकार इस उदाहरण में भिन्न और अभिन्न विशेषणों का संयोजन हुआ है अतः यह भिन्नाभिन्नविशेषणा समासोक्ति है।

(निदर्शनद्वयविश्लेषणम्)

उभयत्र पुमान् कश्चिद् वृक्षत्वेमोपवर्णितः।
सर्वे साधारणा धर्मा पूर्वत्रान्यत्र तु द्वयम् ।।२११।।

अन्वय— उभयत्र कश्चित् पुमान् वृक्षत्वेन उपवर्णितः। पूर्वत्र सर्वे धर्माः साधारणाः अन्यत्र तु द्वयम्।

शब्दार्थ— उभयत्र = दोनों (उदाहरणों) में। कश्चित् = कोई (उदारचरित)। पुमान् = व्यक्ति। वृक्षत्वेन = वृक्ष के रूप द्वारा। उपवर्णितः = वर्णित किया गया है। पूर्वत्र = पूर्ववर्ती (उदाहरण) में। सर्वे = सभी। धर्माः = धर्म, विशेषण। साधारणाः = (दोनों पक्षों में लागू होने के कारण) साधारण (सामान्य) हैं। अन्यत्र तु = अन्य में। द्वयम् = दो (धर्म = विशेषण)।

अनुवाद— (रूढमूलं..... और अनल्प..... इन) दोनों (उदाहरणों) में कोई (उदारचरित) पुरुष वृक्ष के स्वरूप द्वारा वर्णित किया गया है। पूर्ववर्ती (रूढमूलं – इस) उदाहरण में सभी धर्म (विशेषण) (वृक्ष और पुरुष दोनों पक्षों में लागू होने के कारण) साधारण (सामान्य) हैं और अन्य (अनल्प....) में दो (धर्म = विशेषण) (साधारण) हैं।

संस्कृतव्याख्या— तुल्याकारविशेषणायाः भिन्नाभिन्नविशेषणायाः च समासोक्तेः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **उभयत्रेति** । **उभयत्र** 'रूढमूलं....' 'अनल्पविटपाभोगः' इत्यस्मिन्नुदाहरणद्वये **कश्चिद्** उदारचरितः **पुमान्** पुरुषः **वृक्षत्वेन** वृक्षरूपेण **उपवर्णितः** अभिहितः । तत्र **पूर्वत्र** 'रूढमूलं....' इत्यस्मिन्नुदाहरणे **सर्वे अपि** धर्माः रूढमूलत्वादयः विशेषणाः वृक्षपुरुषयोः उभयोः शिलष्टतया अन्विता सन्तः **साधारणाः** सन्तीति शेषः । परञ्च **अन्यत्र** 'अनल्पविटपाभोगः' इत्यस्मिन्नुदाहरणे **तु** चतुर्षु धर्मेषु **द्वयम्** विशेषणद्वयमेव वृक्षपुरुषयोः द्वयोः अन्वितात् साधारणम्, अन्यं धर्मद्वयं वृक्षमात्रेणान्वितात् भिन्न-धर्मः विद्यते ।

विशेष—

(१) रूढमूलं.... इस उदाहरण में प्रयुक्त सभी धर्म वृक्ष और पुरुष दोनों से अन्वित होने के कारण साधारण धर्म है किन्तु अनल्पविटपाभोगः.... इस उदाहरण में केवल दो ही धर्म वृक्ष और पुरुष से अन्वित हैं अतः वे दो ही साधारण (अभिन्न) धर्म हैं । शेष दो धर्म केवल वृक्ष के साथ ही अन्वित होते हैं अतः वे भिन्न धर्म हैं ।

(अपूर्वसमासोक्तिनिदर्शनम्)

निवृत्तव्यालसंसर्गो निसर्गमधुराश्रयः ।
अयमाम्भोनिधिः कष्टं कालेन परिशोष्यते ।।२१२।।

अन्वय— निवृत्तव्यालसंसर्गः निसर्गमधुराश्रयः अयम् अम्भोनिधिः कालेन परिशोष्यते (इति) कष्टम् ।

शब्दार्थ— निवृत्तव्यालसंसर्गः = (समुद्रपक्ष में) साँपों के संसर्ग से रहित, (पुरुषपक्ष में) दुष्टों के सम्पर्क से रहित । निसर्गमधुराश्रयः = (समुद्रपक्ष में) स्वभाव से मधुर जलों का आश्रय, स्वभाव से मधुर जलों से युक्त, (पुरुषपक्ष में) स्वभाव से मधुर चित्तवृत्ति वाला । अयम् = यह । अम्भोनिधिः = समुद्रः । कालेन = काल के द्वारा । परिशोष्यते = सुखा दिया जाता है । कष्टम् = (यह) कष्ट (की बात) है ।

अनुवाद— सर्पों के संसर्ग से रहित और स्वभाव से मधुर जलों का आश्रय यह समुद्र काल के द्वारा सुखा दिया जाता है । यह कष्ट की बात है ।

संस्कृतव्याख्या— अपूर्वसमासोक्तिं निदर्शयत्यत्र– **निवृत्तेति** । **निवृत्तव्यालसंसर्गः** 'समुद्रपक्षे' निवृत्तः दूरीभूतः व्यालानां सर्पाणां संसर्गः सम्पर्कः यस्मिन् तादृशः पुरुषपक्षे निवृत्तः दूरीभूतः व्यालानां दुष्टजनानां संसर्गः सम्पर्कः यस्मिन् तादृशः, **निसर्गमधुराश्रयः** समुद्रपक्षे निसर्गेण स्वभावेन मधुराणां सुस्वादुयुक्तानां जलानाम्

आश्रयः आश्रयभूतः पुरुषपक्षे निसर्गेण स्वभावेन मधुराणां चित्तव्यापाराणाम् आश्रयः आश्रयभूतः **अयम्** एषः पुरोदृश्यमानः **जलनिधिः** समुद्रः **कालेन** कालक्रमेण यमेन वा **परिशोष्यते** परितः शुष्कतां नीयते इति **कष्टं** दुःखस्य विषयः वर्तते ।

(अपूर्वसमासोक्तिनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्यपूर्वसमासोक्तिः पूर्वधर्मनिवर्तनात् ।
समुद्रेण[१] समानस्य पुंसो व्यापत्तिसूचने ।।२१३।।

अन्वय— इति समुद्रेण समानस्य पुंसः व्यापत्तिसूचने पूर्वधर्मनिवर्तनात् अपूर्वसमासोक्तिः विद्यते ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । समुद्रेण = समुद्र (के कथन) द्वारा । समानस्य = (उस समुद्र के) समान । पुंसः = (किसी) पुरुष के । व्यापत्तिसूचने = विनाश की सूचना देने में । पूर्वधर्मनिवर्तनात् = पूर्ववर्ती (प्रसिद्ध) धर्म का निषेध होने के कारण । अपूर्वसमासोक्तिः = अपूर्वसमासोक्ति (है) ।

अनुवाद— इस प्रकार समुद्र (के कथन) द्वारा (उस समुद्र के) समान (किसी) पुरुष के विनाश की सूचना देने में पूर्ववर्ती (प्रसिद्ध) धर्म (सर्पसंसर्ग और क्षारजलत्व) का निषेध होने के कारण अपूर्वसमासोक्ति है ।

संस्कृतव्याख्या— अपूर्वसमासोक्तेः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **इत्यपूर्वेति** । **इति** अनेन प्रकारेण **समुद्रेण** सागरेण **समानस्य** सागरसदृशस्य **पुंसः** पुरुषस्य **व्यापत्तिसूचने** विनाशरूपस्य विपत्तिसूचने **पूर्वधर्मनिवर्तनात्** पूर्वस्य सर्पयुक्तत्वक्षारजलत्वरूपस्य प्रसिद्धधर्मस्य निवर्तनाद् निषेधादत्र **अपूर्वसमासोक्तिः** तन्नाम समासोक्ति विद्यते ।

विशेष—

(१) समुद्र का सर्पयुक्त होना और क्षार जल वाला होना प्रसिद्ध धर्म है । उक्त उदाहरण में अभिप्रेत किसी सच्चरित पुरुष की विपत्ति को सूचित करने के लिए उसके समान धर्म वाले समुद्र का वर्णन किया गया है । चूँकि सच्चरित पुरुष दुष्टों के सम्पर्क से दूर रहता है और मधुर चित्तवृत्ति वाला होता है अतः समुद्र में उसके गुण की समानता को प्रदर्शित करने के लिए समुद्र के धर्म सर्प युक्त होना और जल के क्षारत्व का निषेध करके उसे सर्प की सङ्गति से रहित और मृदुजल वाला कहा गया है जो पूर्व में प्रसिद्ध धर्म से विपरीत होने के कारण अपूर्व है । इस अपूर्व धर्म के द्वारा उक्त होने के कारण यह समासोक्ति अपूर्वसमासोक्ति है ।

---

(१) समुद्रे तत्समा– ।

(अतिशयोक्त्यलङ्कारविवेचनम्)

विवक्षा या[1] विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी[2] ।
असावतिशयोक्तिः स्यादलङ्कारोत्तमा[3] यथा ।।२१४।।

अन्वय— विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी विवक्षा अलङ्कारोत्तमा असौ अतिशयोक्तिः स्यात् ।

शब्दार्थ— विशेषस्य = विशेष की, अतिशय की उत्कर्ष की । लोकसीमातिवर्तिनी = लोकमर्यादा (लौकिकव्यवहार) का अतिक्रमण (उलङ्घन) करने वाली । विवक्षा = (गम्य के रूप में) कथन करने (वर्णन करने) की इच्छा । अलङ्कारोत्तमा = अलङ्कारों में श्रेष्ठ । असौ = यह । अतिशयोक्तिः = अतिशयोक्ति । स्यात् = होती है ।

अनुवाद— (किसी वस्तु के) विशेष (अतिशय, उत्कर्ष) की लोकमर्यादा (लौकिकव्यवहार) का अतिक्रमण (उलङ्घन) करने वाली विवक्षा (कथन करने की इच्छा) अलङ्कारों में श्रेष्ठ यह अतिशयोक्ति होती है ।

संस्कृतव्याख्या— अतिशयोक्त्यलङ्कारं विवेचयत्यत्र- **विवक्षेति** । कस्यचिद् वस्तुनः **विशेषस्य** उत्कर्षस्य **लोकसीमातिवर्तिनी** लोकसीमायाः लोकमर्यादायाः लोकव्यवहारस्य वा अतिवर्तिनी अतिक्रमणी उलङ्घिनी **विवक्षा** कथनस्येच्छा **अलङ्कारोत्तमा** अलङ्कारेषु उत्तमा श्रेष्ठा **असौ** एषा **अतिशयोक्तिः** तन्नामालङ्कारः स्यात् । **यथा** इति निदर्शनोपक्रमणार्थम् । कस्यचिद् वस्तुनः उत्कर्षस्य लोकव्यवहारमतिक्रम्य यत्कथनं भवति असौ अतिशयोक्तिः नाम अलङ्कारः भवति । अलङ्कारोऽयं वैचित्र्यमूलकालङ्कारेषु श्रेष्ठमिति बोधव्यम् ।

विशेष—

(१) जिस अलङ्कार में लोकमर्यादा का उलङ्घन करके किसी वस्तु की उत्कृष्टता के अतिशय का कथन किया जाता है, वह अतिशयोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

(२) अतिशयोक्ति का अर्थ है- अत्यधिक उत्कर्षयुक्त कथन । अन्य अलङ्कारों में जहाँ व्यङ्ग्य होता है वहीं इस अलङ्कार में इसे वाच्य बनाकर उससे प्रस्तुत वस्तु के अत्यधिक उत्कर्ष को व्यक्त किया जाता है ।

(३) अन्य अलङ्कारों में उत्कर्ष की विवक्षा में लोक की मर्यादाओं (सम्भाव्यताओं,

---

(१) विवक्षया ।
(२) -वर्तिनः ।
(३) -त्तमो ।

प्रसिद्धियो) का उलङ्घन नहीं होता इसलिए वे अतिशयोक्ति नहीं कहलाते किन्तु जहाँ लोकसीमा का अतिक्रमण होता है वे अलङ्कार अतिशयमूलक होते है।

(४) परवर्ती आचार्यो ने दण्डी की विशेषविवक्षा को और अधिक निश्चित सीमाओं में बाँधा है अतः उसका लक्षण परिसीमित और परिष्कृत रूप में दिया है। मम्मट के अनुसार उपमान द्वारा उपमेय के निगरण के परिणामस्वरूप दोनों का अभेदकथन अतिशयोक्ति है (द्रष्टव्यः काव्यप्रकाश १०.१००-१०१)।

(अतिशयोक्तिनिदर्शनम्)

मल्लिकामालभारिण्यः[१] सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दना[२] ।
क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ।।२१५।।

अन्वय— मल्लिकामालभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः क्षौमवत्यः अभिसारिकाः ज्योत्स्नायां न लक्ष्यन्ते।

शब्दार्थ— मल्लिकामालभारिण्यः = मल्लिका (चमेली) के (सफेद फूलों) की माला को धारण किये हुईं। सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः = सभी अङ्गों में गीले चन्दन का लेप किये हुईं। क्षौमवत्यः = क्षौम (श्वेत और महीन वस्त्र) को धारण किये हुईं। अभिसारिकाः = अभिसारिकाएँ। ज्योत्स्नायां = चाँदनी में। न लक्ष्यन्ते = दिखलायी नहीं पड़ती।

अनुवाद— मल्लिका (चमेली) के (सफेद फूलों की) माला को धारण किये हुई, सभी अङ्गों पर गीले चन्दन का लेप किये हुईं तथा क्षौम (सफेद और महीन वस्त्र) को धारण किये हुईं अभिसारिकाएँ (सङ्केतस्थल पर प्रियमिलन के लिए जाती हुईं) चाँदनी में दिखलायी नहीं पड़तीं।

संस्कृतव्याख्या— अतिशयोक्त्यलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **मल्लिकेति। मल्लिकामालभारिण्यः** मल्लिकापुष्पाणां शुभ्रां मालां धारयन्त्यः **सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः** सर्वाङ्गीणं तादृशं आर्द्रं सिक्तं चन्दनं यासां तादृश्यः **क्षौमवत्यः** शुभ्रसूक्ष्मवस्त्रधारिण्यः **अभिसारिकाः** सङ्केतस्थानं प्रियसमागमार्थं गच्छन्त्यः प्रियार्थिन्यः युवतयः **ज्योत्स्नायां** चन्द्रिकायां **न लक्ष्यन्ते** न दृश्यन्ते। ज्योत्स्नायां श्वेतत्वं मल्लिकापुष्पाद्यभिन्नतया वर्ण्यमानं समधिकश्वेततया प्रतीयते इत्यतिशयोक्तिः विद्यते।

---

(१) -माल्य, -धारिण्यः।

(२) सर्वाङ्गेणा-।

(अतिशयोक्तिनिदर्शनविश्लेषणम्)

चन्द्रातपस्य बाहुल्यमुक्तमुत्कर्षवृत्तया[१] ।
संशयातिशयादीनां व्यक्त्यै[२] किञ्चिन्निदर्श्यते ।।२१६।।

अन्वय— चन्द्रातपस्य बाहुल्यम् उत्कर्षवृत्तया उक्तम् । संशयातिशयादीनां व्यक्त्यै किञ्चित् निदर्श्यते ।

शब्दार्थ— चन्द्रातपस्य = चाँदनी की प्रगाढ़ता (अथवा धवलता) की । बाहुल्यं = बहुलता को, अधिकता को, अतिशयता को । उत्कर्षवृत्तया = उत्कर्षवृत्ति से, लोक-व्यवहार के अतिक्रमण द्वारा । उक्तं = कहा गया है, वर्णित किया गया है । संशयाति-शयादीनां = संशय की अधिकता आदि के । व्यक्त्यै = स्पष्टीकरण के लिए । किञ्चित् = कुछ (उदाहरण) । निदर्श्यते = निर्दिष्ट किये जा रहे हैं, प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

अनुवाद— चाँदनी की प्रगाढता (अथवा धवलता) की बहुलता (अधिकता) को उत्कर्ष (लोकव्यवहार के अतिक्रमण) द्वारा कहा गया है (अतः प्रस्तुत उदाहरण में अतिशयोक्ति) है । संशय आदि की अधिकता के स्पष्टीकरण के लिए कुछ (उदाहरण) प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

संस्कृतव्याख्या— अतिशयोक्तिनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **चन्द्रातपस्येति** । **चन्द्रातपस्य** चन्द्रिकायाः **बाहुल्यम्** आधिक्यम् **उत्कर्षवृत्तया** लोकाचारानुलङ्घनद्वारा **उक्तं** कथितम् अत एवात्र अतिशयोक्तिः विद्यते । **संशयातिशयादीनां** संशयादीनाम् अति-शयानाम् आधिक्यानां **किञ्चिद्** उदाहरणमत्र **निदर्श्यते** प्रस्तूयते ।

विशेष—

(१) चाँदनी से अपने को एकाकार करने के लिए अभिसारकाओं ने अपने काले बालों को चमेली के शुभ्ररंग वाले पुष्पों की मालाओं से पूर्णरूप से लादकर ढक लिया है, अङ्गों पर चन्दन का आर्द्र लेप लगा लिया है और ऊपर से रेशमी दुपट्टा ओढ़ लिया है । इस प्रकार अपने को पूर्णतः श्वेत कर लेने के कारण वे चाँदनी से एकाकार हो गयी हैं– चाँदनी से अलग लक्षित नहीं होतीं । चाँदनी यदि कम होती तो वे श्वेत वस्तुओं से आवृत्त होने के कारण उससे अलग दिखलायी पड़ जातीं । इससे प्रतीत होता है कि चाँदनी इतनी अधिक है कि चमेली पुष्प इत्यादि की शुभ्रता उसमें मिल गयी है ।

---

(१) –वत्तथा, वत्तया ।

(२) व्यक्तौ ।

(२) इस प्रकार चाँदनी की अतिशययुक्त अधिकता को बतलाने के लिए लोकमर्यादा का उल्लङ्घन हुआ है क्योंकि चमेली के पुष्प इत्यादि की चाँदनी से एकाकारता सम्भव नहीं है।

(३) यह अतिशयता मन की स्थितियों के उत्कर्ष की विवक्षा से भी कही जा सकती है। आचार्य दण्डी ने सन्देह, निर्णय और विस्मय- इन मन की स्थितियों के उत्कर्ष का उदाहरण तीन श्लोकों में दिया है।

(संशयातिशयोक्तिनिदर्शनम्)

स्तनयोर्जघनस्यापि मध्यं मध्ये प्रिये तव[१]।
अस्ति नास्तीति सन्देहो न मेऽद्यापि निवर्तते ।।२१७।।

अन्वय— प्रिये, तव स्तनयोः जघनस्य अपि मध्ये मध्यम् अस्ति, न अस्ति इति मे सन्देहः अद्य अपि न निवर्तते।

शब्दार्थ— प्रिये = हे प्रियतमे। तव = तुम्हारे। स्तनयोः = स्तनों के। जघनस्य = नितम्ब के। मध्ये = बीच में। मध्यं = कटिप्रदेश (कमर)। अस्ति = है। न अस्ति = नहीं है। इति = यह। मे = मेरा। सन्देहः = सन्देह, संशय। अद्य अपि = आज भी। न निवर्तते = निवारित नहीं हुआ है, दूर नहीं हुआ है।

अनुवद— हे प्रियतमे, तुम्हारे स्तनों (स्तनभाग) और नितम्ब के बीच में कटिप्रदेश (कमर) है (अथवा) नहीं है- यह मेरा सन्देह आज भी दूर नहीं हुआ है।

संस्कृतव्याख्या— संशयातिशयोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **स्तनयोरिति**। **प्रिये** हे प्रियतमे **तव** प्रियतमायाः **स्तनयोः** कुचयोः **जघनस्य** नितम्बस्य **अपि** च **मध्ये** अन्तराले **मध्यं** कटिभागः **अस्ति** विद्यते **न** वा **अस्ति** विद्यते इति एवंविधः **मे** मम **सन्देहः** संशयः **अद्य अपि** अधुना अपि **न निवर्तते** दूरं नाभवत्। तनीयसोऽपि कटिप्रदेशस्य सुपलक्ष्यत्वाद् ईदृशसन्देहस्य असम्भवत्त्वेऽपि विशेषविवक्षया तस्यातिशयेन कथनादिह संशयातिशयोक्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अतिशयोक्ति में सन्देह द्वारा उनकी अतिशयता का कथन होता है वह संशयातिशयोक्ति कहलाता है।

(२) इस उदाहरण में प्रिया की पतली कमर के पतलेपन की अतिशयता को सन्देहालङ्कार से अनुप्राणित कथन द्वारा व्यक्त किया गया है।

---

(१) मध्यं तव नितम्बिनि।

(३) इतने दिन तुम्हारे साथ रहने पर भी आज तक मुझे सन्देह है कि तुम्हारे विशाल स्तनों और पृथुनितम्ब के बीच में तुम्हारे शरीर में कुछ (कमर) है अथवा नहीं। यद्यपि यहाँ संशय का कोई स्थान नहीं है क्योंकि कटिभाग कितना भी अधिक पतला हो लेकिन अवश्य दिखलायी देगा तथापि अतिशय कथन की इच्छा से संशय की अतिशय उद्भावना की गयी है। यहाँ संशयातिशयोक्ति है। यहाँ सन्देहालङ्कार नहीं है क्योंकि उपमेय और उपमान के विषय में सन्देह नहीं है प्रत्युत अतिशयकथन किया गया है।

(निर्णयातिशयोक्तिनिदर्शनम्)

निर्णेतुं शक्यमस्तीति मध्यं तव नितम्बिनि ।
अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः ।।२१८।।

अन्वय— नितम्बिनि, तव मध्यं निर्णेतुं शक्यम् अन्यथा पयोधरभरस्थितिः न उपपद्येत।

शब्दार्थ— नितम्बिनि = हे स्थूल नितम्बों वाली। तव = तुम्हारे। मध्यं = मध्यभाग को, कटिप्रदेश को। निर्णेतुं शक्यं = निर्णय (निश्चय) किया जा सकता है। अन्यथा = नहीं तो। पयोधरभरस्थितिः = पयोधरों (स्तनों) की स्थिति। न उपपद्यते = उपपन्न (सिद्ध) नहीं होती।

अनुवाद— हे नितम्बिनि! तुम्हारे कटिभाग का निर्णय (निश्चिय) किया जा सकता है, नहीं तो (आश्रयभूत कटिभाग के अभाव में उसके ऊपर विद्यमान) स्थूल पयोधरों (स्तनों) की स्थिति सिद्ध नहीं होती।

संस्कृतव्याख्या— निर्णयातिशयोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **निर्णेतुमिति**। **नितम्बिनि** हे स्थूलजघने, **तव** नितम्बिन्याः **मध्यं** कटिभागं विद्यते इति **निर्णेतुं** निर्णयं कर्त्तुं **शक्यं** समर्थम् अस्मि यतोहि **अन्यथा** तत्कटिभागाभावे सति **पयोधरभरस्थितिः** पयोधर-भास्य पयोधरविस्तारस्य स्थितिः अवस्थानं **न उपपद्येत** आश्रयं विना न सिद्ध्येत्। कटिभागविषये सन्देहस्य तन्निवारणरूपं निर्णयं असम्भाव्यम् अत एवात्र विशेषविवक्षया तस्यातिशयेन कल्पनाद् निर्णयातिशयोक्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अतिशयोक्ति में सन्देह के निवारण रूप निर्णय के द्वारा वस्तु के अतिशय का कथन होता है वह निर्णयातिशयोक्ति कहलाता है।

(२) यहाँ भी कटिभाग की सूक्ष्मता के आधिक्य को सन्देह के निवारण रूप निर्णय द्वारा व्यक्त किया गया है।

(३) यदि स्थूल नितम्बों और स्तनों के बीच कटिप्रदेश नहीं होता तो आश्रय विहीन स्तन किस पर स्थित होते- इस प्रकार अन्यथा उपपत्ति द्वारा कटिभाग के अस्तित्व का निर्णय किया गया है। इस निर्णय द्वारा कटिप्रदेश के पतलेपन का अतिशय कथन किया गया है अतः निर्णयातिशयोक्ति है।

(आश्रयातिशयोक्तिनिदर्शनम्)

अहो, विशालं भूपाल भुवन[१]त्रितयोदरम्।
माति मातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते ।।२१९।।

अन्वय— भूपाल, अहो, भुवनत्रितयोदरं विशालं यत् मातुम् अशक्यः अपि ते यशोराशिः अत्र माति।

शब्दार्थ— भूपाल = हे राजन्। अहो = आश्चर्य है। भुवनत्रितयोदरं = तीनों लोकों का विस्तार (उदर, क्षेत्र)। विशालं = अत्यधिक विस्तृत। यत् = जो। मातुम् अशक्यः अपि = न मापने योग्य भी। ते = तुम्हारी। यशोराशिः = यशों का भण्डार, यशों का विस्तार। अत्र = यहाँ। माति = मापा हुआ है, समाया हुआ है।

अनुवाद— हे राजन्, यह आश्चर्य है कि (यह) तीनों लोकों का विस्तार (इतना) विस्तृत है कि न मापने योग्य (न समाने योग्य) तुम्हारे यशों का भण्डार (यशों का विस्तार) इसमें मापा हुआ (समाया हुआ) है।

संस्कृतव्याख्या— आश्रयातिशयोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **अहो इति। भूपाल** हे राजन्, **अहो** आश्चर्यमिदं यत् **भुवनत्रितयोदरं** त्रिलोकविस्तारः **विशालम्** अतिविस्तृतं वर्तते **अत्र यत् ते** तव **मातुं अशक्यः** समावेष्टुम् असमर्थः **यशोराशिः** यशभण्डारः त्रिलोकविस्तारे **माति** पर्याप्तरूपेण समविष्टो भवति। अत्र लोकत्रयस्य विस्तारस्य विशालत्वप्रतिपादनद्वारा आश्रितस्य यशोराशेर्विशेषविवक्षया अतिशयकथनाद् आश्रया-तिशयोक्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस अतिशयोक्ति में आश्रय के अतिशय के प्रतिपादन द्वारा वस्तु के उत्कर्ष को प्रस्तुत किया जाता है, वह आश्रयातिशयोक्ति कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में यशभण्डार के आश्रयभूत त्रिभुवन के विस्तार के अतिशय कथन द्वारा यश के विस्तार के आधिक्य का वर्णन हुआ है अतः आश्रयाति-शयोक्ति है।

---

(१) भवन-।

(अतिशयोक्तिमहत्त्वप्रतिपादनम्)

अलङ्कारान्तराणामप्याहुरेकं[१] परायणम् ।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम् ।।२२०।।

अन्वय— वागीशमहिताम् इमाम् अतिशयाह्वयाम् उक्तिम् अलङ्कारान्तराणाम् अपि एकम् आहुः ।

शब्दार्थ— वागीशमहितां = वागीश (वाणी के प्रयोग में कुशल कवियों) के द्वारा प्रशंसित (समादृत, पूजित) । इमाम् = इस । अतिशयाह्वयाम् = अतिशय नाम से अभिहित । उक्तिं = वाणी को, कथन को । अलङ्कारान्तराणाम् अपि = अन्य अलङ्कारों में भी । एकं = अद्वितीय, सर्वश्रेष्ठ । आहुः = कहा गया है ।

अनुवाद— वागीश (वाणी के प्रयोग में कुशल कवियों) के द्वारा प्रशंसित (समादृत) इस अतिशय नाम से अभिहित वाणी (कथन) को अन्य अलङ्कारों में भी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।

संस्कृतव्याख्या— अतिशयोक्तेः महत्त्वं प्रतिपादयत्यत्र– **अलङ्कारेति** । **वागीशमहितां** वागीशैः वाणीप्रयोगकुशलैः कविभिः महितां प्रशंसितां पूजितां वा **इमाम्** पूर्वोक्ताम् **अतिशयाह्वयाम्** अतिशयनामाभिहिताम् **उक्तिं** वाणीं कथनं वा **अलङ्कारान्तरणाम्** अन्येषाम् अलङ्काराणाम् **एकम्** अद्वितीयं सर्वश्रेष्ठं वा **आहुः** कथितं विद्यते । अतिशयोक्तिः सर्वेषु अन्येषु अलङ्कारेषु अद्वितीयः श्रेष्ठरिति भावः ।

विशेष—

(१) यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है ।

(२) वाचिक अभिव्यक्ति दो प्रकार की होती है– स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति । स्वभावोक्ति में वस्तु का कथन ज्यों का त्यों कर दिया जाता है और वक्रोक्ति में वस्तु के स्वभाव से हटकर कहा जाता है ।

(३) लोक में सम्पूर्ण वाचिक अभिव्यक्ति प्रायः स्वभाव के आख्यान के रूप में होती है किन्तु काव्यमार्ग में सरल स्वभावाख्यान को भी ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जिससे कथन लोकोत्तर सा लगे ।

(४) अपने कथन को देश, काल, स्वभाव और प्रसिद्धि की सीमाओं से दूर हटकर कहना अभिधानप्रधान स्वभावाख्यान से लेकर गूढ़ व्यञ्जना तक में महत्त्वपूर्ण होता है । इस अतिशय अथवा वक्रोक्ति के विना स्वभावाख्यान अलङ्कार नहीं बन

(१) अप्येकमाहुः ।

सकता। इसमें साधारणीकरण की महत्त्वपूर्ण-प्रक्रिया लोकसीमा का अतिक्रमण ही है। अतिशय के विना उपमा इत्यादि भी अलङ्कार की कोटि में नहीं आ पाते। इस प्रकार अतिशय का अलङ्कारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(उत्प्रेक्षाविवेचनम्)

अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र[1] तामुत्प्रेक्षां विदुर्यथा।।२२१।।

अन्वय— यत्र चेतनस्य इतरस्य वा अन्यथा एव स्थिता अन्यथा उत्प्रेक्षते ताम् उत्प्रेक्षां विदुः।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ, जिस (कथन) में। चेतनस्य = चेतन की। इतरस्य वा = अथवा उससे अन्य (अचेतन) की। अन्यथा एव = (एक रूप वाली) ही। स्थिता = स्थिति, वृत्ति। अन्यथा = अन्य प्रकार से। उत्प्रेक्ष्यते = उत्प्रेक्षित की जाती है, कल्पित की जाती है। ताम् = उसको। उत्प्रेक्षां = उत्प्रेक्षा। विदुः = जानना चाहिए।

अनुवाद— जिस (कथन) में चेतन अथवा अचेतन की एक रूप वाली वृत्ति अन्य प्रकार से कल्पित की जाती है, उसको उत्प्रेक्षा जानना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— उत्प्रेक्षालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **अन्यथेति**। **यत्र** यस्मिन्कथने **चेतनस्य** सजीवस्य **इतरस्य वा** तदन्यस्य अचेतनस्य वा **अन्यथा एव स्थिता** वृत्तिः स्वाभाविकगुणक्रियारूपः व्यापारः **अन्यथा** स्वरूपतः अन्येन प्रकारेण **उत्प्रेक्ष्यते** कल्प्यते। **ताम्** उक्तिम् **उत्प्रेक्षां** तन्नामालङ्कारं **विदुः** जानीयात्। यथेत्ययं निदर्शनोपक्रमणार्थम्। यत्र प्रस्तुतस्य चेतनस्याचेतनस्य वस्तुनः स्वाभाविकः व्यापारः अप्रस्तुतान्यथाभावेन कल्प्यते सोत्प्रेक्षा भवति इति भावः।

विशेष—

(१) जिस कथन में चेतन अथवा अचेतन वस्तु के स्वाभाविक गुणक्रियादिरूप व्यापार को अन्य प्रकार से कल्पित किया जाता है, वह उत्प्रेक्षा कहलाता है।

(२) उत्प्रेक्षा दो पदार्थों पर आधारित होती है- चेतन और अचेतन। इसके आधार पर दण्डी ने उत्प्रेक्षा के दो भेदों को स्वीकार करके दोनों का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

---

(१) यत्तु।

(चेतनगतोत्प्रेक्षानिदर्शनम्)

मध्यन्दिनार्कसन्तप्तः सरसीं गाहते गजः ।
मन्ये मार्त्तण्डगृह्याणि पद्मान्युद्धर्तुमुद्यतः ।।२२२।।

अन्वय— मध्यन्दिनार्कसन्तप्तः गजः सरसीं गाहते मन्ये मार्त्तण्डगृह्याणि पद्मानि उद्धर्तुं उद्यतः (विद्यते)।

शब्दार्थ— मध्यंदिनार्कसन्तप्तः = मध्याह्न (दोपहर) के सूर्य (की धूप) से सन्तप्त। गजः = हाथी। सरसीं = सरोवर में। गाहते = उतर रहा है। मन्ये = मानों। मार्त्तण्डगृह्याणि = सूर्य के पक्षपाती। पद्मानि = कमलों को। उद्धर्तुं = जड़ से उखाड़ देने के लिए। उद्यतः = उत्सुक हो।

अनुवाद— मध्याह्न (दोपहर) के सूर्य (की धूप) से सन्तप्त हाथी सरोवर में उतर रहा है, मानो (सन्ताप देने वाले) सूर्य के पक्षपाती कमलों को जड़ से उखाड़ देने के लिए उत्सुक हो।

संस्कृतव्याख्या— चेतनगतामुत्प्रेक्षां निदर्शयत्यत्र– **मध्यन्दिनेति**। **मध्यन्दिनार्कसन्तप्तः** मध्यन्दिने मध्याह्ने अर्केण सूर्येण सन्तप्तः **गजः** हस्ती **सरसीं** सरोवरं **गाहते** अवतरति, **मन्ये** जाने **मार्तण्डगृह्याणि** मार्त्तण्डस्य सूर्यस्य गृह्याणि तत्पक्षपातीनि **पद्मानि** कमलानि **उद्धर्तुम्** उन्मूलयितुम् **उद्यतः** उत्सुकः विद्यते। अत्र चेतनस्य गजस्य सरोवरेऽवतरणरूपस्य स्वाभाविकीं स्थितिम् अन्यथा सन्तापकारित्वेन शत्रुभूयता तत्पक्षपातिकमलोन्मूलनहेतुतया उत्प्रेक्षते, अत एवात्र चेतनगतोत्प्रेक्षा विद्यते।

(चेतनगतोत्प्रेक्षानिदर्शनविश्लेषणम्)

स्नातुं पातुं विसान्यत्तुं करिणोजलावगाहनम् ।
तद्वैरनिष्क्रियायेति कविनोत्प्रेक्ष्य वर्ण्यते ।।२२३।।

अन्वय—स्नातुं पातुं विसानि अत्तुं करिणः जलावगाहनं कविना तद्वैरनिष्क्रियाय इति उत्प्रेक्ष्य वर्ण्यते।

शब्दार्थ— स्नातुं = स्नान करने के लिए। पातुं = (जल को) पीने के लिए। विसानि = कमलनालों (मृणालों) को। अत्तुं = खाने के लिए। करिणः = हाथी का। जलावगाहनं = (सरोवर के) जल में उतरना (अवगाहन)। कविना = कवि के द्वारा। तद्वैरनिष्क्रियाय = उसके वैर (शत्रुता) के प्रतिशोध के लिए (है)। इति = इस प्रकार। उत्प्रेक्ष्य = कल्पना करके। वर्ण्यते = वर्णित किया गया है।

अनुवाद— (उपर्युक्त उदाहरण में) स्नान करने के लिए, (जल को) पीने के

लिए तथा कमलनालों (मृणाल) को खाने के लिए हाथी का जलावगाहन (सरोवर के जल में उतरना) कवि के द्वारा 'उसकी (सूर्य की) शत्रुता के प्रतिशोध लिए (हुआ है)- इस प्रकार की कल्पना करके वर्णित किया गया है।

संस्कृतव्याख्या— चेतनगतोत्प्रेक्षायाः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **स्नातुमिति**। प्रस्तुते निदर्शनं **स्नातुं** स्नानं कर्त्तुं **पातुं** जलपानं कर्त्तुं **विसानि** कमलमृणालानि **अत्तुं** खादितुं **करिणः** हस्तिनः **जलावगाहनं** सरोवरस्य जलेऽवतरणं **कविना** काव्य-कर्तृणा **तद्वैरनिष्क्रियाय** तस्य सूर्यस्य प्रति यद् वैरं शत्रुत्वं तस्य निष्क्रियाय प्रति-शोधनाय सूर्यपक्षीस्य कमलस्य उन्मूलनाय **इति** अनेन प्रकारेण उत्पेक्ष्य परिकल्प्य **वर्ण्यते** प्रस्तूयते। चेतनगतस्य गजस्य वर्णनादत्र चेतनगतोत्प्रेक्षा विद्यते।

विशेष—

(१) जिस कथन में चेतन पदार्थ की स्वभाविक वृत्ति को उससे भिन्न वृत्ति के रूप में उत्प्रेक्षित (कल्पित) किया जाता है, वह चेतनगतोत्प्रेक्षा कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में दोपहर की गर्मी से व्याकुल हाथी के सरोबर में प्रवेश करने की स्वाभाविक वृत्ति (स्थिति) को हाथी द्वारा सूर्य से वैर चुकाने के लिए सूर्य के पक्षधर कमलों के समूल उखाड़ने के लिए उद्यत होकर सरोवर में प्रवेश करने की अन्य वृत्ति की कल्पना की गयी है। वर्ण्य पदार्थ हाथी चेतन है अतः यहाँ चेतनगतोत्प्रेक्षा है।

(३) कवि ने अपनी कल्पना को 'मन्ये' द्वारा प्रकट किया है। यह केवल कल्पना है, वास्तविकता नहीं। वास्तविकता तो सरोवर के जल में स्नान करके धूप से शरीर के बाह्य ताप को, जल पीकर आन्तरिक ताप को मिटाना और कमलनालों को खाकर भूख के ताप को मिटाना है।

(अचेतनगतोत्प्रेक्षानिदर्शनम्)

कर्णस्य भूषणमिदं ममायतिनिरोधिनः[१]।
इति कर्णोत्पलं प्रायस्तव दृष्ट्या विलङ्घ्यते ।।२२४।।

अन्वय— इदं मम आयतिनिरोधिनः कर्णस्य भूषणम् (विद्यते) इति प्रायः कर्णोत्पलं तव दृष्ट्या विलङ्घ्यते।

शब्दार्थ— इदं = यह (कमल)। मम = मेरे। आयतिविरोधिनः = प्रसार को रोकने वाले। कर्णस्य = कानों की। भूषणं = अलङ्करण, आभूषण। इति प्रायः =

(१) -विरोधिनः।

इस प्रकार (निश्चय करके)। कर्णोत्पलं = कानों में लगाया गया कमल। तव = तुम्हारे। दृष्ट्या = नेत्रों के द्वारा। विलङ्घ्यते = तिरस्कृत किया गया है।

अनुवाद— (हे विशालाक्षि,) यह (कमल) मेरे (नेत्र के) (विस्तार) प्रसार को रोकने वाले कानों का आभूषण है इस प्रकार निश्चय करके कानों में लगाया गया कमल तुम्हारे नेत्रों द्वारा तिरस्कृत किया जाता है।

संस्कृतव्याख्या— अचेतनगतोत्प्रेक्षां निदर्शयत्यत्र- **कर्णस्येति**। **इदम्** एतत् कमलं **मम आयतिनिरोधिनः** आयतेः प्रसरस्य निरोधिनः बाधकस्य **कर्णस्य** श्रोत्रस्य **भूषणम्** अलङ्करणं विद्यते **इति** ईदृशं **प्रायः** निश्चित्य **कर्णोत्पलं** कर्णे आभूषण-रूपेण धारितं **तव** विशालाक्ष्याः **दृष्ट्या** नेत्रेण **विलङ्घ्यते** तिरस्क्रियते। 'नेत्रं स्व-कान्तिविस्ताराभ्यां कमलमतिशेते' कथनेऽस्मिन् नेत्रेण स्वविस्ताररोधकस्य कर्णस्य कमलं तिरस्क्रियते इति कल्पितम्। उत्प्रेक्षा चैषा अचेनगता विद्यते। अत एवात्र अचेतनगतो-त्प्रेक्षा विद्यते। 'प्रायः' इत्यनेन पदेनात्र उत्प्रेक्षा सूचिता भवति।

(अचेतनगतोत्प्रेक्षानिदर्शनविश्लेषणम्)

अपाङ्गभागपातिन्या दृष्टेरंशुभिरुत्पलम्।
स्पृश्येत[1] वा न वैवं तु[2] कविनोत्प्रेक्ष्य कथ्यते[3] ।।२२५।।

अन्वय— अपाङ्गभागपातिन्याः दृष्टेः अंशुभिः उत्पलं स्पृश्येत वा न वा एवं तु कविना उत्प्रेक्ष्य कथ्यते।

शब्दार्थ— अपाङ्गभागपातिन्याः = अपाङ्ग (उपान्त, प्रान्त) भाग तक फैले हुए। दृष्टेः = नेत्रों की। अंशुभिः = किरणों के द्वारा। उत्पलं = (कान में लगाया गया) कमल। स्पृश्येत वा = छुया जाए, स्पर्श किया जाय। न वा = अथवा न (छुआ जाए)। तु = तो भी, तथापि। एवं = इस प्रकार। कविना = कवि के द्वारा उत्प्रेक्ष्य = कल्पना करके। कथ्यते = कहा जाता है।

अनुवाद— प्रान्तभाग तक फैले हुए नेत्रों की किरणों द्वारा (कान मे लगाया गया) कमल स्पर्श किया जाए अथवा न (किया जाए) तथापि इस प्रकार (नेत्रों द्वारा कर्ण के कमल के तिरस्कार) की कवियों द्वारा कल्पना करके कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— अचेतनगतोत्प्रेक्षायाः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **अपाङ्गेति**

---

(१) स्पृश्यते।

(२) वेत्येवं।

(३) वर्ण्यते।

अपाङ्गभागपातिन्याः अपाङ्गभागं नेत्रप्रान्तभागं पातिन्याः विस्तारयुक्तायाः **दृष्टेः** नेत्रस्य **अंशुभिः** किरणैः **उत्पलं** कर्णे धारितं कमलं **स्पृश्येत वा न वा** स्पृश्येत **तु** तथापि **एवं** 'नेत्रेण कणोत्पलं लङ्घ्यते' इत्यनेन प्रकारेण **कविना** काव्यकर्तॄणा **उत्प्रेक्ष्य** विकल्प्य **कथ्यते** वर्ण्यते।

विशेष—

(१) जिस कथन में अचेतन पदार्थ की स्वाभाविक वृति को उससे भिन्न वृत्ति के रूप में कल्पित किया जाता है, वह अचेतनगतोत्प्रेक्षा कहलाता है। प्रस्तुत उदाहरण में अचेतन नेत्र द्वारा कान में पहने गये नीलकमल को तिरस्कृत करने की कल्पना की गयी है। नीलकमल नेत्रों के विस्तार को रोकने वाले कानों का शोभावर्धक है अतः उसका पक्षपाती है। इस विरोधभाव को चुकता करने के लिए नेत्रों द्वारा अपनी किरणों से नीलकमल का तिरस्कार किया गया है। इन किरणों का नीलकमल से स्पर्श हो या न हों यह कोई महत्त्व नहीं है, कवि ने तो इस प्रकार की कल्पना करके वर्णन कर दिया है। अचेतन वस्तु नेत्रव्यापार की कल्पना होने के कारण यहाँ अचेतनगतोत्प्रेक्षा है।

(२) चेतनगतोत्प्रेक्षा के उदाहरण में तो धूप सन्तप्त हाथी का सरोवर में प्रवेश करना लोगों द्वारा देखे जाने के कारण प्रसिद्ध है किन्तु इस उदाहरण में नेत्रों द्वारा अपने किरणों के माध्यम से कमल का अपमान करना देखा गया नहीं है। इसलिए अदर्शन के कारण नेत्र का यह व्यापार लोकसीमा का उलङ्घन है। अतः अतिशयोक्ति के आधार पर यह कल्पना प्रतिष्ठित है। यहाँ नेत्र का कमल से सौन्दर्यातिशय व्यञ्जित हो रहा है।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
इतीदमपि भूयिष्ठमुत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् ॥२२६॥

अन्वय— तमः अङ्गानि लिम्पति इव, नभः अञ्जनं वर्षति इव, इति इदम् अपि भूयिष्ठम् उत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् (विद्यते)।

शब्दार्थ— तमः = अन्धकार। अङ्गानि = अङ्गों को। लिम्पति इव = मानो लेप कर रहा है। नभः = आकाश। अञ्जनं = काजल को। वर्षति इव = मानो बरसा रहा है। इति = इस प्रकार। इदम् अपि = यह (उदाहरण) भी। भूयिष्ठं = मुख्यतः। उत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् = उत्प्रेक्षा के लक्षणों से युक्त (है)।

अनुवाद— अन्धकार मानो अङ्गों का लेप कर रहा है और आकाश मानो काजल बरसा रहा है— इस प्रकार यह (उदाहरण) भी मुख्यतः उन्प्रेक्षा के लक्षण से युक्त है।

संस्कृतव्याख्या— अचेतनगतोत्प्रेक्षाया: अपरं निदर्शनं ददात्यत्र- **लिम्पतीवेति** । **तमः** अन्धकार: **अङ्गानि** शरीरावयवानि **लिम्पति इव** मन्ये लेपं करोति, **नभः** आकाश: **अञ्जनं** कज्जलं **वर्षति इव** वर्षणं करोति इव दृश्यते । **इति** अनेन प्रकारेण **इदम् अपि** एतदपि निदर्शनं **भूयिष्ठं** पूर्णरूपेण **उत्प्रेक्षालक्षणान्वितम्** उत्प्रेक्षाया: लक्षणेन अन्वितं युक्तं विद्यते । अत्र लेपनं वर्षणमिति क्रियाद्वयं तम:नभयो: कर्तृत्वेन कल्पितेति उत्प्रेक्षा ।

विशेष—

(१) यहाँ तम के द्वारा अन्धकार के लेपन की क्रिया का और आकाश द्वारा अञ्जन के वर्णन की क्रिया का तम और आकाश की अन्यथा स्थिति की कल्पना, अन्य अङ्गों के लेपन और अञ्जन की वर्षा के रूप में किया गया है । इस प्रकार इनमें उत्प्रेक्षा का लक्षण पूर्णत: सङ्गत हो रहा है । अत: यहाँ उत्प्रेक्षा है । उत्प्रेक्षा द्वारा यह कथन अचेतन गत है अत: यह उत्प्रेक्षा अचेतनगतोत्प्रेक्षा है ।

(निदर्शने उपमाभ्रान्तिनिराकरणम्)

केषाञ्चिदुपमाभ्रान्तिरिवश्रुत्येह जायते[१] ।
नोपमानं तिङन्तेनेत्यतिक्रम्याप्तभाषितम् ।।२२६।।

अन्वय— इह इवश्रुत्या केषाञ्चित् उपमाभ्रान्ति: जायते । तिङन्तेन उपमानं न इति आप्तभाषितं अतिक्रम्य (भवति) ।

शब्दार्थ— इह = यहाँ, इस (उदाहरण) में । इवश्रुत्या = इव (यह पद) सुनने के कारण । केषाञ्चित् = कुछ लोगों (आचार्यों, विद्वानों) को । उपमाभ्रान्ति: = उपमा होने का भ्रम । जायते = उत्पन्न हो जाता है। तिङन्तेन = क्रिया (पद) के साथ। उपमानं = उपमान । न = नहीं होता । इति = इति । आप्तभाषितं = आप्तकथन का, शास्त्रकथन का । अतिक्रम्य = अतिक्रमण करके (उलङ्घन करके) (ही होता है)।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में (उपमावाचक) इव (पद) सुनने के कारण कुछ लोगों (आचार्यों, विद्वानों) को उपमा होने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। (उपमा होने का यह भ्रम) 'क्रिया (पद) के साथ उपमान नहीं होता' इस शास्त्रकथन का अतिक्रमण करके ही (होता है) ।

संस्कृतव्याख्या— 'लिम्पतीव' इत्याद्युत्प्रेक्षानिदर्शनविषये एकेषामाचार्याणा- मुपमाभ्रान्तिं निराकरोत्यत्र- **केषाञ्चिदिति** । **इह** उदाहरणेऽस्मिन् **इवश्रुत्या** उपमावाच-

(१) जन्यते ।

कर्मीति ग्रहणेन **केषाञ्चिद्** एकेषामाचार्याणां **उपमाभ्रान्तिः** उपमालङ्कारस्य भ्रान्तिः भ्रमः **जायते** उत्पद्यते। परञ्च **तिङन्तेन** क्रियापदेन **उपमानं न** सम्भवतीति **आप्तभाषितम्** प्राचीनाचार्यकथनं शास्त्रकथनं वा **अतिक्रम्य** अप्रमाणीकृत्य अनुलङ्घ्य वा उपमाविद्यमानत्वस्याविषये भ्राम्यन्ति।

विशेष—

(१) दण्डी ने 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' इस उदाहरण में उत्प्रेक्षा के स्थान पर उपमा मानने वालें लोगों के भ्रम का निवारण किया है।

(२) शास्त्रों में विधान किया गया है कि तिङन्त पद के साथ उपमान नहीं होता। जैसा कि पतञ्जलि ने कहा है– 'तिङन्तस्योपमानत्वं निषिध्यते (द्रष्टव्य म०भा० ३.१.७ वार्तिक १४)। इस उदाहरण में इव शब्द का प्रयोग क्रियापद लिम्पति और वर्षति के साथ हुआ है। इस प्रकार यह क्रियापद उपमान नहीं हो सकता। उपमा में उपमेय और उपमान की विद्यमानता होती है। उपमान के अभाव में यहाँ उपमा की स्थिति भ्रामक है।

(भ्रान्तिनिवारणे प्रमाणः)

उपमानोपमेयत्वं तुल्यधर्मव्यपेक्षया।
लिम्पतेस्तमसश्चासौ धर्मः कोऽत्र[१] समीक्ष्यते ।।२२८।।

अन्वय— उपमानोपमेयत्वं तुल्यधर्मव्यपेक्षया (भवति) अत्र लिम्पतेः तमसः असौ कः धर्मः समीक्ष्यते।

शब्दार्थ— उपमानोपमेयत्वं = उपमानता और उपमेयता। तुल्यधर्मव्यपेक्षया = समान धर्म की अपेक्षा से युक्त (होते हैं)। अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में। लिम्पतेः = लिम्पति (लेप कर रहा है)। तमसः = तम (अन्धकार) का। असौ = यह। कः = कौन। धर्मः = धर्म। समीक्ष्यते = लक्षित होता है।

अनुवाद— (किसी वस्तु की) उपमानता (उपमानभाव) और (अन्य वस्तु की) उपमेयता (उपमेयभाव) समान धर्म की अपेक्षा से युक्त (होते हैं)। इस (उदाहरण) में (उपमान के रूप में गृहीत) 'लिम्पति' (लेप कर रहा है) और (उपमेय के रूप में गृहीत) 'तमः' (अन्धकार) का यह कौन सा धर्म लक्षित होता है।

संस्कृतव्याख्या— लिम्पतीव इत्यत्र उपमानिवारणार्थं प्रमाणं निर्दिश्य तद्युक्तिं प्रतिपादयत्यत्र– **उपमानेति**। **उपमानोपमेयत्वम्** कस्यचिद् वस्तुनः उपमानत्वम् अन्यस्य

---

(१) को नु।

उपमेयत्वं च **तुल्यधर्मव्यपेक्षया** तुल्यधर्मस्य तयो द्वयोः समानसाधारणधर्मस्य व्यपेक्षया हेतुना भवति। **अत्र** उदाहरणेऽस्मिन् **लिम्पतेः** लिम्पति इति उपमानेन गृहीतस्य क्रियापदस्य (उपमेयेन गृहीतस्य) **तमसः** अन्धकारस्य च **असौ कः** साधारणधर्मः **समीक्ष्यते** लक्ष्यते। उपमानोपमेययोः अनुगतसाधारणधर्माभावादत्र नोपमासम्भवः।

विशेष—

(१) उपमा के लिए दो वस्तुओं में परस्पर एक का उपमानभाव और दूसरे का उपमेयभाव होना आवश्यक है और उन दोनों में उपमानत्व और उपमेयत्व के लिए परस्पर तुल्य धर्म की अपेक्षा होती है। तुल्यधर्मता के अभाव में उनका उपमानत्व और उपमेयत्व सम्भव नहीं है, अतः यहाँ उपमा नहीं हो सकती।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में क्रियापद 'लिम्पति' (= लेप कर रहा है) और 'तमः' (अन्धकार) में उपमानगत और उपपेयगत समान साधारण धर्म का अभाव है अतः यहाँ उपमा नहीं हो सकती। इसी प्रकार 'वर्षति' (वर्षा कर रहा है) और 'नभः' (आकाश) में साधारण धर्म का अभाव होने के कारण उपमा नहीं है।

यदि लेपनमेवेष्टं लिम्पतिर्नाम कोऽपरः।
स एव धर्मो धर्मी चेत्यनुन्मत्तो[1] न भाषते ॥२२९॥

अन्वय— यदि लेपनम् एव इष्टं (तत्) लिम्पतिः नाम अपरः कः? चेत् सः एव धर्मः धर्मी च इति अनुन्मत्तः न भाषते।

शब्दार्थ— यदि = यदि। लेपनम् एव = लेपन (क्रिया) ही। इष्टं = अभीष्ट (है)। लिम्पतिः नाम = लिम्पति नामक। अपरः कः = दूसरा कौन है। चेत् = और। सः एव = वह ही। धर्मः = धर्म है (धर्मी च = और धर्मी भी हैं)। इति = इस प्रकार। अनुन्मत्तः = स्वस्थचित्त वाला व्यक्ति। न भाषते = नहीं कह सकता है।

अनुवाद— यदि लेपन क्रिया ही (लिम्पति और तमस् के तुल्य धर्म रूप में) अभीष्ट है तो यह लिम्पत्ति नामक दूसरा (धर्मी) कौन है (अर्थात् लिम्पति और लेपन तो एक ही हैं, जिसे धर्म के रूप में ग्रहण किया गया है) और वह (एक) ही (लेपन) धर्म भी है (और) धर्मी भी– इस प्रकार का (कथन) स्वच्छचित्त वाला व्यक्ति नहीं कर सकता।

संस्कृतव्याख्या— लेपनमेव तुल्यधर्मरित्याशङ्क्य तन्निराकरोत्यत्र- **यदीति**। **यदि** चेत् **लेपनम्** एव लिम्पतेस्तमसश्च तुल्यधर्मरूपेण **इष्टम्** अभीष्टं तर्हि **लिम्पतिः**

(१) चेत्युन्मत्तोऽपि।

नाम अपरः अन्यः **कः** पदार्थः धर्मी अवशिष्यते । लिम्पतिपदस्य लेपनमेवार्थः तदर्थः धर्मरूपेण गृहीतः तर्हि तदन्यः लिम्पतिः नाम पदार्थो नावशिष्यते । चेत् यदि **स** एव लिम्पति पदार्थः **धर्मः धर्मी** चेति द्वयं विद्यते **इति** एतादृशं कथनन्तु **अनुन्मतः** स्वस्थचित्तः जनः **न भाषते** न कथ्यते । एवमुपमानोपमेयाभावादत्रोपमा न सम्भवः ।

विशेष—

(१) दो पदार्थों में उपमानता और उपमेयता दोनों में विद्यमान किसी गुण या क्रियारूपी धर्म को लेकर होती है। जैसे चन्द्रमा और मुख में क्रमशः कान्ति और आह्लादकता आदि गुणों की समानता के कारण ही अधिक गुणों वाला चन्द्रमा उपमान तथा हीन गुण वाला मुख उपमेय होता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में लिम्पति और तमस् शब्द में तथा वर्षति और नभस् शब्द में वह कौन सा धर्म है जो समान है अर्थात् कोई नहीं।

(३) लिम्पति इस क्रिया का अर्थ लेपन है। यहाँ उसी को उपमान बनाया जाएगा तो तव उपमा प्रतिष्ठित होगी। इस प्रकार लिम्पति पदार्थ तो धर्मी होगा। उसे धर्म नहीं बनाया जा सकता क्योंकि धर्मी और धर्म एक नहीं हो सकते।

(४) 'आत्मा आत्मानं जानाति' में एक ही आत्मा में कर्त्ता और कर्म दोनों है इस आधार पर भी लिम्पति को धर्म और धर्मी नहीं माना जा सकता क्योंकि आत्मद्वय में एक को कर्त्ता और एक को कर्म माना गया है किन्तु यहाँ तो 'लिम्पति' एक ही है। लिम्पति से लेपन अर्थ प्रतीत होता है अतः उसे धर्म और धर्मी दोनों के रूप में मानना असङ्गत है।

कर्त्ता यद्युपमानं स्यान्न्यग्भूतोऽसौ क्रियापदे ।
स्वक्रियासाधनव्यग्रो नालमन्यदपेक्षितुम् ।।२३०।।

अन्वय— यदि कर्त्ता उपमानं स्यात्, असौ क्रियापदे न्यग्भूतः । स्वक्रियासाधनव्यग्रः अन्यत् अपेक्षितुम् अलं न (भवति) ।

शब्दार्थ— यदि = यदि । कर्त्ता = कर्त्ता । उपमानं = उपमान । स्यात् = होवे, मान लिया जाए । असौ = वह (कर्त्ता) । क्रियापदे = क्रियापद में । न्यग्भूतः = निगूहित हो जाता है, तिरस्कृत हो जाता है । स्वक्रियासाधनव्यग्रः = अपनी क्रिया को सिद्ध करने में व्यग्र । अन्यत् = अन्य (कार्य) की । अपेक्षितुं = अपेक्षा करने के लिए, सम्पादन करने के लिए । अलं न = समर्थ नहीं है ।

अनुवाद— यदि (लिम्पति क्रिया के) कर्त्ता को (उपमेयभूत तमस् का) उपमान मान लिया जाय (तो भी यहाँ उपमा मानने वालों का मत निर्दोष नहीं है क्योंकि)

वह (लिम्पति क्रिया का कर्त्ता) क्रिया पद (लिम्पति) में तिरोहित (अर्थात् तिरस्कृत) हो जाता है और अपनी (लेपनरूप) क्रिया को सिद्ध करने में व्यग्र (हुआ वह) अन्य कार्य (तमस्रूप विशेष बनने) का सम्पादन करने के लिए समर्थ नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— कर्त्तारूपेण लिम्पतिरूपमानमिति परिकल्प्य तन्निराकरोत्यत्र-**कर्त्तेति**। **यदि** चेत् **कर्त्ता** लिम्पतीति क्रियायाः लेपनरूपव्यापारः कर्त्ता उपमेयभूतस्य तमसः **उपमानं स्यात्** उपमानरूपेण उपमासमर्थनाय स्वीक्रियेत तदपि मतमिदं निर्दोषं न विद्यते यतो हि **असौ** कर्त्ता **क्रियापदे** लिम्पतीति तिङन्तपदे **न्यग्भूतः** तिरोहितः तिरस्कृतः वा भवति क्रियापदार्थविशेषणतया गौणत्वयुक्तः वर्तते। तादृशस्य तिरोहितभूतस्य उपमानत्वं न सम्भवति। तथा हि **स्वक्रियासाधनव्यग्रः** स्वक्रियायाः लेपनरूपायाः स्वव्यापारस्य साधने सिद्धौ व्यग्रः व्यग्रतामापन्नः असौ कर्त्ता **अन्यत्** कार्यान्तरम् **अपेक्षितुं** सम्पादयितुम् **अलं न** समर्थः न भवति। एकस्य क्रियार्थस्य विशेषणतया आश्रितः कर्त्ता अन्यस्य तमसः उपमानरूपविशेषणत्वमाप्तुं सक्षमः न जायते।

विशेष—

(१) क्रियापद से प्रतीत होने वाला कर्त्ता प्रधान नहीं होता। क्रियापद का प्रयोग क्रिया के लिए ही होता है कारक के लिए नहीं। कारक के होते हुए भी क्रिया के प्रयोग के बिना वाक्य अधूरा ही रहता है। क्रिया से व्यक्त कारक तो क्रिया की सिद्धि का साधन मात्र है, अतः गौण होता है।

(२) उक्त उदाहरण में शब्दोक्त कर्त्ता तमस् है जो कि उपमेय है तब क्रिया द्वारा वाच्य कर्त्ता लेपनव्यापार उपमेय कर्त्ता तमस् से ही सम्बद्ध होगा। तब वह क्रिया वाच्य-कर्त्ता लेपनव्यापाररूप मुख्य कर्त्ता तमस् का उपमान नहीं बन सकता।

यो लिम्पत्यमुना तुल्यं तम इत्यपि शंसतः[१]।
अङ्गानीति न सम्बद्धं[२] सोऽपि मृग्यः समो[३]गुणः ।।२३१।।

अन्वय— यः लिम्पति अमुना तुल्यं तमः इति अपि शंसतः अङ्गानि इति सम्बद्धं न, सः समः गुणः अपि मृग्यः।

शब्दार्थ— यः = जो। लिम्पति = लेप करता है। अमुना तुल्यं = उसके समान। तमः = अन्धकार। इति = इस प्रकार। अपि = भी। शंसति = कहता है, कहा जाय। अङ्गानि इति = अङ्गों को यह। सबद्धं न = असम्बद्ध है। सः = वह।

(१) शंसिनः, सङ्गतः।

(२) सम्बद्धः, सम्बन्धः।

(३) मृग्यस्तमो-।

समः गुणः अपि = समान धर्म भी । मृग्यः = खोजना चाहिए ।

अनुवाद— जो लेप करता है; उसके समान अन्धकार है– इस प्रकार भी कहा जाए तो 'अङ्गों को' यह (व्याप्त कर्मपद) असम्बद्ध (रहता है) और (उपमा की प्रतीति के लिए अनिवार्य) समानधर्म को भी (यहाँ) खोजना चाहिए ।

संस्कृतव्याख्या— प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकेन उपमां सम्भाव्य तन्निराकरोति– **य इति** । यः **लिम्पति** यः लेपनं करोति **अमुना** तेन लेपकेन **तुल्यं** सदृशं **तमः** अन्धकारः **इति अपि शंसतः** कथयतः वादिनो मते **अङ्गानि** इत्यत्र व्याप्तं कर्म पदं **सम्बद्धं न** असम्बद्धं भवति । यतो हि यदि यः लेपनमात्रं व्याप्य निरपेक्षं करोति तेन तुल्यं सदृशं तमः इति कथ्यते तर्हि अङ्गानि इत्यत्र व्याप्यं कर्म पदं केनापि न सम्बद्ध्यते । अथापि **सः समः** समानः **गुणः** धर्मः **अपि मृग्यः** अन्वेष्टव्यः ।

विशेष—

(१) यदि लिम्पति क्रिया के कर्त्ता को उपमान मान लिया जायें तो 'अङ्गानि' इस कर्म-पद का अन्वय नहीं बैठ पाता इसके अतिरिक्त उपमा की प्रतीति कराने वाले सामान्य धर्म का भी अभाव हो जाता है ।

यथेन्दुरिव ते वक्त्रमिति कान्तिः प्रतीयते ।
न तथा लिम्पतौ[1] लेपादन्यदत्र प्रतीयते ।।२३२।।

अन्वय— यथा ते वक्त्रं इन्दुः इव इति कान्ति प्रतीयते तथा अत्र लिम्पतौ लेपाद् अन्यत्र न प्रतीयते ।

शब्दार्थ— यथा = जैसे, जिस प्रकार । ते = तुम्हारा । वक्त्रं = मुख । इन्दुः इव = चन्द्रमा के समान है । इति = यहाँ, इसमें । कान्तिः = सौन्दर्य, कान्ति । प्रतीयते = प्रतीत हो रहा है, सूचित हो रहा है । तथा = वैसे, उस प्रकार । अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में । लिम्पतौ = लिम्पति में । लेपाद् = लेपन से । अन्यत्र = अतिरिक्त, अन्य में । न प्रतीयते = नहीं प्रतीत होती है ।

अनुवाद— जैसे 'तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान है' इसमें (मुख और चन्द्रमा में तुल्यधर्म के रूप में) कान्ति (सौन्दर्य) प्रतीत हो रहा है उस प्रकार इस (उदाहरण) में लिम्पति में (उपमानभूत, लेपनकर्त्ता के) लेपन धर्म के अतिरिक्त (किसी अन्य साधारण धर्म की) प्रतीति नहीं होती है ।

संस्कृतव्याख्या— 'साधारणधर्माप्रयोगे लुप्तोपमा भवितुर्महति' इत्यस्य निवा-

(१) लिम्पतेः ।

रणं करोत्यत्र– **यथेति** । **यथा** येन प्रकारेण **ते** तव सुन्दर्याः **वक्त्रं** मुखं **इन्दुःइव** चन्द्रः इव विद्यते इत्यत्र **कान्तिः** सौन्दर्यं साधारणधर्मरूपेण **प्रतीयते** प्रतीयमानं भवति **तथा** तेन प्रकारेण **अत्र** उदाहरणेऽस्मिन् **लिम्पतौ** लिम्पति इत्यत्र उपमानभूतौ लेपनकर्त्तरि **लेपाद्** धर्मात् **अन्यत्** धर्मान्तरं **न प्रतीयते** । साधारणधर्मानुपादाने अपि यत्र सादृश्यस्य प्रसिद्धतया साधारणधर्मस्य प्रतीतत्वं तत्र लुप्तोपमा भवति अत्र तु सापि न दृश्यते इति भावः ।

विशेष—

(१) लिम्पति पद से लेपनरूप अर्थ के अतिरिक्त कोई साधारण धर्म प्रतीत नहीं होता, अतः प्रतीयमान साधारणधर्म के अभाव में लुप्तोपमा नहीं हो सकती ।

(२) लुप्तोपमा में उपमान और उपमेय का सादृश्य शब्द द्वारा अभिहित न होने पर प्रसिद्धि के कारण प्रतीयमान होता है। जैसे– तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान है, में उपमानभूत चन्द्रमा कान्तिमतता में प्रसिद्ध है और उसकी समानता से साधारण धर्म अनुक्त होने पर भी प्रतीत हो जाता है किन्तु लिम्पतीव इत्यादि उदाहरण में लेपनकर्त्ता-रूप उपमान और तमोरूप उपमेय में कोई साधारणधर्म प्रतीत नहीं होता है अतः यहाँ लुप्तोपमा भी नहीं हो सकती ।

(३) लेप धर्म की जो यहाँ प्रतीति होती है, वह धर्म लेपनकर्त्ता और तमस् का साधारण धर्म नहीं हो सकता क्योंकि यह लेपनक्रिया का धर्म तो है किन्तु तमस् का धर्म नहीं हो सकता क्योंकि यह अन्धकार के विषय में केवल कल्पना है।

(स्वमतप्रतिपादनम्)

तदुपश्लेषणार्थोऽयं लिम्पतिर्ध्वान्तकर्तृकः ।
अङ्गकर्मा च पुंसैवमुत्प्रेक्ष्यत[1] इतीष्यताम्[2] ।।२३३।।

अन्वय— तत् अयम् उपश्लेषणार्थः लिम्पतिः पुंसा एवं ध्वान्तकर्तृकः अङ्गकर्मा उत्पेक्ष्यते इति इष्यताम् ।

शब्दार्थ— तत् = इसलिए, इसी कारण से । अयं = यह । उपश्लेषणार्थः = व्यापनार्थक, लेपनार्थक । लिम्पतिः = लेप कर रहा है, लेपनक्रिया । पुंसा = कवि द्वारा । एवं = इस प्रकार से । ध्वान्तकर्तृकः = अन्धकारकर्तृक, अन्धकार द्वारा की -

---

(१) उत्प्रेक्षित ।

(२) - ष्यते, -क्ष्यताम् ।

जाने वाली। अङ्गकर्मा च = और अङ्गकर्मक, अङ्गरूप कर्म वाली। उत्प्रेक्ष्यते = कल्पित की गयी है। इति = यह (मत)। इष्यताम् = ग्रहणीय है, ग्रहण किया जाना चाहिए, माना जाना चाहिए, स्वीकार किया जाना चाहिए।

अनुवाद— इस लिए यह व्यापनार्थक लेपन क्रिया कवि के द्वारा इस प्रकार से अन्धकारकर्तृक (अन्धकार के द्वारा की जाने वाली) और अङ्गकर्मक (अङ्गरूप कर्म वाली) कल्पित की गयी है- यह मत ग्रहणीय है।

संस्कृतव्याख्या— लिम्पतीव इत्यस्मिन्नुदाहरणे स्वमतं स्थापयत्यत्र- **तदुपश्लेषेति**। **तत्** तस्मात् कारणात् **अयम्** एषः **उपश्लेषणार्थः** व्यापनार्थकः **लिम्पति** लेपनं करोति इति क्रियापदः **पुंसा** कविना **एवं** अनेन प्रकारेण **ध्वान्तकर्तृकः** तमसा क्रियमाणः तमस्कर्तृकः **अङ्गकर्मा** अङ्गकर्मकश्च **उत्प्रेक्ष्यते** कल्प्यते **इति** एवं प्रकारेण **इष्यतां** गृह्यताम्।

विशेष—

(१) लिम्पति के कर्त्रर्थ (कर्त्ता अर्थ) की प्रधानता मानना निष्प्रयोजन है। इसमें प्रधानता लेपनव्यापार की है जिसका कर्त्ता तमस् है। इस लेपनव्यापार का कर्म अङ्ग है। तमस् अचेतन है अतः उसमें लेपनक्रिया का कर्त्ता बनने की योग्यता नहीं है। ऐसी स्थिति में अन्यथा अनुपपत्ति से समानाधिकरण्य के कारण लेपन क्रिया के कर्तृत्व का अध्यारोप तमस् पर होता है। इसी अध्यारोप (कल्पना, सम्भावना) के कारण यहाँ उत्प्रेक्षा है।

(२) लिम्पतीव.... इस उदाहरण में तमस्कर्तृक अङ्गव्यापन उत्प्रेक्षा का विषय और लेपन सम्भाव्यमान होने के कारण विषयी है, यही कल्पना का बीज है।

(उत्प्रेक्षाव्यञ्जकपदनिर्देशनम्)

मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।
उत्प्रेक्षाव्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ।।२३४।।

अन्वय— मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायः नूनम् इति एवमादयः शब्दैः उत्प्रेक्षा व्यज्यते; इवशब्दः अपि तादृशः।

शब्दार्थ— मन्ये = मानता हूँ। शङ्के = शङ्का करता हूँ। ध्रुवं = निश्चित रूप से। प्रायः = प्रायः। नूनम् = सम्भवतः या निश्चितरूपेण। इति = ये। एवमादिभिः = इस प्रकार के अन्य। शब्दैः = शब्दों द्वारा। उत्प्रेक्षा = उत्प्रेक्षा। व्यज्यते = व्यञ्जित की जाती है। इवशब्दः अपि = इव शब्द भी। तादृशः = इसी प्रकार।

अनुवाद— मन्ये (मानता हूँ), शङ्के (शङ्का करता हूँ), ध्रुवं (निश्चिरूप से) प्रायः

(बहुतायता से) और नूनम् (सम्भवतः) – ये तथा ऐसे ही अन्य शब्दों के द्वारा उत्प्रेक्षा व्यञ्जित होती है। इव शब्द भी इसी प्रकार (उत्प्रेक्षा का व्यञ्जक है)।

संस्कृतव्याख्या— उत्प्रेक्षायाः व्यञ्जकान्पदान् निर्दिशत्यत्र- **मन्ये इति**। **मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायः नूनम् इत्येवादिभि** शब्दैः पदैः **उत्प्रेक्षा व्यज्यते** व्यञ्जिता भवति। **इवशब्दः** इवपदः इपि तादृशः एवोत्प्रेक्षाव्यञ्जकः विद्यते।

विशेष—

(१) यहाँ नूतन कवियों को काव्यनिर्माण सीखने तथा नूतन काव्यालोचकों के सम्यग् ज्ञान के लिए दण्डी ने उत्प्रेक्षा के व्यञ्जकाशब्दों का समाम्नाय किया है। जिन शब्दों से किसी एक पदार्थ की अवस्था के स्थान पर दूसरी अवस्था की कल्पना की जाती है वे सभी उत्प्रेक्षव्यञ्जक शब्द हैं। यह कल्पना कवि के द्वारा मानना, सोचना,, शङ्काः, निश्चय, प्रायोवृति का अभिधान इत्यादि विविध रूपों में की जा सकती है।

(२) यद्यपि अन्यथास्थित पदार्थ के अन्यथा प्रतिपादन से ही कवि की बुद्धि में विद्यमान कल्पना स्पष्ट हो जाती है फिर भी 'मैं मानता हूँ', 'मैं सोचता हूँ', 'मुझे शङ्का है' इत्यादि पदों के प्रयोग से कल्पना और अधिक स्पष्ट हो जाती है। अतः ये शब्द उत्प्रेक्षाव्यञ्जक कहलाते हैं।

(३) उत्प्रेक्षाव्यञ्जक पदों का निर्देश करके इत्यादि पद का प्रयोग किया गया है इससे स्पष्ट है कि इन पदों के अतिरिक्त भी अन्य पद उत्प्रेक्षा के व्यञ्जक होते हैं। जैसे तर्कयामि, उत्प्रेक्ष्ये, जाने, सम्भवामि तथा तदर्थक अन्यान्य क्रिया पदों का ग्रहण होता है।

(४) इव पद मुख्यतः उपमा का वाचक है किन्तु सम्भावनावाचक होने के कारण उसकी गणना उत्प्रेक्षाव्यञ्जकों में भी की गयी है।

२५ (हेत्वलङ्कारविवेचनम्)

हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम्।
कारकज्ञापकौ हेतू तौ चानेकविधौ[1] यथा ।।२३५।।

अन्वय— हेतुः च सूक्ष्मलेशौ च वाचाम् उत्तमभूषणम् (विद्येते)। कारकज्ञापकौ हेतू, तौ च अनेकविधौ (भवतः)।

शब्दार्थ— हेतुः च = हेतु। सूक्ष्मलेशौ च = सूक्ष्म और लेश। वाचाम् = वाणी

(१) च नैकविधौ।

के, काव्य के। उत्तमभूषणम् = उत्तमभूषण; उत्तम अलङ्कार (है)। कारकज्ञापकौ = कारक और ज्ञापक। हेतू = हेतु। तौ च = और वे दोनों। अनेकविधौ = अनेक प्रकार के (होते हैं)।

अनुवाद— हेतु, सूक्ष्म और लेश (अलङ्कार) वाणी (काव्य) के उत्तम (श्रेष्ठ) भूषण (उत्तम अलङ्कार) हैं। हेतु कारकहेतु और ज्ञापकहेतु (भेद से दो प्रकार का होता है और वे दोनों (कारकहेतु और ज्ञापकहेतु) अनेक प्रकार के होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— हेत्वलङ्कारं विवेचयत्यत्र– **हेतुश्चेति**। **हेतुः** च **सूक्ष्मलेशौ च** सूक्ष्मः च लेशः च इत्यलङ्कार त्रयं **वाचां** काव्यवाचाम् **उत्तमभूषणम्** उत्तमं श्रेष्ठं भूषणम् अलङ्कारं विद्यते। **हेतू** सोऽयं हेतुः **कारकज्ञापकौ** कारकः ज्ञापकश्च इत्यनेन भेदेन द्विविधः विद्यते। करोति उत्पादयतीति क्रियोत्पादकः हेतुः कारक हेतुः। ज्ञापयति बोधयतीति कारणान्तरनिष्पन्नं कार्यं ज्ञापकः इति। **तौ** कारकहेतुः ज्ञापकहेतुश्च अनेकविधौ अनेकप्रकारकौ स्तः। यथेति निदर्शनोपक्रमणार्थम्।

विशेष—

(१) दण्डी ने हेतु, सूक्ष्म और लेश– इन तीन अलङ्कारों को काव्यभूषण कहा है। दण्डी के विवरण से ज्ञात होता है कि इन अलङ्कारों का महत्त्व इनमें स्वभावोक्ति के विपरीत वक्रोक्ति के कारण है। वक्रोक्ति के अभाव में अन्य उपमादि के समान इनके क्षेत्र में भी अलङ्कारता नहीं होती। जिस कथन में वक्रोक्ति का संस्पर्श जितना अधिक होता है उसमें चमत्कारिता भी उतनी ही अधिक होती है।

(२) दण्डी ने हेतु अलङ्कार का लक्षण प्रस्तुत नहीं किया है। अग्निपुराण के अनुसार अभिप्रेत कार्य की सिद्धि के साधक को हेतु कहा जाता है— सिषाधयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः। (अग्निपुराण ३४४.२९) किन्तु भोज के अनुसार क्रिया के कारण को हेतु कहा जाता है– क्रियायाः कारणं हेतुः। (सरस्वती० ३.१२)।

(३) हेतु के दो भेद होते हैं– कारक और ज्ञापक। क्रिया के निष्पादक हेतु को कारक कहा जाता है जैसे– अग्नि धूम का कारक हेतु है और अन्य कारण से निष्पन्न कार्य के बोधक हेतु को ज्ञापक हेतु कहा जाता है जैसे धूम अग्नि का ज्ञापक हेतु है।

(प्रवर्तककारकहेतुनिदर्शनम्)

अयमान्दोलिताप्रौढ[1]चन्दनद्रुमपल्लवः ।
उत्पादयति सर्वस्य[2]प्रीतिं मलयमारुतः[3] ।।२३६।।

अन्वय— आन्दोलिताप्रौढचन्दनद्रुमपल्लवः अयं मलयमारुतः सर्वस्य प्रीतिम् उत्पादयति ।

शब्दार्थ— आन्दोलिताप्रौढचन्दनद्रुमपल्लवः = प्रकम्पित किया जा रहा है (झुलाया = हिलाया जा रहा है) चन्दन वृक्ष के नए पल्लवों को जिसके द्वारा ऐसा, चन्दन वृक्ष की नयी पत्तियों को झकझोरने वाला । अयं = यह । मलयमारुतः = मलयपवन । सर्वस्य = सभी में । प्रीतिं = प्रीति को, आनन्द को । उत्पादयति = उत्पन्न (पैदा) कर रहा है ।

अनुवाद— चन्दन वृक्ष की नयी (अप्रौढ) पत्तियों को झकझोरने वाला यह मलयपवन सभी लोगों (के हृदय) में प्रीति (आनन्द) को उत्पन्न कर रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— कारकहेतुं निदर्शयत्यत्र– **अयमिति । आन्दोलिताप्रौढचन्दनद्रुमपल्लवः** आन्दोलिताः चालिताः प्रकम्पिताः वा ये अप्रौढाः नूतनाः चन्दनद्रुमाणां चन्दनवृक्षाणां पल्लवाः येन तादृशः **अयम्** एषः प्रत्यक्षरूपेणानुभूयमानः **मलयमारुतः** मलयपवनः **सर्वस्य** सर्वलोकस्य **प्रीतिम्** आनन्दम् **उत्पादयति** जनयति। उदाहरणेऽस्मिन् मलयमारुतः प्रीतिजनने कारकः, अत एवात्र कारकहेत्वलङ्कार ।

(प्रवर्तककारकहेतुनिदर्शनविश्लेषणम्)

प्रीत्युत्पादनयोग्यस्य रूपस्यात्रोपबृंहणम् ।
अलङ्कारतयोद्दिष्टं निवृत्तावपि तत्समम् ।।२३७।।

अन्वय— प्रीत्युत्पादनयोग्यस्य रूपस्य उपबृंहणम् अलङ्कारतया उद्दिष्टम् तत् निवृत्तौ अपि तत्समम् विद्यते ।

शब्दार्थ— प्रीत्युत्पादनयोग्यस्य = आनन्द उत्पन्न करने में समर्थ । रूपस्य = रूप का । उपबृंहणम् = उपस्थापन, प्रतिपादन । अलङ्कारतया = अलङ्कार के रूप से । उद्दिष्टम् = अभीष्ट है, किया गया है । निवृत्तौ अपि = निवृत्ति-कारक में भी, अभाव रूप कार्यों में भी । तत्समम् = उसी के समान (होता है) ।

---

(१) –हितप्रौढ– ।
(२) लोकस्य, सर्वत्र ।
(३) दक्षिण– ।

अनुवाद— आनन्द को उत्पन्न करने में समर्थ (कारक हेतुभूत) रूप (उसकी चन्दन सम्पर्क से सौरभ समृद्धि) का (वैचित्र्यजनक) प्रतिपादन अलङ्कार के रूप में अभीष्ट है (किया गया है)। (इसी प्रकार) निवृत्तिकारक (अभावरूप कार्यों के) होने पर भी उसी प्रकार (वैचित्र्यजनक) प्रतिपादन होता है।

संस्कृतव्याख्या— कारकहेतुनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **प्रीतीति**। **प्रीत्युत्पादनयोग्यस्य** प्रीत्युत्पादने आनन्दजनने योग्यस्य समर्थस्य **रूपस्य** प्रवचनस्वरूपस्य **उपबृंहणं** प्रतिपादनम् **अलङ्कारतया** अलङ्काररूपेण **उद्दिष्टम्** अभीष्टम् विद्यते इति शेषः। **निवृत्तौ अपि** तच्च रूपप्रतिपादनं निवर्तनक्रियायामपि **समः** सदृशः वैचित्र्यजनकं प्रतिपादनं भवति। प्रीत्युत्पादने हेतुरिव निवृतावपि हेतुः सम्भवति इति भावः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में प्रीति के उत्पादन रूप कार्य को उत्पन्न करने वाले चन्दन वृक्ष के अप्रौढ चन्दनपल्लव को आन्दोलित करने वाला मलयपवन है, यह कारक हेतु है- मलयपवन के इस विशेषण से उसकी मन्दता, सुगन्धता और शीतलता द्योतित होती है जो मलयानिल के आनन्दोत्पादकता में हेतु है।

(२) इस प्रकार कार्य तो यहाँ वाच्य है किन्तु हेतु वाच्य के साथ-साथ गम्य भी है। यदि मलय विशेषण ही होता तो हेतुता मलय के स्वभाव से ही प्राप्त हो जाती। 'चन्दन के पल्लवों को आन्दोलित करने के विशेषण में हेतुता गम्य है। वस्तुतः मलय से यहाँ कोई विशेष अर्थ नहीं पूरा होता। इस प्रकार हेतु के प्रतिपादन से यह कथन चमत्कारपूर्ण हो गया है। अतः यह कारक हेतु अलङ्कार है। यहाँ मलयपवन प्रीति उत्पन्न करने में प्रवर्तक कारक हेतु है अतः यह प्रवर्तककारक-हेतु अलङ्कार है।

(निवर्तककारकहेतुनिदर्शनम्)

चन्दनारण्यमाधूय स्पृष्ट्वा मलयनिर्झरान्।
पथिकानामभावाय पवनोऽयमुपस्थितः॥२३८॥

अन्वय— चन्दनारण्यम् आधूय मलयनिर्झरान् स्पृष्ट्वा पथिकानाम् अभावाय अयं पवनः उपस्थितः।

शब्दार्थ— चन्दनारण्यम् = चन्दनों के वन को। आधूय = प्रकम्पित करके, आन्दोलित करके। मलयनिर्झरान् = मलय (पर्वत) के झरनों को। स्पृष्ट्वा = स्पर्श करके। पथिकानाम् = प्रवासी (विरहीजनों) के। अभावाय = अभाव के लिए, मारने

के लिए, पीड़ित करने के लिए। अयं = यह । पवनः = वायु। उपस्थितः = उपस्थित हो गया है; आ गया है।

अनुवाद— चन्दनों के वनों को आन्दोलित करके (और) मलय (पर्वत) के झरनों को स्पर्श करके प्रवासी लोगों (विरहीजनों, पथिकजनों) के मारने (पीड़ित करने) के लिए यह पवन आ गया है।

संस्कृतव्याख्या— निवर्तककारकहेतुं निदर्शयत्यत्र- **चन्दनेति**। **चन्दनारण्यं** चन्दनवनम् **आधूय** प्रकम्प्य **मलयनिर्झरान्** मलयपर्वते स्थितान् निर्झरान् **स्पृष्ट्वा** स्पर्शं कृत्वा **पथिकानां** प्रवासिनां पान्थानाम् **अभावाय** मारणाय पीडनाय वा **अयम्** एष अनुभूयमानः **पवनः** वायुः **उपस्थितः** आगतः। एतादृशः चन्दनवनस्पर्शेन सुगन्धितः मलयनिर्झरस्पर्शेन शीतलश्च पवनः कामोद्दीपकत्वात् विरहिजनानां कृते दुःसहः इति भूत्वा समुपस्थितः जातः इति भावः।

(निवर्तककारकहेतुनिदर्शनविश्लेषणम्)

अभावसाधनायालमेवं भूतो हि मारुतः ।
विरहज्वरसम्भूत[1]मनोज्ञारोचके[2] जने ।।२३९।।

अन्वय— एवं भूतः हि मारुतः विरहज्वरसम्भूतमनोज्ञारोचके जने अभावसाधनाय अलम्।

शब्दार्थ— एवं भूतः = इस प्रकार वाला। मारुतः = पवन। विरहज्वरसम्भूतमनोज्ञारोचके = विरह-सन्ताप के कारण रमणीय (वस्तु) के प्रति अरुचि उत्पन्न हुए जने = व्यक्ति के, प्रवासी के। अभावसाधनाय = विनाश (सन्ताप) को सिद्ध करने के लिए। अलम् = पर्याप्त है, समर्थ है।

अनुवाद— इस प्रकार वाला (चन्दनवन के स्पर्श से सुगन्धित तथा मलयनिर्झर के स्पर्श से शीतल) पवन विरह-सन्ताप के कारण रमणीय (वस्तु) के प्रति भी अरुचि रखने वाले प्रवासी (व्यक्ति) के विनाश (सन्ताप) को सिद्ध करने के लिए (सम्पादित करने के लिए) पर्याप्त है।

संस्कृतव्याख्या— निवर्तककारकहेतुनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **अभावेति**। एवं भूतः चन्दनवनस्पर्शेण सुगन्धितः मलयनिर्झरजलस्पर्शेण शीतलश्च **मारुतः** पवनः **विरहज्वरसम्भूतमनोज्ञारोचके** विरहज्वरेण वियोगसन्तापेन सम्भूतम् उत्पन्नं मनो-

---

(१) -सन्ताप-।

(२) -मदनाग्न्यातुरे।

न्नेषु रमणीयेषु वस्तुषु अरोचकं विद्वेषं यस्य तादृशे **जने** प्रवासिजने **अभावसाधनाय** अभावं सन्तापं विनाशं वा साधयितुं **अलं** पर्याप्तः विद्यते। अत्र निवर्त्तकोऽभाव-साधको वा कारकहेतुः विद्यते, अत एव निर्वर्तककारकहेत्वलङ्कारः इति।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पथिकों का अभाव (मरण) अभावात्मक निवर्त्य कार्य है तथा चन्दन को आन्दोलित करने के कारण सुगन्धित और निर्झरजल के स्पर्श से शीतल वायु विरही जनों के सन्ताप बढ़ाने के कारण मृत्यु की ओर ले जाने से भानवनात्मक कारकहेतु है। अभाव-साधक कारकहेतु के कथन के कारण यहाँ निर्वर्तककारकहेतु अलङ्कार है।

(भावरूपकर्मणः त्रिविधत्वनिरूपणम्)

निर्वर्त्ये च विकार्ये च हेतुत्वं तदपेक्षया।
प्राप्ते तु कर्मणि प्रायः क्रियापेक्षैव हेतुता ।।२४०।।

अन्वय— निर्वर्त्ये विकार्ये च कर्मणि हेतुत्वं तदपेक्षया (भवति) प्राप्ते तु प्रायः हेतुता क्रियापेक्षया एव।

शब्दार्थ— निर्वर्त्ये = उत्पाद्य। विकार्ये च = और विकार्य। कर्मणि = कर्म में। हेतुत्वं = हेतुत्व (हेतु का भाव)। तदपेक्षया = उन (कर्मों की) अपेक्षा से (होता है)। प्राप्ते = प्राप्त होने पर। प्रायः = अधिकांशतः। हेतुता = हेतुत्व। क्रियापेक्षया एव = क्रिया की अपेक्षा से ही (होता है)।

अनुवाद— उत्पाद्य और विकार्य कर्म में हेतुत्व (हेतु का भाव) उन कर्मों की अपेक्षा से (अर्थात् उन कार्यों के आश्रित) होता है तथा कर्म में प्राप्त होने पर अधिकांशतः हेतुता क्रिया की अपेक्षा से (अर्थात् क्रिया पर आश्रित) (होता है)।

संस्कृतव्याख्या— भावरूपस्य कर्मणः त्रैविध्यं निरूपयत्यत्र- **निर्वर्त्ये इति**। **निर्वर्त्ये** उत्पाद्ये **विकार्ये च कर्मणि हेतुत्वं** हेतुभावः **तदपेक्षया** तेषु कार्येषु अपेक्षया आश्रिततया भवति। **प्राप्ये तु** परञ्च प्राप्ये कर्मणि **हेतुता** हेतुव्यापारः **क्रियापेक्षया** क्रियासु अपेक्षया आश्रितत्वेन **एव** भवति। एवं कर्म त्रिविधं- निवर्त्य, विकार्य, प्राप्यञ्चेति।

विशेष—

(१) भावरूप कर्म तीन प्रकार का होता है- निर्वत्य, विकार्य और प्राप्य। **निर्वत्य कर्म** पहले अविद्यमान पुनः क्रिया द्वारा उत्पाद्य अथवा पहले से विद्यमान और क्रिया द्वारा प्रकाश्य होता है। जैसे 'घटं करोति' में घट पहले से अविद्यमान पुनः करना

क्रिया द्वारा उत्पाद्य है। **विकार्य कर्म** क्रिया द्वारा अन्य अवस्था में परिवर्तित किया जाने योग्य होता है। जैसे– 'काष्ठं भस्मीकरोति' में काष्ठ का भस्मीकरण में परिवर्त्य काष्ठविकार्य कर्म है। प्राप्य कर्म केवल क्रिया के द्वारा प्राप्य (सम्बद्ध) होता है। उससे निर्वृत्त्य अथवा विकार्य नहीं होता अर्थात् क्रिया पर आश्रित होता है। जैसे– 'ग्रामं गच्छति' में ग्राम गमनक्रिया द्वारा सम्बद्ध है।

(२) निर्वत्य और विकार्य में हेतुव्यापार उन-उन कर्मों पर आश्रित होता है। जैसे 'घटं करोति' 'काष्ठं भस्मीकरोति' में हेतुव्यापार घट, काष्ठरूप कर्म में आश्रित होता है। किन्तु प्राप्य कार्य में हेतु प्रायः क्रिया पर आश्रित होता है जैसे 'ग्रामं गच्छति' में हेतुव्यापार गमनक्रिया पर आश्रित होता है।

(निर्वर्त्यकर्महेतुनिदर्शननिर्देशनम्)

हेतुर्निर्वर्तनीयस्य दर्शितः शेषयोर्द्वयोः ।
दत्वोदाहरणद्वन्द्वं ज्ञापको वर्णयिष्यते ।।२४१।।

अन्वय— निवर्तनीयस्य हेतुः दर्शितः। शेषयोः द्वयोः उदाहरणद्वन्द्वं दत्वा ज्ञापकः वर्णयित्यते।

शब्दार्थ— निर्वर्तनीयस्य = निर्वर्त्य (उत्पाद्य कर्म) का। हेतुः = हेतु (कारक) दर्शितः = निर्दिष्ट कर दिया गया है। शेषयोः द्वयोः = अवशिष्ट दो (कर्मों के हेतु) का। उदाहरणद्वन्द्वं = दो उदाहरण। दत्वा = देकर। ज्ञापकः = ज्ञापक हेतु वर्णयिष्यते = निर्दिष्ट (प्रतिपादित) किया जाएगा।

अनुवाद— निर्वर्त्य (उत्पाद्य कर्म) का हेतु (पूर्ववर्ती दो उदाहरणों में) निर्दिष्ट कर दिया गया है। (अब) अवशिष्ट दो (विकार्य और प्राप्य नामक कर्मों के हेतु) के दो उदाहरण देकर (तत्पश्चात्) ज्ञापक (हेतु) निर्दिष्ट (प्रतिपादित) किया जाएगा।

संस्कृतव्याख्या— निर्वर्त्यकर्महेतुनिदर्शनं निर्दिशन् वक्ष्यमाणकर्महेतुं निदर्शनार्थमुपक्रमते– **हेतुरिति। निर्वर्तनीयस्य** निर्वर्त्यस्य कर्मणः **हेतुः** अयमान्दोलितेत्यादिनिदर्शनद्वये **दर्शितः** निर्दिष्टः जातः। अत्र **शेषयोःद्वयोः** विकार्यस्य प्राप्यस्य च कर्मणः **उदाहरणद्वन्द्वं** निदर्शन द्वयं **दत्वा** प्रस्तुत्य **ज्ञापकः** ज्ञापकहेतुः **वर्णयिष्यते** प्रतिपाद्यते।

विशेष—

(१) निर्वर्तनीय कर्म का हेतु 'अयमान्दोलित....' इत्यादि उदाहरण में प्रस्तुत किया जा चुका है। इसके पश्चात् दो उदाहरणों द्वारा विकार्य और प्राप्य कर्म का हेतु प्रस्तुत किया जाएगा। ज्ञापकहेतु का प्रतिपादन तदनन्तर किया जाएगा।

(विकार्यकर्महेतुनिदर्शनम्)

उत्प्रवालान्यरण्यानि वाप्यः सम्फुल्लपङ्कजाः ।
चन्द्रः पूर्णश्च कामेन[१] पान्थदृष्टेर्विषं कृतम् ।।२४२।।

अन्वय— उत्प्रवालानि अरण्यानि, प्रफुल्लपङ्कजाः वाप्यः, पूर्णः च चन्द्रः कामेन पान्थदृष्टेः विषं कृतम् ।

शब्दार्थ— उत्प्रवालानि = नवोद्गत पल्लवों वाले । अरण्यानि = वन । सम्फुल्लपङ्कजाः = विकसित कमलों वाली । वाप्यः = वापियाँ, बावलियाँ । पूर्णः च = और पूरा (उगा हुआ), पूर्णमण्डल वाला । चन्द्रः = चन्द्रमा । कामेन = कामदेव द्वारा । पान्थदृष्टेः = प्रवासियों (पथिकों) की आँखों के लिए । विषं = विष । कृतम् = कर दिया गया है, बना दिया गया है ।

अनुवाद— नवोद्गत पल्लवों वाले वन, विकसित कमलों वाली बावलियाँ और पूर्णमण्डल वाला (पूरा उगा हुआ) चन्द्रमा (ये सभी) कामदेव द्वारा प्रवासियों (पथिकों) की आँखों के लिए विष (विकृत) कर दिया गया है ।

संस्कृतव्याख्या— विकार्यकर्महेतुं निदर्शयत्यत्र- **उत्प्रवालानीति** । **उत्प्रवालानि** उद्गतानि नूतनानि प्रवालानि पल्लवानि यासु तादृशानि **अरण्यानि** वनानि, **संफुल्लपङ्कजाः** सम्फुल्लानि सम्यग्रूपेण फुल्लानि विकासितानि पङ्कजानि कमलानि यत्र तादृश्यः **वाप्यः** दीर्घिकाः पूर्णः च पूर्णरूपेण उदितः पूर्णमण्डलः वा **चन्द्रः** चन्द्रमाः एते सर्वे **कामेन** कामदेवेन **पान्थदृष्टेः** पान्थानां प्रवासिजनानां दृष्टेः नेत्रयोः **विषं** विकृतं **कृतम्** सम्पादितम् । अरण्यादिकमत्र विकार्यं कर्म कामश्च तद्धेतुत्वेनोपवर्णितः तद्विकार्यकर्महेत्वलङ्कारः ।

विशेष—

(१) विरहियों के हृदय में विद्यमान प्रेम ने संयोगावस्था में नेत्रों को आनन्द देने वाली वस्तुओं को भी उनकी नजरों में विष बना दिया है । यहाँ वन इत्यादि विष नहीं हैं किन्तु कामदेव ने विष बना दिया है । वन इत्यादि आनन्ददायक के स्थान पर मारक हो गये हैं । इस प्रकार उनकी अवस्था में परिवर्तन हो गया है अतः ये कर्म विकार्य हैं । कामदेव इस कार्य का कारक हेतु है । अतः यहाँ विकार्यकर्महेत्वलङ्कार है ।

---

(१) कालेन ।

(प्राप्यकर्महेतुनिदर्शनम्)

मानयोग्यां करोमीति प्रियस्थाने कृतां सखीम् ।
बाला भ्रूभङ्गजिह्माक्षी पश्यति स्फुरिताधरम् ।।२४३।।

अन्वय— मानयोग्यां करोमि इति बाला भ्रूभङ्गजिह्माक्षी प्रियस्थाने कृतां सखीं स्फुरिताधरं पश्यति ।

शब्दार्थ— मानयोग्यां = मान करने के योग्य, मान करने में सक्षम । करोमि = कर रही हूँ, कर लूँ । इति = इस प्रकार । बाला = नवयौवना युवती । भ्रूभङ्गजिह्माक्षी = भौहों को टेढी करके, तिरछी चितवन (नेत्रों) से युक्त (होकर) । प्रियस्थाने = प्रियतम के स्थान पर । कृतां = कल्पित । सखीं = सखी को । स्फुरिताधरं = ओष्ठों को स्फुरित करती हुई (कँपाती) हुई । पश्यति = देख रही हैं ।

अनुवाद— (मैं अपने को प्रियतम के प्रति) 'मान करने योग्य कर रही हूँ- इस प्रकार सोचकर नवयौवना युवती भौहों को टेढ़ी करके (तिरछी चितवन से युक्त होकर) प्रियतम के स्थान पर कल्पित सहेली को ओठों को स्फुरित करती हुई (कँपाती हुई) देख रही है ।

संस्कृतव्याख्या— प्राप्यकर्महेतुं निदर्शयत्यत्र– **मानयोग्याम् इति** । **मानयोग्याम्** अहं स्वयमेव प्रियं प्रति मानस्य योग्यां समर्थां **करोमि इति** अनेन प्रकारेण मनसि सन्धाय **बाला** नवयौवना युवती **भ्रूभङ्गजिह्माक्षी** भ्रुवो:भङ्गेन विकारेण जिह्मे कुटिले अक्षिणी नेत्रे यस्याः तादृशी सती **प्रियस्थाने** प्रियतमस्य भूमिकायां विद्यमानां **कृतां** कल्पितां नियुक्तां वा **सखीं** प्रियवयस्यां **स्फुरिताधरं** स्फुरितः कृतकोपेन कम्पितः अधरः ओष्ठः यथा स्यात्तथा भूत्वा **पश्यति** अवलोकयति । बालाकर्तृकया दर्शनक्रियया सखी सम्बध्यते इत्येतत् कर्म प्राप्यकर्म विद्यते । अत एवात्र प्राप्यकर्महेत्वलङ्कारः ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में कोई नवयौवना अपने प्रिय के प्रति किसी बात पर नाराज होकर मान प्रदर्शित करना चाह रही है अतः वह उसके सामने मान प्रदर्शित करने का अभ्यास कर रही है । अपनी किसी सहेली को प्रियतम के रूप में कल्पित करके उसको मानयुक्त दृष्टि से देख रही है और उसका ओठ क्रोध के कारण स्फुरित हो रहा है ।

(२) यहाँ सखीरूप प्रियतम को देखना भावरूप हेतु है, मान क्रिया है । देखने का कर्म सखीरूप प्रिय उस देखना क्रिया से सम्बद्धमात्र है । अतः यह प्राप्य कर्म है ।

बाला का यहाँ उक्त कर्म के हेतु के रूप में वर्णन हुआ है। इस प्रकार यहाँ प्राप्य-कर्म हेत्वलङ्कार है।

(ज्ञापकहेतुनिदर्शनम्)

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इतीदमपि साध्वेव कालावस्थानिवेदने ।।२४४।।

अन्वय— अर्कः अस्तं गतः इन्दुः भाति पक्षिणः वासाय यान्ति इति इदम् अपि कालावस्थानिवेदने साधु एव (विद्यते)।

शब्दार्थ— अर्कः = सूर्य। अस्तं = अस्ताचल को। गतः = चला गया। इन्दुः = चन्द्रमा। भाति = चमक रहा है, शोभायमान हो रहा है। पक्षिणः = पक्षी-गण। वासाय = निवासस्थान के लिए, (घोंसलों में) निवास के लिए। यान्ति = जा रहे हैं। इति = इस प्रकार। इदम् = यह (कथन)। अपि = भी। कालावस्थानिवेदने = कालविशेष (सायंकाल) की अवस्था के कथन (वर्णन) में, ज्ञापन करने में। साधु = ठीक है, समुचित है, समीचीन है।

अनुवाद— सूर्य अस्ताचल को चला गया, चन्द्रमा शोमायमान हो रहा है और पक्षीगण (अपने) निवासस्थान (घोसलों) के लिए जा रहे हैं इस प्रकार यह (कथन) भी कालविशेष (सायंकाल) के वर्णन अथवा ज्ञापन करने में समुचित है।

संस्कृतव्याख्या— ज्ञापकहेतुं निदर्शयत्यत्र- **गत इति**। **अर्कः** सूर्यः **अस्तम्** **अस्ताचलं गतः** प्राप्तः **इन्दुः** चन्द्रः **भाति** सुशोभते, **पक्षिणः** पक्षिगणः **वासाय** निवासस्थलं स्वनीडं प्रति **यान्ति** गच्छन्ति **इति** एवम् **इदम्** एतत्कथनम् **अपि** **कालावस्थानिवेदने** कालस्य समयविशेषस्य सायंकालस्य अवस्थायाः दशायाः निवेदने कथने ज्ञापने वा **साधु** एव समीचीनमेव चमत्कारजनकं विद्यते। ज्ञापनादत्र ज्ञापकहेत्वालङ्कारः इति।

विशेष—

(१) सूर्य अस्त हो गया है, चन्द्रमा उदित हो रहा है और पक्षीगण अपने घोसलों को जा रहे हैं यह वर्णन समय की विशेष स्थिति सायंकाल का ज्ञापन कराता है। अतः यहाँ ज्ञापक हेत्वलङ्कार है।

(२) सम्प्रति सन्ध्या का समय है- यह कथन चमत्कारजनक नहीं है किन्तु सूर्य अस्त हो गया है, इत्यादि द्वारा ज्ञापित सन्ध्याकाल का वर्णन चमत्कारपूर्ण हो जाता है।

(ज्ञाप्यस्यार्थत्वस्य शाब्दत्वनिदर्शनम्)

अवध्यै[१]रिन्दुपादानामसाध्यैश्चन्दनाम्भसाम्[२] ।
देहोष्मभिः सुबोधं ते सखि कामातुरं मनः ।।२४३।।

अन्वय— सखि, इन्दुपादानाम् अवध्यैः चन्दनाम्भसाम् असाध्यैः देहोष्मभिः ते कामातुरं मनः सुबोधं (भवति)।

शब्दार्थ— सखि = हे सखि। इन्दुपादानां = चन्द्रमा की (शीतल) किरणों से। अवध्यः = विनष्ट न किये जाने वाले, दूर न किये जाने वाले। चन्दनाम्भसाम् = चन्दन के रस से। असाध्यैः = शान्त न होने वाले। देहोष्मभिः = शरीर के ताप (ज्वर) से। ते = तुम्हारा। कामातुरं = काम से सन्तप्त। मनः = मन। सुबोधं = सुस्पष्ट होता है, ज्ञात होता है, समझ में आता है।

अनुवाद— हे सखि, चन्द्रमा की शीतल किरणों से विनष्ट न किये जाने वाले तथा चन्दन के (शीतल) रस से भी शान्त न होने वाले शरीर के ताप (ज्वर) से तुम्हारे कामातुर मन को जाना जा सकता है।

संस्कृतव्याख्या— ज्ञाप्यस्यार्थत्वस्य शाब्दत्वं निदर्शयत्यत्र- **अवध्यैरिति**। **सखि** हे सखि; **इन्दुपादानाम्** इन्दोः चन्द्रमसः पादानां शीतलकिरणानाम् अवध्यैः अविनाशनीयैः शमयितुमशक्यैः **चन्दनाम्भसां** चन्दनस्य मलयजस्य अम्भसां रसानाम् **असाध्यैः** अनपनेयैः दूरीकर्तुमशक्यैः च **देहोष्मभिः** शरीरतापैः **ते** तव सख्याः **कामातुरं** कामपीडितं **मनः** चेतः **सुबोधं** सुज्ञेयं सम्यग्रूपेण ज्ञायमानं भवति। ज्ञाप्यं मनसः कामातुरत्वं देहोष्मभिः ज्ञायते। ज्ञाप्यमत्र शब्दोपात्तम् विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में किसी मुग्धा के पहली बार किसी के प्रेम में पड़ने का ज्ञापन उसके शरीर में विद्यमान ऐसे ताप के वर्णन से किया गया है जो चन्द्रमा की शीतल किरणों से समाप्त नहीं होता तथा चन्दन के रस से भी शान्त नहीं होता।

(२). यहाँ मन की कामातुरता ज्ञाप्य विषय है तथा शीतलोपचार से भी शान्त न होने वाली देहोष्मा उसका ज्ञापकहेतु है। इस उदाहरण में ज्ञाप्य विषय शब्दोपात्त है। अतः यह ज्ञाप्य विषय का शब्दोपात्त ज्ञापकहेतु है।

---

(१) अबन्ध्यैर्।

(२) -म्भसा।

(अभावहेतुनिदर्शनप्रस्तावनम्)

इति लक्ष्याः प्रयोगेषु रम्या[१] ज्ञापकहेतवः ।
अभावहेतवः केचिद् व्याह्रियन्ते[२] मनोरमाः[३] ।।२४६।।

अन्वय— इति रम्याः ज्ञातहेतवः प्रयोगेषु लक्ष्याः; केचित् मनोरमाः अभावहेतवः व्याह्रियन्ते ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । रम्याः = रमणीय, मनोहर । ज्ञापकहेतवः = ज्ञापकहेतु । प्रयोगेषु = काव्यप्रयोगों (काव्यप्रबन्धों) में । लक्ष्याः = जान लेने चाहिए, देख लेने चाहिए । केचित् = कुछ (कवि) लोग । मनोरमाः = सुन्दर । अभावहेतुः = अभावहेतु । व्याह्रियन्ते = व्यवहार में लाते हैं, प्रयोग करते हैं ।

अनुवाद— इस प्रकार रमणीय ज्ञापकहेतुओं को काव्यप्रयोगों (काव्यप्रबन्धों) में जान लेना (देख लेना) चाहिए । कुछ (कवि) लोग (अपने काव्यप्रबन्धों में) अभावहेतु का सुन्दर प्रयोग करते हैं ।

संस्कृतव्याख्या— भावहेतुं प्रतिपाद्य अभावहेतुनिर्देशमुपक्रमत्यत्र- **इतीति** । **इति** अनेन प्रकारेण **रम्याः** रमणीयाः **ज्ञापकहेतवः** भावहेत्वन्तर्भुक्ताः ज्ञापकहेतवः **प्रयोगेषु** काव्यप्रबन्धेषु **लक्ष्याः** ज्ञातव्याः । **केचित्** कवयः **मनोरमाः** रम्याः **अभावहेतवः** चतुर्धा भावरूपाः हेतवः **व्याह्रियन्ते** काव्येषु प्रयुज्यन्ते । अभावश्चतुर्धा प्रसिद्धः:- प्रागभावः प्रध्वंसाभावः अन्योन्याभावः अत्यन्ताभावश्चेति । अभावमूलकस्य अभावहेत्वलङ्कारस्यापि चातुर्विध्यमिति ज्ञातव्यम् ।

विशेष—

(१) ज्ञापकहेतु का प्रतिपादन करने के पश्चात् अब अभाव हेतु के विवेचन का उपक्रम किया जा रहा है ।

(२) अभाव चार प्रकार का होता है- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव । इन चार प्रकार के अभावमूलक होने के कारण अभावहेतु भी चार प्रकार के होते हैं- प्रागभावहेतु, प्रध्वंसाभावहेतु, अन्योन्याभावहेतु और अत्यन्ताभावहेतु । इनका स्पष्टीकरण आगे किया जा रहा है ।

---

(१) सम्यग् ।
(२) -क्रियन्ते ।
(३) -हराः ।

(प्रागभावहेतुनिदर्शनम्)

अनभ्यासेन विद्यानामसंसर्गेण धीमताम् ।
अनिग्रहेण चाक्षाणां जायते व्यसनं नृणाम् ।।२४७।।

अन्वय— विद्यानाम् अनभ्यासेन धीमताम् असंसर्गेण अक्षाणां च अनिग्रहेण नृणां व्यसनं जायते ।

शब्दार्थ— विद्यानाम् = विद्याओं के । अनभ्यसनेन = अनभ्यास (अभ्यास न होने) । धीमतां = बुद्धिमान लोगों के, सज्जनों के । असंसर्गेण = असंसर्ग (सम्पर्क न होने) । अक्षाणां च = और इन्द्रियों के । अनिग्रहेण = अनिग्रह (वश में न होने = अभ्यास का अभाव होने) के कारण । नृणां = मनुष्यों में, लोगों में । व्यसनं = व्यसन, विपत्ति, दुष्प्रवृत्ति । जायते = उत्पन्न होती है ।

अनुवाद— विद्याओं के अनभ्यास (अभ्यास न होने = अभ्यास का अभाव), बुद्धिमानों (सज्जनों) के असंसर्ग (सम्पर्क न होने) और इन्द्रियों के अनिग्रह (वश में न होने) के कारण मनुष्यों की विपत्ति (दुष्प्रवृत्ति) उत्पन्न होती है ।

संस्कृतव्याख्या— प्रागभावहेतुं निदर्शमत्यत्र– **अनभ्यासेनेति** । **विद्यानां** ज्ञान-साधनान्वीक्षिक्यादिशास्त्राणाम् **अनभ्यासेन** अपरिशीलनेन **धीमतां** सज्जनानां पण्डि-तानाम् **असंसर्गेण** असङ्गत्या **अक्षाणां** इन्द्रियाणाम् **अनिग्रहेण** असंयमेन **नृणां** मनु-ष्याणां **व्यसनं** दुष्कर्मप्रवृतिः **जायते** उत्पद्यते । अत्र व्यसनोत्पादकः विद्याभ्यासादी-नामभावः प्रागभावरूपः विद्यते । तच्च अभावः व्यसनं प्रति कारकहेतुः । अत एवात्र विद्यादिप्रागभावस्य हेतुतया प्रागभावहेत्वलङ्कारः अस्ति ।

विशेष—

(१) उत्पत्ति से पूर्व में किसी पदार्थ के अभाव को प्रागभाव कहा जाता है ।

(२) विद्याभ्यास, धीमानों से संसर्ग और इन्द्रियों के संयमन के अभाव में दुष्कर्मप्रवृति होती है । इससे पूर्व दुष्कर्म प्रवृत्ति नहीं होती । इस प्रकार ये तीनों का अभाव प्रागभाव (पहले से हुआ अभाव) है, अतः यहाँ प्रागभाव हेत्वलङ्कार है ।

(प्रध्वंसाभावहेतुनिदर्शनम्)

गतः कामकथोन्मादो गलितो यौवनज्वरः ।
क्षतो[१] मोहश्च्युता तृष्णा कृतं पुण्याश्रमे[२] मनः ।।२४८।।

---

(१) गतो, इतो । (२) –श्रये ।

अन्वय— कामकथोन्मादः गतः, यौवनज्वरः गलितः, मोहः क्षतः, तृष्ण च्युता, पुण्याश्रमे मनः कृतम्।

शब्दार्थ— कामकथोन्मादः = काम (विषयभोग) विषयक चर्चा का उन्माद। गतः = चला गया, समाप्त हो गया। यौवनज्वरः = यौवन का सन्ताप (बुखार)। गलितः = विनष्ट हो गया, गल गया। मोहः = मोह (सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति)। क्षतः = विनष्ट हो गया। तृष्णा = तृष्णा (विषयों के प्रति लालसा)। च्युता = छूट गयी, समाप्त हो गयी। पुण्याश्रमे = पवित्र-आश्रम में, सन्यास-आश्रम में। मनः = मन, चित्त। कृतम् = कर दिया गया है, लगा दिया गया है।

अनुवाद— काम (विषयभोग) विषयक चर्चा का उन्माद समाप्त हो गया, यौवन का सन्ताप (बुखार) विनष्ट हो गया, मोह (विषयों के प्रति आसक्ति) विनष्ट हो गया (समाप्त हो गया) और तृष्णा (विषयों के प्रति लालसा) छूट गयी (अतः इस) पवित्र आश्रम (सन्यासाश्रम) में मन को लगा दिया गया है।

संस्कृतव्याख्या— प्रध्वंसाभावहेतुं निदर्शयत्यत्र– **गत इति**। **कामकथोन्मादः** कामस्य कामविषयकस्य कथायाः वार्त्तायाः उन्मादः विभ्रमः **गतः** विरतः जातः, **यौवनज्वरः** यौवनोत्पन्नसन्तापः **गलितः** द्रवीभूतः विगतः वा, **मोहः** धनदारापुत्रादिषु ममत्वं **क्षतः** विनष्टः जातः **तृष्णा** विषयभोगप्राप्तौ स्पृहा **च्युता** गलिता। अस्मादेव कारणाद् मया अस्मिन् **पुण्याश्रमे** पावनाश्रमे सन्यासाश्रमे वा **मनः** चेतः **कृतं** सन्निहितम्। अत्रोन्मादादिनामभावः प्रध्वंसाभावः पूर्वमेव गलितत्वात् तेषाञ्च पुण्याश्रमग्रहणे कारकहेतुत्वम् अत एव प्रध्वंसाभावहेत्वलङ्कारः इति।

विशेष—

(१) उत्पत्ति के बाद किसी वस्तु का विनाशजनित अभाव प्रध्वंसाभाव कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में कामकथोन्माद, यौवनसन्ताप, मोह तृष्णा इत्यादि उत्पन्न होकर अब विनष्ट हो गये हैं, अतः उनका प्रध्वंसाभाव है। ये प्रध्वंसाभावात्मक कामकथोन्माद इत्यादि पुण्याश्रम ग्रहण करने में हेतु हैं। अतः यहाँ इन हेतुओं का वर्णन होने से प्रध्वंसाभावहेत्वलङ्कार है।

(अन्योन्याभावहेतुनिदर्शनम्)

वनान्यमूनि न गृहण्येता नद्यो न योषितः।
मृगा इमे न दायादस्तन्मे नन्दति मानसम् ।।२४९।।

---

(१) गतो, हतो। (२) –श्रने।

अन्वय— अमूनि वनानि गृहाणि न, एताः नद्यः योषितः न, इमे मृगाः दायादाः न, तत् मे मानसं नन्दति।

शब्दार्थ— अमूनि = ये। वनानि = वनप्रदेश (हैं)। गृहाणि न = गृह नहीं। एताः = ये। नद्यः = नदियाँ (हैं)। योषितः न = रमणियाँ नहीं। इमे = ये। मृगाः = मृग, हरिण (हैं)। दायादाः न = दयाद (सम्बन्धीजन) नहीं। तत् = इसी कारण। मे = मेरा। मानसं = मन। नन्दति = आनन्द कर रहा है, आनन्दित है।

अनुवाद— ये वनप्रदेश हैं गृह नहीं, ये नदियाँ हैं रमणियाँ नहीं, ये मृग हैं सम्बन्धीजन नहीं, इसी कारण मेरा (अनासक्त) मन आनन्दित है।

संस्कृतव्याख्या— अन्योन्याभावहेतुं निदर्शयत्यत्र– **वनानीति**। **अमूनि** एतानि पुरोदृश्यमानानि **वनानि** आश्रमवनानि सन्ति, **न** तु **गृहाणि** भवनानि, **एताः** इमाः पुरोदृश्यमानाः **नद्य** सरितः विद्यन्ते न तु **योषिताः** रमण्यः, **इमे** एते पुरोदृश्यमानाः **मृगाः** हरिणाः सन्ति न तु **दायादाः** बान्धवजनाः तत् तस्मात्कारणाद् **मे** मम **मानसं** मनः अनासक्तभावेनात्र **नन्दति** आनन्दमनुभवति। अत्र गृहादीनां परस्परमभावः अन्योन्याभावः। ते अन्योन्याभावाः मनोनन्दने हेतवः, अत एवात्र अन्योन्याभावहेत्वलङ्कारः।

विशेष—

(१) एक पदार्थ का उससे भिन्न पदार्थ न होना अन्योन्याभाव कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में गृह इत्यादि का परस्पर अभाव अन्योन्याभाव है। वन में गृहत्व, नदी में रमणीत्व और मृगों में बान्धवत्व का अभाव है। यह अभाव विरक्त व्यक्ति को आनन्द देने में हेतु है। अतः यहाँ अन्योन्याभाव हेत्वलङ्कार है।

(३) इस उदाहरण श्लोक का अन्य प्रकार से भी अर्थ किया जा सकता है— ये वनप्रदेश नहीं प्रत्युत घर हैं, ये नदियाँ नहीं प्रत्युत रमणियाँ है और ये मृग नहीं प्रत्युत बान्धवजन है, इस कारण मेरा मन आसक्तभाव से आनन्दित हो रहा है।

(४) इस अर्थ के अनुसार वनों इत्यादि का अभाव अन्योन्याभाव है जो आनन्दित होने में हेतु है अतः यहाँ अन्योन्याभावहेत्वलङ्कार है।

(अत्यन्ताभावहेतुनिदर्शनम्)

अत्यन्तमसदार्याणामनालोचितचेष्टितम् ।
अतस्तेषां विवर्धन्ते[१] सततं सर्वसम्पदः ॥२५०॥

---

(१) विवर्तन्ते।

अन्वय— आर्याणाम् अनालोचितचेष्टितम् अत्यन्तम् असत् अतः तेषां सर्वसम्पदः सततं विवर्धन्ते।

शब्दार्थ— आर्याणाम् = सत्पुरुषों का। अनालोचितचेष्टितम् = बिना आलोचना वाली (विचार वाली) प्रवृत्ति, अविवेक पूर्ण आचरण। अत्यन्तम् = अत्यधिक, बिल्कुल, पूर्णरूपेण। असत् = नहीं होता। अतः = इसलिए। तेषाम् = उनकी। सर्वसम्पदः = सभी सम्पत्तियाँ। सततं = निरन्तर। विवर्धन्ते = बढ़ती रहती है।

अनुवाद— सत्पुरुषों का अविवेकपूर्ण आचरण बिल्कुल नहीं होता, इसलिए उनकी सम्पत्तियाँ निरन्तर बढ़ती रहती हैं।

संस्कृतव्याख्या— अत्यन्ताभावहेतुं निदर्शयत्यत्र- अत्यन्तमिति। **आर्याणां** सत्पुरुषाणाम् **अनालोचितचेष्टितम्** अविवेकयुक्तम् आचरणम् **अत्यन्तं** नितान्तम् **असत्** अविद्यमानं भवति **अतः** अनेन कारणेन **तेषां** सत्पुरुषाणां **सर्वसम्पदः** सर्वाः सम्पत्तयः विभूतयः वा **सततं** निरन्तरं **विवर्धन्ते** वृद्धिमाप्नुवन्ति। अत्र अविवेकयुक्ताचरणस्य अत्यन्ताभावः सम्पत्तिविवर्धने हेतुः। अत एवात्यन्ताभावहेत्वलङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में सत्पपुरुषों के अत्यन्त अविचारित चेष्टाओं का न होना अत्यन्ताभाव है जो सभी सम्पत्तियों की वृद्धि में हेतु है। अतः यह अत्यन्ताभाव हेत्वलङ्कार है।

(अभावाभावहेतुनिदर्शनम्)

उद्यानसहकाराणामनुद्भिन्ना न मञ्जरी।
देयः पथिकनारीणां सतिलः सलिलाञ्जलिः ।। २५१।।

अन्वय— उद्यानसहकाराणाम् मञ्जरी अनुद्भिन्ना न (अतः) पथिकनारीणां सतिलः सलिलाञ्जलि देयः।

शब्दार्थ— उद्यानसहकाराणाम् = उपवन के आम्रों की। मञ्जरी = मञ्जरी। अनुद्भिन्ना = अविकसित। न = नहीं है। पथिकनारीणां = पथिकजनों (प्रवासियों) की पत्नियों के लिए। सतिलः = तिल के साथ। सलिलाञ्जलिः = जलाञ्जलि। देयः = देय होगी।

अनुवाद— उपवन के आम्रों की (कामोद्दीपक) मञ्जरी (बौर) अविकसित नहीं है (अर्थात् कामोद्दीपक मञ्जरियाँ विकसित हो गयी है अतः) पथिकजनो (प्रवासियो) की (विरहिणी) पत्नियों के लिए तिल के साथ जलाञ्जलि देय होगी (अर्थात् अवश्य देनी पड़ेगी)।

संस्कृतव्याख्या— अभावाभावहेतुं निदर्शयत्यत्र– **उद्यानेति** । **उद्यानसहकाराणाम्** उपवनस्य आम्रवृक्षाणाम् **मञ्जरी** कालिका **अनुद्भिना** अविकसिता न, विद्यते इति शेषः । अतः **पथिकनारीणां** पथिकानां प्रवासिनां नारीणां वियुक्तानां पत्नीनां कृते **सतिलः** तिलैः मिश्रितः **सलिलाञ्जलिः** जलाञ्जलिः **देयः** एव । आम्रेषु मञ्जरीविकासात् तस्य कामोद्दीपकत्वाच्च प्रोषितभर्तृकाणां युवतीनां मरणमुपस्थितमतश्च तासां कृते जलाञ्जलिः दातव्यं भविष्यतीति भावः । अत्र मञ्जर्याः विकासस्याभावस्य अभावः प्रवासिजनानां प्रोषितभर्तृकाणां मरणे हेतुः । उद्भेदाभावश्च प्रागभावरूपः । एवमत्र प्रागभावाभावहेत्वलङ्कारः । प्रध्वंसाभावाद्यभावाभावस्य निदर्शनानि एवमेव ज्ञातव्यानि ।

विशेष—

(१) उद्यान के आम्र के वृक्ष की मञ्जरी में विकास का अभाव नहीं है अर्थात् विकास के अभाव का अभाव है । यही आम्रमञ्जरी के विकास का अभावाभाव (कामोद्दीपक होने के कारण) प्रोषितभर्तृकाओं की मृत्यु का हेतु है । इस प्रकार यहाँ अभावाभावहेत्वलङ्कार है ।

(२) इस उदाहरण में मञ्जरियों का अविकास प्रागभाव है । इसी विकास के अभाव (अविकास) का अभाव विकास प्रागभावाभाव है । इस प्रकार यह प्रागभावाभाव का निदर्शन है । इसी प्रकार प्रध्वंसाभावाभाव अन्योन्याभावाभाव और अत्यन्ताभावाभाव को भी समझ लेना चाहिए ।

(अभावहेतूपसंहरणम्)

प्रागभावादिरूपस्य हेतुत्वमिह वस्तुनः ।
भावाभावस्वरूपस्य[१] कार्यस्योत्पादनं प्रति ।।२५२।।

अन्वय— इह भावाभावस्वरूपस्य कार्यस्य उत्पादनं प्रति प्रागभावादिरूपस्य वस्तुनः हेतुत्वं (विद्यते) ।

शब्दार्थ— इह = यहाँ, इन (पाँच उदाहरणों) में । भावाभावस्वरूपस्य = भावरूप और अभावरूप । कार्यस्य = कार्य उत्पादन के प्रति । प्रागभावादिरूपस्य = प्रागभाव आदि रूप । वस्तुनः = के । हेतु = हेतुभाव (प्रतिपादित किये गये हैं) ।

अनुवाद— इन (पाँच उदाहरणों) में भावरूप और अभावरूप कार्य के उत्पादन के प्रति प्रागभाव इत्यादि रूप वस्तुओं के हेतुभाव (प्रतीपादित किये गये हैं) ।

संस्कृतव्याख्या— अभावहेतुम् उपसंहरत्यत्र– **प्रागभावेति** । **इह** अस्मिन् पूर्वोक्ते

---

(१) स्वभावस्य ।

निदर्शनपञ्चके **भावाभावस्वरूपस्य** भावस्वरूपस्य अभावस्वरूपस्य च **कार्यस्य** फलस्य **उत्पादनं** जननं प्रति **प्रागभावादिरूपस्य** प्रागभावरूपस्य, प्रध्वंसाभावरूपस्य अन्यो-न्याभावरूपस्य अत्यन्ताभावरूपस्य **वस्तुनः** पदार्थस्य **हेतुत्वं** हेतुभावं प्रतिपादितम्। तत्र भावरूपकार्यं प्रति क्वचिदभावकार्यं प्रति हेतुतया वर्णितो भवति। तत्र चतुर्विध-स्याभावरूपस्य पदार्थस्य हेतुत्वं पूर्वैः चतुर्भिः निदर्शनैः अभावरूपकार्यं प्रति च अभावरूपस्य पदार्थस्य हेतुत्वमेकेन पूर्वोक्तेन निदर्शनेन उदाहृतम्।

विशेष—

(१) दण्डी ने पाँच (२४७-२५१ तक) के पाँच उदाहरणों में अभावरूप- प्रागभाव, विध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभाव और उभयाभाव रूप हेतुत्व का उदाहरण दिया है। अभावाभाव के विषय में केवल प्रागभाव का उदाहरण दिया है। अन्य तीन अभाव का उदाहरण नहीं दिया है।

(चित्रहेतुप्रस्तावनम्)

दूरकार्यस्तत्सहजः　　कार्यानन्तरजस्तथा ।
अयुक्तयुक्तकार्यौ[१] चेत्यसङ्ख्याताश्चित्रहेतवः ॥२५३॥

अन्वय— दूरकार्य तत्सहजः कार्यानन्तरजः तथा अयुक्तयुक्तकार्यौ च इति चित्र-हेतवः असङ्ख्याताः (विद्यन्ते)।

शब्दार्थ— दूरकार्यः = दूरकार्य (कार्य से दूर रहने वाला)। तत्सहजः = तत्सहज (उस कार्य के साथ जायमान होने वाला)। कार्यानन्तरजः = कार्य के बाद होने वाला। अयुक्तयुक्तकार्यौ च = अनुचित कार्य वाला और उचित कार्य वाला। इति = इस प्रकार। चित्रहेतवः = अद्भुत हेतु। असङ्ख्याताः = असङ्ख्य (हैं)।

अनुवाद— दूरकार्य (कार्य से दूर रहने वाला), तत्सहज (उस कार्य के साथ जायमान), कार्यान्तरज (कार्य से बाद उत्पन्न होने वाला), अयुक्त (अनुचित = अनु-पयुक्त कार्य वाला) और युक्त (उपयुक्त कार्य वाला)– इस प्रकार चित्रहेतु (अद्भुत हेतु) असङ्ख्य हैं।

संस्कृतव्याख्या— चित्रहेतुं विवेचनाय प्रस्तौत्यत्र– **दूरकार्येति**। **दूरकार्यः** दूरं हेतुव्यापारविषयान्तरगतं कार्यं फलं यस्य तादृशः **तत्सहजः** तेन कार्येण सह जाय-मानः, **कार्यानन्तरजः** कार्याद् अनन्तरं पश्चात् जायमानः तथा **अयुक्तयुक्तकार्यौ** अयुक्तकार्यः अयुक्तं कारणविरुद्धं कार्यं यस्य तादृशः अयुक्तकार्यः युक्तकार्यः युक्तं

(१) -कारी, अयुक्तो, युक्तकारी, युक्तकार्यश्।

कारणानुसारि च कार्यं यस्य तादृशः युक्तकार्यः **इति** अनेन प्रकारेण **चित्रहेतवः** अद्भुतरूपाः हेतवः **असङ्ख्याताः** असङ्ख्यविधा विद्यन्ते।

विशेष—

(१) लोक में कारण की विद्यमानता अपने कार्य से पूर्व में ही होती है- कारण कार्य से परवर्ती नहीं होता। इसी प्रकार कार्य कारण के व्यापार क्षेत्र में और कारण के अनुसार होता है- उसके क्षेत्र से दूर अथवा उसके विरुद्ध नहीं होता।

(२) काव्य में वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए विशेष अभिप्राय से इन कारणों का अन्यथा वर्णन होता है। अपने स्वरूप की विचित्रता के कारण इन्हें चित्रहेतु कहा जाता है।

(३) चित्रहेतु में दण्डी ने पाँच प्रकार की विचित्रताओं का निर्देश किया है- *(क) दूरकार्य*— लोक में कार्य को कारण के व्यापार के अन्तर्गत होना चाहिए किन्तु काव्य में वर्णित कार्य कारण से दूर वाला होता है। *(ख) तत्सहज*— लोक में कारण कार्य से पहले उत्पन्न होता है किन्तु काव्य में कार्य से कारण को भी उत्पन्न बतलाया जाता है। *(ग) कार्यानन्तरज*— कार्य के पश्चात् कारण का उत्पन्न होना *(घ) अयुक्तकार्य*— कारण के विपरीत कार्य का होना और *(ङ) युक्तकार्य*— कारण के अनुसार कार्य का होना।

(चित्रहेतूनां काव्येऽभीष्टत्वम्)

तेऽमी प्रयोगमार्गेषु गौणवृत्तिव्यापाश्रयात्[१] ।
अत्यन्तसुन्दरा दृष्टास्तदुदाहृतयो यथा ।।२५४।।

अन्वय— ते अमी प्रयोगमार्गेषु गौणवृत्तिव्यपाश्रयात् अत्यन्तसुन्दराः दृष्टाः तदुदाहृतयः यथा।

शब्दार्थ— ते = वे (पूर्वोक्त)। अमी = ये (चित्र हेतु)। प्रयोगमार्गेषु = प्रयोग पद्धतियों में। गौणवृत्तिव्यपाश्रयात् = गौणवृत्ति के आश्रय के कारण। अत्यन्तसुन्दराः = नितान्त रमणीय। दृष्टाः = दृष्टिगोचर होते हैं। तदुदाहृतयः = उनके उदाहरण (आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं)।

अनुवाद— वे (पूर्वोक्त) ये (चित्रहेतु) (काव्य की) प्रयोग पद्धतियों में गौण (लाक्षणिक असमारोपित) वृत्ति के आश्रय के कारण नितान्त रमणीय दृष्टिगोचर होते हैं। इनके उदाहरण (आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं)।

---

(१) –व्यपाश्रयाः, –मार्ग– ।

संस्कृतव्याख्या— चित्रहेतूनां काव्येऽभीष्टत्वं प्रतिपादयत्यत्र- **तेऽमीति**। ते पूर्वोक्ताः **अमी** चित्रहेतवः **प्रयोगमार्गेषु** काव्यप्रबन्धपद्धतिषु **गौणवृतिव्यपाश्रयाद्** गौण-वृत्याः गौण्याः प्रसिद्धिविपरीतायाः समारोपितायाः लाक्षणिकायाः वृत्तेः शब्दव्यापारस्य हेतुव्यापारस्य वा व्यपाश्रयाद् आश्रयाद् **अत्यन्तसुन्दराः** नितान्तरमणीयाः **दृष्टाः** दृष्टि-गोचराः जायन्ते। **तदुदाहृतयः** तेषां निदर्शनानि प्रस्तूयन्ते। यथेति निदर्शनोपक्रमणार्थम्।

विशेष—

(१) काव्य में प्रयोग करते समय लोकप्रसिद्धि के विषय में यह ध्यातव्य है कि उसका अतिक्रमण मुख्य रूप से नहीं प्रत्युत गौण रूप से होना चाहिए। गौण वृति अथवा लक्षणाव्यापार का विशेषरूप से आश्रय लेना ही वक्रोक्ति है। इस गौणवृत्ति द्वारा लोकप्रसिद्धि का विपर्यय होने के कारण होने वाला वैरस्य तो चित्रहेतु नहीं होने देते प्रत्युत उसे चमत्कारयुक्त बना देते हैं।

(२) गौण वृत्ति का आश्रय न लेने से ही काव्य में अपूर्वता प्रसिद्धिविपरीत के रूप में ही आती है- चित्रत्व नहीं आ पाता। परिणामतः ऐसे हेतु से काव्य नीरस हो जाता है।

(दूरकार्यचित्रहेतुनिदर्शनम्)

त्वदपाङ्गाह्वयं जैत्रमनङ्गास्त्रं[१] यदङ्गने।
मुक्तं तदन्यतस्तेन सोऽस्म्यहं[२] मनसि क्षतः ।।२५५।।

अन्वय— अङ्गने, अन्यतः यत् त्वदपाङ्गाह्वयं जैत्रम् अनङ्गनास्त्रं मुक्तं तेन सः अहं मनसि क्षतः अस्मि।

शब्दार्थ— अङ्गने = हे सुन्दरि। अन्यतः = दूसरी ओर, दूसरे व्यक्ति पर लक्ष्य करके। यत् = जो। त्वदपाङ्गाह्वयं = तुम्हारे द्वारा अपाङ्ग (तिरछी चितवन) नामक। जैत्रम् = विश्वविजयी। अनङ्गास्त्रं = कामास्त्र को। मुक्तं = छोड़ा गया है। तेन = उस (अस्त्र) से। सः = वह (अलक्ष्य = लक्ष्य न बनाया गया)। अहम् = मैं। मनसि = मन में। क्षतः = घायल कर दिया गया। अस्मि = हूँ।

अनुवाद— हे सुन्दरि, दूसरी ओर (दूसरे व्यक्ति पर लक्ष्य करके) जो तुम्हारे द्वारा कटाक्ष (तिरछी चित्तवन) नामक विश्वविजयी कामास्त्र छोड़ा गया है उस (अस्त्र से वह (अलक्ष्य = लक्ष्य न बनाया गया भी) मैं मन में घायल कर दिया गया हूँ।

---

(१) -मन्मथास्त्रं।
(२) सोऽप्यहं।

संस्कृतव्याख्या— दूरकार्यचित्रहेतुं निदर्शयत्यत्र- **त्वदपाङ्गेति** । **अङ्गने** हे सुन्दरि **अन्यतः** अन्यत्र अन्यं जनमभिलक्ष्य इत्यर्थः यत् **त्वदपाङ्गाह्वयं** त्वया अपाङ्गनाश **जैत्रं** जगद्विजयिनम् **अनङ्गास्त्रं** कामास्त्रं **मुक्तं** क्षिप्तं **तेन** अपाङ्गास्त्रेण **सः** अलक्ष्यी- कृतोऽपि **अहं मनसि** हृदये **क्षतः** विद्धः अस्मि । अत्र हेतुभूतस्य कामास्त्रस्य कार्यं के व्यापारविषयं लक्ष्यभूतं जनमतिक्रम्य अलक्ष्यभूतं जनं माम् प्राप्नोति । एवमत्र दूरस्थ तत्वाद् दूरकार्यो हेतुः । अत एवात्र दूरकार्यचित्रहेत्वलङ्कारः ।

विशेष—

(१) किसी अन्यासक सुन्दरी के प्रति आसक्त प्रेमी ने अपना प्रणयनिवेदन किया- सुन्दरी ने उसे तिरछे नेत्रों से उस प्रेमी की ओर देखा किन्तु उसके तिरछे नेत्रों से कोई अन्य प्रकृत पुरुष घायल हो गया ।

(२) घायल करने वाली सुन्दरी ने अपने कटाक्ष रूपी अस्त्र के द्वारा घायल करने का लक्ष्य अपने प्रेमी को बनाया था किन्तु घायल करने का हेतु कटाक्ष रूपी अस्त्र अपने प्रयोगविषय लक्ष्य व्यक्ति से अन्य को घायल कर देता है । इस प्रकार घायल रूप कार्य कटाक्षरूपी अस्त्र के सीमाक्षेत्र से बाहर लक्ष्य व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति में होता है अतः यहाँ दूरकार्य चित्रहेतु है ।

(कार्यसहजचित्रहेतुनिदर्शनम्)

आविर्भवति नारीणां वयः पर्यस्तशैशवम् ।
सहैव विविधैः पुंसामङ्गजोन्मादविभ्रमैः ।।२५६।।

अन्वय— नारीणां पर्यस्तशैशवं वयः पुसां विविधैः अङ्गजोन्मादविभ्रमैः सह एव आविर्भवति ।

शब्दार्थ— नारीणां = स्त्रियों की । पर्यस्तशैशवं = बाल्यावस्था को पीछे छोड़ने वाली (निराकृत करने वाली) । वयः = अवस्था । पुसां = पुरुषों के, कामिजनों के विविधैः = अनेक प्रकार के, विविध प्रकार के । अङ्गजोन्मादविभ्रमैः = कामोन्माद के विलासों के । सह एव = साथ ही । आविर्भवति = उत्पन्न होती है, प्रकट होती है

अनुवाद— स्त्रियों की बाल्यावस्था (वचपन) को पीछे छोड़ने वाली (निराकृत करने वाली) अवस्था (यौवनावस्था) पुरुषों (कामिजनों) के विविध प्रकार के कामो-न्माद के विलासों के साथ ही प्रकट होती है।

संस्कृतव्याख्या— कार्यसहजचित्रहेतुं निदर्शयत्यत्र- **आविर्भवतीति**। नारीणां युवतीनां **पर्यस्तशैशवं** पर्यस्तं निराकृतं शैशवं बाल्यकाल यस्य तादृशं **वयः** अवस्था यौवनं **पुंसां** पुरुषाणां कामिजनानामित्यर्थः **विविधैः** नानाप्रकारैः **अङ्गजोन्मादविभ्रमैः**

अङ्गजस्य कामजनितस्य उन्मादस्य विकारस्य विभ्रमैः विलासैः **सह एव आविर्भवति** उत्पद्यते। हेतुभूतं नारीणां यौवनं कार्यभूतैः कामुकजनोन्मादविलासैः सह उत्पद्यते। अत्र कार्यसहजहेतुः विद्यते अत एव कार्यसहजहेत्वालङ्कारः।

विशेष—

(१) लोकप्रसिद्धि के अनुसार कारण को कार्य से पहले होना चाहिए किन्तु इस उदाहरण में स्त्रियों का यौवन कामिजनों के कामोन्माद विलासों (आँखें लड़ाना इत्यादि) कार्य का हेतु है जिसे कार्य से पहले उत्पन्न होना चाहिए किन्तु इस वर्णन में कार्य के साथ ही इसकी उत्पत्ति दिखलायी गयी है। कार्य और कारण के पौर्वापर्य में लोकप्रसिद्धि का अतिक्रमण होने के कारण यह चित्रहेतु तथा कार्य के साथ ही कारण की उत्पत्ति होने के कारण कार्यसहज हेतु है। इस प्रकार यहाँ कार्य-सहजचित्रहेत्वालङ्कार है।

(२) परवर्ती आचार्य ऐसी स्थिति में अक्रमातिशयोक्ति मानते हैं जो हेतु और कार्य की सहविद्यमानता में होती है। कुवलयावली के अनुसार हेतु और कार्य के साथ-साथ उत्पन्न होने की स्थिति में अक्रमातिशयोक्ति होती है— 'अक्रमातिशयोक्तिः स्यात् सहत्वे हेतुकार्ययोः (कुवलयावली, ४१)।'

(कार्यानन्तरजचित्रहेतुनिदर्शनम्)

पश्चात्पर्यस्य किरणानुदीर्णं चन्द्रमण्डलम्।
प्रागेव हरिणाक्षीणामुदीर्णो रागसागरः॥२५७॥

अन्वय— किरणान् पर्यस्य चन्द्रमण्डलं पश्चात् उदीर्णं (परञ्च) हरिणाक्षीणां रागसागरः प्राक् एव उदीर्णः (जातः)।

शब्दार्थ— किरणान् = किरणों को। पर्यस्य = फैलाकर। चन्द्रमण्डलं = चन्द्रमण्डल। पश्चात् = बाद में। उदीर्णं = उदित हुआ। मृगाक्षीणां = मृगनयनी (रमणियों) का। रागसागरः = अनुरागसागर, प्रेमरूपी समुद्र। प्राक् एव = पहले ही। उदीर्णः = उछलने लगा।

अनुवाद— किरणों को (चारो ओर) फैलाकर चन्द्रमण्डल (तो) बाद में उदित हुआ (किन्तु) मृगनयनी (रमणियों) का अनुरागरूपी (प्रेमरूपी) सागर तो पहले ही उछलने लगा।

संस्कृतव्याख्या— कार्यानन्तरजचित्रहेतुं निदर्शयत्यत्र- **पश्चादिति। किरणान्** मयूखान् **पर्यस्त** विस्तार्य **चन्द्रमण्डलं पश्चात्** स्वकार्यभूतात् रमणीरागसागरोदीर्णाद् अनन्तरम् **उदीर्णं** उदगतम् अभवत् परञ्च **मृगाक्षीणां** मृगनयनीनां **रागसागरः** अनुराग-

रूप: समुद्रः **प्राक् एव** हेतुभूतत्वात् चन्द्रोदयात् पूर्वम् एव **उदीर्णः** उद्गतः । अत्र हेतुः चन्द्रोदयं कार्यानन्तराद् रागसागरोदीरणात् पश्चात् जायते । अतोऽत्र कार्यानन्तरजहेतुः । लोकप्रसिद्धयतिक्रमणादत्र चित्रहेतुः । एवमत्र कार्यानन्तरजचित्रहेत्वलङ्कारः ।

विशेष—

(१) लोक में चन्द्रोदय के पश्चात् समुद्र में हिलोरे उठती है । समुद्र मे हिलोरे के कार्य में चन्द्रोदय हेतु है ।

(२) इस उदाहरण में चन्द्रोदय से पूर्व ही मृगनयनी रमणियों के हृदय में प्रेम सागर हिलोरे लेने लगा । यहाँ प्रेमसागर में हिलोरे उठने का कार्य पहले हो गया और हेतु चन्द्रोदय कार्य हिलोरे उठने के अनन्तर हुआ । इस प्रकार कार्य के पश्चात् हेतु के उत्पन्न होने के कारण यहाँ कार्यानन्तरज हेतु है तथा लोकव्यवहार का अतिक्रमण करने के कारण चित्रहेतु है । अत: यहाँ कार्यानन्तरज चित्रहेत्वालङ्कार है ।

(३) जहाँ कार्य और हेतु का पौर्वापर्य विपरीत होता है वहाँ परवर्ती आचार्यों ने अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार माना है । कुवलयावली के अनुसार कार्य और हेतु के पौर्वापर्य का व्यतिक्रम होने पर अत्यन्ताशयोक्ति होती है- 'अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु पौर्वापर्यव्यतिक्रमे' (कुवलयावली- ४३) ।

(अयुक्तकार्यचित्रहेतुनिदर्शनम्)

राज्ञां हस्तारविन्दानि कुड्मलीकुरुते कथम् ।
देव त्वच्चरणद्वन्द्वराग बालातपः स्पृशन् ।।२५८।।

अन्वय— देव, त्वच्चरणद्वन्द्वरागबालातपः राज्ञां हस्तारविन्दानि स्पृशन् कथं कुड्मलीकुरुते ।

शब्दार्थ— देव = हे महाराज, हे राजन् । त्वच्चरणद्वन्द्वरागबालातपः = तुम्हारे दोनों चरणों की लालिमारूपी नवोदित सूर्य की लाल किरणें । राज्ञां = सामन्तों, शत्रुराजाओं की । हस्तारविन्दानि = हाथरूपी कमलों को । स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ । कथम् = किस लिए । कुड्मलीकुरुते = मुकुलित (कली के रूप में) कर देता है ।

अनुवाद— हे राजन् ! तुम्हारे दोनों पैरों की लालिमारूपी नवोदित सूर्य की लाल किरणें शत्रुराजाओं के हाथ रूपी कमल को स्पर्श करती हुई किस लिए (विकसित करने के बजाय) मुकुलित (कली के रूप में) कर देती हैं ।

संस्कृतव्याख्या— अयुक्तकार्यचित्रहेतुं निदर्शयत्यत्र- **राज्ञामिति** । **देव** हे राजन् । **त्वच्चरणद्वन्द्वरागबालातपः** तव चरणद्वन्द्वस्य पादद्वयस्य यः रागः रक्तिमा सः एव

बालातपः नवोदितसूर्यस्यातपः **राज्ञां** शत्रुभूपतीनां **हस्तारविन्दानि** हस्तरूपाणि कररूपाणि यानि अरविन्दानि कमलानि तानि **स्पृशन्** स्पर्शं कुर्वन् **कथं** केन कारणेन **कुड्मलीकुरुते** मुकुलयति कलिकारूपेण परिणमयतीत्यर्थः । बालातपः कमलविकासस्य हेतुः । एषस्तु कमलानि कलिकारूपेण परिणमयतीति बालातपस्य अयुक्तं कार्यम् । अत एवात्र अयुक्तकार्यचित्रहेतुः विद्यते । शत्रुराजानः मुकुलितहस्तकमलाञ्जलिभिः राज्ञः चरणौ नमन्तीति कस्यचिद् राज्ञः स्तुतिरियम् ।

विशेष—

(१) इसमें शत्रु राजाओं द्वारा राजा के चरणयुगल को अपने हस्तकमल से स्पर्श करके उन्हें प्रणाम करने का वर्णन अभिप्रेत है ।

(२) लोकप्रसिद्धि के अनुसार सूर्य के उदित होते ही कमल खिल जाते हैं किन्तु यहाँ वर्णनीय राजा के चरणयुगल की लालीरूपी नवोदित सूर्य की रक्तिम किरणें जब पराजित राजाओं के करकमलों पर पड़ती हैं तो उनके हाथ विनयपूर्वक उसी प्रकार जुड़ जाते हैं जैसे कमल की कलिका हो ।

(३) बालातप कमलों के विकसित होने का हेतु है । इस हेतु के होने पर कमलों को खिल जाना चाहिए किन्तु यहाँ बालातप से कमलों के कालिकारूप में परिणत हो जाने का कथन किया गया है जो स्वभाव के विरुद्ध होने से यह कार्य अयुक्तकार्य है । इस प्रकार यहाँ अयुक्तकार्यचित्रहेत्वलङ्कार है ।

(युक्तकार्यचित्रहेतुनिदर्शनम्)

पाणिपद्मानि भूपानां सङ्कोचयितुमीशते ।
त्वत्पादनखचन्द्राणामर्चिषः कुन्दनिर्मलाः ।।२५९।।

अन्वय— त्वत्पादनखचन्द्राणाम् कुन्दनिर्मलाः अर्चिषः भूपानां पाणिपद्मानि सङ्कोचयितुम् ईशते ।

शब्दार्थ— त्वत्पादनखचन्द्राणां = तुम्हारे पैरों के नखरूपी चन्द्रमा की । कुन्दनिर्मलाः = कुमुदिनी के समान स्वच्छ । अर्चिषः = किरणें । भूपानां = शत्रुराजाओं के । पाणिपद्मानि = करकमलों को । सङ्कोचयितुं = सङ्कुचित करने के लिए । ईशते = समर्थ हैं ।

अनुवाद— हे राजन्, तुम्हारे पैरों के नखरूपी चन्द्रमा की कुमुदिनी के समान स्वच्छ किरणें (तुम्हारे) शत्रुराजाओं के करकमलों को सङ्कुचित करने के लिए समर्थ हैं ।

संस्कृतव्याख्या— युक्तकार्यचित्रहेतुं निदर्शयत्यत्र- **पाणीति** । हे राजन्, **त्वत्पादनखचन्द्राणां** त्वत्पादयोः तव चरणयोः नखाः एव चन्द्राः तेषां **कुन्दनिर्मलाः**

कुमुदिन्यः इव धवलाः **अर्चिषः** मयूखाः **भूपानां** तव शत्रुराजानां **पाणिपद्मानि** कमलानि **सङ्कोचयितुं** सङ्कुचितं कर्तुम् **ईशते** प्रभवन्ति । चन्द्रकिरणानां कमलसंकोचनं रूपं कार्यं युक्तम् । अत एवात्र युक्तकार्यचित्रहेत्वलङ्कारः ।

विशेष—

(१) यहाँ वर्णनीय राजा के पदनखों पर आरोपित चन्द्रमा की किरणों द्वारा पराजित राजाओं के पाणिकमल को सङ्कुचित करने का कार्य युक्तकार्य है। अतः यहाँ युक्तकार्यचित्रहेत्वलङ्कार है।

(सूक्ष्मालङ्कारविवेचनम्)

इति हेतुविकल्पस्य दर्शिता गतिरीदृशी ।
इङ्गिताकारलक्ष्योऽर्थः सौक्ष्म्यात्सूक्ष्म इति स्मृतः ।।२६०।।

अन्वय— इति हेतुविकल्पस्य ईदृशी गतिः दर्शिता। इङ्गिताकारलक्ष्यः अर्थः सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मः इति स्मृतः ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। हेतुविकल्पस्य = हेतु (अलङ्कार) के विकल्पों (भेदों) की। ईदृशी = ऐसी। गतिः = पद्धति। दर्शिता = दिखलायी गयी, प्रदर्शित (प्रस्तुत) की गयी। इङ्गिताकारलक्ष्यः = सङ्केत-विशेष (भाव-सूचक चेष्टा) और आकृति (आकार) के द्वारा लक्षित होने वाला। अर्थः = अर्थ, अभिप्राय। सौक्ष्म्यात् = सूक्ष्मता के कारण। सूक्ष्मः = सूक्ष्म (अलङ्कार)। इति स्मृतः = कहलाता है।

अनुवाद— इस प्रकार हेतु अलङ्कार के विकल्पों (भेदों) की ऐसी पद्धति (विधि) प्रस्तुत की गयी है (अर्थात् हेत्वालङ्कारों का दिग्दर्शन करा दिया गया है)। सङ्केतविशेष (भावसूचक चेष्टा) और आकृति (आकार) के द्वारा लक्षित होने वाला (निगूढ़) अर्थ (अभिप्राय) (वस्तुवर्णन की) सूक्ष्मता के कारण सूक्ष्म (अलङ्कार) कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— सूक्ष्मालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **हेतुविकल्पस्य** हेत्वलङ्कारस्य विकल्पस्य भेदस्य **ईदृशी** एवं प्रकारा **गतिः** विधिः पद्धति वा **दर्शिताः** प्रदर्शिता। एवमन्येऽपि हेत्वलङ्कारस्य भेदाः ज्ञातव्याः इति भावः। तत्पश्चादत्र सूक्ष्मालङ्कारं विवेचयति- **इङ्गितेति**। **इङ्गिताकारलक्ष्यः** इङ्गितेन अभिप्रायविशेषसूचकेन चेष्टाविकारेण आकारेण अवस्थाविशेषव्यञ्जकेन अङ्गविकारेण च **लक्ष्यः** गम्यः सामान्येन निगूढः **अर्थः** विषयः **सौक्ष्म्यात्** वस्तुवर्णनस्य सूक्ष्मत्वात् **सूक्ष्मः** सूक्ष्मालङ्कार **स्मृतः** कथितः आचार्यैरिति शेषः। यत्र इङ्गिताकाराभ्यां सूक्ष्मबुद्धिमात्रज्ञेय-

मर्थवर्णनं क्रियते सः सूक्ष्मालङ्कारः इति भावः। सूक्ष्मो द्विधा इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्मम् आकारलक्ष्यार्थसूक्ष्मश्चेति।

विशेष—

(१) यहाँ हेत्वलङ्कार के भेदों का दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। इसी विधि से हेत्वलङ्कार के अन्य भेदों की भी कल्पना कर लेना चाहिए।

(२) **सूक्ष्मालङ्कार**— सङ्केत अथवा आकार द्वारा किसी प्रकार लक्षित किये गये निगूढ अर्थ को यदि असाधारण धर्म के द्वारा किसी दूसरे पर प्रकट कर दिया जाता है तो वह सूक्ष्म अलङ्कार कहलाता है।

(३) यह अलङ्कार दो प्रकार का होता है– (क) इङ्गितलक्ष्यार्थ सूक्ष्म और (ख) आकारलक्ष्यार्थ सूक्ष्म। इनका स्पष्टीकरण आगे दिये गये उदाहरणों द्वारा किया गया है।

(इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्मनिदर्शनम्)

कदा नौ सङ्गमो भावीत्याकीर्णे वक्तुमक्षमम्।
अवेत्य[1] कान्तमबला लीलापद्मं न्यमीलयत्॥२६१॥

अन्वय— कदा नौ सङ्गमः भावी इति आकीर्णे वक्तुम् अक्षमं कान्तम् अवेत्य अबला लीलापद्मं न्यमीलयत्।

शब्दार्थ— कदा = कब। नौ = हम दोनों का। सङ्गमः = मिलन, समागम। भावी = होगा। इति = इस प्रकार। आकीर्णे = जनाकीर्ण स्थान में। वक्तुं = कहने के लिए। अक्षमं = असमर्थ। कान्तं = प्रियतम को। अवेत्य = जानकर, समझकर। अबला = युवती ने। लीलापद्मं = लीला-कमल को। न्यमीलयत् = मूँद लिया; सङ्कुचित कर दिया।

अनुवाद— 'कब हम दोनों का मिलन होगा' इस प्रकार जनाकीर्ण (लोगों से व्याप्त) स्थान में (सबके सामने) कहने के लिए असमर्थ (अपने) प्रियतम को जानकर युवती ने (हाथ में लिये हुए) लीला-कमल को सङ्कुचित कर दिया।

संस्कृतव्याख्या— इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्मालङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **कदेति**। **कदा नौ** आवयोः **सङ्गमः** समागमः **भावी** भविष्यति **इति** अनेन प्रकारेण **आकीर्णे** जनसङ्कुले स्थाने **वक्तुं** कथितुम् **अक्षमम्** असमर्थं **कान्तं** स्वप्रियतमम् **अवेत्य** अवबुद्ध्य अभिलक्ष्य वा **अबला** युवती नायिका स्वकरधृतं **लीलापद्मं** लीलाकमलं **न्यमीलयत्**

(१) अवेक्ष्य।

सङ्कोचयत् । रात्रिकाले कमलानि सङ्कुचितानि भवन्ति एवं लीलाकमलसङ्कोचनेन युवतं रात्रिकालमेव समागमकालमिति असूचयत् ।

(इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्मनिदर्शनविश्लेषणम्)

पद्मसम्मीलनादत्र[1] सूचितो निशि सङ्गमः ।
आश्वासयितुमिच्छन्त्या प्रियमङ्गजपीडितम् ।। २६२।।

अन्वय— अत्र अङ्गजपीडितं प्रियम् आश्वासयितुम् इच्छन्त्या पद्मसम्मीलनात् निशि सङ्गमः सूचितः ।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में । अङ्गजपीडितं = कामपीड़ित प्रियं = प्रियतम को । आश्वासयितुं = आश्वस्त करने के लिए । इच्छन्त्या = इच्छा करती हुई (युवती) के द्वारा । पद्मसम्मीलनात् = कमल को सङ्कुचित करने से । निशि = रात्रि में । सङ्गमः = समागम । सूचितः = सूचित किया गया है ।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में कामपीड़ित प्रियतम को (समागम की आशा से) आश्वस्त करने के लिए इच्छा करती हुई (युवती) के द्वारा कमल को सङ्कुचित करने से 'रात्रि में समागम (होगा- यह) सूचित किया गया ।

संस्कृतव्याख्या— इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्मालङ्कारस्य निदर्शनं विश्लेषयत्य- **पद्मेति** । **अङ्गजपीडितम्** अङ्गजेन अभिलाषमाणया युवत्या **पद्मसम्मीलनात्** कमलसङ्कोचनरूपसङ्केतकरणात् **निशि** कमलसङ्कोचसमये रात्रौ **सङ्गमः** समागमः भविष्यतीति **सूचितः** प्रकाशितः । रात्रौ अवयोः समागमः भविष्यतीति सूक्ष्मतया सङ्केतितः । सङ्केतेन लक्ष्यार्थेनात्र इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्मः अलङ्कारः ।

विशेष—

(१) जिस सूक्ष्म अलङ्कार में सङ्केत द्वारा अर्थ को सूचित किया जाता है वह इङ्गित लक्ष्यार्थसूक्ष्म अलङ्कार कहलाता है ।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में कमलसङ्कोचन रूप सङ्केत द्वारा रात्रि में समागम होने की सूचना दी गयी है । कमल रात्रि में सङ्कुचित हो जाते है अतः कमल को सङ्कुचित करके रात्रि के समय की ओर सङ्केत किया गया है । इस सङ्केत द्वारा रात्रिसमागमरूप अर्थ का प्रतिपादन होने से यहाँ इङ्गितलक्ष्यार्थसूक्ष्म अलङ्कार है ।

(१) पद्मस्य मलिनादत्र ।

(आकारलक्ष्यार्थसूक्ष्मनिदर्शनम्)

मदर्पित[१]दृशस्तस्याः गीतगोष्ठ्यामवर्धत ।
उद्दामरागतरला छाया कापि[२]मुखाम्बुजे ।।२६३।।

अन्वय— गीतगोष्ठ्यां मदर्पितदृशः तस्याः मुखाम्बुजे उद्दामरागतरला कापि छाया अवर्धत ।

शब्दार्थ— गीतगोष्ठ्यां = सङ्गीत की गोष्ठी (सभा) में । मदर्पितदृशः = मेरी ओर ही दृष्टि लगायी हुई । तस्याः = उसके । मुखाम्बुजे = मुखकमल पर । उद्दामरागतरला = उत्कृष्ट रक्तिमा (अथवा अनुराग) से सिक्त । कापि = कोई, अनिर्वचनीय । छाया = छाया, कान्ति, आभा । अवर्धत = बढ़ गयी, उमड़ गयी, फैल गयी ।

अनुवाद— सङ्गीत की सभा में मेरी ओर दृष्टि लगायी हुई उस (प्रियतमा) के मुखकमल पर उत्कृष्ट रक्तिमा (अथवा अनुराग) से सिक्त (उज्ज्वल) कोई (अनिर्वर्चनीय) छाया (कान्ति, आभा) बढ़ गयी (उमड़ गयी) ।

संस्कृतव्याख्या— आकारलक्ष्यार्थसूक्ष्मालङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **मदर्पितेति** । **गीतगोष्ठ्यां** सङ्गीतसभायां **मदर्पितदृशः** मदर्पिता मयि निहिता दृग् दृष्टिः यया तादृश्याः **तस्याः** प्रियतमायाः **मुखाम्बुजे** मुखकमले **उद्दामरागतरला** उद्दामेन अत्युकृष्टेण रागेण रक्तिम्ना अनुरागेण वा तरला समुज्ज्वला सिक्ता वा **कापि** अनिर्वचनीया **छाया** कान्तिः **अवर्धत** सञ्जायत ।

(आकारलक्ष्यार्थसूक्ष्मनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्यनुद्भिन्न[३]रूपत्वाद् रत्युत्सवमनोरथः ।
अनुलङ्घ्यैव सूक्ष्मत्वमभूदत्र व्यवस्थितः ।।२६४।।

अन्वय— इति अत्र रत्युत्सवमनोरथः अनुद्भिन्नरूपत्वात् सूक्ष्मत्वम् अनुलङ्घ्य एव व्यवस्थितः अभूत् ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । अत्र = यहाँ, इस (उदाहरण) में । रत्युत्सवमनोरथः = सुरतोत्सव की अभिलाषा । अनुद्भिन्नरूपत्वात् = अस्पष्ट रूप से । सूक्ष्मत्वं = सूक्ष्मता का । अनुलङ्घ्य = उलङ्घन (अतिक्रमण) विना किये । व्यवस्थितः = व्यवस्थित, वर्णित । अभूत् = है ।

---

(१) त्वदर्पित– ।
(२) काचित्– ।
(३) इत्यसम्भिन्न– ।

अनुवाद— इस प्रकार इस (उदाहरण) में सुरतोत्सव (रतिसमागम) की अभिलाषा अस्पष्ट रूप से सूक्ष्मता का उलङ्घन विना किये हुए वर्णित की गयी है।

संस्कृतव्याख्या— आकारलक्ष्यार्थस्य सूक्ष्मस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **अत्र** उदाहरणेऽस्मिन् **रत्युत्सवमनोरथः** रत्युत्सवस्य रतिसमागमस्य मनोरथः अभिलाषः **अनुद्भिन्नरूपत्वात्** अस्पष्टरूपात् मुखाकारेणैव प्रतीयमानत्वात् **सूक्ष्मत्वम् अनुलङ्घ्य** अनतिक्रम्य एव **व्यवस्थितः** वर्णितः अभूत्। अत एवात्र आकारलक्ष्यार्थसूक्ष्मालङ्कारः इति।

विशेष—

(१) जहाँ आकृति द्वारा सूक्ष्म रूप से लक्ष्यार्थ का प्रतिपादन किया जाता है, वह आकारलक्ष्यार्थसूक्ष्म अलङ्कार कहलाता है।

(२) उक्त उदाहरण में नायिका के मुख पर उद्दाम और उज्ज्वल लालिमा का छा जाना उसकी सुरतेच्छा का सूचक है। इस प्रकार मुख की आकृति द्वारा सूक्ष्म रूप से लक्ष्यार्थ सुरतोत्सव की अभिलाषा का प्रतिपादन किया गया हैं अतः यहाँ आकारलक्ष्यार्थ सूक्ष्मालङ्कार है।

(लेशालङ्कारविवेचनम्)

लेशो निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्।
उदाहरण[1] एवास्य रूपमाविर्भविष्यति ।।२६५।।

अन्वय— लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनं लेशः। अस्य रूपम् उदाहरणे एव आविर्भविष्यति।

शब्दार्थ— लेशेन = व्याज द्वारा, बहाने से। निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनं = प्रकट हुई वस्तु के स्वरूप को छिपाना। लेशः = लेश (अलङ्कार) होता है। अस्य = इसका। रूपं = स्वरूप। उदाहरणे एव = उदाहरण में ही। आविर्भविष्यति = स्पष्ट होगा।

अनुवाद— (किसी) व्याज (बहाने) द्वारा प्रकट हुई (गोप्य) वस्तु के स्वरूप को छिपाना लेश (अलङ्कार) होता है। इस (लेश) का स्वरूप उदाहरण में ही (उदाहरण द्वारा ही) स्पष्ट होगा।

संस्कृतव्याख्या— लेशालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **लेश इति**। **लेशेन** केनचिद् व्याजेन **निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनं** निर्भिन्नस्य केनापि प्रकारेण प्रकटीभूतस्य गोप्यस्य वस्तुनः हेत्वन्तरद्वारा **निगूहनं** गोपनं तस्यान्यथा कथनं **लेशः** तन्नामालङ्कारः विद्यते।

---

(१) -वाक्येऽस्य, उदहरणम्।

अस्य लेशस्य **रूपं** स्वरूपं **उदाहरणे** निदर्शने **आविर्भाविष्यति** स्पष्टं भविष्यति। परवर्तीनामाचार्याणां मते व्याजोक्तिना निगूहनादत्र अत एव व्याजोक्तिरलङ्कारः इति।

विशेष—

(१) गोप्य वस्तु (भेद) के प्रकट (स्पष्ट) होने को किसी बहाने से छिपा लेने का वर्णन लेश अलङ्कार कहलाता है।

(२) परवर्ती आचार्यों ने व्याज (बहाने) से कथन होने के कारण इस अलङ्कार को व्याजोक्ति नाम से अभिहित किया है– 'व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजादुद्भिन्नस्यापि वस्तुनः' इति (सा० द० १०.९२)।

(अनिष्टनिवारणार्थलेशनिर्दशनम्)

राजकन्यानुरक्तं मां रोमोद्भेदेन रक्षकाः ।
अवगच्छेयुरा ज्ञातमहो शीतानिलं वनम् ।।२६६।।

अन्वय— रक्षकाः रोमोद्भेदेन मां राजकन्यानुरक्तम् अवगच्छेयुः। आः ज्ञातम्, अहो वनं शीतानिलं (विद्यते)।

शब्दार्थ— रक्षकाः = रक्षक लोग। रोमोद्भेदेन = रोमाञ्च के कारण। माम् = मुझको। राजकन्यानुरक्तं = राजकुमारी में (राजकुमारी के प्रति) अनुरक्त (अनुरागयुक्त)। अवगच्छेयुः = जान जाएँगे, समझ जाएँगे। आः ज्ञातम् = आह समझ में आ गया। अहो = अरे। वनं = प्रमदोद्यान। शीतानिलं = शीतल वायु से युक्त है, ठंडी वायु वाला है।

अनुवाद— (अन्तःपुर के) रक्षक लोग (मेरे शरीर के) रोमाञ्च के कारण मुझको राजकुमारी के प्रति अनुरक्त (अनुरागयुक्त) समझ जाएँगे। आह समझ में (बहाना) आ गया– अरे, (यह) प्रमदोद्यान शीतलवायु-युक्त है (अर्थात् प्रमदोद्यान में ठंडी हवा चल रही है।

संस्कृतव्याख्या— लेशालङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **राजकन्येति**। **रक्षकाः** अन्तःपुरस्य रक्षकजनाः **रोमोद्भेदेन** मम शरीरे जायमानेन रोमाञ्चेन मां **राजकन्यानुरक्तं** राजकन्यायां राजकुमार्याम् अनुरक्तम् अनुरागयुक्तम् **अवगच्छेयुः** जानीयुः। **आः ज्ञातं** आः व्याजेन गोपनं कल्पितं **अहो वनं** प्रमदोद्यानं **शीतानिलं** शीतलवायुयुक्तं विद्यते। शीतलवायुसम्पर्केण मम शरीरे रोमाञ्चं जातमिति व्याजं कथमिष्यामि। अत्र राजकन्यानुरागेण जायमास्य रोमाञ्चस्य गोपनं प्रमदोद्यानस्य वायुना रोमाञ्चमिति व्याजेन कथितम्। अत एवात्र लेशालङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में शरीर पर रोमाञ्च होने के कारण राजकन्या के प्रति अनुराग का भेद खुल जाएगा अतः इसका गोपन प्रमोदाद्यान में ठंडी वायु चलने के कारण रोमाञ्चित होने के बहाने किया गया है, इस प्रकार यहाँ लेशालङ्कार है। यह लेश अनिष्ट के निवारण के लिए किया गया है अतः यह अनिष्टनिवारणार्थ लेश है।

(लज्जानिवारणार्थलेशनिदर्शनम्)

आनन्दाश्रु प्रवृत्तं मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम् ।
अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन दूषितम् ।।२६७।।

अन्वय— कन्यकां दृष्ट्वा एव मे आनन्दाश्रु कथं प्रवृत्तम्। वातोद्धूतेन पुष्परजसा मे अक्षिः दूषितम्।

शब्दार्थ— कन्यकां = कन्या को। दृष्ट्वा एव = देख कर ही। मे = मेरा। आनन्दाश्रु = आनन्द से (उत्पन्न) आँसू। कथं = क्यों। प्रवृत्तम् = प्रवृत्त होने लगा, उमड़ने लगा, निकलने लगा। वातोद्धूतेन = वायु द्वारा उड़ाये गये। पुष्परजसा = पराग के कण (धूलि) से। मे = मेरी। अक्षिः = आँखे। दूषितं = दूषित हो गयी है, भर गयी है।

अनुवाद— (सुन्दर) कन्या को देखकर ही मेरा आनन्दाश्रु क्यों निकलने लगा, वायु द्वारा उड़ाये गये पराग कण से मेरी आँखें दूषित हो गयी हैं।

संस्कृतव्याख्या— लज्जानिवारणार्थ लेशं निदर्शयत्यत्र- **आनन्दाश्रु इति**। **कन्यकां** सुन्दरीं बालां **दृष्ट्वा एव** अवलोक्य एव **मे** मम **आनन्दाश्रु** आनन्देन हर्षेन उत्पन्न अश्रु नेत्रजलं **कथं** किमर्थं **प्रवृतं** निःसृतम्। **वातोद्धूतेन** वातेन वायुना उद्धूतेन उत्क्षिप्तेन **पुष्परजसा** पुष्पपरागेण **मे** मम **अक्षि** नेत्रं **दूषितं** दूषणकृतं जातम्। कन्यादर्शनाद् उत्पन्नस्य आनन्दाश्रुणः पुष्पपरागणेन दूषितं नेत्रमिति व्याजेन प्रतिपादनेन लज्जाजनकं आनन्दाश्रु निगूहितम्। अत एवात्र लज्जानिवारणार्थः लेशोऽलङ्कारः।

विशेष—

(१) जहाँ बहाने बनाकर लज्जाजनक कारण का गोपन किया जाय वह लज्जानिवारणार्थक लेश अलङ्कार कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में सुन्दरी कन्या को देखकर आनन्द से उत्पन्न आँसू उमड़ पड़े जो लज्जाजनक है। इस लज्जास्पद आनन्दाश्रु के निवारण के लिए उसको

आखों में परागकण पड़ जाने के कारण अश्रुपात के बहाने से छिपाया गया है। अत एव यहाँ लज्जानिवारणार्थ लेश अलङ्कार है।

(लेशविषयकमतान्तरम्)

इत्येवादि[१] स्थानेऽयमलङ्काररतिशोभते ।
लेशमेके विदुर्निन्दां स्तुतिं वा लेशतः ।।२६८।।

अन्वय— इति एवम् आदि स्थाने अयम् अलङ्कारः अतिशोभते। एके लेशतः निन्दां स्तुतिं वा लेशः विदुः।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। एवमादिस्थाने = ऐसे अन्य स्थानों में। अयम् = यह (लेश)। अलङ्कारः = अलङ्कार। अतिशोभते = अति शोभायमान होता है। एके = कतिपय (आचार्य) लोग। लेशतः = व्याज (छिपाने) के साथ। निन्दां = निन्दा को। स्तुतिं वा = अथवा प्रशंसा को। लेशम् = लेश। विदुः = जानते हैं; मानते हैं।

अनुवाद— इस प्रकार ऐसे अन्य स्थानों पर यह (लेश) अलङ्कार के रूप में अत्यधिक शोमायमान होता है। कतिपय (आचार्य) लोग व्याज (बहाने) के साथ निन्दा अथवा प्रशंसा को लेश (अलङ्कार) मानते हैं।

संस्कृतव्याख्या— लेशविषये कतिपयानामाचार्याणां मतान्तरं निर्दिशत्यत्र– **इत्येवमिति**। इति अनेन प्रकारेण **एवमादिस्थाने** ईदृशेऽन्ये स्थानेऽपि **अयम्** एषः **अलङ्कारः** लेशालङ्कारः **अतिशोभते** अत्यधिकं शोभायमानं भवति। **एके** कतिपयाः आचार्याः **लेशतः** व्याजात् **निन्दां स्तुतिं वा** प्रशंसां वा **लेशं** लेशालङ्कारः **विदुः** मन्यन्ते। परवर्तीनामाचार्याणामनुसारमत्र व्याजस्तुतिरलङ्कारः इति।

विशेष—

(१) लेश अलङ्कार के स्वरूप का लक्षण सोदाहरण दिग्दर्शन करा दिया गया है। इस विषय में कतिपय आचार्यों के मतान्तर का निर्देश भी किया गया है। उनके अनुसार व्याज से निन्दा या प्रशंसा का जहाँ कथन होता है वहाँ लेशालङ्कार होता है।

(२) इस प्रकार इन आचार्यों के अनुसार लेश दो प्रकार का होता है– (क) निन्दा-रूप लेश और (ख) प्रशंसारूप लेश। इनको उदाहरणों द्वारा आगे स्पष्ट किया गया है।

---

(१) इत्येवमादौ।

(निन्दारूपलेशनिदर्शनम्)

युवैष[1] गुणवान् राजा योग्यस्ते पतिरूर्जितः ।
रणोत्सवे मनः सक्तं यस्य कामोत्सवादपि ।।२७१।।

अन्वय— एषः युवा गुणवान् ऊर्जितः राजा ते योग्यः पतिः (विद्यते) यस्य कामोत्सवात् अपि रणोत्सवे मनः सक्तम् (अस्ति) ।

शब्दार्थ— एषः = यह । युवा = युवक । गुणवान् = गुणयुक्त । ऊर्जितः = तेजस्वी । राजा = राजा । तव = तुम्हारे । योग्यः = योग्य, अनुरूप । पतिः = पति है कामोत्सवात् = सुरतोत्सव की अपेक्षा । रणोत्सवे = युद्धोत्सव में । अस्य = जिसका मनः = मन । सक्तं = आसक्त रहता है, लगा रहता है ।

अनुवाद— (हे सुन्दरि,) यह युवक, गुणयुक्त और तेजस्वी राजा तुम्हारे योग्य (अनुरूप) पति है (क्योंकि) इसका मन सुरतोत्सव की अपेक्षा रणोत्सव में लगा रहता है ।

संस्कृतव्याख्या— स्तुतिव्याजेन निन्दालेशं निदर्शयत्यत्र– **युवैष इति**। हे सुन्दरि **एषः** अयं पुरो विद्यमानः **युवा** युवकः **गुणवान्** गुणसम्पन्नः **ऊर्जितः** तेजस्वी **राजा** नृपतिः **ते** तव सुन्दर्याः **योग्यः** अनुरूपः **पतिः** भर्त्ता विद्यते यतो हि **यस्य** राजानः **कामोत्सवात्** सुरतोत्सवस्य अपेक्षा **रणोत्सवे** युद्धोत्सवे **मनः** चेतः **सक्तं** रतं भवति ।

(निन्दारूपलेशनिदर्शनविश्लेषणम्)

वीर्योत्कर्षस्तुतिर्निन्दैवास्मिन् भावनिवृत्तये[2] ।
कन्यायाः कल्पते भोगान्निर्विविक्षोर्निरन्तरान् ।।२७०।।

अन्वय— अस्मिन् वीर्योत्कर्षस्तुतिः निरन्तरान् भोगान् निर्विविक्षोः कन्यायाः भावनिवृत्तये कल्पते (इति) निन्दा एव ।

शब्दार्थ— अस्मिन् = इस (उदाहरण) में । वीर्योत्कर्षस्तुतिः = पराक्रम के उत्कृष्टता की प्रशंसा । निरन्तरान् = निरन्तर । भोगान् = (विषयसुखों के) भोगों की निर्विविक्षोः = इच्छा करने (अभिलाषा) वाली । कन्यायाः = कन्या की । भावनिवृत्तये = (अनुराग की) भावना (अथवा पति रूप में वरण करने की इच्छा) के निवारण के लिए । कल्पते = कल्पित की गयी है । निन्दा एव = निन्दा ही है ।

---

(१) युवैव ।
(२) -निवर्तने ।

अनुवाद— इस (उदाहरण) में पराक्रम के उत्कृष्टता की प्रशंसा (का कथन) निरन्तर (विषय) भोगों की अभिलाषा करने वाली कन्या की (अनुराग) भावना (अथवा पति के रूप में वरण करने की इच्छा) के निवारण के लिए कल्पित की गयी है (अतः यह (उसके पराक्रम की प्रशंसा वस्तुतः उसकी) निन्दा ही है।

संस्कृतव्याख्या— निन्दारूपस्य लेशस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **वीर्योत्कर्षेति**। अस्मिन् उदाहरणेऽस्मिन् **वीर्योत्कर्षस्तुतिः** राज्ञः वीर्योत्कर्षस्य पराक्रमप्रकर्षस्य स्तुतिः प्रशंसा **निरन्तरान्** कालव्यवधानरहितान् **भोगान्** विषयभोगान् सुरतोत्सवसुखानि निर्विविक्षोः भोक्तुम् अभिलषमाणायाः **कन्यायाः** बालायाः **भावनिवृत्तये** भावस्य अनुरागस्य पतिरूपेण वरणभिलाषस्य वा निवृत्तये निराकरणाय **कल्पते** प्रभवति। एवं राज्ञः पराक्रमप्रशंसा सुरतसुखाभावकथनाद् वस्तुतः **निन्दा** एव विद्यते। अत्र प्रशंसा-व्याजेन राज्ञः निन्दा वर्णिता अत एवात्र निन्दारूपलेशालङ्कारः।

विशेष—

(१) जहाँ प्रशंसा के बहाने से निन्दा व्यञ्जित होती है, वहाँ निन्दालेश अलङ्कार होता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में पराक्रम की उत्कृष्टता की प्रशंसा के बहाने से उसके सुरत-क्रिया में रुचि लेने की कमी का वर्णन किया गया है। इस प्रकार भोगविलासों को निरन्तर चाहने वाली कन्या के लिए यह पराक्रमोत्कृष्टता की प्रशंसा निन्दा है। अतः यहाँ निन्दारूप वाला लेशालङ्कार है।

(स्तुतिरूपलेशनिदर्शनम्)

चपलो निर्दयश्चासौ जनः किं तेन मे सखि।
आगः प्रमार्जनायैव चाटवो येन शिक्षिताः ।।२७१।।

अन्वय— सखि, असौ जनः चपलः निर्दयः च। तेन मे किम्? येन आगः प्रमार्जनाय एव चाटवः शिक्षिताः।

शब्दार्थ— सखि = हे सखि! असौ = यह। जनः = व्यक्ति। चपलः = चञ्चल (स्वभाव वाला)। निर्दयः च = और निष्ठुर (है)। तेन = उस (व्यक्ति) के साथ। मे = मेरे (मान करने से)। किं = क्या लाभ है। येन =जिसके द्वारा। आगःप्रमार्जनाय = अपराधों को क्षमा करवाने के लिए, अपराधों के परिशोधन कराने के लिए। एव = ही। चाटवः = चापलूसी करना, चाटुकारिता करना। शिक्षिताः = सीखा गया है, पढ़ा गया है।

अनुवाद— हे सखि, यह (मेरा प्रिय) व्यक्ति चञ्चल (स्वभाव वाला) और निष्ठुर है, ऐसे व्यक्ति के साथ मेरे (मान करने) से क्या लाभ है, जिसके द्वारा (अपने)

अपराधों को क्षमा करवाने के लिए चाटुकारिता ही पढ़ी गयी (सीखी गयी है)।

संस्कृतव्याख्या— स्तुतिरूपं लेशं निदर्शयत्यत्र– **चपल इति**। **सखि** हे प्रिय वयस्ये, **असौ** एषः पुरोविद्यमानः **जनः** मम प्रियः व्यक्तिः **चपलः** चञ्चलस्वभावयुक्तः **निर्दयः च** निष्ठुरश्च विद्यते। **तेन** चापलादियुक्तेन प्रियेण **मे** मम मानस्य **किं** को लाभः **येन** प्रियेण **आगःप्रमार्जनाय** आगसाम् अपराधानां प्रमार्जनाय परिशोधनाय **एव चाटवः** चाटुकार्योक्तयः **एव शिक्षिताः** सम्यग्रूपेण अभ्यस्ताः।

(स्तुतिरूपलेशनिदर्शनविश्लेषणम्)

दोषाभासो गुणः कोऽपि[1] दर्शितः चाटुकारिता।
मानं सखीजनोद्दिष्टं कर्त्तुं रागादशक्तया ॥२७२॥

अन्वय— सखीजनोद्दिष्टं मानं रागात् कर्त्तुम् अशक्तया चाटुकारिता दोषाभासः कोऽपि गुणः दृष्टः।

शब्दार्थ— सखीजनोद्दिष्टं = सखियों द्वारा उपदिष्ट। मानं = (प्रणयविषयक) मान को। रागात् = अनुराग के कारण। कर्त्तुम् = करने के लिए। अशक्तया = असमर्थ (नायिका) के द्वारा। चाटुकारिता = चाटुकारिता। दोषाभासः = दोष का आभास कराने वाला। कोऽपि = कोई। गुणः = गुण। दर्शितः = देखा गया, समझा गया।

अनुवाद— सखियों द्वारा उपदिष्ट (प्रणयविषयक) मान को अनुराग के कारण करने के लिए असमर्थ नायिका के द्वारा चाटुकारिता दोष का आभास कराने वाला कोई गुण समझा गया।

संस्कृतव्याख्या— स्तुतिरूपस्य लेशस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **दोषाभास इति**। **सखीजनोदिष्टं** सखीजनेन प्रियवस्याजनेन उद्दिष्टम् उपदिष्टं **मानं** प्रणयकोपं **रागाद्** अनुरागाद् **कर्त्तुं** सम्पादयितुम् **अशक्तया** अक्षमया नायिकया **चाटुकारिता** चाटुकोक्तिचातुर्यं नाम **दोषाभासः** दोषवदाभासमानः **कोऽपि** नागरकजनोचितः **गुणः** इति **दर्शितः** व्यञ्जितः। निन्दाव्याजेन स्तुतिरियमत्र। अत एव स्तुतिरूपलेशालङ्कारः।

विशेष—

(१) जहाँ निन्दा के बहाने से प्रशंसा व्यञ्जित होती है, वहाँ निन्दारूप लेशालङ्कार होता है।

---

(१) गुणायैव।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में अन्यासक्त नायक की नायिका उसके प्रति अनुराग के कारण मान नहीं कर पा रहीं है– यह भाव दिखलाकर उसकी निन्दा करके नायक की प्रशंसा व्यक्त की गयी है।

(३) नायक चञ्चल होने के कारण अन्य स्त्रियों पर मडराने वाला भौरा है और नायिका के प्रति उपेक्षित व्यवहार के कारण कठोर भी है। ऐसा व्यक्ति तो स्त्रियों द्वारा त्याज्य होता है। इसके अतिरिक्त उसमें चापलूसी करने का भी दोष है। चापलूसी के बल पर अपना अपराध क्षमा करवा लेता है। यहाँ चापलूसी दोष से नायक की प्रशंसा व्यक्त होती है। दोष तो आभासमान है। वस्तुतः नायिका की दृष्टि में वह गुण है। इस प्रकार यहाँ दोष के वर्णन द्वारा उसकी प्रशंसा व्यक्त होने के कारण स्तुतिरूप लेश अलङ्कार है।

(यथासङ्ख्यालङ्कारविवेचनम्)

उद्दिष्टानां[१] परार्थानामनूद्देशो[२] यथाक्रमम् ।
यथासङ्ख्यमिति प्रोक्तं सङ्ख्यानं[३] क्रम इत्यपि ।।२७३।।

अन्वय— उद्दिष्टानां पदार्थानां यथाक्रमम् अनुदेशः यथासङ्ख्यम् इति प्रोक्तम्। सङ्ख्यानं क्रमः इति अपि (प्रोक्तम्)।

शब्दार्थ— उद्दिष्टानां = पूर्व में कथित (अथवा वर्णित)। पदार्थानां = पदार्थों का, वस्तुओं का। यथाक्रमं = क्रम के अनुसार। अनूद्देश्यः = अनुकथन, पुनर्कथन। यथासङ्ख्यम् = यथासङ्ख्य (अलङ्कार)। प्रोक्तं = कहा जाता है। सङ्ख्यानं = सङ्ख्यान। क्रमः = क्रम। इति अपि = ऐसा भी (कहा जाता है)।

अनुवाद— पूर्व में कथित (अथवा वर्णित) वस्तुओं का क्रम के अनुसार पुनर्कथन यथासङ्ख्य अलङ्कार कहा जाता है। (वह यथासङ्ख्य) सङ्ख्यान और क्रम (नाम से) भी (कहा जाता है)।

संस्कृतव्याख्या— यथासङ्ख्यालङ्कारं विवेचयत्यत्र– **उद्दिष्टानामिति**। **उद्दिष्टानां** पूर्वकथितानां वर्णितानां वा **पदार्थानां** वस्तूनां **यथाक्रमं** क्रमानुसारं **अनुदेशः** पुनकथनं **यथासङ्ख्यं** तन्नामालङ्कारः इति **प्रोक्तं** कथितमाचार्यैरिति शेषः। तद् यथासङ्ख्यं **सङ्ख्यानं क्रमं** चेति अभिधानद्वयेनापि अभिहितं भवति।

---

(१) निर्दिष्टानां।

(२) अनुदेशो।

(३) सङ्ख्यातं।

विशेष—

(१) दण्डी ने अलङ्कार निरूपण के प्रसङ्ग में २.५ में अलङ्कारों का नाम गिनाते समय क्रम नाम से ही इस अलङ्कार को निर्दिष्ट किया है तथा लक्षण-विवेचन के प्रसङ्ग में यथासङ्ख्य नाम से अभिहित किया है। आचार्य मेघावी इस अलङ्कार के लिए सङ्ख्यान शब्द का प्रयोग करते हैं।

(२) इस अलङ्कार में उद्देश्य (परिगणन) और अनुदेश (पश्चाद्गणन) में क्रम से अन्वय (सम्बन्ध) विवक्षित होता है।

(३) यथासङ्ख्य का अर्थ है- सङ्ख्या के अनुसार अर्थात् पूर्व में गणित पदार्थों का उसके परिगणन क्रम में प्राप्त सङ्ख्या के अनुसार पश्चात् में गणित पदार्थों से सम्बन्ध व्यक्त होने के कारण यह अलङ्कार यथासङ्ख्य अलङ्कार कहलाता है। गिनती (सङ्ख्या) से सम्बद्ध होने के कारण यह सङ्ख्यान तथा परिगणनों का क्रम से सम्बन्ध विवक्षित होने के कारण क्रम कहा जाता है।

(यथासङ्ख्यालङ्कारनिदर्शनम्)

ध्रुवं ते चोरिता तन्वि स्मितेक्षणमुखद्युतिः ।
स्नातुमम्भः प्रविष्टायाः कुमुदोत्पलपङ्कजैः ।।२७४।।

अन्वय— तन्वि, स्नातुम् अम्भःप्रविष्टायाः ते स्मितेक्षणमुखद्युतिः कुमुदोत्पलपङ्कजैः ध्रुवं चोरिता।

शब्दार्थ— तन्वि = हे कृशाङ्गि, हे तन्वङ्गि। स्नातुम् = स्नान करने के लिए। अम्भःप्रविष्टायाः = जल में प्रविष्ट हुई। ते = तुम्हारी। स्मितेक्षणमुखद्युतिः = मुस्कान, आखों और मुख की कान्ति (शोभा)। ध्रुवं = निश्चितरूप से। कुमुदोत्पलपङ्कजैः = कुमुदिनियों, नीलकमलों और लालकमलों के द्वारा। चोरिता = चुरायी गयी है।

अनुवाद— हे कृशाङ्गि, स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हुई तुम्हारी मुस्कान, आखों और मुख की कान्ति निश्चितरूप से कुमुदिनियों, नीलकमलों और लालकमलों के द्वारा चुरायी गयी है।

संस्कृतव्याख्या— यथासङ्ख्यं निदर्शयत्यत्र- **ध्रुवमिति**। **तन्वि** हे कृशाङ्गि **स्नातुं** स्नानं कर्तुं **अम्भःप्रविष्टायाः** अम्भसि सरोवरजले प्रविष्टायाः अवतीर्णायाः **ते** तव तन्वङ्ग्याः **स्मितेक्षणमुखद्युतिः** स्मितस्य ईक्षणस्य नेत्रस्य मुखस्य आननस्य च द्युतिः कान्तिः **ध्रुवं** निश्चितरूपेण **कुमुदोत्पलपङ्कजैः** कुमुदैः श्वेतकमलैः उत्पलैः नीलकमलै पङ्कजैः रक्तकमलैः च **चोरिता** चोरितं कृता विद्यते। अन्यथा तेषां स्मितनेत्र-

मुखानामिव चारुत्वं न जानामि भाव। स्मितद्युतिः कुमुदैः नेत्रद्युतिः नीलकमलैः मुखद्युतिश्च रक्तकमलैः चोरिता इति यथाक्रमं वर्णनादत्र यथासङ्ख्यमलङ्कारः।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में चोरी करने वाले तीन पदार्थ कुमुदिनियाँ, नीलकमल और लालकमल है तथा चुरायी गयी तीन वस्तुएँ मुस्कान की कान्ति, नेत्रों की कान्ति और मुख की कान्ति है। इस प्रकार क्रम से कुमुदिनियों ने मुस्कान की कान्ति को, नीलकमलों ने आँखों की कान्ति को और लालकमलों ने मुख की कान्ति को चुराया है- यह कथन किया गया है। यह चोरी का कथन क्रमानुसार अर्थात् सङ्ख्या के क्रम से किया गया है अतः यहाँ यथासङ्ख्य अलङ्कार है।

(प्रेयोरसवदूर्जस्वि-अलङ्कारत्रयविवेचनम्)

प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेशलम्।
ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारं युक्तोत्कर्षं च तत्त्रयम्॥२७५॥

अन्वय— प्रियतराख्यानं प्रेयः रसपेशलं रसवत् रूढाहङ्कारम् ऊर्जस्वि तत् त्रयं च उत्कोत्कर्षं युक्तं (भवितव्यम्)।

शब्दार्थ— प्रियतराख्यानं = प्रियतर (वस्तु) का वर्णन। प्रेयः = प्रेय (अलङ्कार) है। रसपेशलं = रसों की रमणीयता से युक्त (वर्णन)। रसवत् = रसवत् (अलङ्कार) है। रूढाहङ्कारं = गर्व (की अभिव्यक्ति) से युक्त (वर्णन) ऊर्जस्वी अलङ्कार (है)। तत् = वे। त्रयं = तीनों। उत्कोत्कर्षं = प्रकर्ष युक्त (होने चाहिए)।

अनुवाद— प्रियतर (वस्तु) का वर्णन प्रेय अलङ्कार है, रसों (की रमणीयता) से युक्त (वर्णन) रसवत् (अलङ्कार) है और गर्व (की अभिव्यक्ति) से युक्त (वर्णन) ऊर्जस्वी अलङ्कार है। ये तीनों (प्रेय, रसवत् और ऊर्जस्वी) उत्कर्षता से युक्त (होने चाहिए)।

संस्कृतव्याख्या— प्रेयः रसवद् ऊर्जस्वी च अलङ्कारत्रयं विवेचयत्यत्र- **प्रेयरिति**। प्रियतराख्यानं प्रियतरस्य प्रीत्यतिशयजनकस्य वस्तुनः आख्यानं वर्णनं **प्रेयः** तन्नामालङ्कारः विद्यते, **रसपेशलं** रसैः शृङ्गारादिभिः पेशलं रमणीयम् आख्यानं वर्णनं वा रसवत् तन्नामालङ्कारः; **रूढाहङ्कारं** अभिव्यक्तगर्वभावं वर्णनं **ऊर्जस्वि** तन्नामालङ्कारः। तत् अलङ्कारं **त्रयं** त्रितयं **च उत्कोत्कर्षं** प्रकर्षेण युक्तं समन्वितं भवितव्यम् इति शेषः।

विशेष—

(१) अत्यन्त प्रीतिकारक कथन प्रेयम् कहलाता है अर्थात् जिसके होने से मन में सामान्य से अधिक प्रीति व्यक्त होती है ऐसा कथन प्रेयम् कहलाता है।

(२) मन की प्रीति राग से सम्बद्ध होती है– राग दो प्रकार का होता है– (क) स्त्री पुरुष का परस्पर राग रति कहलाता है और (ख) स्वभावतः चेतन या कवि की प्रौढोक्ति से चेतन बने अन्य पदार्थों का परस्पर राग प्रीति है। इसका विषय देवता, राजा, गुरुजन, मित्र इत्यादि है। यहीं प्रीतिकारिता प्रेयः अलङ्कार का विषय है।

(३) रसवत् और ऊर्जस्वी अलङ्कारों का स्पष्टीकरण प्रेयस अलङ्कार के वाद में किया जायेगा।

(प्रेयसलङ्कारनिदर्शनम्)

अद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागते ।
कालेनैषा[१] भवेत्प्रीतिस्तवैवागमनात्पुनः ।।२७६।।

अन्वय— गोविन्द, अद्य त्वयि गृहागते मम या प्रीतिः जाता, एषा कालेन तव पुनः आगमनात् एव सम्भवः भवेत्।

शब्दार्थ— गोविन्द = हे कृष्ण। अद्य = आज। त्वयि = तुम्हारे। गृहागते = घर आने पर। या = जो। प्रीति = आनन्दानुभूति। जाता = उत्पन्न हुई है। एषा = यह (प्रीति)। कालेन = समयानुसार, कालान्तर में। तव = तुम्हारे। पुनः = फिर। आगमनात् = आने के कारण। एव = ही। सम्भवः = सम्भव। भवेत् = होगी।

अनुवाद— हे कृष्ण, तुम्हारे (मेरे) घर आने पर जो प्रीति (आनन्दानुभव, प्रसन्नता) हुई है, यह (प्रसन्नता) कालान्तर में तुम्हारे फिर (मेरे घर) आगमन के कारण ही सम्भव होगी।

संस्कृतव्याख्या— प्रेयसलङ्कारं निदशर्यत्यत्र– **अद्येति**। **गोविन्द** हे कृष्ण, **अद्य** अस्मिन्दिवसे **त्वयि** कृष्णे **गृहागते** मदीयं गेहं प्राप्ते **मम** विदुरस्य **या** अपूर्वा **प्रीतिः** आनन्दानुभूतिः **जाता** उत्पन्ना **एषा** प्रीतिः **कालेन** कालान्तरेण **तव** कृष्णस्य **पुनः** भूयः **आगमनात्** मम गृहे आगमनात् **सम्भव** उत्पन्नः **भवेत्** सम्भवेत्। अन्यस्य कस्यचिन्मित्रस्यागमनेन एतादृशी प्रीतिः न सम्भवा इत्यर्थः।

(प्रेयसलङ्कारनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्याह युक्तं[२] विदुरो नान्यत्तादृशी धृतिः ।
भक्तिमात्रसमाराध्यः सुप्रीतश्च ततो हरिः ।।२७७।।

---

(१) नैषा काले।

(२) वाक्यं।

अन्वय— इति विदुरः युक्तं आह, अन्यतः तादृशी धृतिः न। ततः च भक्तिमात्रसमाराध्यः हरिः सुप्रीतः (जातः)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। विदुरः = विदुर ने। युक्तं = समुचित। आह = कहा। अन्यतः = (कृष्ण के आगमन से) अन्य (किसी) से। ईदृशी = ऐसी (अपूर्व)। धृतिः = प्रीति, आनन्दानुभूति। न = नहीं (मिल सकती)। ततः च = और तब। भक्तिमात्रसमाराध्यः = भक्तिमात्र से समाराध्य। हरिः = भगवान् (कृष्ण)। सुप्रीतः = भलीभाँति प्रसन्न हो गये।

अनुवाद— इस प्रकार विदुर ने (कृष्ण) (के स्वागतार्थ) समुचित (वचन) कहा (क्योंकि) (कृष्ण के आगमन से) अन्य (किसी के आगमन) से ऐसी (अपूर्व) आनन्दानुभूति नहीं (मिल सकती) और तब भक्तिमात्र से समाराध्य भगवान् (कृष्ण) भलीभाँति प्रसन्न हो गये।

संस्कृतव्याख्या— प्रेयसलङ्कारस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **विदुरः युक्तं** समयानुसारं समुचितम् **आह**। यतो हि **अन्यतः** कृष्णागमनं विना कुतश्चिद् अपरतः **तादृशी** अपूर्वा **धृतिः** प्रीतिः **न** प्राप्यते। **ततः च** तस्मिन्काले च विदुरस्य भक्तियुतं कथनं श्रुत्वा **भक्तिमात्रसमाराध्यः** भक्तिमात्रेण समाराध्यः समाराधनीयः **हरिः** भगवान् कृष्णः **सुप्रीतः** सम्यक्प्रकारेण प्रसन्नः अभूत्। एवमत्र कृष्णप्रीत्यतिशयोत्पादकत्वकथनं प्रेयसलङ्कारस्य विषयः विद्यते।

विशेष—

(१) दुर्योधन से सन्धिवार्ता के लिए गये कृष्ण दुर्योधन के राजसी सम्मान को छोड़कर विदुर के यहाँ गये। तब अपने मित्र कृष्ण को देख कर विदुर अत्यधिक भावविभोर होकर आनन्दानुभूति करने लगे। उसी आनन्दानुभूति का वर्णन यहाँ किया गया है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में अवसरानुकूल विदुर के द्वारा प्रकट की गयी समुचित प्रीति के कारण कृष्ण अत्यधिक प्रसन्न हुए। अतः यहाँ कृष्ण की प्रसन्नता की अतिशयता का कथन होने से प्रेयस् अलङ्कार है।

(३) इस उदाहरण में कहने वाले की नहीं प्रत्युत अर्थ के बोध करने वाले की प्रसन्नता की अतिशयता का कथन हुआ है। कहने वाले की प्रसन्नता का कथन अगले उदाहरण में किया जाएगा।

(प्रेयसः अन्यनिदर्शनम्)

सोमः सूर्यः मरुद्भूमिर्व्योम होतानलो जलम् ।
इति मूर्तीरति[1]क्रम्य त्वां द्रष्टुं देव के वयम् ।।२७८।।

अन्वय— सोमः सूर्यः मरुत् भूमिः व्योमः होता अनलः जलम् इति मूर्तीः अतिक्रम्य देव, त्वां द्रष्टुं वयं के (स्मः)।

शब्दार्थ— सोमः = चन्द्रमा। सूर्यः = सूर्य। मरुत् = वायु। भूमिः = पृथ्वी। व्योमः = आकाश। होता = यजमान। अनल = अग्नि। जलं = जल। इति = इन मूर्तीः = आठ मूर्तियों वाले (आप) का। अतिक्रम्य = अतिक्रमण करके। देव = हे शिव। त्वां = तुमको, आपको। द्रष्टुं = देखने के लिए। वयं = हम लोग। के = कौन हैं।

अनुवाद— चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पृथ्वी, आकाश, यजमान, अग्नि और जल- इन (आपकी) (आठ) मूर्तियों का अतिक्रमण (उल्लङ्घन) करके हे शिव, आपको देखने (साक्षात्कार करने) के हम लोग कौन (अधिकारी) हैं (अर्थात् इन आप की मूर्तियों को छोड़ देने के कारण हम लोग आप के दर्शन के लिए अधिकरी नहीं हैं)।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वं बोद्धुः प्रीतियुक्तं प्रेक्षसलङ्कारम् उदाहृत्य वक्तुः प्रीतिकारकं प्रेयसलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **सोम इति**। **सोमः** चन्द्रमा **सूर्यः** दिनकरः **मरुद्** वायुः **भूमिः** पृथ्वी **व्योमः** आकाशं **होता** यजमानः **अनलः** अग्निः **जलं** इति अष्टौ **मूर्तीः** रूपाणि **अतिक्रम्य** उलङ्घ्य परित्यज्य इत्यर्थः, **देव** हे महादेव शिव; **त्वां** शिवं द्रष्टुं साक्षात्कारं कर्तुं **वयं के** स्मः, न वयं योग्याः इत्यर्थः। साक्षात्कारोऽयं तु भवतः अनुग्रहस्य विशिष्टं फलमेव विद्यते।

(प्रेयसः अन्यनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति साक्षात्कृते देवे राज्ञो यद्[2]राजवर्मणः[3] ।
प्रीतिप्रकाशनं तच्च प्रेय इत्यवगम्यताम्[4] ।।२७९।।

अन्वय— इति देवे साक्षात्कृते राजवर्मणः राज्ञः यत् प्रीतिप्रकाशनं तत् च प्रेयः अवगम्यताम्।

---

(१) रूपाण्यति-।
(२) रासोऽभूद्।
(३) रात-।
(४) इत्यनु-।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। देव = शिव का। साक्षात्कृते = साक्षात्कार कर लेने पर। राजवर्मणः = राजवर्मा। राज्ञः = राजा का। यत् = जो। प्रीतिप्रकाशनं = प्रीतिप्रकाशन (किया गया है)। तत् च = और उस (प्रीतिप्रकाशन) को। प्रेयस् = प्रेयस् (अलङ्कार)। अवगम्यतां = जानना चाहिए।

अनुवाद— इस प्रकार शिव का साक्षात्कार कर लेने पर राजवर्मा (नामक) राजा का जो प्रीति प्रकाशन है, उस (प्रीतिप्रकाशन) को प्रेयस् अलङ्कार जानना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— वक्तुः प्रीतियुतं प्रेयसलङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **देवे** शिवे **साक्षात्कृते** प्रत्यक्षरूपेण दृष्टे जाते **राजवर्मणः इति** तन्नाम्नः **राज्ञः** भूपतेः **यत् प्रीतिप्रकाशनं** प्रीतेः आनन्दानुभूतेः प्रकाशनं प्रकटनं जातं **तत् च** तदलङ्कारं च **प्रेयः इति** तन्नामालङ्कारः इति **अनुगम्यतां** ज्ञायताम्।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राजा राजवर्मा की शिव की आठ प्रत्यक्षदृष्ट मूर्तियों चन्द्रमा, सूर्य, वायु, भूमि, आकाश, यजमान, अग्नि, और जल से विशेष लगाव है। वे इन मूर्तियों को शिव का साक्षात् रूप न मानकर शिव से साक्षात्कार के लिए समाराधन करते हैं, तो ऐसे लोग साक्षात्कार करने योग्य नहीं हैं।

(२) वक्ता की आनन्दानुभूति शिव की इन्हीं आठों मूर्तियों के साक्षात्कार से होती है। यह आनन्दानुभूति स्वयं वक्ता को होती है अतः यहाँ वक्तृप्रीतियुक्त प्रेयस् अलङ्कार है।

(शृङ्गारपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

मृतेति प्रेत्य सङ्गन्तुं यया मे मरणं मतम्।
सैवावन्ती मया लब्धा कथमत्रैव जन्मनि ।।२८०।।

अन्वय— मृता इति प्रेत्य यया सङ्गन्तुं मे मरणं मतम्, कथं सा अवन्ती अत्र एव जन्मनि मया लब्धा।

शब्दार्थ— मृता = मर गयी है। इति = इस प्रकार। प्रेत्य = मर कर, परलोक में जाकर। यया = जिससे, जिसके साथ। सङ्गन्तुं = मिलने के लिए। मे = मेरा। मरणं = मरना। मतं = अभीष्ट था। कथं = कैसे। सा = वह। अवन्ती = अवन्ति-राजकुमारी (वासवदत्ता)। अत्र एव = यहाँ ही; इसी ही। जन्मनि = जन्म में। मया = मेरे द्वारा। लब्धा = प्राप्त कर ली गयी।

अनुवाद— (वह प्रिया) मर गयी है– इस प्रकार (सोचकर) (स्वयं भी) परलोक में जाकर जिससे मिलने के लिए मेरा मरना अभीष्ट था, कैसे वह अवन्तिराजकुमारी

(वासवदत्ता) इस ही जन्म में (या इसी लोक में) मेरे द्वारा प्राप्त कर ली गयी।

संस्कृतव्याख्या— शृङ्गारपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **मृतेति**। **मृता** प्रिया वासवदत्ता पञ्चत्वं समाहिता **इति** अनेन प्रकारेण निश्चित्य **प्रेत्य** स्वयमेव परलोकं गत्वा **यया** प्रियतमया सह **सङ्गन्तुं** मिलितुं **मे** मम **मरणं** परलोकगमनं **मतम्** अभीष्टम् आसीत् **कथं सा** पूर्वोक्ता प्रियतमा **अवन्ती** अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता **अत्र** अस्मिन्नेव जन्मनि लोके वा **लब्धा** प्राप्ता जाता।

(शृङ्गारपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनविश्लेषणम्)

प्राक्प्रीतिदर्शिता सेयं रतिः शृङ्गारतां गता।
रूपबाहुल्ययोगेन तदिदं रसवद्वचः ।।१८१।।

अन्वय— प्राक् प्रीतिः दर्शिता रूपबाहुल्ययोगेन सा इयं रतिः शृङ्गारतां गता तत् इदं वचः रसवत् (विद्यते)।

शब्दार्थ— प्राक् = पहले। प्रीतिः = प्रीति, प्रेम। दर्शिता = दिखलायी गयी, निरूपित की गयी। रूपबाहुल्ययोगेन = रूपों (रस के अङ्गों) की अतिशयता के योग के कारण। सा = वही। इयं = यह। रतिः = रति। शृङ्गारतां = शृङ्गारता को। गता = प्राप्त कर लिया है। तत् = इस लिए। इदं = यह। वचः = कथन। रसवत् = रसवत् (नामक अलङ्कार से युक्त है)।

अनुवाद— पहले (दो उदाहरणों) में प्रीति निरूपित की गयी है। (प्रस्तुत उदाहरण में) रूपों (अपने रसोत्पादक स्वरूपों) की अतिशयता के योग के कारण वहाँ यह (पूर्वोक्त उदाहरण में उक्त) रति (स्थायी भाव बन कर) शृङ्गारता को प्राप्त कर लिया है; इसीलिए यह कथन (रसपेशल होने के कारण) रसवत् अलङ्कार से युक्त है।

संस्कृतव्याख्या— रसवदलङ्कारस्य शृङ्गाररसपेशलं निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **प्रागिति**। **प्राक्** पूर्वस्मिन्नुदाहरणद्वये **प्रीतिः** प्रेम **दर्शिता** निरूपिता **सा इयं** पूर्वोक्ते निदर्शने प्रदर्शिता उदयननिहिता वासवदत्तामिलनरूपा **रतिः रूपबाहुल्ययोगेन** रूपाणाम् अङ्गानां रसाङ्गभूतानां विभावानुभावसञ्चरिभावानां बाहुल्यस्य विस्तारास्य योगेन संयोगेन **शृङ्गारतां** शृङ्गारत्वं **गता** प्राप्ता। यथा ह्यत्र वासवदत्ता आलम्बनविभावः उदयनविषयकः स्तम्भरोमाञ्चादयोऽनुभावाः हर्षधृत्यादयः सञ्चारिभावाः विद्यन्ते। **तत्** तस्मात्कारणात् **इदम्** एतद् शृङ्गाररसपेशलं **वचः** कथनं **रसवत्** तन्नामालङ्कारयुक्तः अस्ति।

विशेष—

(१) अवन्ति राजकुमारी वासवदत्ता के जल जाने का वृत्तान्त सुनकर उसके विरह में

व्याकुल राजा उदयन ने स्वर्गलोक में उससे मिलने के लिए मर जाना ही अभीष्ट समझा। इसमें राजा की रति का आलम्बन अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता है। उसको मिलने के लिए शरीर जैसी प्रियवस्तु का त्याग (मरण से) सात्त्विकभाव शब्दोपात्त है। मरणसम्मत होने से रति का अतिशय स्थायीभाव-जीवन से निर्वेद इत्यादि व्यभिचारी भाव सूचित है अतः यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार सूचित हो रहा है। तत्पश्चात् वासवदत्ता के अचानक मिल जाने से विप्रलम्भ के पश्चात् पूर्णतः संयोग की स्थिति बन जाती है। इस प्रकार यहाँ विप्रलम्भ से परिपुष्ट हुए सम्भोग शृङ्गार का दर्शन होता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में उदयन में निहित वासवदत्ताविषयक रति स्थायिभाव है। जहाँ वासवदत्ता आलम्बन विभाव, उसके द्वारा की गयी चेष्टाएँ उद्दीपनविभाग, स्तम्भ, रोमाञ्च इत्यादि सात्त्विकभाव के रूप में अनुभाव तथा हर्ष, धृति इत्यादि सञ्चारिभावों के योग से शृङ्गार रस का आस्वादन होता है।

(३) इस प्रकार यहाँ शृङ्गार रस से युक्त वर्णन रसवत् अलङ्कार है।

(रौद्रपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

निगृह्य केशेष्वाकृष्टा कृष्णा येनाग्रतो मम।
सोऽयं दुःशासनो पापो लब्धः[१] किं जीवति क्षणम्॥२८२॥

अन्वय— मम अग्रतः केशेषु निगृह्य येन कृष्णा आकृष्टा सः अयं पापः दुःशासनः लब्धः, किं क्षणं जीवति।

शब्दार्थ— मम = मेरे। अग्रतः = आगे से; सामने। केशेषु = बालों में। निगृह्य = पकड़ कर। येन = जिस (दुःशासन) के द्वारा। कृष्णा = द्रौपदी। आकृष्टा = खींची गयी, घसीटी गयी। सः = वह (घसीटने वाला)। अयं = यह। पापः = पापी, दुष्ट, दुरात्मा। दुःशासनः = दुःशासन। लब्धः = (मेरे द्वारा) प्राप्त कर लिया गया है, पकड़ लिया गया है। किं = क्या। क्षणं = क्षणमात्र। जीवति = जीवित रह पायेगा।

अनुवाद— मेरे (भीम के) सामने बालों को पकड़ कर जिस (दुःशासन) के द्वारा (मेरी प्रिया) द्रौपदी घसीटी गयी, वह (घसीटने वाला) यह पापी (दुष्ट) दुःशासन मेरे (भीम के) द्वारा प्राप्त कर लिया गया (पकड़ लिया गया) है (अब) क्या (यह दुष्ट) क्षणमात्र (भी) जीवित रह पायेगा (अर्थात् अब क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह पायेगा।

---

(१) दृष्टः।

संस्कृतव्याख्या— रौद्रपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **निगृह्येति**। **मम** भीमस्य **अग्रतः** सम्मुखमेव **केशेषु** शिरोरुहेषु **निगृह्य** हस्तेन धृत्वा **येन** दुःशासनेन **कृष्णा** मम प्रिया द्रौपदी **आकृष्टा** सभायाम् आकर्षिता सः कर्षणकारी **अयम्** एषः मया धृतः **पापः** दुष्टः **दुःशासनः** तन्नाम धृतराष्ट्रपुत्रः **लब्धः** मया प्राप्तः। अधुना अयं **किं क्षणं** क्षणमात्रमपि **जीवति** जीवनं धारयति, क्षणमात्रमपि न जीवतीत्यर्थः।

(रौद्रपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्यारुह्य[१] परां कोटिं क्रोधो रौद्रात्मतां गतः[२]।
भीमस्य पश्यतः शत्रुमित्येतद्रसवद्वचः॥२८३॥

अन्वय— इति शत्रुं पश्यतः भीमस्य क्रोधः परां कोटिम् आरुह्य रौद्रात्मतां गतः; इति एतत् वचः रसवत्।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। शत्रुं = शत्रु (दुःशासन) को। पश्यतः = देखते हुए। भीमस्य = भीम का। क्रोधः = क्रोध। परां कोटिं = पराकाष्ठा को। आरुह्य = चढ़ कर, प्राप्त करके, पहुँचकर। रौद्रात्मतां = रौद्रत्व को। गतः = चला गया है, प्राप्त हो गया है। इति = इस प्रकार। एतत् = यह। वचः = कथन। रसवत् = रसवत् (अलङ्कार) है।

अनुवाद— इस प्रकार शत्रु (दुःशासन) को देखते हुए भीम का क्रोध पराकाष्ठा पर पहुँकर रौद्रत्व को प्राप्त हो गया है– इस प्रकार यह रसवत् (अलङ्कार) है।

संस्कृतव्याख्या— रौद्रपेशलस्य रसवदलङ्कारस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **इतीति**। **इति** एवं **शत्रुं** दुःशासनं पश्यतः अवलोकयतः **भीमस्य** मध्यमपाण्डवस्य **क्रोधः** रोषः **परां कोटिं** पराकाष्ठाम् **आरुह्य** प्राप्य **रौद्रात्मतां** रौद्रस्य भावं **गतः** प्राप्तः **इति** अनेन प्रकारेण **एतत्** इदम् **वचः** कथनं **रसवत्** तन्नामालङ्कार विद्यते। अत्र दुःशासनः आलम्बनविभावः, द्रौपदीकेशकर्षणम् उद्दीपनविभावः पापः कथनमिदं अनुभावः प्रतीयमाना गर्वादयः सञ्चारिभावः। एतेषां रसाङ्गानां संयोगात्र रौद्ररसनिष्पत्तिः भवति अत एव रौद्रपेशलः रसवदलङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में दुःशासन आलम्बनविभाव है। उसे देखकर भीम का क्रोध स्थायिभाव, द्रौपदी के केशकर्षण इत्यादि उद्दीपनविभावों से जागृत हो गया।

---

(१) अधिरुह्य।

(२) रौद्रत्वमागतः।

दुःशासन को पापी कहने से उस समय की परवशता, कुछ न कर पाने की ग्लानि इत्यादि के कारण वर्तमान में अपना हिसाब चुकाने के लिए समय को जान कर धृति, चपलता इत्यादि व्यभिचारी भावों से भीम का दुर्योधन के प्रति क्रोध पराकाष्ठा पर जाकर रौद्ररस के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। अतः यह कथन रौद्रता से पेशल रसवत् अलङ्कार युक्त है।

(वीररसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

अजित्वा सार्णवामुर्वीमनिष्ट्वा विविधैर्मखैः ।
अदत्वा चार्थमर्थिभ्यो भवेयं पर्थिवः कथम् ।।२८४।।

अन्वय— सार्णवाम् उर्वीम् अजित्वा, विविधैः मखैः अनिष्ट्वा, अर्थिभ्यः च अर्थम् अदत्वा कथं पार्थिवः भवेयम्।

शब्दार्थ— सार्णवाम् = समुद्रों के सहित, समुद्र से घिरी हुई। उर्वीम् = पृथ्वी को। अजित्वा = न जीतकर, विना पराजित किये। विविधैः = अनेक प्रकार वाले। मखैः = यज्ञों द्वारा। अनिष्ट्वा = यजन न करके, विना यजन किये। अर्थिभ्यः च = और याचकों के लिए। अर्थ = धन को, (उनके अभीष्ट) पदार्थ को। अदत्वा = न देकर, दिये विना। कथं = कैसे। पार्थिवः = राजा, सम्राट्। भवेयं = होऊँगा।

अनुवाद— समुद्र से धिरी हुई पृथ्वी को विना जीते (पराजित किये), अनेक प्रकार के (अश्वमेघादि) यज्ञों द्वारा विना यजन किये और याचकों के लिए (उनके अभीष्ट) पदार्थ को विना दिये मैं कैसे राजा (सम्राट्) होऊँगा (अर्थात् सम्राट् नहीं कहला सकता)।

संस्कृतव्याख्या— वीररसपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **अजित्वेति**। **सार्णवाम्** अर्णवेन समुद्रेण सहितां परिमितां ससागराम् **उर्वी** पृथ्वीम् **अजित्वा** अनिर्जित्य **विविधैः** नानाप्रकारैः **मखैः** अश्वमेधादियज्ञैः **अनिष्ट्वा** यजनम् अकृत्वा **अर्थिभ्यः च** याचकेभ्यः च **अर्थं** धनं याचकाभीष्टपदार्थं वा **अदत्वा** दानं विना **कथं** केन प्रकारेण **पार्थिवः** राजा सम्राट् वा **भवेयं** भवितुं शक्यः। राजकृत्यानि इमानि कार्याणि सम्पादयित्वैव सम्राट्त्वं स्वीकरोमीति कस्यचिद् राज्यमभिलषमाणस्य कथनमिदम्।

(वीररसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्युत्साहः प्रकृष्टात्मा तिष्ठन् वीररसात्मना ।
रसत्वं गिरामासां समर्थयितुमीश्वरः ।।२८५।।

अन्वय— इति प्रकृष्टात्मा उत्साहः वीररसात्मना तिष्ठन् आसां गिरां रसत्वं समर्थयितुम् ईश्वरः।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। प्रकृष्टात्मा = प्रकृष्ट (उत्कृष्ट, परिपुष्ट) स्वरूप वाला। वीररसात्मना = वीररस के रूप से। तिष्ठन् = विद्यमान होकर। आसां = इन (तीनों)। गिरां = कथनों के। रसत्वं = रसता को, रसभाव को। समर्थयितुं = समर्थ बनाने के लिए, सिद्ध करने के लिए। ईश्वरः = समर्थ है।

अनुवाद— इस प्रकार परिपुष्ट (उत्कृष्ट) स्वरूप वाला (विजयाभिलाषी राजा में स्थित) उत्साह वीररस के रूप में विद्यमान होकर इन (तीनों) कथनों के रसभाव को सिद्ध करने के लिए समर्थ है।

संस्कृतव्याख्या— वीररसपेशलस्य रसवदलङ्कारस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इत्युत्साह इति**। **इति** अनेन प्रकारेण **प्रकृष्टात्मा** परिपुष्टस्वरूपः विजयाद्यभिलाषिणः राज्ञः युद्धधर्मदानविषयकः स्थायिभावः **उत्साहः वीररसात्मना** वीररसत्वेन **तिष्ठन्** विद्यमानः सन् **आसाम्** एतस्यां **गिरां** वाचां **रसत्वं** रसतां रसवदलङ्कारतां **समर्थयितुम्** उपपादयितुम् **ईश्वरः** समर्थः विद्यते। अत्र वीररसस्थोऽप्युत्साहो रसरूपतां प्राप्य अस्मिन्नुदाहरणे रसवदलङ्कारस्य समर्थने सक्षमः विद्यते इति भावः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में युद्धवीर, धर्मवीर और दानवीर से समन्विन युद्धवीरपेशल रसवदलङ्कार का उदाहरण दिया गया है।

(२) सागरपर्यन्त पृथ्वी को विना जीते मैं राजा कैसे बन सकता हूँ– इस कथन में विजयाभिलाषी राजा आलम्बन विभाव है। अपराजित राजाओं को पराजित करके सम्पूर्ण पृथ्वी का सम्राट् बनने की इच्छा से व्यक्त उत्साह स्थायी भाव है। शत्रु राजाओं को पराजित न करने के कारण स्वयं को राजा न मानने के कारण व्यक्त विनय इत्यादि उद्दीपन विभाव तथा स्थैर्य, शौर्य धैर्य इत्यादि अनुभाव और धृति मति गर्व इत्यादि व्यभिचारीभाव है। इनके योग से यहाँ युद्धवीर निष्पन्न होता है।

(२) राजाओं के अनुरूप अश्वमेध, राजसूय इत्यादि यज्ञों को विना किये मैं राजा कैसे बन सकता हूँ– इस कथन में युद्धवीरत्व के परिणाम स्वरूप प्राप्त सम्राट्त्व भी विवक्षित राजा को यज्ञ यजन के बिना व्यर्थ लगता है। इससे उसका धर्म के प्रति स्थायिभाव उत्साह अभिव्यक्त होता है। अतः यह धर्मवीर से आप्लावित रसवदलङ्कारयुक्त है।

(४) याचकों के प्रति दया के कारण उनके लिए किया गया द्रव्यत्याग दान कहलाता है। याचकों को धन दान दिये विना मैं राजा कैसे कहला सकता हूँ– इस कथन

में दान के लिए उत्साह व्यक्त होता है। अतः यह दानवीर से आप्लावित रसवदलङ्कार है।

(करुणरसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

यस्याः कुसुमशय्यापि कोमलाङ्ग्याः रुजाकरी ।
साधिशेते कथं देवी[१] हुताशनवतीं चिताम् ।।२८६।।

अन्वय— यस्याः कोमलाङ्ग्याः कुसुमशय्या अपि रुजाकरी (आसीत्) सा देवी हुताशनवतीं चितां कथम् अधिशेते।

शब्दार्थ— यस्याः = जिस। कोमलाङ्ग्याः = सुकुमारी के, सुकुमार अङ्गों वाली (रमणी) के लिए। कुसुमशय्या = पुष्पनिर्मितशय्या। अपि = भी। रुजाकरी = पीड़ा देने वाली, रोग उत्पन्न करने वाली। सा = वह (सुकुमारी)। देवी = देवी। हुताशनवतीं = अग्निमयी, आग की ज्वाला से युक्त। चितां = चिता पर। कथं = कैसे। अधिशेते = सोयेगी।

अनुवाद— जिस राजकुमारी के लिए पुष्पनिर्मित शय्या भी पीड़ा देने वाली थी, वह (सुकुमारी) देवी अग्निमयी (आग की ज्वाला से युक्त) चिता पर कैसे सोयेगी।

संस्कृतव्याख्या— करुणरसपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **यस्या इति**। **यस्याः कोमलाङ्ग्याः** सुकुमारगात्र्याः **कुसुमशय्या** पुष्पनिर्मिता शय्या **अपि रुजाकरी** पीडादात्री आसीत् **सा** पूर्वोक्ता सुकुमारी देवी **हुताशनवतीम्** अग्निज्वालायुतां **चितां कथं** केन प्रकारेण **अधिशेते** अधिशयनं करोति। पुष्पशय्यामपि पीड्यमानवपुषोऽति-सुकुमार्याः रमण्याः ज्वलदग्निचितायामारोहरणम् अतिकष्टकरमिति भावः।

(करुणरसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति कारुण्यमुद्रिक्तमलङ्कारतया स्मृतम् ।
तथापरेऽपि[२] बीभत्सहास्याद्भुतभयानकाः ।।२८७।।

अन्वय— इति कारुण्यम् उद्रिक्तम् अलङ्कारतया स्मृतम्। तथा अपरे अपि बीभत्सहास्याद्भुतभयानकाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। कारुण्यं = करुणता। उद्रिक्तम् = परिपुष्ट हुई, परिपुष्ट होकर। अलङ्कारतया = अलङ्कार के रूप में। स्मृतः = माना गया है। तथा =

(१) तन्वी।
(२) अथा-।

उसी प्रकार से। अपरे अपि = अन्य भी। वीभत्सहास्याद्भुतभयानकाः = वीभत्स, हास्य, अद्भुत और भयानक (से आप्लावित रसवत् होते है)।

अनुवाद— इस प्रकार (यहाँ) (शोक) (विभावादि से) परिपुष्ट होकर (और करुणरस में परिणत होकर रसवत्) अलङ्कार के रूप में माना गया है। उसी प्रकार अन्य भी वीभत्स, हास्य, अद्भुत और भयानक (रस से आप्लावित चार और रसवत्) अलङ्कार होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— करुणरसपेशलस्य रसवदलङ्कारस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेणात्र **कारुण्यं** करुणता करुणरसस्य स्थायिभावः शोक इत्यर्थः, उद्रिक्तं विभावादिभिः परिपुष्टं सद् **अलङ्कारतया** रसवदलङ्काररूपेण **स्मृतं** मतम्। अत्र हि मृता देवी आलम्बनविभावः, पुष्पशय्यादयः उद्दीपनविभावः, राज्ञः करुणकथनमनुभावः कथमित्यनेन प्रतीयमानाः चिन्तादयः व्यभिचारिभावाश्चेति तेषां- योगात्करुणरसनिष्पत्तिः जायते। तेन करुणेनाप्लावितः एषः करुणपेशलः रसवद- लङ्कारः विद्यते। **तथा** तेनैव प्रकारेण **अपरे** अन्ये **अपि वीभत्सहास्याद्भुतभयानकाः** वीभत्सः हास्यः अद्भुतः भयानकश्च रसवदलङ्कारत्वं प्राप्नोति।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में गतप्राण महादेवी आलम्बन विभाव, पुष्पशय्या इत्यादि उद्दीपन विभाव, राजा का करुण-वचन अनुभाव तथा 'कैसे' इस कथन से प्रती- यमान राजा की चिन्ता इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं। इनके संयोग से यहाँ करुण रस की निष्पत्ति होती है। अतः यहाँ करुण रस से आप्लावित रसवदलङ्कार है।

(२) जिस प्रकार से शृङ्गार, रौद्र, वीर, और करुण रस से आप्लावित रसवदलङ्कार होते हैं उसी प्रकार वीभत्स, हास्य, अद्भुत और भयानक रसों से भी आप्लावित रसवदलङ्कार होते हैं। इनका उदाहरण आगे दिया जा रहा है।

(वीभत्सरसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

पायं पायं तवारीणां शोणितं पाणिसम्पुटैः।
कौणयाः सह नृत्यन्ति कबन्धैरन्त्रभूषणाः ॥२८८॥

अन्वय— अन्त्रभूषणाः कौणपाः तव अरीणां शोणितं पाणिसम्पुटैः पायं पायं कबन्धैः सह नृत्यन्ति।

शब्दार्थ— अन्त्रभूषणाः = आँतों को आभूषण रूप में धारण किये हुए। कौणपाः = राक्षस। तव = तुम्हारे। अरीणां = शत्रुओं के। शोणितं = रक्त को। पाणिसम्पुटैः = अञ्जलियों से। पायं पायं = (बार बार) पी-पीकर। कबन्धैः =

(सिरविहीन घड़ों) के साथ। नृत्यन्ति = नाच रहे हैं।

अनुवाद— (हे राजन्) आँतों को आभूषण के रूप में धारण किये हुए (ये) राक्षस तुम्हारे शत्रुओं के रक्त को (बार बार) पी-पीकर कबन्धों (सिर-विहीन धड़ों) के साथ नाच रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— वीभत्सरसपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **पायमिति**। हे राजन् **अन्त्रभूषणाः** अन्त्राणि पुरीततः आभूषणानि अलङ्काराणि येषां तादृशाः **कौणपाः** राक्षसाः **तव** राज्ञः **अरीणां** शत्रूणां **शोणितं** रक्तं **पाणिसम्पुटैः** अञ्जलिभिः **पायं पायं** वारं वारं पीत्वा **कबन्धैः सह** शिररहितैः सक्रियैः शरीरैः सह **नृत्यन्ति** नर्तनं कुर्वन्ति। अत्र राक्षसाः आलम्बनविभावः, शोणितपानमुद्दीपनविभावः अनुभूयमानं निष्ठीवनादिकम् अनुभावः, अपस्मारग्लान्यादयः व्यभिचारिभावाः, तेषां संयोगेनात्र वीभत्सरसः निष्पन्नः भवति। तेनाप्लावितमिदं वीभत्सपेशलः रसवदलङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राक्षस आलम्बनविभाव, रक्तापान उद्दीपनविभाव, अनुभूयमान थूकना इत्यादि अनुभाव तथा अपस्मार, ग्लानि इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं। इन रसाङ्गों के संयोग से यहाँ वीभत्सरस निष्पन्न हुआ है, अतः यह वीभत्स रसपेशल रसवदलङ्कार है।

(हास्यरसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

इदमम्लानमालाया[१] लग्नं स्तनतटे तव।
छाद्यतामुत्तरीयेण नवं[२] नखपदं सखि ॥२८९॥

अन्वय— सखि, अम्लानमालायाः तव स्तनतटे लग्नं इदं नवम् नखपदम् उत्तरीयेण छाद्यताम्।

शब्दार्थ— सखि = हे सखि। अम्लानमालायाः = विना कुम्हलायी हुई माला वाली, नहीं मुरझायी है माला जिसकी ऐसे। तव = तुम्हारे। स्तनतटे = स्तनतट पर। लग्नं = लगे हुए। इदं = इस। नवं = नये। नखपदं = नाखून के चिह्न को। उत्तरीयेण = दुपट्टे से। छाद्यताम् = ढक लो।

अनुवाद— हे सखि, विना कुम्हलायी हुई (विवाहोत्सव की) माला वाली तुम्हारी स्तनतट पर लगे हुए इस नये नाखून के चिह्न को दुपट्टे से ढँक लो।

---

(१) -मानाया।
(२) द्रवं।

संस्कृतव्याख्या— हास्यरसस्पेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **इदमिति**। हे प्रियवयस्ये, **अम्लानमालायाः** आम्लानाः प्रत्यग्राः विवाहोत्सवकाले विनिर्मिता मालाः पुष्पमाला यस्याः तस्याः **तव** सख्याः **स्तनतटे** कुचप्रदेशे **लग्नं** दृश्यमानं **इदं** दृश्यमानं नवम् अभिनवं **नखपदं** नखक्षतचिह्नम् **उत्तरीयेण छाद्यतां** आच्छाद्यताम्। सद्यः विवाहितां प्रियेण सह कृतसङ्गमां काञ्चित् बालां प्रति तत्सख्याः परिहासकथनमिदम्। अत्र स्तनतटे नखक्षतेन चिह्निता नायिका आलम्बनविभावः, नखक्षतमुद्दीपनविभावः तादृशानि वचनानि अनुभावाः मदलज्जाहर्षादयः व्यभिचारिभावाः इत्येतेषां संयोगेन हासपरिपुष्टतया हास्यरसनिष्पतिः। हास्यरसपेशलत्वादत्र हास्यरसाप्लावितः रसवदलङ्कारः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण सद्यः विवाहिता नायिका आलम्बनविभाव, नखक्षत का चिह्न उद्दीपन विभाव, परिहासकथन अनुभाव तथा भावगोपन, मद, लज्जा इत्यादि व्यभिचारिभाव है। इनके संयोग से परिपुष्ट हास हास्यरसत्व को निष्पन्न करते हैं। इस प्रकार यहाँ हास्य रस से आप्लावित रसवदलङ्कार है।

(अद्भुतरसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

अंशुकानि प्रवालानि पुष्पं हारादिभूषणम्।
शाखाश्च मन्दिराण्येषां चित्रं नन्दनशाखिनाम् ।।२९०।।

अन्वय— एषां नन्दनशाखिनां प्रवालानि अंशुकानि पुष्पं हारादिभूषणं शाखाः च मन्दिराणि (इति) चित्रम्।

शब्दार्थ— एषां = इन। नन्दनशाखिनां = नन्दनवन के वृक्षों की। प्रवालानि = कोपलें, नये पल्लव। अंशुकानि = रेशमी वस्त्र (हैं)। पुष्पं = फूल। हारादिभूषणं = हार इत्यादि आभूषण (हैं)। शाखाः च = और शाखाएँ (डालियाँ)। मन्दिराणि = मन्दिर (निवास-स्थान) (हैं)। चित्रम् = (यह) आश्चर्य है।

अनुवाद— इन नन्दन वन के वृक्षों की कोपलें (ही) रेशमी वस्त्र हैं, पुष्प (फूल) ही हार इत्यादि आभूषण (हैं) और शाखाएँ (डालियाँ) ही मन्दिर (निवासस्थान) हैं- यह आश्चर्य है।

संस्कृतव्याख्या— अद्भुतरसपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **अंशुकानीति**। **एषां** पुरोदृश्यमानां **नन्दनशाखिनां** नन्दनोद्यानस्य शाखिनां वृक्षाणां **प्रवालानि** किसलयानि **अंशुकानि** क्षौमवस्त्राणि, **पुष्पं** कुसुमं **हारादिभूषणं** हारादिविविधालङ्करणं **शाखाः च** विटपाः च मन्दिराणि निवासगृहाणि विद्यन्ते इति चित्रम् आश्चर्यजनकमस्ति। अत्र

नन्दनवनवृक्षाः आलम्बनविभावाः तेषामंशुकादिमत्त्वगुणमाहात्म्यम् उद्दीपनविभावः, प्रतीयमानाः स्तम्भरोमाञ्चादयोः अनुभावाः वितर्कहर्षादयश्च व्यभिचारिभावाः विद्यन्ते । तेषां संयोगेन परिपुष्टः विस्मयस्थायिभावः अद्भुतरसत्वेन निष्पद्यते । अत एवात्र अद्भुतरसपेशलः रसवदलङ्कारः विद्यते ।

विशेष—

(१) यहाँ नन्दनवन के वृक्ष विस्मय के आलम्बन विभाव हैं और रेशमी वस्त्रमय किसलय हारादिभूषणरूप पुष्प और मन्दिरमय शाखाएँ उद्दीपन विभाव हैं। प्रतीयमान स्तम्भ, रोमाञ्च इत्यादि अनुभाव तथा वितर्क, हर्ष इत्यादि व्यभिचारिभाव हैं। इन रसाङ्गों के संयोग से परिपुष्ट हुआ स्थायिभाव विस्मय अद्भुत रस के रूप में निष्पन्न हुआ है। अतः यहाँ अद्भुत रस से आप्लावित रसवदलङ्कार है।

(भयानकरसपेशलरसवदलङ्कारनिदर्शनम्)

इदं मघोनः कुलिशं धारासन्निहितानलम् ।
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय कल्पते[१] ।।२९१।।

अन्वय— मघोनः धारासन्निहितानलं इदं कुलिशं यस्य स्मरणं दैत्यस्त्रीगर्भपाताय कल्पते ।

शब्दार्थ— मघोनः = इन्द्र का । धारासन्निहितानलं = धार पर सन्निहित अग्नि वाला, धार (अगले भाग) पर सन्निहित (विद्यमान) है अग्नि जिसके ऐसा । इदं = यह । कुलिशं = वज्र (है) । यस्य = जिसका । स्मरणं = स्मरणमात्र । दैत्यस्त्रीगर्भपाताय = दैत्यों की स्त्रियों के गर्भपात के लिए । कल्पते = सक्षम (समर्थ) है ।

अनुवाद— इन्द्र का धार (अगले भाग) पर सन्निहित (विद्यमान) अग्नि वाला यह वज्र है, जिसका स्मरणमात्र दैत्यों की स्त्रियों के गर्भपात के लिए समर्थ है ।

संस्कृतव्याख्या— भयानकरसपेशलं रसवदलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **इदमिति** । **मघोनः** इन्द्रस्य **धारासन्निहितानलं** धारायाम् अग्रभागे सन्निहितः अवस्थितः अनलः अग्निः यस्य तादृशम् **इदम्** एतत् **कुलिशं** वज्रं विद्यते **यस्य** वज्रस्य **स्मरणं** स्मृतिमात्रं **दैत्यस्त्रीगर्भपाताय** दैत्यानाम् असुराणां या स्त्रियः नार्यः तासां गर्भपाताय गर्भस्थशिशुविगलनार्थं **कल्पते** समर्थं विद्यते । अत्र इन्द्रः आलम्बनविभावाः, वज्रम् उद्दीपनविभावः गर्भपातोऽनुभावः प्रतीयमानाः आवेगसम्मोहादयःश्च व्यभिचारिभावाः । एतेषां

---

(१) जायते ।

रसाङ्गानां संयोगादत्र परिपुष्टो भय इति स्थायिभावः भयानकरसरूपेण निष्पन्नः । स एवात्र भयानकरसपेशलः रसवदलङ्कारः ।

(रसवदलङ्कारोपसंहारः)

वाक्यस्याग्राम्यतायोनिर्माधुर्ये दर्शितो रसः ।
इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम् ।।२९२।।

अन्वय— वाक्यस्य अग्राम्यतायोनिः रसः माधुर्ये दर्शितः । इह तु गिराम् अष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता ।

शब्दार्थ— वाक्यस्य = वाक्य की । अग्राम्यतायोनिः = अग्राम्यता (ग्राम्यत्वदोष की रहितता) के उत्पत्तिस्थान । रसः = रस । माधुर्ये = माधुर्यगुण (-निरूपण के प्रसङ्ग) में । दर्शितः = निरूपित किया जा चुका है । इह तु = यहाँ (अलङ्कार के प्रसङ्ग में) तो । गिरां = वाणी की । अष्टरसायत्ता = (शृङ्गारादि) आठ रसों पर आश्रित रसवत्ता = रसवद् (अलङ्कार) की सत्ता । स्मृता = प्रतिपादित की गयी है ।

अनुवाद— वाक्य की अग्राम्यता (ग्राम्यत्वदोष की रहितता) के उत्पत्तिस्थान रस माधुर्यगुण (के निरूपण के प्रसङ्ग) में निरूपित किया जा चुका है । यहाँ (अलङ्कार के प्रसङ्ग में) तो वाणी की (शृङ्गारादि) आठ रसों पर आश्रित रसवत् (अलङ्कार) की सत्ता प्रतिपादित की गयी है ।

संस्कृतव्याख्या— रसवदलङ्कारम् उपसंहरत्यत्र- **वाक्यस्येति** । **वाक्यस्य** पदसमुदायस्य **अग्राम्यतायोनिः** अग्राम्यतायाः अशिष्टतायाः योनिः उत्पत्तिस्थानं **रसः** अर्थरसः **माधुर्ये** माधुर्यगुणनिरूपणप्रसङ्गे पूर्वं **दर्शितः** निरूपितः जायते । **इह तु** अस्मिन्नलङ्कारप्रसङ्गे तु **गिरां** वाचां **अष्टरसायत्ता** शृङ्गारादिषु अष्टेषु रसेषु आयत्ता आश्रिता **रसवत्ता** रसवदलङ्कारस्य सत्ता **स्मृता** प्रतिपादिता अस्ति । माधुर्यप्रसङ्गे निरूपितः रसः माधुर्यरूपः अत्र तु शृङ्गारादिषु अष्टसङ्ख्याकेषु रसेषु अश्रितः रसवदलङ्काररूपः विद्यते इति भावः ।

विशेष—

(१) माधुर्य गुण के प्रसङ्ग (१.६२-६८) में निर्दिष्ट शब्दगत और अर्थगत रसवत्ता रसवत्काव्य से भिन्न है । शब्दगत माधुर्य रस तो प्रकृत अर्थात्मा से पूर्णतः भिन्न है किन्तु अर्थगत माधुर्य रस काव्य का गुण है और स्थायीभाव प्रकृति वाले रस से भी भिन्न है । अर्थगत माधुर्य अग्राम्यता से लभ्य होता है । उसके लिए रस का प्रयोग गौण रूप से किया जाता है ।

(२) रसवदलङ्कार के प्रसङ्ग मे शब्दार्थरूप काव्यवाणी की सरसता रति इत्यादि आठ स्थायिभावो की अभिव्यक्ति से निष्पन्न शृङ्गारादि आठ रसों पर आश्रित होती है।

(ऊर्जस्वी-अलङ्कारनिदर्शनम्)

अपकर्त्ताऽहमस्मीति हृदि ते मा स्म भूद्भयम् ।
विमुखेषु न मे खड्गः प्रहर्तुं जातु वाञ्छति ।।२९३।।

अन्वय— अहम् ते अपकर्त्ता अस्मि इति हृदि भयं मा स्म भूत्। मे खड्गः जातु विमुखेषु प्रहर्तुं न वाञ्छति।

शब्दार्थ— अहं = मैं। ते = तुम्हारा। अपकर्त्ता = अपकार करने वाला। अस्मि = हूँ। इति = इस प्रकार। हृदि = हृदय में, मन में। भयं = भय। मा स्म भूत् = नहीं होना चाहिए। मे = मेरी। खड्गः = तलवार। जातु = कभी भी। विमुखेषु = (युद्ध से) विमुख (शत्रुओं) पर। प्रहर्तुं = प्रहार करने के लिए। न वाञ्छति = नहीं चाहती है, इच्छा नहीं करती है।

अनुवाद— 'मैं (तुम्हारा) अपकार करने वाला (शत्रु) हूँ' इस प्रकार तुम्हारे हृदय में भय नहीं होना चाहिए (क्योंकि) मेरी तलवार (युद्ध से) विमुख (शत्रुओं) पर कभी भी प्रहार करने के लिए इच्छा नहीं करती है।

संस्कृतव्याख्या— ऊर्जस्विनमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **अपकर्त्तेति**। **अहं ते** तव **अपकर्त्ता** अपकारकः शत्रुः **अस्मि इति** अनेन प्रकारेण **हृदि** मनसि **भयं** त्रासः **मा स्म भूत्** न भवतु यतो हि **मे** मम **खड्गः** असिः **जातु** कदापि **विमुखेषु** युद्धस्थलात् पराङ्मुखेषु **प्रहर्तुं** प्रहारं कर्तुं **न वाञ्छति** न इच्छति। पराङ्मुखस्य हननं शास्त्रविरुद्धमत अत्र मम खड्गः त्वयि प्रहारं नैव करिष्यतीति भावः।

(ऊर्जस्वीअलङ्कारनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति मुक्तः[१] परो युद्धे निरुद्धो दर्पशालिना ।
पुंसा केनापि तज्ज्ञेयमूर्जस्वीत्येवमादिकम् ।।२९४।।

अन्वय— इति केनापि दर्पशालिना पुंसा युद्धे निरुद्धः परः मुक्तः तत् ऊर्जस्वी इति ज्ञेयम्, एवम् आदिकम् (अपि)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। केनापि = किसी भी। दर्पशालिना = अहङ्कारी। पुंसा = पुरुष के द्वारा। युद्धे = युद्ध में। निरुद्धः = रोका हुआ। परः = शत्रु।

(१) एवमुक्त्वा।

मुक्तः = छोड़ दिया गया। तत् = इस प्रकार। ऊर्जस्वी इति = ऊर्जस्वी यह ज्ञेयम् = जानना चाहिए। एवं = इसी प्रकार वाले। आदिकं = अन्य (उदाहरण) भी (समझ लिये जाने चाहिए)।

अनुवाद— इस प्रकार किसी अहङ्कारी पुरुष द्वारा युद्ध में रोका हुआ शत्रु छोड़ दिया गया। इस प्रकार ऊर्जस्वी (अलङ्कार) जानना चाहिए। इसी प्रकार वाले अन्य (उदाहरण) भी (समझ लिये जाने चाहिए)।

संस्कृतव्याख्या— ऊर्जस्विनः अलङ्कारस्य निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **इति** मुक्त इति। **इति** अनेन प्रकारेण **केनापि** केनचिदपि **दर्पशालिना** अहङ्कारसम्पन्नेन पुंसा पुरुषेण **युद्धे** समरे **निरुद्धः** अवरुद्ध **परः** शत्रुः **मुक्तः** बन्धनाद् स्वतन्त्रः कृतः। तत् तद्विधम् **ऊर्जस्वी इति** ऊर्जस्वी इति नामधेयालङ्कारं **ज्ञेयं** बोधव्यम्। **एवम्** अनेन प्रकारेण **आदिकम्** अन्यमपि रुढाहङ्कारत्वात् निदर्शनं ज्ञेयम्।

विशेष—

(१) अहङ्कार नामक सामान्य चित्तवृत्ति की उद्रिक्त रूप में अभिव्यक्ति होने पर ऊर्जस्वी नामक अलङ्कार होता है। इसका आधारदर्प होता है। उसका आलम्बन अपने से भिन्न शत्रु होता है। उसकी परवशता, हीनस्थिति, अपनी प्रशंसा का कथन करना उद्दीपक होते हैं और धृति, हर्षता, गर्व इत्यादि व्यभिचारिभाव होते हैं।

(२) यह अलङ्कार भी भाव ही है किन्तु इसका प्रियतर।ख्यान और प्रीति इत्यादि भावों का विषय नहीं, प्रत्युत अहङ्कार (गर्व) का भाव इसका विषय होता है।

(३) प्रस्तुत उदाहरण में युद्धस्थल में कायरतापूर्वक भागते (युद्धविमुख) किन्तु पकड़े गये शत्रु के प्रति विजेता पुरुष ने अपने अहङ्कार का प्रदर्शन किया है।

(४) विजेता के दर्प का आलम्बन विभाव पकड़ा गया शत्रु है। उसकी युद्धस्थल से विमुखता से अभिव्यक्त अन्यगत स्तम्भ, स्वेद, वेपथु इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। भय, त्रास इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं। अभयदान से व्यक्त गर्व सञ्चारिभाव है। उपर्युक्त विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से अभिव्यक्त होकर तथा काव्य में ऊर्जाभाव लाकर चमत्कारित करता है। अतः यहाँ ऊर्जस्वी अलङ्कार है।

(५) यहाँ वाक्य की विश्रान्ति की दृष्टि से दर्प की अभिव्यक्ति ही मुख्य है तथा विजय का उत्साह गौण हो जाता है। अतः यहाँ वीररस की निष्पत्ति नहीं है।

(पर्यायोक्तालङ्कारविवेचनम्)

इष्टमर्थ[1]मनाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धये ।
यत्प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते[2] ।।२९५।।

अन्वय— इष्टम् अर्थं साक्षात् अनाख्याय तस्य एव सिद्धये यत् प्रकारान्तराख्यानं तत् पर्यायोक्तम् इष्यते ।

शब्दार्थ— इष्टम् = अभीष्ट, विवक्षित । अर्थं = अर्थ को, वस्तु को । साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप से । अनाख्याय = न कहकर, वर्णित न करके । तस्य एव = उसी (अर्थ = वस्तु) की ही । सिद्धये = सिद्धि के लिए । यत् = जो । प्रकारान्तराख्यानं = अन्य प्रकार से द्योतन (प्रदर्शन) किया जाता है । तत् = वह । पर्यायोक्तं = पर्यायोक्त (अलङ्कार) । इष्यते = अभीष्ट होता है, कहा जाता है ।

अनुवाद— अभीष्ट (विवक्षित) अर्थ (वस्तु) को प्रत्यक्षरूप से न कहकर (वर्णित न करके) उसी (अभीष्ट वस्तु) की सिद्धि के लिए जो अन्य प्रकार से द्योतन (प्रदर्शन) किया जाता है, वह पर्यायोक्त (अलङ्कार) कहा जाता है ।

संस्कृतव्याख्या— पर्यायोक्तम् अलङ्कारं विवेचयत्यत्र- **इष्टमिति** । **इष्टम्** अभीष्टं विवक्षितम् वा **अर्थं** वस्तु **साक्षात्** प्रत्यक्षरूपेण वाच्यरूपेण वा **अनाख्याय** अकथयित्वा **तस्य एव** अभीष्टवस्तुनः **सिद्धये** निष्पत्त्यर्थं **यत् प्रकारान्तराख्यानं** प्रकारान्तरेण अन्यप्रकारेण ख्यापनं कथनं द्योतनं वा भवति **तत्** कथनमेव **पर्यायोक्तं** पर्यायोक्तालङ्कारः इति **इष्यते** कथ्यते । विवक्षितमर्थं साक्षारूपेण वाचकपदैः अनुक्त्वा चमत्कारातिशयाय प्रकारान्तरेण तत्कथनं प्रर्यायोक्तालङ्कारः कथ्यते इति भावः ।

विशेष—

(१) विवक्षित अर्थ को वाचकशब्दों द्वारा न कह कर जो अन्य प्रकार से उसका कथन किया जाता है, वह पर्यायोक्त अलङ्कार कहलाता है ।

(२) पर्यायोक्त का अर्थ है- शब्दान्तर से कथन । जिस शब्द से व्यञ्जना द्वारा विवक्षित अर्थ का कथन होता है, वह शब्दोपात्त कथन के पर्याय के रूप में होता है । इसीलिए पर्याय के रूप में कथन होने के कारण यह पर्यायोक्त अलङ्कार कहलाता है ।

---

(१) अर्थमिष्टम् ।

(२) तदीदृशम् ।

(३) इस कथन को ध्वनि या गुणीभूतव्यङ्ग्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि यहाँ वाच्यार्थ ही व्यञ्जना रूप से अभिव्यक्त होता है जबकि ध्वनि में वाच्यार्थ व्यञ्जना का विषय नहीं होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ व्यङ्ग्यार्थ भी स्पष्ट हुआ करता है अत एव वाच्यातिशायी होने के कारण इसे ध्वनि नहीं प्रत्युत उक्तिवैचित्र्य मात्र ही मानना अभीष्ट है।

(पर्यायोक्तालङ्कारनिदर्शनम्)

दशत्यसौ परभृतः सहकारस्य मञ्जरीम् ।
तमहं वारयिष्यामि युवाभ्यां स्वैरमास्यताम् ।।२९६।।

अन्वय— असौ परभृतः सहकारस्य मञ्जरीं दशति, तम् अहं वारयिष्यामि युवाभ्यां स्वैरम् आस्यताम् ।

शब्दार्थ— असौ = यह । परभृतः = कोयल । सहकारस्य = आम्रवृक्ष के मञ्जरीं = मञ्जरी को, बौर को । दशति = काट रहा है, कुतर रहा है । तम् = उसको । अहं = मैं । वारयिष्यामि = रोकती हूँ । युवाभ्यां = तुम दोनों द्वारा । स्वैरं = स्वच्छन्दतापूर्वक । आस्यताम् = बैठा जाना चाहिए ।

अनुवाद— 'वह कोयल आम्रवृक्ष के बौर को कुतर रहा है' (तब तक) मैं उस (कोयल) को (इस कुतरने के कार्य से) रोकती हूँ । तुम दोनों द्वारा (यहाँ) स्वच्छन्दतापूर्वक बैठा जाना चाहिए (अर्थात् तुम दोनों यहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक बैठो ।

संस्कृतव्याख्या—पर्यायोक्तमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **दशतीति** । **असौ** सः पुरो-दृश्यमानः **परभृतः** कोकिलः **सहकारस्य** आम्रवृक्षस्य **मञ्जरीं दशति** आस्वाद्य विनाशयति **तम्** कोकिलम् तस्माद्दशनकार्यात् **अहं** युवयोः युवकयुवत्योः सखी **वारयिष्यामि** निवारयिष्यामि तावद् **युवाभ्यां** युवकयुवतीभ्याम् अत्र **स्वैरं** स्वच्छन्दतापूर्वकं **आस्यताम्** उपविश्यताम् । अत्राहं कोकिलनिवारणार्थं गच्छामि युवाभ्यां यथेच्छं सुरतं विधीयतामिति विवक्षितमर्थं प्रकारान्तरेण चमत्कारातिशयेन कथितम्, अत एवात्र पर्यायोक्तमलङ्कारं बोधव्यम् ।

(पर्यायोक्तनिदर्शनविश्लेषणम्)

सङ्गमय्य सखीं यूना सङ्केते तद्रतोत्सवम् ।
निर्वर्तयितु[1]मिच्छन्त्या कयाप्यपसृतं ततः[2] ।।२९७।।

---

(१) प्रवर्त- ।

(२) तथा ।

अन्वय— सङ्केते सखीं यूना सङ्गमय्य तद्रतोत्सवं निर्वर्तयितुं इच्छन्त्या कया अपि ततः अपसृतः ।

शब्दार्थ— सङ्केते = सङ्केत स्थान में । सखीं = सखी को । यूना = युवक से । सङ्गमय्य = मिला करके । तद्रतोत्सवं = उनके सुरतोत्सव को । निर्वर्तयितुं = सम्पादित कराने के लिए । इच्छन्त्या = इच्छा करती हुई । कया = किसी (सखी) के द्वारा । अपि = भी । ततः = वहाँ से । अपसृतः = दूर कर दिया गया ।

अनुवाद— सङ्केत स्थान में (अपनी) सखी को (उसके प्रेमी) युवक से मिलाकर इनके सुरतोत्सव को सम्पादित कराने के लिए इच्छा करती हुई किसी (सखी) के द्वारा (कोयल निवारण के बहाने से) अपने को भी वहाँ से दूर कर दिया गया (अर्थात् उनके यथेच्छसुरत को चाहती हुई वहाँ से दूर हट गयी) ।

संस्कृतव्याख्या— पर्यायोक्तनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **सङ्गमय्येति** । **सङ्केते** सङ्केत-स्थाने **सखीं** स्ववयस्यां **यूना** तदभिमतेन युवकेन **सङ्गमय्य** सम्मेल्य **तद्रतोत्सवं** तयोः सुरतोत्सवं रहसि **निर्वर्तयितुं** सम्पादयितुं **इच्छन्त्या** अभिलषमाणया **कया अपि** कुशलया नायिकासहचर्या **ततः** तस्मात्स्थानात् परभृतवारणव्याजेन **अपसृतम्** दूरंगतम् ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में नायिका की सखी द्वारा नायक और नायिका के सुरतोत्सव रूप अभीष्ट वस्तु का प्रकारान्तर से द्योतन किया गया है । कोई सखी अपनी सखी को सङ्केतस्थान पर पहले उसके प्रेमी से मिला दिया । अब उन्हें सुरतोत्सव के लिए एकान्त प्रदान करने हेतु कोयल को रोकने के बहाने से स्वयं भी वहाँ से हट गयी । अतः यहाँ अभीष्ट वस्तु 'एकान्त में यथेच्छ सुरतोत्सव करो' को सिद्ध करने के लिए हटने की बात प्रकारान्तर से कहने के कारण पर्यायोक्त अलङ्कार है ।

(समाहितालङ्कारविवेचनम्)

किञ्चिदारभमाणस्य कार्यं दैववशात्[१] पुनः ।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहुः समाहितम् ।।२९८।।

अन्वय— किञ्चित् कार्यम् आरभमाणस्य दैववशात् पुनः या तत्साधनसमापत्तिः तत् समाहितम् आहुः ।

शब्दार्थ— किञ्चित् = किसी । कार्यं = कार्य को । आरभमाणस्य = प्रारम्भ करते हुए व्यक्ति के । दैववशात् = सौभाग्य के कारण। या = जो । तत्साधनसमापत्तिः =

---

(१) -बलात् ।

उस (कार्य) को सिद्ध करने में समर्थ साधन की उपस्थिति (विद्यमानता) हो जाती है। तत् = वह। समाहितं = समाहित (अलङ्कार)। आहुः = कहा जाता है।

अनुवाद— किसी कार्य को प्रारम्भ करते हुए व्यक्ति के सौभाग्य के कारण जो उस (कार्य) को सिद्ध करने में समर्थ साधन की समुपस्थिति (विद्यमानता) हो जाती है, वह समाहित (अलङ्कार) कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— समाहितमलङ्कारं विवेचयत्यत्र- **किञ्चिदिति**। **किञ्चित् कार्यं** कर्म **आरभमाणस्य** प्रारम्भं कर्त्तुम् उपक्रममाणस्य जनस्य **दैववशात्** सौभाग्यात् न तु कर्तुः आयासेन **पुनः** या **तत्साधनसमापत्ति** तस्य कार्यस्य सिद्धर्थम् अन्यसाधनस्य समापत्तिः समुपस्थिति भवति **तत् समाहितं** तन्नामालङ्कारः आहुः। आरब्धस्य कार्यस्य साधनाय सौभाग्यवशाद् अन्यस्य साधनस्य या उपलब्धिः जायते तत् समाहितं नामालङ्कारः इति भावः।

विशेष—

(१) प्रयोजनरूप किसी कार्य को आरम्भ कर रहे व्यक्ति को अकस्मात् सौभाग्यवश उसे सिद्ध करने वाले अन्य साधन के उपस्थित हो जाने के कारण अर्थात् अभीष्ट का उपात्त उपाय से अन्यथा दैववशात् समाधान होने के कारण समाहित अलङ्कार कहलाता है।

(२) यह अलङ्कार भी कुछ व्यङ्ग्य छाया से युक्त होता है। परवर्ती आचार्यों ने इसे समाधि अलङ्कार के नाम से प्रस्तुत किया है। कार्य की सुकरता में दैववशात् अन्य वस्तु के आ जाने के कारण समाधि अलङ्कार होता है— 'समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद् वस्त्वन्तरागमात्' (सा० द० १०.८५)।

(समाहितालङ्कारनिदर्शनम्)

मानमस्या[1] निराकर्त्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः[2]।
उपकाराय दिष्ट्यैतदुदीर्णं[3] घनगर्जितम् ।।२९९।।

अन्वय— अस्याः मानं निराकर्त्तुं पादयोः पतिष्यतः मे उपकाराय दिष्ट्या एतत् घनगर्जितम् उदीर्णम्।

शब्दार्थ— अस्याः = इसके। मानं = (प्रणयविषयक) मान को। निराकर्तुं = दूर करने के लिए, शान्त करने के लिए। पादयोः = (इसके) दोनों पैरों पर। पति-

(१) मानं तस्याः।
(२) नमस्यतः।
(३) दिष्टेदम्।

ष्यतः = गिरने जा रहे । मे = मेरे । उपकाराय = उपकार के लिए । दिष्ट्या = सौभाग्य से । एतत् = यह । घनगर्जितम् = मेघगर्जना । उदीर्णम् = हो गयी ।

अनुवाद— इस (प्रेयसी) के (प्रणयविषयक) मान को दूर करने के लिए (शान्त करने के लिए) (इसके) दोनों पैरों पर गिरने जा रहे मेरे उपकार के लिए सौभाग्य से यह मेघगर्जना हो गयी ।

संस्कृतव्याख्या— समहितमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **मानमिति** । **अस्याः** पुरोविद्यमानायाः प्रियायाः **मानं** प्रणयविषयकं कोपं **निराकर्त्तुम्** अपनोदनाय अस्याः **पादयोः** चरणयोः **पतिष्यतः** पतितुमभिलाषिणः **मे** मम **उपकाराय** अनुग्रहाय **दिष्ट्या** मम सौभाग्यात्, **एतत्** इदं सद्यः श्रूयमाणं घनगर्जितं मेघगर्जनम् **उदीर्णं** जातम् । मानिनीमाननिराकरणार्थम् उपक्रममाणस्य नायकस्य दैववशात् मेघगर्जनरूपम् अन्यं साधनं समुपस्थितमित्यत्र समाहितम् अलङ्कारः ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में नायक पर किसी बात से नाराज नायिका को मनाने के लिए वह नायक उस नायिका के चरणों में सिर झुकाना ही चाह रहा था कि तभी सौभाग्य से मेघ की गर्जना हो गयी । इस गर्जना से भयभीत नायिका अपना मान भूलकर नायक से लिपट गयी । नायक से लिपट जाना- यह व्यङ्ग्यार्थ 'उपकार' के कथन द्वारा द्योतित होता है ।

(२) नायक के अभीष्ट का साधन मेघगर्जन सौभाग्य से उपस्थित होने के कारण यहाँ समाहित अलङ्कार है ।

(उदात्तालङ्कारविवेचनम्)

आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम् ।
उदात्तं नाम तं प्राहुरलङ्कारं मनीषिणः ।।३००।।

अन्वय— आशयस्य विभूतेः वा यत् अनुत्तमं महत्त्वं तं उदात्तं नाम अलङ्कारं प्राहुः ।

शब्दार्थ— आशयस्य = आशय का, अभिप्राय का । विभूतेः वा = अथवा विभूति (ऐश्वर्य) की । यत् = जो । अनुत्तमं = अलौकिक, अद्वितीय । महत्त्वं = महानता, गौरव । तं = उसको । मनीषिणः = मनीषी लोगों ने, आचार्य लोगों ने । उदात्तं नाम = उदात्त नामक । अलङ्कारं = अलङ्कार । प्राहुः = कहा है ।

अनुवाद— आशय (अभिप्राय) अथवा विभूति (ऐश्वर्य) की अलौकिक महानता

(गौरव) का जो अलौकिक (वर्णन होता है) उस (वर्णन) को आचार्य लोगों ने उदात्त नामक अलङ्कार कहा है।

संस्कृतव्याख्या— उदात्तालङ्कारं निदर्शयत्यत्र— **आशयस्येति** । **आशयस्य** अभिप्रायस्य **विभूते वा** ऐश्वर्यस्य वा **अनुत्तमम्** अलौकिकं **महत्त्वं** गौरवं वर्णितं भवति तं वर्णनं **मनीषिणः** आचार्याः उदात्तवर्णनाद् **उदात्तं नाम** उदात्तमिति नाम **अलङ्कारं** प्राहुः । प्रस्तुतस्य अलौकिकं अभिप्रायत्वम् ऐश्वर्यत्वं वा यत्कथ्यते तत्कथनं उदात्तालङ्कारस्य विषयः इति भावः ।

विशेष—

(१) अभिप्राय अथवा ऐश्वर्य सम्पत्ति के अतिशय का वर्णन उदात्त अलङ्कार कहलाता है अर्थात् यदि प्रस्तुत वस्तु की महाशयता अथवा महैश्वर्यशालिता का वर्णन उदात्त नामक अलङ्कार होता है।

(२) उदात्त अलङ्कार दो प्रकार का होता है— (क) आशयमाहात्म्य और (ख) वैभवमाहात्म्य।

(आशयमाहात्म्योदात्तनिदर्शनम्)

गुरोः शासनमत्येतुं न शशाक स राघवः ।
यो रावणशिरच्छेदकार्यभारेऽप्यविक्लवः ।।३०१।।

अन्वय— यः रावणशिरच्छेदकार्यभारे अपि अविक्लवः सः राघवः गुरोः शासनम् अत्येतुं न शशाक ।

शब्दार्थ— यः = जो । रावणशिरच्छेदकार्यभारे = रावण के शिरों का उच्छेद करने के कार्य का भार वहन करने में । अपि = भी । अविक्लवः = व्याकुल नहीं हुए । सः = वे । राघवः = राघव, राम । गुरोः = गुरु (पिता) के । शासनं = शासन (आदेश) को । अत्येतुं = अतिक्रमण (उल्लङ्घन) करने के लिए । न शशाक = समर्थ नहीं हो सके ।

अनुवाद— जो (राम) रावण के शिरों का उच्छेद करने के कार्य के भार में व्याकुल नहीं हुए वे ही राम गुरु (पिता) के (वनगमन रूपी) (आदेश) के अतिक्रमण (उल्लङ्घन) करने के लिए समर्थ नहीं हो सके।

संस्कृतव्याख्या— आशयमाहात्म्ययुतम् उदात्तमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र— **गुरो इति** । **यः** रामः **रावणशिरच्छेदकार्यभारे** रावणस्य दशग्रीवस्य शिरसां छेदः निकृन्तनं तस्य कार्यस्य दुर्वहे भारे अपि **अविक्लवः** अव्यग्रः **सः** पूर्वोक्तः दुरुहकार्यकर्त्ता **राघवः** रामः **गुरोः** पितुः **शासनं** वनगमनरूपम् आदेशम् **अत्येतुम्** उल्लङ्घयितुं **न शशाक**

समर्थः नाभवत् । अत्रासाधारणशौर्ययुक्तस्य रामस्य विनयोत्कर्षादस्यालौकिकमाशय-माहात्म्यं वर्णितम् अत एव आशयमाहात्म्ययुतं उदात्तं नामालङ्कारः ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में रावणवधरूपी असाधारण कार्य करने वाले राम की पिता के आज्ञापालन द्वारा उनकी अलौकिक महाशयता का वर्णन हुआ है। अतः यहाँ आशयमाहात्म्ययुक्त उदात्त अलङ्कार है।

(वैभवमाहात्म्योदात्तनिदर्शनम्)

रत्नभित्तीषु[1] सङ्क्रान्तैः[2] प्रतिबिम्बशतैर्वृतः ।
ज्ञातो लङ्केश्वरः कृच्छ्रादाञ्जनेयेन तत्त्वतः ।।३०२।।

अन्वय— आञ्जनेयेन रत्नभित्तीषु सङ्क्रान्तैः प्रतिबिम्बशतैः वृतः लङ्केश्वरः कृच्छ्रात् तत्त्वतः ज्ञातः ।

शब्दार्थ— आञ्जनेयेन = हनुमान द्वारा। रत्नभित्तीषु = रत्न-खचित भित्तियों (दिवारों) पर। सङ्क्रान्तैः = प्रतिफलित। प्रतिबिम्बशतैः = सैकडों प्रतिबिम्बों से। वृत्तं = घिरा हुआ। लङ्केश्वरः = रावण। तत्त्वतः = यथार्थ रूप से। कृच्छात् = प्रयत्न-पूर्वक। ज्ञातः = जाना गया, पहचाना गया; समझा गया।

अनुवाद—हनुमान द्वारा रत्नखचित भित्तियों (दिवारों) पर प्रतिफलित सैकड़ों प्रतिबिम्बों से घिरा हुआ रावण यथार्थ रूप से प्रयत्नपूर्वक समझा (पहचाना) गया।

संस्कृतव्याख्या— वैभवमाहात्म्यम् उदात्तालङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **रत्नभित्तीष्विति**। **आञ्जनेयेन** हनुमता **रत्नभित्तीषु** रत्नखचितेषु **भित्तीषु सङ्क्रान्तैः** प्रतिफलितैः **प्रतिबिम्बशतैः** बहुभिः प्रतिमूर्तिभिः **वृतः** परिवृतः **लङ्केश्वरः** रावणः **कृच्छ्रात्** प्रयत्न-पूर्वकात् **तत्त्वतः** यथार्थरूपेण **ज्ञातः** परिज्ञातः । अत्र रावणस्य अलौकिकविभूतिमहात्म्यं वर्णितम् अत एव विभूतिमाहात्म्यं उदात्तं नामालङ्कारः ।

विशेष—

(१) रावण की सभा में मेघनाद द्वारा बाँधकर लाये गये हनुमान् ने रत्नजडित दिवारों पर पड़ते सैकड़ों प्रतिबिम्बों से घिरे हुए रावण को वास्तविक रूप से बड़े प्रयत्न-पूर्वक पहचाना। यहाँ रावण की राजसभा की रत्नजडित दिवारों के वर्णन से रावण के अलौकिक वैभव का द्योतन होता है। अतः यहाँ वैभवमाहात्म्य वाला उदात्त अलङ्कार है।

---

(१) -स्तम्भेषु ।　　(२) सङ्क्रान्त- ।

(उदात्तालङ्कारस्य निदर्शनद्वयविश्लेषणम्)

पूर्वत्राशयमाहात्म्यमत्राभ्युदयगौरवम् ।
सुव्यञ्जितमिति प्रोक्तमुदात्तद्वयमप्यदः ।।३०३।।

अन्वय— पूर्वत्र आशयमाहात्म्यम् अत्र अभ्युदयगौरवं सुव्यञ्जितम् इति अदः उदात्तद्वयम् अपि प्रोक्तम् ।

शब्दार्थ— पूर्वत्र = पूर्ववर्ती (उदाहरण) में । आशयमाहात्म्यं = आशय की गरिमा । अत्र = प्रस्तुत (उदाहरण) में । अभ्युदयगौरवं = ऐश्वर्य (वैभव) की गरिमा । सुव्यञ्जितम् = सम्यग्रूप (सुष्ठु प्रकार) से व्यञ्जित (प्रकाशित) हो रही है । इति = इस प्रकार । अदः = ये । उदात्तद्वयं = दोनों उदात्त (अलङ्कार) वाले (उदाहरण) । प्रोक्तम् = कहे गये हैं, प्रस्तुत किये गये हैं ।

अनुवाद— पूर्ववर्ती (गुरोः शासनं....) उदाहरण में आशय की गरिमा और प्रस्तुत (रत्नभित्तीषु.....) उदाहरण में ऐश्वर्य (वैभव) की गरिमा सम्यग्रूपेण व्यञ्जित (प्रकाशित) हो रही है, इस प्रकार ये दोनों (क्रमशः दोनों प्रकार के) उदात्त (अलङ्कार) वाले (उदाहरण) प्रस्तुत किये गये हैं ।

संस्कृतव्याख्या— उदात्तालङ्कारस्य निदर्शनद्वयं विश्लेषयत्यत्र- **पूर्वत्रेति** । **पूर्वत्र** 'गुरोःशासनम्' इत्यस्मिन्नुदाहरणे **आशयमाहात्म्यं** आशयस्य गौरवम् **अत्र** रत्नभित्तीष्वित्यस्मिन्नुदाहरणे **अभ्युदयगौरवं** वैभवस्य माहात्म्यं **सुव्यञ्जितम्** सम्यग्रूपेण प्रकाशितम् भवति **इति** अनेन प्रकारेण **अदः** एतत् **उदात्तद्वयं** क्रमेण आशयमाहात्म्यस्य वैभवमाहात्म्यस्य च उदात्तालङ्कारस्य निदर्शनं **प्रोक्तं** प्रस्तुतं विद्यते ।

विशेष—

(१) 'गुरोः शासनं...' इस पद्य में आशयमाहात्म्य वाले उदात्तालङ्कार को तथा 'रत्नभित्तीषु...' इस पद्य में वैभवमाहात्म्य वाले उदात्तालङ्कार को प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार उदात्तालङ्कार के आशयमाहात्म्य और वैभवमाहात्म्य- ये दो भेद हैं ।

(उपह्नुत्यलङ्कारविवेचनम्)

अपह्नुतिरपह्नुत्य किञ्चिदन्यार्थदर्शनम् ।
न पञ्चेषु स्मरस्तस्य सहस्रं पत्रिणामिति ।।३०४।।

अन्वय— किञ्चित् अपह्नुत्य अन्यार्थदर्शनम् अपह्नुतिः । (यथा-) स्मरः पञ्चेषुः न, तस्य पत्रिणां सहस्रं इति ।

शब्दार्थ— किञ्चित् = किसी को। अपहुत्य = छिपा कर। अन्यार्थदर्शनं = अन्य वस्तु को (दिखलाना)। अपह्नुतिः = अपह्नुति (अलङ्कार कहलाता है)। स्मरः = कामदेव। पञ्चेषु = पाँच बाणों वाला। न = नहीं है। तस्य = उसके। पत्रिणां = बाणों की। सहस्रं = अगणित है।

अनुवाद— किसी (प्रकृत वस्तु) को छिपाकर (उसके स्थान पर) अन्य वस्तु को प्रदर्शित करना अपह्नुति (अलङ्कार) (कहलाता है)। जैसे- कामदेव (केवल) पाँच बाणों वाला (ही) नहीं है, उसके बाणों की (सङ्ख्या) अगणित है।

संस्कृतव्याख्या— अपह्नुत्यलङ्कारं विवेचयत्यत्र- **अपह्नुति इति**। **किञ्चित्** प्रकृतं वस्तुरूपं **अपहुत्य** अनुलक्ष्य **अन्यार्थदर्शनम्** अन्यस्य अर्थस्य वस्तुनः दर्शनं व्यवस्थापनं **अपह्नुतिः** तन्नामालङ्कारः भवति। यथा- **स्मरः** कामदेवः **पञ्चेषुः** पञ्च इषवः बाणाः यस्य तादृशः **न** विद्यते प्रत्युत **तस्य** कामदेवस्य **पत्रिणां** बाणानां सङ्ख्याः **सहस्रं इति** अगणितः इति वर्तते। अत्र प्रस्तुतस्य कामबाणस्य पञ्चसङ्ख्यात्वं निषिध्य तत्र सहस्रसङ्ख्यात्वं व्यवस्थापितमत एवात्र अपह्नुतिरलङ्कारः।

विशेष—

(१) विवक्षित वस्तु के गुण, क्रिया इत्यादि धर्म को छिपा कर उसके स्थान पर अन्य गुण, क्रिया इत्यादि धर्म को व्यवस्थापित करना अपह्नुति अलङ्कार कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में कामदेव के लोकप्रसिद्ध धर्म पञ्चबाणत्व को छिपाकर उसके स्थान पर अन्य धर्म सहस्रबाणत्व की स्थापना की गयी है। अतः यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है।

(३) यहाँ वक्ता की कामपीड़ा की अधिकता व्यञ्जित हो रही है जो कि काम के गिने चुने पाँच बाणों से ही सम्भव नहीं है- यह तो तभी सम्भव हो सकता है जब उसके पास अगणित बाण होवे।

(४) दण्डी ने अपह्नुति के दो भेद माना है- (क) अतिशय की व्यङ्गता वाली अपह्नुति और (ख) औपम्यव्यङ्गता वाली अपह्नुति। अतिशय की व्यङ्गता वाली अपह्नुति भी तीन प्रकार की होती है- धर्मापह्नुति, विषयापह्नुति और स्वरूपापह्नुति।

(५) प्रस्तुत उदाहण 'न पञ्चेषु.....' में काम के धर्म 'पञ्चबाणत्व' को अपह्नुत करके अन्य धर्म सहस्रबाणत्व की स्थापना की गयी है अतः यह धर्मापह्नुति का उदाहरण है।

(विषयापह्नुतिनिदर्शनम्)

चन्दनं चन्द्रिका मन्दो गन्धवहश्च[1] दक्षिणः ।
सेयमग्निमयी सृष्टिः शीता किल[2] परान् प्रति ।।३०५।।

अन्वय— चन्दनं चन्द्रिका मन्दः च दक्षिणः गन्धवहः सा इयं सृष्टि अग्निमयी, परान् प्रति शीता किल ।

शब्दार्थ— चन्दनं = चन्दन । चन्द्रिका = चाँदनी । मन्दः च = और मन्द । दक्षिणः = दक्षिण (से आने वाला) । गन्धवहः = पवन । सा = वह । इयं = यह । सृष्टिः = (विधाता की) सृष्टि । अग्निमयी = अग्नि के समान दाहक स्वभाव वाली । किल = सम्भवतः । परान् प्रति = दूसरे लोगों के प्रति । शीता = शीतल (स्वभाव वाली) ।

अनुवाद— चन्दन, चाँदनी और मन्द दक्षिण (से आने वाला) पवन- वह यह (विधाता की) सृष्टि (मेरे लिए तो) अग्नि के समान दाहक स्वभाव वाली है। सम्भवतः दूसरे लोगों के प्रति शीतल (स्वभाव वाली) (हो सकती है)।

संस्कृतव्याख्या— विषयापह्नुतिं निदर्शयत्यत्र- **चन्दनमिति** । **चन्दनं** मलयजं **चन्द्रिका** ज्योत्स्ना, **मन्दः च** मृदुः च **दक्षिणः** दक्षिणदिक्प्रवृतः **गन्धवहः** पवनः इति **सा इयं** ब्रह्मणः **सृष्टिः** रचना मम कृते **अग्निमयी** दहनस्वभावा विद्यते । **किल** सम्भवतः **परान्** मदन्यान् जनान् प्रति **शीता** शीतलप्रकृतिः अस्ति ।

(विषयापह्नुतिनिदर्शनविश्लेषणम्)

शैशिर्यमभ्युप्रेत्यैव परेष्वात्मनि कामिना ।
औष्ण्यप्रदर्शनात्[3] तस्य सैषा[4] विषयनिह्नुतिः ।।३०६।।

अन्वय— परेषु शैशिर्यम् अभ्युप्रेत्य कामिना आत्मनि तस्य औष्ण्यप्रदर्शनात् सा एषा विषयनिह्नुति (विद्यते) ।

शब्दार्थ— परेषु = दूसरे लोगों के विषय में, दूसरे लोगों के प्रति । शैशिर्य = शीतलता को । अभ्युप्रेत्य = स्वीकार करके । कामिना = कामी व्यक्ति द्वारा । आत्मनि = अपने प्रति । तस्य = उसकी । औष्ण्यप्रदर्शनात् = ऊष्णता (दाहकता) का प्रदर्शन करने के कारण । सा = वह । एषा = यह । विषयनिह्नुतिः = विषयापह्नुति (है)।

---

(१) -वाही च ।
(२) सृष्टिर्मयि शीता ।
(३) -प्रकाशनात् ।
(४) सेयं

अनुवाद— दूसरे लोगों के प्रति (चन्दन इत्यादि की) शीतलता को स्वीकार करके (किसी) कामी व्यक्ति द्वारा अपने प्रति उस (चन्दनादि की) ऊष्णता (दाहकता) का प्रदर्शन करने के कारण वह यह विषयापह्नुति है।

संस्कृतव्याख्या— विषयापह्नुतिनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **शैशिर्यमिति**। **परेषु** अन्येषु जनेषु प्रति चन्दनादीनां **शैशिर्यं** शीतलत्वम् **अभ्युप्रेत्य** स्वीकृत्य **कामिना** केनचित् विरहकातरेण पुरुषेण **आत्मनि** स्वविषये **तस्य** चन्दनादिकस्य **औष्ण्यप्रदर्शनात्** उष्णात्वप्रकाशनात् **सा इयम्** एषा **विषयनिह्नुतिः** विषयापह्नुतिः विद्यते। अत्र चन्दनादीनां विषयं शीतलत्वम् अपह्नुत्य तत्र तापकत्वं विषयं स्थापनाद् विषयापह्नुतिः अस्तीति भावः।

विशेष—

(१) जहाँ विषय को छिपाकर उसके स्थान पर अन्य विषय को स्थापित किया जाता है, वह विषयापह्नुति अलङ्कार कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में विरही कामी व्यक्ति ने अपने से अन्य-प्रिया से संयुक्त व्यक्ति के विषय में चन्दनादि की शीतलता को स्वीकार करके अपने विषय में उन्हीं वस्तुओं की उष्णता को प्रकाशित किया है। यहाँ विषय शीतत्व का अपह्नय करके अन्य विषय उष्णत्व को स्थापित किया गया है अतः विषय के अपह्नव के कारण यहाँ विषयापह्नुति अलङ्कार है।

(स्वरूपापह्नुतिनिदर्शनम्)

अमृतस्यन्दिकिरणश्चन्द्रमा नाम नो मतः[१]।
अन्य एवायमर्थात्मा विषनिष्यन्दिदीधितिः ।।३०७।।

अन्वय— चन्द्रमाः नाम अमृतस्यन्दिकिरणः नः मतः, अयं विषनिष्यन्ददीधितिः अन्यः एव अर्थात्मा (विद्यते)।

शब्दार्थ— चन्द्रमा नाम = चन्द्रमा तो। अमृतस्यन्दिकिरणः = अमृत चुवाने वाली किरणों से युक्त। नः = हमारा। मतः = मानना है। अयं = यह। विषनिष्यन्दिदीधितिः = विष टपकाने वाली किरणों से युक्त। अन्यः एव = दूसरा ही। अर्थात्मा = पदार्थ है।

अनुवाद— चन्द्रमा तो अमृत चुवाने वाली (बरसाने वाली किरणों से युक्त होता

---

(१) नाम नामतो, नामतो मतः।

है- (ऐसा) हमारा मानना है (और) यह विष टपकाने वाली किरणों से युक्त (च-
चन्द्रमा से) अन्य ही पदार्थ है।

संस्कृतव्याख्या— स्वरूपापह्नुतिं निदर्शयत्यत्र- **अमृतेति**। **चन्द्रमाः नाम** चन्द्र
अमृतस्यन्दिकिरणः अमृतं सुधां स्यन्दन्ते किरणाः यस्य तादृशः सुधाकरकिर
सम्पन्नः भवतीति **नः** अस्माकं **मतः** विद्यते, **अयम्** एषः पुरोदृश्यमानस्तु **विषनिस्यन्दि-**
दीधितिः अमृतस्य विपरीतं विषं निष्यन्दन्ते दीधितयः किरणाः यस्य तादृशः अन्यः
चन्द्रव्यतिरिक्तः कोऽपि अपरः **अर्थात्मा** पदार्थः प्रतीयते। विरहिणां सन्तापकोऽयं चन्द्रः
नाममात्रेणामृतकरः यथार्थत्वेन तु विषकिरणः इति। अत्र चन्द्रमसः यथार्थस्वरूपं अमृत-
किरणत्वं चन्द्रत्वं अपह्नुत्य तत्र अन्यस्वरूपं विषकिरणत्वं स्थापितमत एव स्वरूपा-
पह्नुतिरियम्।

(स्वरूपापह्नुतिनिदर्शनविश्लेषणम्)

इति चन्द्रत्वमेवेन्दो[१]र्निवर्त्या[२]र्थान्तरात्मना[३] ।
उक्तः[४] स्मरार्तेनेत्येषा[५] स्वरूपाह्नुतिर्मता ।।३०८।।

अन्वय— इति स्मरार्तेन इन्दोः चन्द्रत्वं निवर्त्य अर्थान्तरात्मना उक्तः इति एषा
स्वरूपापह्नुतिः मता।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। स्मरार्तेन = (किसी) कामातुर द्वारा। इन्दोः =
चन्द्रमा के। चन्द्रत्वं = चन्द्र-स्वरूप को। निवर्त्य = निराकृत (निषिद्ध) करके।
अर्थान्तरात्मना = अन्य पदार्थ के रूप से। उक्तः = कहा गया है। इति = इसलिए।
एषा = यह। स्वरूपापह्नुति = स्वरूपापह्नुति (अलङ्कार)। मता = माना गया है।

अनुवाद— इस प्रकार (किसी विरही) कामातुर (व्यक्ति) द्वारा चन्द्रमा के
चन्द्रस्वरूप (अमृतवर्णिणी किरणों वाला होने) को निराकृत (निषिद्ध) करके अन्य
पदार्थ (विषवर्षक किरणों वाला होने) के रूप से कहा गया है, इसलिए (स्वरूप के
अपह्नय होने के कारण) यह स्वरूपापह्नुति (अलङ्कार) माना गया है।

संस्कृतव्याख्या— स्वरूपापह्नुतिं निदर्शनं विश्लेषत्यत्र- **इति चन्द्रत्वमिति**।
इति अनेन प्रकारेण **स्मरार्तेन** केनापि विरहिणा कामातुरजनेन **इन्दोः** चन्द्रमसः चन्द्रत्व

(१) एवेन्दौ।
(२) निह्नुत्या-।
(३) -त्मता।
(४) -उक्ता उक्तं।
(५) -नेत्यादि।

चन्द्रस्वरूपं सुधाकरकिरणत्वं **निवर्त्य** निराकृत्य **अर्थान्तरात्मना** अन्येन विषकरकिरण-त्वेन स्वरूपेण उक्तः उद्भावितः स्थापितः वा **इति** अत एव स्वरूपापह्नवादत्र **स्वरूपा-पह्नुतिः** तन्नामालङ्कारः **मता** आचार्यैरिति शेषः ।

विशेष—

(१) जहाँ पदार्थ के स्वरूप को छिपाकर उसके स्थान पर अन्य स्वरूप की उद्भावना की जाती है, वह स्वरूपापह्नुति अलङ्कार कहलाता है ।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में विरही कामातुर व्यक्ति द्वारा चन्द्रमा के चन्द्रत्व-स्वरूप सुधा-करकिरणत्व का निषेध करके अन्य स्वरूप विषकरकिरणत्व की उद्भावना की गयी है । इस स्वरूप के अपह्नय के कारण यहाँ स्वरूपापह्नुति अलङ्कार है ।

(३) चन्द्रमा का चन्द्रत्व आह्लादक होना है जो सुधामयकिरणों वाला होने के कारण होता है ।

(अपह्नुत्युपसंहारः)

उपमापह्नुतिः पूर्वमुपमास्वेव दर्शिता ।
इत्यपह्नुतिभेदानां लक्ष्यो लक्ष्येषु विस्तरः ।।३०९।।

अन्वय— उपमापह्नुतिः उपमासु एव पूर्वं दर्शिता, इति अपह्नुतिभेदानां विस्तरः लक्ष्येषु लक्ष्यः ।

शब्दार्थ— उपमापह्नुतिः = उपमापह्नुति (नामक अपह्नुति का भेद) । उपमासु = उपमाओं (के प्रसङ्ग) में । पूर्वं = पहले ही । दर्शिता = दिखलाया जा चुका है । इति = इस प्रकार के । अपह्नुतिभेदानां = अपह्नुति के भेदों का । विस्तरः = विस्तार । लक्ष्येषु = काव्यप्रबन्धों में । लक्ष्यः = देख लेना चाहिए ।

अनुवाद— उपमाह्नुति (नामक अपह्नुति का भेद) उपमाओं के प्रसङ्ग में पहले ही दिखलाया जा चुका है । इस प्रकार वाले अपह्नुति के भेदों का विस्तार काव्यप्रबन्धों में देख लेना चाहिए ।

संस्कृतव्याख्या— अपह्नुत्यलङ्कारम् उपसंहरत्यत्र- **उपमेति** । **उपमापह्नुतिः** तन्नामापह्नुतिभेदः **उपमासु एव** उपमानिरूपणप्रसङ्गे एव **पूर्वं दर्शिता** निदर्शिता । **इति** एवं प्रकाराणाम् **अपह्नुतिभेदानां विस्तरः** प्रपञ्चः **लक्ष्येषु** काव्यप्रबन्धेषु **लक्ष्यः** द्रष्टव्यः ।

विशेष—

(१) २.३४ में सादृश्य का प्रतिषेध करके गुणातिशय की स्थापना किये जाने का विवेचन हुआ है । यद्यपि जो सादृश्य का प्रतिषेध किया जाता है वह उपमा के

मूल गुणातिशय को ही स्थापित करता है। अतः यहाँ अपह्नुति भी उपमा की विकासिका होकर रह जाती है, प्रधानरूप से उपमा ही होती है।

(२) अपह्नुति के इस प्रकार के अन्य प्रभेदों जैसे रूपकापह्नुति, उत्प्रेक्षापह्नुति की भी उद्भावना की जा सकती है। ऐसे प्रभेदों का उदाहरण काव्यप्रबन्धों में देखना चाहिए।

(श्लेषालङ्कारनिरूपणम्)

शिलष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः ।
तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा ।।३१०।।

अन्वय— एकरूपान्वितम् अनेकार्थं वचः शिलष्टम् इष्टं तत् अभिन्नपदं भिन्नपदप्रायम् इति द्विधा (भवति)।

शब्दार्थ— एकरूपान्वितम् = समानस्वरूप से युक्त। अनेकार्थं = अनेक अर्थ वाला। वचः = कथन। शिलष्टं = शिलष्ट अथवा श्लेष। इष्टं = माना जाता है। तत् = वह (श्लेष)। अभिन्नपदं = अभिन्नपद, समानपद। भिन्नपदप्रायं = भिन्नपदप्राय। इति द्विधा = इस भेद से दो प्रकार का होता है।

अनुवाद— समानस्वरूप (वाले पद) से युक्त (किन्तु) अनेक (भिन्न) अर्थ वाला कथन शिलष्ट (अथवा श्लेष) माना जाता है। वह (श्लेष) अभिन्नपद (समानपद) और भिन्नपदप्राय भेद से दो प्रकार का होता है।

संस्कृतव्याख्या— श्लेषालङ्कारं विवेचयत्यत्र– **शिलष्टमिति**। **एकरूपान्वितं** समानस्वरूपयुक्तं परञ्च **अनेकार्थं** अभिधाद्वारा अनेकार्थप्रतिपादकं **वचः** कथन **शिलष्टं** श्लेषः इति **इष्टं** मतम् आचार्यैरिति शेषः। **तत्** शिलष्टम् **अभिन्नपदम्** अविकृतशब्दस्वरूपं **भिन्नपदप्रायं** प्रायेण पदभङ्गनिष्पाद्यं **इति** अनेन प्रकारेण **द्विधा** द्विभेदात्मकं भवति। परवर्तिनामाचार्याणां मते एतद्भेदद्वयं क्रमेण अभङ्गं सभङ्गं चेत्यभिधानेन अभिधीयते।

विशेष—

(१) स्वरूपतः समान किन्तु अनेक अर्थों वाला कथन श्लेष कहलाता है। अर्थात् एक ही कथन (= शब्द) में जहाँ अनेक अर्थ (शिलष्ट = जुड़े हुए) होते हैं, वह श्लेष कहा जाता है।

(२) श्लेष दो प्रकार का होता है– (क) अभिन्नपद (ख) भिन्नपदप्राय। वह समान स्वरूप वाला पद जिसका खण्ड किये बिना ही अनेक जुड़े हुए अर्थ निकल जाते हैं अभिन्नपद श्लेष कहलाता है तथा इसके विपरीत सुनने में समानस्वरूप

वाला वह पद जिसे खण्डित करके एकाधिक अर्थ निकाले जाते हैं भिन्नपदप्राय श्लेष कहलाता है।

(३) परवर्ती आचार्यों ने अभिन्नपद श्लेष को अभङ्गश्लेष तथा भिन्नपदप्रायश्लेष को सभङ्गश्लेष नाम से अभिहित किया है। इनके अतिरिक्त एक अन्य भेद उभयात्मकश्लेष की उद्भावना किया है जिसमें अभिन्न और सभिन्न दोनों प्रकार के श्लेषों का मिश्रण होता है।

(अभिन्नपदश्लेषनिदर्शनम्)

असौवुदयमारुढः कान्तिमान् रक्तमण्डलः ।
राजा हरति लोकस्य हृदयं मृदुभिः करैः ।।३११।।

अन्वय— उदयम् आरुढः कान्तिमान् रक्तमण्डलः असौ राजा मृदुभिः करैः लोकस्य हृदयं हरति।

शब्दार्थ— उदयम् = (राजापक्ष में) अभ्युन्नति को (चन्द्रमापक्ष में) उदयाचल पर। आरुढः = (राजापक्ष में) प्राप्त (चन्द्रमापक्ष में) विराजमान। कान्तिमान् = (राजापक्ष में) रूपसम्पन्न या सौन्दर्ययुक्त (चन्द्रमापक्ष में) कान्ति (शोभा) से सम्पन्न। रक्तमण्डलः = (राजापक्ष में) अनुरक्त है प्रजासमुदाय जिसमें ऐसा अर्थात् अनुरक्त प्रजासमूह वाला (चन्द्रमापक्ष में) अरुणमण्डल वाला। असौ = यह। राजा = राजा (और चन्द्रमा)। मृदुभिः = (राजापक्ष में) कोमल अथवा थोड़ा (चन्द्रमापक्ष में) आह्लादक। करैः = (राजापक्ष में) हाथों से (अथवा करों से) (चन्द्रमापक्ष में) किरणों से। लोकस्य = (राजापक्ष में) प्रजा के (चन्द्रमापक्ष में) समस्त संसार के। हृदयं = हृदय को। हरति = हर ले रहा है।

अनुवाद— अभ्युन्नति को प्राप्त (अभ्युदयशाली), रूपसम्पन्न (सौन्दर्ययुक्त) तथा अनुरक्त प्रजासमूह वाला यह राजा (अपने) कोमल हाथों से (अथवा थोड़े कर लेकर) प्रजा के हृदय को उसी प्रकार हर ले रहा है (जिस प्रकार) उदयाचल पर विराजमान कान्ति (शोभा) से सम्पन्न और अरुणमण्डल वाला चन्द्रमा (अपने) आह्लादक किरणों से सम्पूर्ण संसार के हृदय को मोह लेता है।

संस्कृतव्याख्या— अभिन्नपदं श्लेषं निदर्शयत्यत्र– **असाविति**। **उदयम्** अभ्युन्नतिम् **आरुढः** प्राप्तः **कान्तिमान्** रमणीयाकृतिः **रक्तमण्डलः** रक्तः अनुरक्तः मण्डलः प्रजाजनः येन तादृशः **असौ** एषः पुरोविद्यमानः **राजा** नृपतिः **मृदुभिः** अनुद्वेगकारकैः सुखप्रदैः वा **करैः** हस्ताभ्यां दानैः राजग्राह्यैः अर्थभागैः वा **लोकस्य** प्रजानां **हृदयं** मनः तथैव **हरति** स्ववशीकरोति यथा **उदयम्** उदयाचलम् **आरुढः** स्थितः **कान्तिमान्**

शोभासम्पन्नः **रक्तमण्डलः** अरुणाभमण्डलः **राजा** चन्द्रः **मृदुभिः** आह्लादकैः मधुरैः **करैः** किरणैः लोकस्य सकलसंसारस्य **हृदयं** चित्तं **हरति** मोहयति। अत्राभिन्नपदत्त्वेन पदभङ्गं विना एव राजपदवाच्यं चन्द्रतुल्यस्वभावमन्वेति। अत एव अभिन्नपदः श्लेषः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राजा और चन्द्रमा– इन दोनों से सम्बद्ध पदार्थों का अभिधान करने वाले समानाकार अभिन्न (अखण्ड) पदों का प्रयोग किया गया है अतः अभिन्नपद अर्थात् अभङ्ग श्लेष है।

(२) यहाँ शब्द का श्रवण स्वरूप में एक ही है किन्तु अर्थ एक से अधिक प्राप्त होते हैं यह अर्थ श्लेष है।

(३) ये दोनों अर्थ पद में साथ ही साथ निहित है कि प्रकरण की अपेक्षा इनकी प्रतीति पौर्वापर्य होती है। यह पौवापर्य इन दोनों पदार्थों के सादृश्य में पर्यवसित होता है। अर्थात् इस प्रकार के श्लेष से प्रकृत और अप्रकृत उपमेयोपमान सम्बन्ध स्वतः पर्यवसित हो जाता है।

(४) प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रमा को राजा के समान व्यक्त करने में कोई चमत्कारिता नहीं आती जबकि राजा की समानता चन्द्रमा से करने पर राजा की प्रजारञ्जकता आह्लादकता का अतिशय भी रमणीय रूप से व्यक्त होता है।

(भिन्नपदप्रायश्लेषनिदर्शनम्)

दोषाकरेण सम्बध्नन्नक्षत्रपथवर्तिना।
राज्ञा प्रदोषो मामित्थमप्रियं किं न बाधते ।।३१२।।

अन्वय— नक्षत्रपथवर्तिनां दोषाकरेण राज्ञा सम्बध्नन् प्रदोषः अप्रियं इत्थं किं न बाधते।

शब्दार्थ— नक्षत्रपथवर्तिना = (चन्द्रमापक्ष में) नक्षत्र के मार्ग (आकाश) में विचरण करने वाले (दुष्टजनपक्ष में) क्षत्रपथ (क्षत्रियोचित मार्ग का) अनुसरण न करने वाले। दोषाकरेण = (चन्द्रमापक्ष में) दोष (रात्रि) को करने वाले अर्थात् रजनीकर (दुष्टजनपक्ष में) दोषों के निधानभूत। राज्ञा = (चन्द्रमापक्ष में) चन्द्रमा के साथ (दुष्टजनपक्ष में) राजा के साथ। सम्बध्नन् = सम्बन्ध स्थापित किया हुआ। प्रदोषः = (चन्द्रमापक्ष में) सायंकाल (दुष्टजनपक्ष में) प्रकृष्ट दोष वाला अर्थात् दुष्ट व्यक्ति अप्रियं = (चन्द्रमापक्ष में) प्रिया से रहित (मुझको) प्रिया से वियुक्त (मुझको) (दुष्ट-

जनपक्ष में) शत्रुरूप (मुझको)। इत्थं = इस प्रकार से। किं = क्या। न बाधते = अत्यधिक पीड़ित नहीं कर रहा है।

अनुवाद— (चन्द्रपक्ष में) आकाश मार्ग में विचरण करने वाले रजनीकर चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध स्थापित किया हुआ सायंकाल प्रिय से विरहित मुझको इस प्रकार से क्या अत्यधिक पीड़ित नहीं कर है (अर्थात् अवश्य पीड़ित कर रहा है)। (दुष्टजनपक्ष में) क्षत्रियोचित मार्ग का अनुसरण न करने वाले तथा दोषों के निधानभूत, राजा के साथ सम्बन्ध स्थापित किया हुआ दुष्ट व्यक्ति शत्रुरूप मुझको क्या अधिक पीडित नहीं करता है?

संस्कृतव्याख्या— भिन्नपदप्रायं श्लेषमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **दोषाकरेणेति**। **नक्षत्रपथवर्तिना** आकाशवर्तिना **दोषाकरेण** दोषां रात्रिं करोतीति तादृशेन निशाकरेण **राज्ञा** चन्द्रमसा **सम्बध्नन्** सम्बन्धं स्थापयन् **प्रदोषः** सायंकालः **अप्रियं** प्रियाविरहितं माम् **इत्थम्** अनेन प्रकारेण **किं न बाधते** पीडयति; अवश्यमेव सन्तपयतीति भावः। कथनमिदं पदभङ्गेन दुष्टजनमप्यन्वेति। तद्यथा- **नक्षत्रपथवर्तिना** क्षत्रपथे क्षत्रियोचित-मार्गे न वर्तते इति तादृशेन **दोषाकरेण** दोषानाम् आकरेण निधानभूतेन **राज्ञा** नृपतिना **सम्बध्नन्** सम्बन्धं स्थापयन् **प्रदोषः** प्रकृष्टैः दोषैः समन्वितः अतिदुष्टजनः इति भावः, **अप्रियं** द्वेष्यं शत्रुरूपं माम् **इत्थम्** ईदृशं भृशं न पीडयति। अत्र एकरूपस्य नक्षत्र-पथवर्तिना दोषाकरेण इति पदद्वयस्य भङ्गेन भिन्नभिन्नार्थप्रतिपादकत्वात् सभङ्गश्लेषता अभिन्नपदप्रायता वा।

विशेष—

(१) सुनने में एक रूप वाले 'नक्षत्रपथवर्तिना' और 'दोषाकरेण' इन दोनों पदों के समास और सन्धि को भङ्ग करके उनके चन्द्रमा और राजा से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न दो अर्थ निकलने के कारण यहाँ भिन्नपदप्राय अथवा सभङ्ग श्लेष है।

(२) केवल 'राज्ञा' पद को विना भङ्ग किये दो अर्थ निकलने के कारण यह अभङ्गश्लेष अभिन्नपद श्लेष है।

(३) प्रस्तुत उदाहरण में एक 'राज्ञा' पद अभिन्नपद श्लेष वाला तथा 'नक्षत्रपथ-वर्तिना' और 'दोषाकरेण'- ये दो पद भिन्नपदश्लेष वाले हैं इस प्रकार यहाँ अभिन्न पद श्लेष वाले पद की अपेक्षा भिन्नपदश्लेष वाले पदों की अधिकता है। भिन्नपदश्लेष की अधिकता होने के कारण यहाँ भिन्नपदप्राय श्लेष है।

(अङ्गभूतश्लेषविवेचनम्)

उपमारूपकाक्षेपव्यतिरेकादिगोचराः ।
प्रागेव दर्शिताः श्लेषा दर्श्यन्ते केचनापरे ।।३१३।।

अन्वय— उपमारूपकाक्षेपव्यतिरेकादिगोचराः श्लेषाः प्राक् एव दर्शिताः । केचन अपरे दर्श्यन्ते ।

शब्दार्थ— उपमारूपकाक्षेपव्यतिरेकादिगोचराः = उपमा, रूपक, आक्षेप, व्यतिरेक इत्यादि (अलङ्कारों) में दृष्टिगोचर होने वाले । श्लेषाः = श्लेष (अलङ्कार) । **प्राक् एव** = पहले (तत्तदलङ्कारों के निरूपण के प्रसङ्ग में) । दर्शिताः = प्रदर्शित किये जा चुके हैं । केचन = कुछ । अपरे = अन्य (श्लेष के भेद) । **दर्श्यन्ते** = निदर्शित किये जा रहे हैं ।

अनुवाद— उपमा, रूपक, आक्षेप, व्यतिरेक इत्यादि (अलङ्कारों) में दृष्टिगोचर होने वाले श्लेष (अलङ्कार के भेद) पहले (तत्तदलङ्कारों के निरूपण के प्रसङ्ग में) ही प्रदर्शित किये जा चुके हैं । कुछ अन्य (श्लेष के भेद) निर्दिष्ट किये जा रहे हैं ।

संस्कृतव्याख्या— अन्यालङ्कारगोचरान् तदन्यांश्च श्लेषभेदान् निर्दिशत्यत्र- **उपमेति**। **उपमारूपकाक्षेपव्यतिरेकादिगोचराः** उपमागोचरः श्लेषोपमा समानोपमा च इति द्वयं, रूपकगोचरः शिलष्टरूपकम् आक्षेपगोचरः शिलष्टाक्षेपः व्यतिरेकगोचरः सश्लेषव्यतिरेकः आदिपदेन प्रयोगेण दीपकार्थान्तरन्याससमासोक्तिप्रभृतिगोचराः इति **श्लेषाः** श्लेषभेदाः **प्राक् एव** पूर्वं तत्तदलङ्कारनिरूपणप्रसङ्गे एव **दर्शिताः** निर्दिष्टाः । **अपरे** अन्ये **केचन** कतिपयाः श्लेषभेदाः **दर्श्यन्ते** निदर्शनेन प्रस्तूयन्ते ।

विशेष—

(१) उपमाश्लेष के अन्तर्गत श्लेषोपमा (२.२८) और समानोपमा (२.२९), रूपक के अन्तर्गत शिलष्टरूपक (२.८७), आक्षेप के अन्तर्गत शिलष्टाक्षेप (२.१६०) और व्यतिरेक के अन्तर्गत सश्लेषव्यतिरेक (२.१८६) का निर्देश पहले किया जा चुका है । इसके अतिरिक्त शिलष्टार्थदीपक (२.११४) श्लेषाविद्ध अर्थान्तरन्यास (२.१७०, १७४) तथा श्लेषमूलकव्याजस्तुति (२.२४५-२४६) भी द्रष्टव्य है जिनका निर्देश दण्डी ने आदिपद का प्रयोग करके किया है ।

(२) दण्डी के अनुसार श्लेष सभी वक्रोक्तिमूलक अलङ्कारों में उपस्थित होकर चमत्कार को बढाता है- 'श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्' (काव्यादर्श २.३६३) ।

अस्त्यभिन्नक्रियः कश्चिदविरुद्धक्रियोऽपरः ।
विरुद्धकर्मा[१] चास्त्यन्यः[२] श्लेषो नियमवानपि ।।३१४।।
नियमाक्षेपरूपोक्तिरविरोधी विरोध्यपि ।
तेषां निदर्शनेष्वेव रूपमावि[३]र्भविष्यति ।।३१५।।

अन्वय और शब्दार्थ— अभिन्नक्रियः = अभिन्नक्रिय । कश्चित् = कोई । अविरुद्धक्रियः = अविरुद्धक्रिय । विरुद्धकर्मा = विरुद्धक्रिय । अन्य = दूसरा । नियमवान् = नियमवान्, नियमित । नियमाक्षेपरूपोक्तिः = नियमाक्षेपरूपोक्ति । अविरोधी = अविरोधी । विरोधी अपि = और विरोधी । अस्ति = (भेद) हैं । तेषां = उनका । रूपं = स्वरूप । निदर्शनेषु = उदाहरणों में । आविर्भविष्यति = स्पष्ट होगा ।

अनवाद— अभिन्नक्रिय, अविरुद्धक्रिय, विरुद्धक्रिय, नियमाक्षेपरूपोक्ति, अविरोधी, और विरोधी (ये सात अन्य श्लेष के भेद) हैं, उनका स्वरूप उदाहरणों में स्पष्ट होगा ।

संस्कृतव्याख्या— श्लेषान्यभेदान् नामपूर्वकं निर्दिशत्यत्र– **अस्तीति** । **अभिन्नक्रियः**, **अविरुद्धक्रियः** भिन्नक्रियः **विरुद्धकर्मा** विरुद्धक्रियः, **नियमवान्**, **नियमापेक्षरूपोक्तिः**, **अविरोधी**, **विरोधी** इत्येते चेति श्लेषभेदाः । **तेषां** रूपं स्वरूपं **निदर्शनेषु** उदाहरणेषु **एव आविर्भविष्यति** स्पष्टं भविष्यति ।

(**अभिन्नक्रियश्लेषनिदर्शनम्**)

स्वभावमधुराः स्निग्धाः[४] शंसन्त्यो रागमुल्बणम् ।
दृशो दूत्यश्च कर्षन्ति कान्ताभिः प्रेषिता प्रियान्[५] ।।३१६।।

अन्वय— कान्ताभिः प्रेषिताः स्वभावमधुराः स्निग्धाः रागं शंसन्त्यः दृशः दूत्यः च प्रियान् कर्षन्ति ।

शब्दार्थ— कान्ताभिः = प्रेयसियां द्वारा । प्रेषिताः = (दृष्टिपक्ष में) फेकी गयी (दूतीपक्ष में) भेजी गयी । स्वभावमधुराः = (दृष्टिपक्ष में) स्वभाव से मनोहरी (दूतीपक्ष में) मधुर (कोमल) स्वभाव वाली । स्निग्धाः = (दृष्टिपक्ष में) स्नेहपूर्ण, प्रेमरस सम्पन्न,

---

(१) -धर्मा ।
(२) वा- ।
(३) -रूपव्यक्तिर् ।
(४) वक्रा स्वभावमधुरा, यत्र स्व-, वक्र- ।
(५) प्रियम् ।

रसीली (दूतीपक्ष में) स्नेहयुक्त प्रेमपगी। उल्बणं रागं = (दृष्टिपक्ष में) अत्यधिक रक्तता (लालिमा) (दूतीपक्ष में) अत्यधिक अनुराग को। शंसन्त्यः = (दृष्टिपक्ष में) प्रकट करती हुई (दूतीपक्ष में) प्रशंसा करती हुई, निवेदित करती हुई। दृशः = आँखे, नजरें। दूत्यः च = और दूतियाँ। प्रियान् = प्रेमियों को। कर्षन्ति = आकर्षित करती हैं।

अनुवाद— प्रेयसियों द्वारा प्रेषित (डाली गयीं = फेंकी गयीं), स्वभाव से (स्वरूप से) मधुर (मनोहारी), स्नेहयुक्त (रसीली) और उत्कट राग (अनुराग) को प्रकट हुयीं दृष्टियाँ (नजरें) तथा प्रेयसियों द्वारा भेजी गयीं स्वभाव से मधुर (कोमल अथवा स्वभाव से मधुर बोलने वाली) स्नेहयुक्त (प्रेमपगी) और उत्कट अनुराग (प्रेम-भाव) की प्रशंसा करती हुई दूतियाँ प्रेमियों को (प्रेमिका की ओर) आकर्षित करती हैं।

संस्कृतव्याख्या— अभिन्नक्रियं श्लेषं निदर्शयत्यत्र– **स्वभावेति**। **कान्ताभिः** प्रियाभिः **प्रेषिताः** प्रक्षिप्ताः **स्वशावमधुराः** स्वभावेन मनोहारिण्यः **स्निग्धाः** रसयुक्ताः प्रेमरसान्विताः वा **उल्बणं रागम्** अत्यधिकम् अनुरागं लौहित्यं वा **शंसन्त्यः** प्रकट-यन्तः **दृशः** दृष्टयः तथा च कान्ताभिः **प्रेषिताः** प्रहिताः **स्वभावमधुरा** स्वभावेन मधुर-भषिण्यः **स्निग्धाः** स्नेहयुक्ताः **उल्बणं रागम्** प्रेयसीनां तत्प्रियान् प्रति प्रवृद्धम् अनुरागं **शंसन्त्यः** प्रशंसवन्त्यः निवेदयन्तः दूत्यः च **प्रियान्** प्रियजनान् **कर्षन्ति** प्रियं प्रति आकर्षयन्ति। कर्षन्तीति क्रियायाः अभङ्गतया एकया एव क्रियया श्लिष्टैः पदैरभिहि-तानां दृष्टीनां दूतीनां च अन्वयादत्र भिन्नक्रियः श्लेषः विद्यते।

विशेष—

(१) जहाँ श्लिष्ट पदों वाले विशेषणों (धर्मो) से युक्त दो पदार्थों का एक ही क्रिया द्वारा अन्वय होता है वह अभिन्नक्रिया वाला श्लेष कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में दृष्टियों और दूतियों रूप दो पदार्थों के धर्म श्लिष्ट विशेषणों द्वारा अभिहित करके इन दोनों वाक्यों के कर्त्ताओं दृष्टियों और दूतियों का सम्बन्ध (अन्वय) एक ही क्रिया। 'कर्षन्ति = आकर्षित करतीं हैं' के द्वारा स्थापित किया गया हैं, इस प्रकार यहाँ अभिन्नक्रिय (अर्थात् एक ही क्रिया वाला) श्लेष है।

(३) दृष्टियों एवं दूतियों– इन दो कर्त्ताओं का एक ही क्रिया 'कर्षन्ति' द्वारा दीपन होने के कारण यहाँ दीपक अलङ्कार की स्थिति बनती हैं किन्तु अर्थच्छाया श्लेष के ही कारण प्ररूढ होने से यहाँ श्लेष ही प्रमुख है।

(४) रङ्गाचार्य शास्त्री के अनुसार यहाँ दृष्टि और दूती का कर्षण रूप एक क्रिया में अन्वय होने वाली तुल्ययोगिता है। वक्रादिपद में वर्त्तमान श्लेष उस तुल्ययोगिता का अङ्ग है।

(भिन्नक्रियश्लेषनिदर्शनम्)

मधुरा रागवर्धिन्यः कोमलाः कोकिलागिरः ।
आकर्ण्यन्ते मदकलाः श्लिष्यन्ते चासितेक्षणाः ।।३१७।।

अन्वय— मधुराः रागवर्धिन्यः कोमलाः कोकिलागिरः आकर्ण्यन्ते असितेक्षणाः च श्लिष्यन्ते ।

शब्दार्थ— मधुराः = (कोकिलालापपक्ष में) मीठी लगने वाली (कामिनीपक्ष में) माधुर्यवती, प्रिय लगने वाली । रागवर्धिन्यः = अनुराग को बढ़ाने वाली । कोमलाः = (कोकिलालापपक्ष में) कोमल (कामिनीपक्ष में) कोमलाङ्गी । मदकलाः = (कोकिलापपक्ष) हर्षोन्मत्त, मदमाती (कामिनीपक्ष में) सौभाग्यमद अथवा मधुपानजनितमद से सुभग लगने वाली । कोकिलागिरः = कोयल की अव्यक्त कूजन । आकर्ण्यन्ते = सुनायी पड़ रही है । असितेक्षणाः च = और श्याम नेत्रों वाली (कामिनियाँ) । श्लिष्यन्ते = (छाती से) चिपका ली जाती हैं ।

अनुवाद— कोयलो की मीठी लगने वाली, अनुराग को बढ़ाने वाली, कोमल और मदमाती अव्यक्त कूजन सुनायी पड़ रही हैं तथा माधुर्यवती (प्रिय लगने वाली), अनुराग को बढ़ाने वाली, कोमलाङ्गी और मदमाती श्याम (कजरारी) नेत्रों वाली (कामिनियाँ) (कामियों द्वारा छाती से) चिपका ली जाती हैं ।

संस्कृतव्याख्या— भिन्नक्रियं श्लेषं निदर्शयत्यत्र- **मधुराः इति**। **मधुराः** मनोहारिण्यः **रागवर्धिन्यः** उद्दीपकत्वाद् युवकयोः अनुरागोत्यादिन्यः **कोमला** अनिष्ठुराः **मदकलाः** मदसुभगाः मदोत्पादिन्यः **कोकिलागिरः** कोकिलानां गिरः अस्पष्टं कूजनं **आकर्ण्यन्ते** श्रूयन्ते । तथा च **मधुराः** माधुर्यवत्यः, **रागवर्धिन्यः** अनुरागवर्धिकाः **कोमलाः** कोमलाङ्गिन्यः **मदकलाः** मदयुक्ताः **असितेक्षणाः** श्यामनयनाः कामिन्यः **श्लिष्यन्ते** कामिनैः जनैः **आलिङ्ग्यन्ते**। अत्र आकर्ण्यन्ते श्लिष्यन्ते इति क्रियाद्वयेन श्लिष्टपदाभिहितानां कोकिलालापानां श्यामनेत्राणां कामिनीनां च पृथक्पृथग्रूपेणान्वयात् भिन्नक्रियः श्लेषः ।

विशेष—

(१) जहाँ श्लिष्ट पद वाले विशेषणों से युक्त पदार्थों का अलग-अलग क्रियाओं से अन्वय होता, वह भिन्नक्रिय श्लेष कहलाता है ।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में श्लिष्ट पद मधुराः रागवर्धिन्यः, कोमलाः और मदकलाः— इन चार विशेषणों युक्त कोकिलालापों और कामिनियों का सम्बन्ध दो अलग-

अलग क्रियाओं क्रमशः आकर्ण्यंते और श्लिष्यन्ते से स्थापित किया गया है अतः यहाँ भिन्नक्रिय श्लेष है।

(३) ज्यों हि कोकिलों ने कूजन करना शुरु किया कि त्यों हि प्रेमियों के हृदय में कूजन के कामोद्दीपक होने के कारण प्रेम अत्यधिक बढ़ गया और उन लोगों ने अपनी प्रेयासियों को छाती से चिपका लिया। इस प्रकार यह कूजन का सुनाई पड़ना 'आकर्ण्यन्ते' और प्रियाओं को छाती से लगा लेना 'श्लिष्यन्ते' दोनों क्रियाएं अविरुद्ध है अतः यहाँ अविरुद्ध क्रियश्लेष है।

(४) कोकिलो के कूजनों को सुनने और कामिनियों को चिपका लेने में कारण और कार्य का सम्बन्ध व्यक्त होता है। आलम्बन और उद्दीपन विभावों से प्रतीत होने वाला सम्भोग शृङ्गार चमत्कार की दृष्टि से श्लेष की शोभा के तुल्यबल वाला है। रङ्गाचार्य के अनुसार यहाँ भी श्लेष तुल्ययोगिता का अङ्ग है।

(विरुद्धक्रियश्लेषनिदर्शनम्)

रागमादर्शयन्नेष वारुणीयोगवर्धितम्।
पराभवति[1] घर्मांशुरङ्गजस्तु[2] विजृम्भते ।।३१८।।

अन्वय— वारुणीयोगवर्धितं रागम् आदर्शयन् एषः घर्मांशुः पराभवति अङ्गजस्तु विजृम्भते।

शब्दार्थ— वारुणीयोगवर्धितं = (सूर्यपक्ष में) पश्चिमदिशा (वारुणी) के सम्पर्क से बढ़ी हुई (कामदेवपक्ष में) मदिरा (वारुणी) के सेवन से बढ़ी हुई। रागं = (सूर्यपक्ष में) लालिमा को (कामदेवपक्ष में) आसक्ति को, अनुराग को। प्रदर्शयन् = (सूर्यपक्ष में) बिखेरता हुआ (कामदेवपक्ष में) प्रकट करता हुआ। एषः = यह। घर्मांशुः = सूर्य। पराभवति = अस्त हो रहा है। अङ्गजः तु = और कामदेव तो। विजृम्भते = समुद्दीपित हो रहा है, बढ़ रहा है, उदित हो रहा है।

अनुवाद— पश्चिमदिशा के सम्पर्क से बढ़ी हुई लालिमा को बिखेरता हुआ यह सूर्य अस्त हो रहा है और कामदेव तो मदिरा के सेवन से बढ़ी हुई आसक्ति को प्रकट करता हुआ समुद्दीपित (उदित) हो रहा है।

संस्कृतव्याख्या— विरुद्धक्रियश्लेषं निदशर्यत्यत्र– **रागमिति**। **एषः** पश्चिमदिशि पुरोदृश्यमानः **घर्मांशुः** सूर्यः **वारुणीयोगवर्धितं** वारुणीयोगेन पश्चिमदिक्सम्बन्धेन

---

(१) -पतति; तिरो- ।

(२) जश्च।

वर्धितं समेधितं **रागं** लौहित्यं **प्रदर्शयन्** विस्तारयन् **पराभवति** पराभवं प्राप्नोति, अस्तं यातीत्यर्थः परञ्च **अङ्गजः तु** कामदेवः तु **वारुणीयोगवर्धितं** वारुण्याः मदिरा-विशेषस्य योगेन पानेन वर्धितं वृद्धिं प्राप्तं **रागम्** अनुरागं रक्तिमानं वा **आदर्शयन्** प्रकटयन् **विजृम्भते** समुद्दीप्तः भवति, उदयं गच्छति। अत्र श्लिष्टपदाभिहितयोः विशेषणयुक्तयोः सूर्यकामदेवयोः क्रमेण पराभवविजृम्भणरूपाभ्यां विरुद्धक्रियाभ्यामन्वयाद् विरुद्धक्रिय-श्लेषः विद्यते।

विशेष—

(१) जहाँ श्लिष्ट विशेषणों द्वारा अभिहित दो पदार्थों का परस्परविरुद्ध क्रियाओं से अन्वय होता है वहाँ विरुद्धक्रियश्लेष अलङ्कार होता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में सूर्य और कामदेव दो पदार्थों के धर्मों का एक साथ अभिधान करने वाले श्लिष्ट विशेषणों से प्रतिपादित करके दोनों के लिए अलग-अलग परस्पर विरुद्ध क्रियाओं क्रमशः 'पराभवति' और विजृम्भते से अन्वय किया गया है। दोनों परस्पर विरुद्ध क्रियाओं से दोनों पदार्थों का अन्वय होने के कारण यहाँ विरुद्धक्रिय श्लेष है।

(३) सूर्यास्त होने पर कामदेव उद्दीप्त हो जाता है अतः यहाँ सूर्यास्त और कामोद्दीपन में कारण-कार्य-भाव सम्बन्ध है।

(सनियमश्लेषनिदर्शनम्)

निस्त्रिंशत्वमसावेव धनुष्येवास्य वक्रता।
शरेष्वेव नरेन्द्रस्य मार्गणत्वं च वर्तते ।।३१९।।

अन्वय— अस्य नरेन्द्रस्य असौ एव निस्त्रिंशत्वम्, धुनषि एव वक्रता, शरेषु च एव मार्गणत्वं वर्त्तते।

शब्दार्थ— अस्य = इस। नरेन्द्रस्य = राजा की। असौ एव = तलवार में ही। निस्त्रिंशत्वम् = तीस अङ्गुलियों से अधिक परिमाण वाला (गुण, क्रूरता, तीक्ष्णता, अनिर्दयता)। धनुषि एव = धनुष में ही। वक्रता = टेढ़ापन, कुटिलता। शरेषु च एव = और बाणों में ही। मार्गणत्वं = खोजने की प्रवृत्ति, बाणत्व। वर्तते = है।

अनुवाद— इस राजा की तलवार में ही क्रूरता (अनिर्दयता) है (हृदय में नहीं है), धनुष में ही कुटिलता (टेढ़ापन) है (स्वभाव में नहीं है) और बाणों में ही (लक्ष्य को) खोजने की प्रवृत्ति है (प्रजा में याचना की प्रवृत्ति नहीं है)।

संस्कृतव्याख्या— सनियमश्लेषं निदर्शयत्यत्र- **निस्त्रिंशत्वमिति। अस्य नरेन्द्रस्य** राज्ञः **असौ** खड्गे **एव निस्त्रिंशत्वं** निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः तस्य

भावः निंस्त्रिशत्वम् त्रिंशदङ्गुलिपरिमाणाधिकपरिमाणामत्वं निर्दयत्वं वा विद्यते हृदयं निस्त्रिशत्वं निर्दयतायाः अभावः एव, **धनुषि** शरासने एव **वक्रता** कुटिलता विद्यते स्वभावे कुटिलत्वं नास्ति, **शरेषु** बाणेषु एव **मार्गणत्वं** लक्ष्यान्वेषणत्वं बाणत्वं विद्यते, प्रजासु मार्गणत्वं याचकत्वं नास्ति। अत्र राज्ञः असिरेव क्रूरः न तु स्वभावः, धनुरेव वक्रं न तु हृदयं, बाणाः एव मार्गणाः न तु प्रजाः इत्येवं प्रयोगेण व्यवच्छेदनात्सनियम-श्लेषः विद्यते।

विशेष—

(१) जिस कथन में एक पदार्थ का अभिधान करके उसमें श्लिष्ट पद द्वारा किसी अन्य धर्म का अवधारण किया जाता है, और उस अवधारण से उस धर्म की अन्य पदार्थ में भी विद्यमानता सूचित होती है किन्तु वह विद्यमानता होती नहीं। इस प्रकार नियमन से अन्य वस्तु में अभाव-कथन होने से सनियम श्लेष कहलाता है। नियमयुक्त होने के कारण इसे नियमवान् श्लेष नाम से भी अभिहित किया जाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में तलवार इत्यादि पदार्थ का अभिधान करके उनमें उनकी निदर्यता आदि धर्मों की श्लिष्ट पदों द्वारा अवधारणा की गयी है। इस अव-धारणा से अन्य पदार्थ राजा के हृदय इत्यादि में भी निर्दयता इत्यादि धर्मों की विद्यमानता सूचित होती है किन्तु एव पद के प्रयोग द्वारा उस विद्यमानता का निराकरण कर दिया गया है। इस प्रकार नियमन से राजा के स्वभाव इत्यादि में कुटिलता इत्यादि की विद्यमानता न होने के कथन के कारण यहाँ सनियम श्लेष है।

(३) इस उदाहरण में तीन नियमवान् श्लेष दिये गये हैं– किसी प्रकृत राजा में क्रूरता, कुटिलता और प्रजाओं से धन लेने की लोभवृत्ति का अभाव। इन धर्मों के लिए निस्त्रिंशत्व, वक्रता और मार्गणत्व शब्दों का योग करके इन्हें तलवार, धनुष और बाणों में स्थित (नियमित) बताकर व्यक्त किया गया है।

(नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेषनिदर्शनम्)

पद्मानामेव दण्डेषु कण्टकस्त्वयि रक्षति।
अथवा दृश्यते रागिमिथुनालिङ्गनेष्वपि ।।३२०।।

अन्वय— त्वयि रक्षति पद्मानां दण्डेषु एव अथवा रागिमिथुनालिङ्गनेषु अपि कण्टकः दृश्यते।

शब्दार्थ— त्वयि रक्षति = आपके (पृथ्वी की) रक्षा करते रहने पर, आपके

(पृथ्वी) का शासन करने पर, आपके शासन में। पद्मानां = कमलों के। दण्डेषु एव = नालों में ही। अथवा = या। रागिमिथुनालिङ्गनेषु अपि = प्रेमीयुगल के आलिङ्गनों में भी। कण्टकः = (कमलपक्ष में) काटें (अलिङ्गनपक्ष में) रोमाञ्च। दृश्यते = दिखलायी पड़ता है।

अनुवाद— (हे राजन्) तुम्हारे शासन में केवल कमलों के नालों में ही कण्टक दिखलायी पड़ता है अथवा प्रेमीयुगल के आलिङ्गनों में भी कण्टक (रोमाञ्च) दिखलायी पड़ता है (इससे अन्यत्र आपके राज्य में कहीं कण्टक नहीं दिखलायी पड़ता)।

संस्कृतव्याख्या— नियमाक्षेपरूपोक्ति श्लेषं निदर्शयत्यत्र– **पद्मानामिति**। हे राजन्, **त्वयि** भवति **रक्षति** पृथ्वीं पालयति सति भवतः शासने इत्यर्थः, **पद्मानां** कमलानां **दण्डेषु एव** नालेषु एव **कण्टकः दृश्यते** दृष्टिगोचरं भवति **रागिमिथुनालिङ्गनेषु** रागिमिथुनस्य प्रेमीयुगलस्य आलिङ्गनेषु परिरम्भेषु अपि **कण्टकः** रोमाञ्चं **दृश्यते** अन्यत्र प्रजासु कोऽपि कण्टकः न दृश्यते। अत्र पद्मानामिति नियमस्य अथवेत्यनेन आक्षेपः अत एवात्र नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेषः विद्यते।

विशेष—

(१) किसी पदार्थ में किसी धर्म को शिलष्ट पद द्वारा नियमित करके अन्य पदार्थ में भी उसकी विद्यमानता को दिखाकर उस शिलष्ट पद द्वारा प्रतिपादित धर्म का आक्षेप किया जाता है, वह नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेष कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में कमलदण्ड के धर्म कण्टकयुक्त होने को शिलष्ट पद 'कण्टक' द्वारा नियमित करके अन्य पदार्थ प्रेमीयुगल के आलिङ्गन के धर्म रोमाञ्चयुक्त होने का भी कथन करके उसी पद के द्वारा आक्षेप किया गया है। अतः यहाँ नियमाक्षेरूपोक्ति श्लेष अलङ्कार है।

(अविरोधिश्लेषनिदर्शनम्)

महीभृद् भूरिकटकस्तेजस्वी नियतोदयः।
दक्षः प्रजापतिश्चासीत् स्वामी शक्तिधरश्च सः ।।३२१।।

अन्वय— सः भूरिकटकः महीभृत् नियतोदयः तेजस्वी प्रजापतिः दक्षः शक्तिधरः स्वामी च आसीत्।

शब्दार्थ— सः = वह। महीभृत् = (i) पृथ्वी का पालन करने वाला राजा अथवा (ii) पर्वत। भूरिकटकः = भूरि (विशाल अथवा बहुत से) कटकों [(i) अङ्गदों या सेनाओं, (ii) शृङ्गों या चोटियों] वाला। नियतोदयः = (i) निश्चित अभ्युन्नति वाला (ii) नियमिरूप से उदित होने वाला। तेजस्वी = (i) राजतेज से समुज्ज्वल,

(ii) सूर्य । दक्षः = (i) चतुर, व्यवहारनिपुण, व्यवहारकुशल (ii) दक्ष नामक । प्रजापति = (i) प्रजा का पालक, (ii) प्रजा की सृष्टि करने वाला । शक्तिधरः = (i) शक्तिमान् अथवा प्रभाव, मन्त्र और उत्साह नामक राजशक्तियों को धारण करने वाला (ii) शक्ति नामक विशेष अस्त्र को धारण करने वाला । स्वामी = (i) भूमि का स्वामी, (ii) कार्तिकेय । असीत् = था ।

अनुवाद— वह महीभृत् (पृथ्वी का पालन करने वाला) (राजा) भूरिकटक (विशाल अङ्गदों या सेनाओं से युक्त) था; (वह) नियतोदय (निश्चित अभ्युन्नति) वाला और तेजस्वी (तेजयुक्त, शूरवीर) था, (वह) दक्ष (व्यवहारकुशल) प्रजापति (प्रजा का पालक) था, (वह) शक्तिधर (शक्तिमान् अथवा मन्त्र और उत्साह नामक राजशक्तियों को धारण करने वाला) स्वामी (भूमि-स्वामी) था । (अन्य अर्थ-) वह भूरिकटक (विशाल या बहुत चोटियों वाला) महीभृत् (पर्वत) था, (वह) नियतोदय (नियमितरूप से उदित होने वाला) तेजस्वी (सूर्य) था, वह प्रजापति (प्रजा को उत्पन्न करने वाला) दक्ष (नामक) प्रजापति था, (वह) शक्तिधरः (शक्ति नामक विशेष अस्त्र को धारण करने वाला) स्वामी (कार्त्तिकेय) था ।

संस्कृतव्याख्या— अविरोधिश्लेषं निदर्शयत्यत्र- **महीभृदिति** । **सः** विवक्षितः **भूरिकटकः** विशालङ्गदयुक्तः विशालसैन्ययुक्तः वा पक्षे विपुलशृङ्गयुतः **महीभृत्** पृथ्वीपालकः पक्षे पर्वतः, **नियतोदयः** प्रतिदिनं निश्चितरूपेण जायमानाभ्युदययुक्तः पक्षे नियमानुसारं प्रतिदिवसं उदयमापन्नः **तेजस्वी** प्रतापवान् शूरवीरो वा पक्षे सूर्यः **प्रजापत्तिः** प्रजापालकः पक्षे प्रजोत्पादकः **दक्षः** व्यवहारकुशलः पक्षे दक्षनामकः **प्रजापतिः**, **शक्तिधरः** शक्तिमान् पक्षे शक्त्याख्यस्य अस्त्रविशेषस्य धारणकर्त्ता **स्वामी** प्रभुः कार्त्तिकेयः आसीत् । महीभृदादिश्लिष्टपदार्थानां परस्पराविरुद्धतया कथनेनात्र अविरोधिश्लेषालङ्कारः ।

विशेष—

(१) जहाँ प्रयुक्त श्लिष्ट पदों के अर्थ में परस्पर विरोध नहीं होता, वह अविरोधिश्लेष कहलाता है ।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में 'सः' इस सर्वनाम से प्रकृत राजा के वर्णन में ऐसे विशेष्यों और विशेषणों का प्रयोग हुआ है जिससे राजा और पर्वत, राजा और सूर्य, राजा और प्रजापति दक्ष तथा राजा और कार्तिकेय- इन अर्थों के अनुकूल (विरोध से रहित) अनेक वाच्यार्थों का बोध होता है । सर्वत्र विवक्षित राजा उपमेय तथा पर्वतादि उपमान हैं । इन अर्थों से राजा में पर्वत आदि के समान अडिगता आदि की व्यञ्जना होती है ।

(३) इन श्लिष्ट पदों के अर्थों में परस्पर अनुकूलता है— विरोध नहीं, अतः अविरोधिश्लेष अलङ्कार है।

(विरोधिश्लेषनिदर्शनम्)

अच्युतोऽप्यवृषोच्छेदी[१] राजाप्यविदितक्षयः ।
देवोऽप्यविबुधो जज्ञे शङ्करोऽप्यभुजङ्गवान् ।।३२२।।

अन्वय— अच्युतः अपि अवृषोच्छेदी, राजा अपि अविदितक्षयः, देवः अपि अविबुधः, शङ्करः अपि अभुजङ्गवान् जज्ञे।

शब्दार्थ— अच्युतः अपि = (i) विष्णु होते हुए भी (ii) (सुमार्ग से) अविचलित होते हुए भी। अवृषच्छेदी = (i) वृष नामक राक्षस का विनाशक नहीं था, (ii) धर्म (वृष) का अच्छेदक (विनाशक) नहीं था। राजा अपि = (i) चन्द्रमा होकर भी, (ii) राजा होकर भी। अविदितक्षयः = (i) क्षीणता से रहित था। (ii) धन-क्षय से रहित था। देवः अपि = (i) देवता होकर भी, (ii) दिव्य प्रभाव वाला होकर भी। अविबुधः = विद्वानों से रहित नहीं था (ii) देव (बुध) से रहित था। शङ्करः अपि = (i) लोक-कल्याणकारक होकर भी (ii) शङ्कर होकर भी। अभुजङ्गवान् = (i) दुष्टजनों (भुजङ्गों) से रहित (ii) सर्पों से असेवित। जज्ञे = था।

अनुवाद— (आभासमान अर्थ– विरोध युक्त) वह विष्णु होते हुए भी वृष नामक राक्षस का विनाशक नहीं था, चन्द्रमा होते हुए भी क्षीणता से रहित था, देवता होकर भी देव से रहित था, और शङ्कर होकर भी सर्पों से सेवित नहीं था। (वास्तविक विरोधरहित अर्थ) वह सुमार्ग से अविचलित रहते हुए धर्म का विनाशक नहीं (अर्थात् धर्म का रक्षक) था, राजा होते हुए भी धनक्षय से रहित था, दिव्य प्रभाववाला होते हुए भी विद्वानों से रहित नहीं था और लोक कल्याणकारक होते हुए भी दुष्टजनों से रहित था।

संस्कृतव्याख्या— विरोधिश्लेषं निदर्शयत्यत्र– **अच्युत इति**। भासमानोऽर्थः **अच्युतः** विष्णुः **अपि अवृषोच्छेदी** वृषाख्यस्य राक्षसस्य अविनाशकः, **राजा** चन्द्रमाः अपि **अविदितक्षयः** अज्ञातापचयः अक्षीयमाणः वा **देवः अपि** सुरः अपि अविबुधः सुरमित्रः, **शङ्करः** शिवः अपि **अभुजङ्गवान्** असर्पयुक्तः कोऽपि **जज्ञे** अभूत्। इत्यस्मिन्नर्थे अच्युतोऽपि न वृषच्छेदीत्यादिरूपो विरोधः यतो ही विष्णुः वृषच्छेदी विद्यते। एवं हि चन्द्रः क्षयशीलः देवो विबुधः शङ्करश्च भुजङ्गवानिति प्रसिद्धः। वास्तविकोऽर्थस्त्वेवम्– सः विवक्षितः पुरुषः धर्ममार्गाद् **अच्युतः** अभ्रष्टः **अवृषोच्छेदी** अधर्मो-

---

(१) –वृषच्छेदी ।

च्छेदकरः, **राजा** च सन् **अविदितक्षयः** अज्ञातसम्पत्क्षयः **देवः** दिव्यप्रभाव... **अविबुधः** विद्वज्जनसंसर्गयुक्तः **शङ्करः** लोककल्याणकारकः **अभुजङ्गवान्** अ... अदुष्टजनैः सज्जनैः युक्तः **जज्ञे** अभूत्। आभाससमानेऽर्थे विरोधितत्त्वानां प्रदर्श... विरोधिश्लेषः विद्यते।

विशेष—

(१) जहाँ श्लिष्ट पद के आभासमान अर्थ में परस्पर विरोध प्रतीत होता है, ... विरोधीश्लेष अलङ्कार कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में जब अच्युतादि पदों के श्लेष द्वारा विष्णु इत्यादि अर्थ ... जाते हैं तो तब 'अवृषच्छेदी' आदि विशेषणयुक्त श्लिष्ट पदों से वि... प्रतीत होता है। इसी विरोध के भासमान होने के कारण यहाँ विरोधी श्ले... अलङ्कार है।

(विशेषोक्त्यलङ्कारविवेचनम्)

गुणजातिक्रियादीनां यत्तु[1] वैकल्यदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरिष्यते ।।३२३।।

अन्वय— विशेषदर्शनाय एव गुणजातिक्रियादीनां यत् वैकल्यदर्शनं सा विशे- षोक्तिः इष्यते।

शब्दार्थ— विशेषदर्शनाय एव = विशेष (अतिशय) के प्रदर्शन के लिए ही। गुणजातिक्रियादीनां = गुण, जाति, क्रिया इत्यादि (और द्रव्य) का। यत् = जो। वैकल्यदर्शनं = अभाव दिखलाया जाता है। सा = वह। विशेषोक्तिः = विशेषोक्ति। इष्यते = कहीं जाती है।

अनुवाद— (कार्यविषयक) विशेष (अतिशय) के प्रदर्शन के लिए गुण, क्रिया, जाति इत्यादि (और द्रव्य) का जो अभाव दिखलाया जाता है, वह विशेषोक्ति कह- लाता है।

संस्कृतव्याख्या— विशेषोक्त्यलङ्कारं विवेचयत्यत्र– **गुणजातीति**। **विशेषदर्शनाय** विशेषस्य कार्योत्पत्तिरूपस्य कार्यविषयस्य वा अतिशयस्य **दर्शनाय** ज्ञापनाय **गुणजाति- क्रियादीनां** गुणस्य जातेः क्रियायाः आदिपदेन द्रव्यस्य इति ज्ञातव्यम्, **यत् वैकल्य- दर्शनं** वैकल्यस्य अभावस्य अनपेक्षायाः वा प्रकाशनं **सा विशेषोक्ति** विशेषप्रतिपत्ति- मूलत्वात् तन्नामालङ्कारः **इष्यते**। अतिशयोक्त्यलङ्कारे वस्तुनः अतिशयं प्रकाश्यते, न

(१) यत्र, यत्तद्।

तु वैकल्यं परञ्च विशेषोक्त्यलङ्कारे अतिशयप्रकाशनाय गुणादीनां वैकल्यं प्रकाशितं भवति इत्यनयोर्भेदः। एवमेव विभावनायां स्वाभाविकं कारणान्तरं वा विभाव्यते न तु वैकल्यम्।

विशेष—

(१) जहाँ विवक्षित वस्तु की विशेषता (अतिशयता) को प्रदर्शित करने के लिए गुण, जाति, क्रिया और द्रव्य का अभाव दिखलाया जाता है तो वह विशेषोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

(२) गुण इत्यादि की अभावता के आधार पर चार भेद किये जाते हैं– गुणाभाव, जात्यभाव, क्रियाभाव, और द्रव्याभाव।

(३) हेतु आदि के कथन से इनमें अतिरिक्त शोभा आ जाती है। अतः विशेषोक्ति में वर्ण्यविषय की विशेषता व्यक्त होने के मूल आधार गुण, क्रिया इत्यादि हैं। हेतु आदि का कथन तो विशेष शोभा को उत्पन्न करता है। ये हेत्वादिकथन विशेषोक्ति के चारों ही भेदों में सम्भव है। इस प्रकार विशेषोक्ति के चारों भेदों के पुनः दो दो भेद हो जाते हैं– अहेतुकथन और सहेतुकथन।

(४) परवर्ती आचार्यों ने कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य का न होना विशेषोक्ति माना है– 'सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्तिः' (सा० द० १०.१७)।

(५) अतिशयोक्ति अलङ्कार में वस्तु की अतिशयता का प्रकाशन होता है, वैकल्य का नहीं जबकि विशेषोक्ति में वैकल्य का प्रकाशन होता है।

(६) इसी प्रकार विभावना में कार्य के लिए अन्य कारण लक्षित होता है, वैकल्य नहीं। वैकल्य का कथन होना ही विभावना से इसका भेद है।

(गुणवैकल्यरूपविशेषोक्तिनिदर्शनम्)

न कठोरं न वा तीक्ष्णमायुधं पुष्पधन्वनः।
तथापि जितमेवासीदमुना भुवनत्रयम्॥३२४॥

अन्वय— पुष्पधन्वनः आयुधं न कठोरं न वा तीक्ष्णम् तथापि अमुना भुवनत्रयं जितम् एव आसीत्।

शब्दार्थ— पुष्पधन्वनः = कामदेव का। आयुधं = अस्त्र। कठोरं = न तो कठोर है। न वा तीक्ष्णं = और न तो तीक्ष्ण ही है। तथापि = तो भी। अमुना = इसके द्वारा। भुवनत्रयं = तीनों लोक। जितं = जीत लिया गया, पराजित कर दिया गया। आसीत् = था, है।

अनुवाद— कामदेव का अस्त्र न तो कठोर है और न तो तीक्ष्ण ही है तथापि उसके द्वारा तीनों लोक पराजित कर दिया गया है।

संस्कृतव्याख्या— गुणवैकल्यरूपां विशेषोक्तिं निदर्शयत्यत्र– **न कठोरमिति** **पुष्पधन्वनः** कामदेवस्य **आयुधम्** अस्त्रं बाणं **न कठोरं** न कठिनं **न वा तीक्ष्णं** नापि निशितम् अस्ति **तथापि अमुना** अनेन कामदेवेन **भुवनत्रयं** लोकत्रयं **जितं** पराजितम् एव **आसीत्**। अत्र कामदेवस्यास्त्रे कठोरतीक्ष्णत्वयोः गुणयोः अभावः दर्शितः तत्र अभावदर्शनं त्रिलोकजयकार्यविषयस्य दर्शनाय वर्णितम् अत एवात्र गुणवैकल्यरूपा विशेषोक्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में कामदेव के त्रिभुवन-विजय कार्य की विशेषता (अतिशयता) को बतलाया गया है। यद्यपि कामदेव के बाणों में कठोरता और तीक्ष्णता गुण का अभाव है तथापि इस अभाव के होते हुए भी उसने तीनों लोकों को पराजित कर दिया है। इस प्रकार यहाँ कामदेव के त्रिभुवन-विजय कार्य की विशेषता व्यक्त हो रही है। अतः यहाँ गुणवैकल्यरूपा विशेषोक्ति है।

(जातिवैकल्यरूपविशेषोक्तिनिदर्शनम्)

न देवकन्यका नापि गन्धर्वकुलसम्भवा।
तथाप्येषा तपोभङ्गं विधातुं वेधसोऽप्यलम् ॥३२५॥

अन्वय— एषा न देवकन्यका नापि गन्धर्वकुलसम्भवा तथापि बेधसः अपि तपोभङ्गं विधातुम् अलम्।

शब्दार्थ— एषा = यह (युवती)। न देवकन्यका = न देवकन्या है। नापि = और न गन्धर्वकुलसम्भवा = गन्धर्वकुल में उत्पन्न (अप्सरा) है। तथापि = तो भी वेधसः = ब्रह्मा की। तपोभङ्गं = तपस्या-भङ्ग। विधातुं = करने के लिए। अलम् = समर्थ है।

अनुवाद— यह (नायिका) न देवकन्या है और न गन्धर्वकुल में उत्पन्न (अप्सरा) है तथापि ब्रह्मा की तपस्या को भङ्ग करने के लिए समर्थ है।

संस्कृतव्याख्या— जातिवैकल्यरूपां विशेषोक्तिं निदर्शयत्यत्र– **न देवकन्येति**। **एषा** पुरोदृश्यमाना नायिका **न देवकन्यका** न देवानां कन्या अस्ति **नापि** न तु **गन्धर्वकुलसम्भवा** गन्धर्वाणां कुले जाता अप्सरा अस्ति **तथापि वेधसः** ब्रह्मणः **तपोभङ्गं** विघ्नं **विधातुं** कर्तुम् **अलं** समर्था विद्यते। देवत्वगन्धर्वत्वाभावेऽपि ब्रह्मणः तपस्याभञ्जनसामर्थ्य कथनेनात्र युवत्याः रूपगुणातिशयः प्रतीयते। अत्र मानुषीविशेषे

देवगन्धर्वजात्योरभावः प्रदर्शितः, अत एव जातिवैकल्यम् विशेषोक्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) यद्यपि नायिका में देवजातित्व और गन्धर्वजातित्व का अभाव है, फिर भी वह ब्रह्मा की तपस्या को भङ्ग करने में समर्थ है, इस कथन से नायिका के रूपातिशय धर्म को अभिव्यञ्जित किया गया है, अतः यहाँ जातिवैकल्यरूपा विशेषोक्ति है।

(क्रियावैकल्यरूपविशेषोक्तिनिदर्शनम्)

न बद्धा भृकुटि[1]र्नापि स्फुरितो दशनच्छदः।
न च रक्ताभवद् दृष्टिर्जितं[2] च[3] द्विषतां बलम्[4] ।।३२६।।

अन्वय— भृकुटिः न बद्धा, नापि दशनन्छदः स्फुरितः, न च दृष्टिः रक्ता अभवत् द्विषतां बलं च जितम्।

शब्दार्थ— भृकुटिः = भ्रूभङ्ग, भौहे। न बबद्धा = टेढ़ी न हुई। न अपि = न तो। दशनच्छदः = ओंठ, अधर। स्फुरितः = फड़का, स्फुरित हुआ। न च = और न तो। दृष्टिः = आँखें ही। रक्ता = लाल। अभवत् = हुईं। द्विषतां = शत्रुओं की। बलं = सेना। जितं = जीत लिया गया, पराजित कर दिया गया।

अनुवाद— (राजा की) भौहें टेढी नहीं हुई, न तो अधर (ओठ) ही स्फुरित हुए और न तो आँखें लाल हुईं (फिर भी उसके द्वारा) शत्रुओं की सेना जीत ली गयी।

संस्कृतव्याख्या— क्रियावैकल्यां विशेषोक्तिं निदर्शयत्यत्र– **न बद्धेति**। कस्यचिद् राजानः वर्णनमिदम्। तस्य राज्ञः **भृकुटिः** भ्रूभङ्गः **न बद्धा** व्रक्रतां न गता, **न अपि** न तु **दशनच्छदः** अधरः **स्फुरितः** कम्पितः **न च** न चापि **दृष्टिः** नेत्रं **रक्ता** क्रोधेन लौहित्ययुक्ता **अभवत्** जाता परञ्च तेन **द्विषतां** शत्रूणां **बलं** सैन्यं **जितम्** पराजितं जातम्। अत्र शत्रुशैन्यजये भ्रूभङ्गादिक्रियायाः अभावः वर्णितः। तेन वर्णनेन प्रकृतस्य राज्ञः प्रतापस्य अतिशयरूपं विशेषं कथनात् क्रियावैकल्या विशेषोक्तिः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में शत्रुसेना की विजय में भ्रूभङ्गिमा इत्यादि क्रिया का अभाव दिखलाया गया है। यह अभाव वर्णन राजा के प्रताप की अतिशयतारूप विशेष अर्थ को लक्षित करता है, अतः क्रियावैकल्यरूप विशेषोक्ति है।

(१) भ्रू-।
(२) ध्वस्तं।
(३) तद्।
(४) कुलम्।

(द्रव्यवैकल्यरूपविशेषोक्तिनिदर्शनम्)

न रथा न च मातङ्गा न हया न च पत्तयः ।
स्त्रीणामपाङ्गदृष्ट्यैव जीयते जगतां त्रयम् ।।३२७।।

अन्वय— न रथाः, न च मातङ्गाः, न हया, न च पत्तयः, स्त्रीणाम् अपाङ्गदृष्ट्या एव जगतां त्रयं जीयते।

शब्दार्थ— न रथाः = न रथ हैं। न च मातङ्गाः = न तो हाथी हैं। न हयाः = न घोड़े हैं, न च पत्तयः = और न ही पैदल सेनाएँ है। स्त्रीणां = स्त्रियों के। अपाङ्गदृष्ट्या = कटाक्षपात द्वारा। एव = ही। जगतां त्रयं = त्रिभुवन। जीयते = जीत लिया जाता है, पराजित कर दिया जाता है।

अनुवाद— न रथ हैं, न तो हाथी हैं, न घोड़े हैं और न ही पैदल सेनाएं हैं (किन्तु) स्त्रियों के कटाक्षपात के द्वारा ही त्रिभुवन जीत लिया जाता है।

संस्कृतव्याख्या— द्रव्यवैकल्यरूपविशेषोक्तिं निदर्शयत्यत्र– **न रथा इति**। **न रथाः** स्यन्दनाः **न च मातङ्गाः** गजाः **न हयाः** अश्वाः **न च पत्तयः** पदातयः एषामभावेऽपि **स्त्रीणां** युवतीनां **अपाङ्गदृष्ट्या** कटाक्षपातेन **एव जगतां त्रयम्** भुवनत्रयं जीयते वशीक्रियते। स्त्रीकटाक्षपातानां त्रिभुवनवशीकरणसामर्थ्यातिशयस्य प्रदर्शनाय त्रिभुवनजये रथादिद्रव्याणामभावः दर्शितः अत एवात्र द्रव्यवैकल्यरूपा विशेषोक्तिः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में त्रिभुवन के विजय के लिए अपेक्षित रथादि द्रव्यों का अभाव प्रदर्शित किया गया है। इस वर्णन से विश्व के वशीकरण के लिए स्त्रियों के कटाक्षपात् की अतशियता का प्रतिपादन हुआ है, अतः यहाँ द्रव्याभावरूप विशेषोक्ति है।

(विशेषोक्तेःविकल्पान्तरनिदर्शनम्)

एकचक्रो रथो यन्ता विकलो विषमा हयाः ।
आक्रमत्येव तेजस्वी तथाप्यर्को[1] जगत्त्रयम्[2] ।।३२८।।

अन्वय— रथः एकचक्रः, यन्ता विकलः, हयाः विषमाः तथापि तेजस्वी अर्कः जगत्त्रयं आक्रमति एव।

---

(१) -प्येको।
(२) नभस्तलम्।

शब्दार्थ— रथः = रथ। एकचक्रः = एक पहिए वाला। यन्ता = सारथि (अरुण)। विकलः = विकल, जाँघ-रहित। हयाः = घोड़े। विषमाः = विषम संख्या वाले (सात)। तथापि = तो भी। तेजस्वी = तेजवान्। अर्कः = सूर्य। जगत्त्रयं = त्रिभुवन को, तीनों लोकों को। आक्रमति एव = व्याप्त कर लेता है, आच्छादित कर लेता है।

अनुवाद— रथ एक पहिए वाला है, सारथि (अरुण) जङ्घाविहीन है, (रथ के) घोड़े विषम संख्या वाले (सात) हैं तो भी तेजवान् सूर्य तीनों लोकों को व्याप्त कर लेता है।

संस्कृतव्याख्या— विशेषोक्तेः विकल्पान्तरं निदर्शयत्यत्र- **एकचक्रः इति**। **रथः** स्यन्दनः **एकचक्रः** एकचक्रयुक्तः **यन्ता** सारथिः अरुणः **विकलः** ऊरुविहीनः **हयाः** अश्वाः **विषमाः** विषमसङ्ख्याकाः सप्तः विद्यन्ते। **तथापि तेजस्वी** तेजवान् **अर्कः** सूर्यः **जगत्त्रयं** लोकत्रयम् **आक्रमति एव** व्याप्नोति एव। साधनवैकल्येऽपि स्वतेजसा त्रिभुवनं व्याप्नोति इति भावः।

(विकल्पान्तरनिदर्शनविश्लेषणम्)

सैषा हेतुविशेषोक्तिस्तेजस्वीति विशेषणात्।
अयमेव क्रमोऽन्येषां भेदानामपि कल्पने[1] ।।३२९।।

अन्वय— सा एषा तेजस्वी इति विशेषणात् हेतुविशेषोक्तिः। अन्येषां भेदानां कल्पने अपि अयम् एव क्रमः।

शब्दार्थ— सा = वह। एषा = यह। तेजस्वी = तेजवान्। इति = इस। विशेषणात् = विशेषण के (प्रयोग के) कारण। हेतुविशेषोक्तिः = हेतुविशेषोक्ति (है)। अन्येषां = अन्य। भेदानां = भेदों की। कल्पने अपि = उद्भावना में भी। अयम् एव = यह ही। क्रमः = पद्धति, विधि (जानना चाहिए)।

अनुवाद— वह यह (प्रस्तुत उदाहरण में वर्णित) 'तेजवान्' इस विशेषण के (प्रयोग के) कारण (यह) हेतु विशेषोक्ति (है)। (विशेषोक्ति के) अन्य भेदों की उद्भावना में यहीं क्रम (जानना चाहिए)

संस्कृतव्याख्या— विकल्पान्तरनिदर्शनं विश्लेषयन् विशेषोक्तिमुपसंहरत्यत्र— **सैषेति**। **सा एषा** उदाहरणेऽस्मिन् प्रतिपादिता विशेषोक्तिः **तेजस्वी इति** तेजवान् इति विशेषणात् कारणात् हेतुविशेषोक्तिः विद्यते। विशेषोक्तेः **अन्येषाम्** अपरेषां **भेदानां कल्पने** उद्भावने अपि **अयम् एव** एषः एव **क्रमः** पद्धतिः इति जानीयात्।

(१) कल्प्यते।

विशेष—

(१) साधन के अभाव में भी सूर्य के त्रिभुवन में छा जाने के हेतु के रूप में इसके तेज का कथन होने से यह हेतु विशेषोक्ति नामक विशेषोक्ति का भेद है।

(२) इसी प्रकार विशेषोक्ति के अन्य भेदों की भी उद्भावना इसी विधि से कर लेना चाहिए।

(तुल्ययोगितालङ्कारविवेचनम्)

विवक्षितगुणोत्कृष्टै[1]र्यत्समीकृत्य कस्यचित् ।
कीर्त्तनं स्तुतिनिन्दार्थं सा मता[2] तुल्ययोगिता ।।३३०।।

अन्वय— विवक्षितगुणोत्कृष्टैः कस्यचित् समीकृत्य स्तुतिनिन्दार्थं यत् कीर्त्तनं सा तुल्ययोगिता मता।

शब्दार्थ— विवक्षितगुणोत्कृष्टैः = विवक्षित धर्म (गुण) से उत्कृष्ट के साथ। समीकृत्य = तुलना करके। कस्यचित् = किसी (प्रस्तुत वस्तु) की। स्तुतिनिन्दार्थं = प्रशंसा अथवा निन्दा के लिए। यत् = जो। कीर्त्तनं = कथन (होता है)। सा = वह। तुल्ययोगिता = तुल्ययोगिता (अलङ्कार)। मता = कहलाता है।

अनुवाद— विवक्षित (कथन करने के लिए अभीष्ट) धर्म से उत्कृष्ट (अप्रस्तुत वस्तुओं) के साथ तुलना करके किसी (प्रस्तुत वस्तु) की प्रशंसा या निन्दा के लिए जो कथन होता है वह तुल्ययोगिता (अलङ्कार) कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— तुल्ययोगितालङ्कारं विवेचयत्यत्र— **विवक्षितेति**। **विवक्षितगुणोत्कृष्टैः** विवक्षितः प्रस्तुतगतत्वेन वक्तुमभीष्टः यः कश्चिद् गुणः धर्मः तेन उत्कृष्टैः उत्कर्षप्राप्तैः अप्रस्तुतैः वस्तुभिः **समीकृत्य** तुल्ययोगीकृत्य **कस्यचित्** कस्यचित् प्रस्तुतवस्तुनः **स्तुतिनिन्दार्थं** स्तुत्यर्थं प्रशंसार्थं निन्दार्थं वा **यत् कीर्त्तनं** कथनं भवति, **सा** तल्लक्षणयुता **तुल्ययोगिता** तन्नामालङ्कारः **मता** कथिता विद्यते। प्रस्तुते वस्तूनि येषां धर्माणां कथनमभीष्टं, तैः गुणैः युक्तैः अप्रस्तुतवस्तुभिः तुलनं कृत्वा प्रशंसायै निन्दायै वा प्रस्तुतस्य कथनं तुल्यगुणयोगात् तुल्ययोगिता नामालङ्कारः इति भाव।

विशेष—

(१) विवक्षित (कवि जिन्हें प्रकट करना चाहता है, उन) गुणों (धर्मों) के कारण उत्कृष्ट अप्रस्तुत वस्तु से किसी प्रस्तुत वस्तु की समानता न होते हुए भी उसे समान बतलाकर उस वस्तु की प्रशंसा अथवा निन्दा व्यक्त करने के लिए कथन तुल्ययोगिता अलङ्कार कहलाता है।

---

(१) -गुणोत्कर्षैर्- ।

(२) स्मृता ।

(२) तुल्ययोगिता में विवक्षित प्रधान नहीं होता, वह केवल प्रस्तुत वस्तु की प्रशंसा अथवा निन्दा का साधन होता है। इसमें सामान्य प्रशंसा अथवा निन्दा की अपेक्षा अधिक प्रशंसा अथवा निन्दा व्यक्त होती है और वही प्रधान होती है।

(३) तुल्य दो अधिकगुण वाले और न्यूनगुण वाले पदार्थ का अथवा तुल्य एक धर्म के कारण सम्बद्ध होना तुल्ययोगिता है। यह दो प्रकार की होती है— स्तुतिरूपा तुल्योगिता तथा निन्दारूपा तुल्योगिता।

(स्तुतिरूपतुल्ययोगितानिदर्शनम्)

यमः कुबेरो वरुणः सहस्राक्षो भवानपि।
विभ्रत्य[१]नन्यविषयां लोकपाल इति श्रुतिम् ।।३३१।।

अन्वय— यमः कुबेरः वरुणः सहस्राक्षः भवान् अपि लोकपालः इति अनन्यविषयां श्रुतिं विभ्रति।

शब्दार्थ— यमः = यमराज। कुबेरः = कुबेर। वरुणः = वरुण। सहस्राक्षः = इन्द्रः। भवान् अपि = और आप। लोकपालः = लोकपाल। इति = इस। अनन्यविषयां = अनन्यविषयक, अन्य पर लागू न होने वाले। श्रुतिं = प्रसिद्धि को। विभ्रति = धारण करते हैं।

अनुवाद— (हे राजन्), (दक्षिण दिशा के स्वामी) यम, (उत्तर दिशा के स्वामी) कुबेर, (पश्चिम दिशा के स्वामी) वरुण; (पूर्व दिशा के स्वामी) इन्द्र और (पृथ्वी के स्वामी) आप 'लोकपाल' इस अनन्यविषयक (अन्य पर लागू न होने वाली प्रसिद्धि को धारण करते हैं।

संस्कृतव्याख्या— स्तुतिरूपां तुल्ययोगितां निदर्शयत्यत्र- **यमः इति**। **यमः** दक्षिणदिक्पालः यमराजः, **कुबेरः** उत्तरदिक्पालः धनपतिः **वरुणः** पश्चिमदिक्पालः जलेशः **सहस्राक्षः** पूर्वदिक्पालः इन्द्रः **भवान् अपि** पृथ्वीपालकः भवान् राजा च **लोकपालः इति अनन्यविषयां** अनन्यगामिनां **श्रुतिं** प्रसिद्धिं **विभ्रति** धारयति। अत्र प्रस्तुते राजनि लोकपालत्वरूपस्य गुणस्य कथनमभीष्टम् तेन च गुणोत्कर्षेण युक्तेन यमादिना समीकृत्य राज्ञः प्रशंसार्थं कीर्त्तनं कृतमिति स्तुतिरूपा तुल्ययोगिता विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में वर्णनीय राजा में दिक्पालत्वरूप धर्म विवक्षित है, उसी दिक्पालत्वरूप धर्म से प्रसिद्ध यम, कुबेर इत्यादि के साथ समता दिखलाकर राजा की प्रशंसा का कथन हुआ है अतः यहाँ स्तुतिरूपा तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

(१) बिभर्त्य-।

(निन्दारूपातुल्ययोगितानिदर्शनम्)

सङ्गतानि मृगाक्षीणां तडिद्विलसितानि च ।
क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्वयम् ।।३३२।।

अन्वय— मृगाक्षीणां स्वयं घनारब्धानि सङ्गतानि तडिद्विलसितानि च क्षणद्वयम् अपि न तिष्ठन्ति ।

शब्दार्थ— मृगाक्षीणां = मृगनयनियों का । स्वयं = स्वयं । घनारब्धानि = (मृगनयनीपक्ष में) प्रवर्तित प्रगाढ (अनुराग) वाला (विद्युत्पक्ष में) मेघों द्वारा प्रवर्तित । सङ्गतानि = सङ्गम । तडिद्विलसितानि च = और विद्युत् की चमक । क्षणद्वयम् अपि = दो क्षण भी । न तिष्ठति = नहीं रुकते, नहीं टिकते ।

अनुवाद— मृगनयनी (रमणियों का) स्वयं (उनके द्वारा) प्रवर्तित प्रगाढ अनुराग वाला भी समामग और (स्वयं मेघों द्वारा भी प्रवर्तित) विद्युत की चमक दो क्षण भी नहीं रुकते ।

संस्कृतव्याख्या— निन्दारूपां तुल्ययोगितां निदर्शयत्यत्र– **सङ्गतानीति** । **मृगाक्षीणा** मृगनयनीनां **स्वयम् अपि घनारब्धानि** प्रगाढानुरागप्रवृत्तानि **सङ्गतानि** समागमाः, **घनारब्धानि अपि** घनैः मेघैः आरब्धानि प्रारब्धानि अपि **तडितद्विलसितानि च** विद्युदुन्मेषाश्च **क्षणद्वयमपि न तिष्ठन्ति** । यथा मेघेन स्वयमेवारब्धाः विद्युदुन्मेषाः क्षणमात्रेणैव विनष्टाः भवन्ति तथैव स्त्रीणां बलवदनुरागेणापि स्वयमेव प्रवृत्तानि सङ्गतानि अपि क्षणमात्रमेव तिष्ठन्ति इति भावः । अत्र प्रस्तुते मृगाक्षीणां सङ्गमे क्षणिकत्वरूपः धर्मः विवक्षितः तेन चोत्कृष्टेन विद्युद्विलसितेन तस्य निन्दार्थं समीकृत्य वर्णनं विद्यते अत एव निन्दारूपा तुल्ययोगिता नामालङ्कारः विद्यते ।

विशेष—

(१) यहाँ प्रसिद्ध चपला विद्युत् की चमक से समानता दिखाकर स्त्री-समागम के क्षणिकत्व का प्रतिपादन निन्दा के लिए किया गया है अतः यह निन्दारूपा तुल्ययोगिता है ।

(विरोधालङ्कारविवेचनम्)

विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम् ।
विशेषदर्शनायैव विरोधः स्मृतो यथा ।।३३३।।

अन्वय— यत्र विशेषदर्शनाय एव विरुद्धानां पदार्थानां संसर्गदर्शनं, विरोधः स्मृतः ।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ। विशेषदर्शनाय एव = विशेष (अतिशय) के प्रदर्शन के लिए। विरुद्धानां = विरोधी। पदार्थानां = पदार्थों के। संसर्गदर्शनं = सान्निध्य का प्रदर्शन, सहावस्थान का प्रदर्शन। विरोधः = विरोध। स्मृतः = कहलाता है।

अनुवाद— जहाँ (प्रस्तुत वस्तु के) विशेष (अतिशय) प्रदर्शन के लिए विरोधी पदार्थों के सान्निध्य (सहावस्थान) का प्रदर्शन (होता है) वह विरोध (अलङ्कार) कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— विरोधम् अलङ्कारं विवेचयत्यत्र- **विरुद्धानामिति**। **यत्र** प्रस्तुतस्य वस्तुनः **विशेषदर्शनाय** विशेषस्य अतिशयस्य दर्शनाय प्रदर्शनाय विरुद्धानां परस्पर-स्पर्धिनां **पदार्थानां** वस्तुनां क्रियागुणादिनां **संसर्गदर्शनं** सान्निध्यप्रदर्शनं सः **विरोधः** नन्नामालङ्कारः स्मृतः कथितः। यथेति निदर्शनोपक्रमणार्थं प्रयुक्तम्।

विशेष—

(१) जिस कथन में प्रस्तुत वस्तु के उत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए परस्पर विरोधी पदार्थों का संसर्ग प्रदर्शित किया जाता है, वह विरोध अलङ्कार कहलाता है। तात्पर्य यह है कि आपाततः विरुद्ध प्रतीत होने वाले पदार्थों का प्रस्तुतोत्कर्ष बताने के लिए समानाधिकरण्य प्रस्तुत किया जाय तो वह विरोध अलङ्कार कहलाता है।

(क्रियाविरोधनिदर्शनम्)

कूजितं राजहंसानां वर्धते मदमञ्जुलम्।
क्षीयते च मयूराणां रुतमुत्क्रान्तसौष्ठवम् ।।३३४।।

अन्वय— राजहंसानां मदमञ्जुलं कूजितं वर्धते मयूराणां च उत्क्रान्तसौष्ठवं रुतं क्षीयते।

शब्दार्थ— राजहंसानां = राजहंसों का। मदमञ्जुलं = हर्षोन्माद से मधुर। कूजितं = कूजन। वर्धते = बढ़ रहा है। मयूराणां च = और मयूरों का। उत्क्रान्तसौष्ठवं = अपगत माधुर्य वाली, माधुर्य-रहित। रुतं = अस्पष्ट ध्वनि, केका ध्वनि। क्षीयते = घट रही है।

अनुवाद— राजहंसों का हर्षोन्माद से मधुर कूजन बढ़ रहा है और मयूरों की अपगतमाधुर्य वाली (माधुर्य-रहित) केका ध्वनि घट रही है।

संस्कृतव्याख्या— क्रियाविरोधालङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **कूजितमिति**। **राज-हंसानां** पक्षिविशेषाणां **मदमञ्जुलं** हर्षोन्मादेन मधुरं **कूजितं** अस्पष्टध्वनिः कूजनं **वर्धते** वृद्धिं प्राप्यते **मयूराणां च उत्क्रान्तसौष्ठवं** अपगतमाधुर्यं **रुतं** केकाध्वनिः **क्षीयते**

अपचीयते। वृद्धिक्षयरूपयोः क्रियापदयोः एकस्मिन् काले शरदृतौ सहावस्थनादत्र विरोधःनामालङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में शरद् ऋतु के उत्कर्ष का प्रतिपादन किया गया है। इस समय राजहंसों का ठंडे स्थानों से भारत में आगमन होता है। यहाँ आकर अनुकूल ऋतु के कारण उनका मद बढ़ जाता है इसलिए उनकी हर्ष ध्वनि में मधुरता बढ़ जाती है। इसी समय मेघमालाओं के चले जाने से मयूरों में हर्षोन्माद की कमी हो जाती है, जिससे उनकी मधुर ध्वनि में मदमत्तता न होने के कारण कमी आने लगती है।

(२) इस उदाहरण में एक ही समय में बढ़ना और घटना दो परस्परविरोधी क्रियाओं का सहावस्थान वर्णन होने के कारण विरोध है जिसका प्रशमन सम्बन्धि-भेद (कूजन का सम्बन्ध राजहंस और मयूर– दो भिन्न-भिन्न पक्षियों के साथ होने) से होता है। अतः यहाँ क्रियाविरोध अलङ्कार है।

(गुणविरोधनिदर्शनम्)

प्रावृष्येण्यैर्जलधरैरम्बरं दुर्दिनायते।
रागेण पुनराक्रान्तं[१] जायते जगतां मनः ॥३३५॥

अन्वय— प्रावृष्येण्यैः जलधरैः अम्बरं दुर्निनायते जगतां मनः पुनः रागेण आक्रान्तं जायते।

शब्दार्थ— प्रावृष्येण्यैः = वर्षाकाल वाले। जलधरैः = मेघों के द्वारा। अम्बरं = आकाश। दुर्दिनायते = श्यामल (श्यामवर्ण वाला) हो रहा है। पुनः = फिर, किन्तु। जगतां = सांसारिक लोगों का। मनः = मन। रागेण = लालिमा से, अनुराग से। आक्रान्तं = अभिभूत (व्याप्त) हो रहा है, पूर्ण हो रहा है।

अनुवाद— वर्षाकाल वाले मेघों द्वारा आकाश (आच्छादित होकर) श्यामल (श्यामवर्ण वाला) हो रहा है किन्तु सांसारिक लोगों का मन लालिमा (अनुराग) से अभिभूत (व्याप्त) हो रहा है।

संस्कृतव्याख्या— गुणविरोधालङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **प्रावृष्येण्यैरिति**। **प्रावृष्येण्यैः** वर्षाकालिकैः **जलधरैः** मेघैः **अम्बरं** आकाशं **दुर्दिनायते** मेघाच्छन्नत्वात् श्यामः भवति, **पुनः** तैरेव मेघैः **जगतां** सांसारिकजनानां **मनः** चेतः **रागेण** अनुरागेण **आक्रान्तं** व्याप्तं **जायते** भवति। वर्णनमिदं वर्षाकालस्य प्रभावातिशयरूपं विशेषं प्रदर्शयितुं

(१) पुनरुत्सिक्तं

कृतम् । अभिन्नकारणेन जातयोः श्यामलौहित्ययोः परस्परविरुद्धयोः धर्मयोः एक-स्मिन्नेव वर्षाकाले संसर्गकथनादत्र विरोधः अलङ्कारः विद्यते ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में वर्षाकालीन मेघों के प्रभाव का वर्णन हुआ है । वर्षाकालिक मेघों से आकाश श्यामल हो जाता है और मन राग से आक्रान्त हो जाता है- हृदय में प्रेमपीड़ा उत्पन्न होने लगती है ।

(२) राग शब्द श्लिष्ट है । राग का अर्थ अनुराग और लालिमा दोनों है । मेघों से आकाश का श्यामल होना और मन का लाल होना परस्पर विरोधी धर्म है । अतः यहाँ गुणविरोध अलङ्कार है ।

(३) वर्षाकालिक मेघों से आकाश का श्याम होना लोगों के मन के रागात्मक होने का हेतु है । इस प्रकार दोनों में कार्यकारणभाव सम्बन्ध है । यहाँ पहले कारण का निर्देश करके पुनः कार्य का प्रतिपादन किया गया है ।

(अवयवविरोधनिदर्शनम्)

तनुमध्यं पृथुश्रोणि रक्तोष्ठमसितेक्षणम् ।
नतनाभिः वपुः स्त्रीणां कं न हन्त्युन्नतस्तनम् ।।३३६।।

अन्वय— स्त्रीणां तनुमध्यं, पृथुश्रोणि रक्तौष्ठम् असितेक्षणं नतनाभिः उन्नतस्तनं वपुः कं न हन्ति ।

शब्दार्थ— स्त्रीणां = स्त्रियों का । तनुमध्यं = पतली कमर वाला । पृथुश्रोणि = विपुल नितम्ब वाला । रक्तौष्ठम् = लाल अधरों वाला । असितेक्षणः = काले नेत्रों वाला । नतनाभिः = गहरी नाभि वाला । उन्नतस्तनं = उठे हुए स्तनों वाला । वपुः = शरीर । कं = किस (व्यक्ति) को । न हन्ति = (काम से) पीड़ित नहीं करता ।

अनुवाद— स्त्रियों का पतली कमर वाला, विपुल नितम्ब वाला, लाल अधरों वाला, काली आँखों वाला, गहरी नाभि वाला और उठे हुए स्तनों वाला शरीर किस (व्यक्ति) को (काम से) पीड़ित नहीं करता (अर्थात् सभी लोगों को कामपीड़ित कर देता है) ।

संस्कृतव्याख्या— अवयवविरोधं निदर्शयत्यत्र- **तनुमध्यमिति** । **स्त्रीणां** सुन्दरीणां **तनुमध्यं** कृशकटिप्रदेशं **पृथुश्रोणि** विशालनितम्बं, **रक्तौष्ठं** रक्तवर्णाधरं **असितेक्षणं** कृष्णवर्णनेत्रं **नतनाभिः** निम्ननाभियुतं **उन्नतस्तनम्** उत्तुङ्गपयोधरं **वपुः** शरीरं **कं** पुरुषजनं **न हन्ति** कामभावेन न पीडयति, सर्वमपि जनं कामपीडितं करोतीति भावः । स्त्रीशरीरे परस्परविरुद्धयोः तनुत्वपृथुत्वयोः धर्मयोः शरीराङ्गयोः सहावस्थानवर्णनादत्र द्रव्यविरोधः अवयवविरोधः अलङ्कारः विद्यते ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में तनुत्व और विशालत्व, रक्तत्व और श्यामत्व तथा नतत्व और उन्नतत्व परस्पर विरुद्ध हैं तथापि एक नायिका के शरीर में वर्णित हैं। अतः यहाँ द्रव्य (अवयव) विरोध अलङ्कार है।

(विषमविरोधनिदर्शनम्)

मृणालबाहु रम्भोरु पद्मोत्पलमुखेक्षणम् ।
अपि ते रूपमस्माकं तन्वि तापाय कल्पते ।।३३७।।

अन्वय— तन्वि, मृणालबाहु रम्भोरु पद्मोत्पलमुखेक्षणं अपि ते रूपम् अस्माकं तापाय कल्पते।

शब्दार्थ— तन्वि = हे कृशाङ्गि, हे तन्वङ्गि। मृणालबाहु = कमलनाल (कमलदण्ड) के समान भुजाओं वाला। रम्भोरु = कदलीस्तम्भ के समान जाँघों वाला, पद्मोत्पलमुखेक्षणं = लालकमल के समान मुख से युक्त नीलकमल के समान आँखों वाला। अपि = भी। ते = तुम्हारा। रूपं = सुन्दर शरीर। **अस्माकं** = हम लोगों के। तापाय = पीड़ित करने के लिए। कल्पते = समर्थ है, उद्भावित हुआ है।

अनुवाद— हे कृशाङ्गि, कमलनाल के समान (कोमल) भुजाओं वाला, कदलीस्तम्भ के समान (भरपूर) जाँघों वाला तथा लालकमल के समान (लालिमायुक्त) मुख से युक्त नीलकमल के समान (नीली) आँखों वाला भी तुम्हारा (यह) रूप (सुन्दरशरीर) हमें (काम से) पीड़ित (सन्तापित) करने के लिए उद्भावित हुआ है।

संस्कृतव्याख्या— विषमविरोधं निदर्शयत्यत्र– **मृणालबाहु इति**। **तन्वि** हे कृशङ्गि, **मृणालबाहु** कमलदण्डसदृशकोमलभुजयुतं, **रम्भोरु** कदलिस्तम्भसदृशजङ्घं **पद्मोत्पलमुखेक्षणं** रक्तकमलसदृशेन रक्तवर्णमुखेन युक्तं नीलकमलसदृशं नेत्रं यस्य तादृशं **ते** तव कृशाङ्ग्याः **रूपं** शरीरलावण्यं **अस्मान्** जनान् **तापाय** कामपीडनातिशयाय कामसन्तापातिशयाय वा **कल्पते** प्रभवति। अत्र शीतलोपमेयैः कृशाङ्ग्यङ्गैः सन्तापजनकताकथनं विरुद्धं वर्तते अत एवात्र विषमविरोधालङ्कारः।

विशेष—

(१) कमलनाल, कदलीस्तम्भ और कमल– इन शीतलद्रव्यों से उपमित होने वाले नायिका के अङ्गों में प्रतीयमान धर्म और उसके तापकत्वरूप धर्म के सहावस्थान का कथन होने के कारण यहाँ विरोध है, अत एव यहाँ विषम विरोध अलङ्कार है।

(२) यहाँ लावण्ययुता युवती के तन्वि सम्बोधन तथा सन्तप्त होने वाले के लिए

सम्मुखता को बतलाने वाले अस्मद् का वह भी बहुवचन में प्रयोग और मुखरित कर रहा है। इस कोमलाङ्गी स्त्री का शीतल रूप हमें सन्तप्त कर रहा है- यह कैसी विषम परिस्थिति है। इससे उस स्त्री के रूप का अतिशय व्यक्त हो रहा है।

(२) वस्तुतः कमलनाल, कदलीस्तम्भ इत्यादि और बाँह, जाँघ इत्यादि में समान धर्म के रूप में शीतलता का ग्रहण यहाँ अभिप्रेत नहीं है- केवल विरोध परिहार का कारण है। इस प्रकार का वर्णन नायिका के सौन्दर्यातिशय को बतलाने के लिए किया गया है।

(क्रियाविरोधान्तरनिदर्शनम्)

उद्यानमारुतोद्धूताश्चूतचम्पकरेणवः ।
उदश्रयन्ति पान्थानामस्पृशन्तोऽपि लोचने[1] ।।३३८।।

अन्वय— उद्यानमारुतोद्धूताः चूतचम्पकरेणवः पान्थानाम् लोचने अस्पृशन्तः अपि उदश्रयन्ति।

शब्दार्थ— उद्यानमारुतोद्धूताः = उपवन की वायु द्वारा उड़ायी गयी। चूतचम्पकरेणवः = आम्र और चम्पा के फूलों के परागकण। पान्थानां = पथिकों की, (विरही) यात्रियों की। लोचने = आँखों को। अस्पृश्यन्तः अपि = न छूते हुए भी, बिना स्पर्श किये भी। उदश्रयन्ति = अश्रुपूर्ण कर देते हैं, आँसुओं से भर देते हैं।

अनुवाद— उपवन की वायु द्वारा उड़ायी गयी आम्र और चम्पा के फूलों के परागकण (विरही) पथिकजनों की आँखों को बिना स्पर्श किये हुए भी (उन आँखों को) आँसुओं से भर देते हैं।

संस्कृतव्याख्या— क्रियाविरोधस्यान्यं निदर्शनं ददात्यत्र- **उद्यानेति**। **उद्यानमारुतोद्धूताः** उद्यानस्य उपवनस्य मारुतेन पवनेन उद्धूताः उत्पाटिताः **चूतचम्पकरेण** चूतानां आम्राणां चम्पकानां पुष्पविशेषाणां रेणवः परागकणाः **पान्थानां** प्रवासिनां जनानां **लोचने** नेत्रे **अपृश्यन्तः अपि** स्पर्शं न कुर्वन्तः अपि **उदश्रयन्ति** अश्रूपूर्णे कुर्वन्ति। अत्र चूतचम्पकपरागकणानां स्पर्शाभावेऽपि अश्रूदयकारणत्वं विरोधः। स उद्दीपकतया परिहार्यः विद्यते। अनेन वियोगिनामुत्कण्ठातिशयं व्यज्यते इत्यत्र क्रियाविरोधः।

(१) लोचनं।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पुष्पपरागकण आखों को स्पर्श किये विना ही आँसुओं से भर देता है। इसमें आँखों को न छूना और उन्हें अश्रुपूर्ण बना देना क्रियाओं के सहावस्थान वर्णन होने के कारण विरोध है, जिसका परिहार आम्र और चम्पक के परागकणों के कामोद्दीपक होने से होता है। इस प्रकार यहाँ क्रियाविरोध अलङ्कार है।

(२) वसन्त ऋतु में प्रवास से घर को लौटने वाले किन्तु अभी रास्ते में ही विद्यमान विरहियों का वर्णन हुआ है। ये विरही जन जब किसी उपवन के समीप से गुजरते हैं तो उपवन की हवा के साथ उड़कर आये हुए आम्र और चम्पा के परागकण पथिक की आँखों को बिना छुए ही अश्रुपूरित कर देते हैं। इस प्रकार इनकी सुगन्ध पथिकों को प्रेमपीड़ा से उत्कण्ठित कर देती है जिससे उनके आँखों में आँसू भर जाता है– यह अर्थ व्यञ्जित होता है।

(द्रव्यविरोधनिदर्शनम्)

कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टिः कर्णावलम्बिनी ।
याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणि ।।३३९।।

अन्वय— कलभाषिणि कृष्णा अर्जुनानुरक्ताम् अपि कर्णावलम्बिनी ते दृष्टिः कस्य विश्वसनीयत्वं याति।

शब्दार्थ— कलभाषिणि = हे मधुरभाषिणि, हे मृदुभाषिणि, हे मधुर बोलने वाली। कृष्णा = द्रौपदी (परिहार-पक्ष में) काली। अर्जुनानुरक्ताम् = अर्जुन के प्रति अनुराग युक्त, (अनुरक्त) होती हुई, (परिहार-पक्ष में) श्यामल, धवल और लालिमा युक्त। कर्णावलम्बिनी = कर्ण का आश्रय लेने वाली, (परिहार-पक्ष में) कानों तक विस्तृत। ते = तुम्हारी। दृष्टिः = आँखें। कस्य = किस (व्यक्ति) की। विश्वसनीयत्वं = विश्वसनीयता को। याति = जा सकती है, प्राप्त कर सकती है।

अनुवाद— हे मृदुभाषिणि (मधुर बोलने वाली), तुम्हारी कृष्णा (द्रौपदी) अर्जुन में अनुरक्त होती हुई भी (विरोधी) कर्ण का आश्रय (सहारा) लेने वाली (परिहारपक्ष में– श्यामल धवल और लालिमा युक्त तथा कानों तक विस्तृत) आँखें किस (व्यक्ति) की विश्वसनीयता को प्राप्त कर सकती है अर्थात् किसी की भी विश्वासपात्र नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— द्रव्यविरोधं निदर्शयत्यत्र– **कृणार्जुनेति**। **कलभाषिणि** हे मृदुभाषिणि, **ते** तव कलभाषिण्याः **कृष्णा** द्रौपदी **अर्जुनानुरक्ता** अर्जुने पार्थे अनुरक्ता अनुरागयुक्ता सती **अपि कर्णावलम्बिनी** तद्विपक्षं अङ्गराजं कर्णं अवलम्बते इति

तादृशी **दृष्टिः कस्य** जनस्य **विश्वसनीयत्वं** विश्वासपात्रत्वं **याति** प्राप्नोति कस्यापि जनस्य विश्वासत्वं न प्राप्नोतीति भावः। अत्र कृष्णार्जुनानुरक्तत्वस्य कर्णावलम्बित्वस्य च विरुद्धत्वमाभासते। वस्तुतस्तु **कृष्णार्जुनानुरक्ता** क्वचित् कृष्णत्वेन श्यामत्वेन क्वचित् अर्जुनत्वेन धलत्वेन क्वचिच अनुरक्तेन रक्तिमायुत्वेन युक्ता दृष्टिः कृष्णार्जुनानुरक्ता एवमेव **कर्णावलम्बिनी** कर्णपर्यन्तं विस्तृता दृष्टिः कर्णावलम्बिनी इति कृष्णादिश्लिष्टपदलम्धि पदानामर्थान्तरोद्भावनया अविरोधः। नायिकादृष्टेः वर्णनमिदं सौन्दर्यातिशयत्वं आयतत्वं च प्रतिपादयितुं कृतं विद्यते अत एवात्र द्रव्यविरोधोऽलङ्कार अस्ति।

विशेष—

(१) यहाँ कृष्णा (द्रौपदी) का परस्पर विरोधी द्रव्यरूप अर्जुन और कर्ण के साथ संसर्ग वर्णन हुआ है। यह विरोध वास्तविक न होकर आभासमान है। अतः यहाँ द्रव्यविरोध अलङ्कार है।

(२) यहाँ श्लेष से प्रकाशित कृष्णा के दौपदी अर्थ की क्रियाओं अर्जुन के प्रति अनुराग और कर्ण के आलम्बन का आश्रय एक ही पदार्थ कृष्णा की दृष्टि है। दोनों क्रियाओं का काल भी एक ही है अतः समानाधिकरण क्रियाओं का श्लेष पर आधारित विरोध है। विरोध प्रतिभान का हेतु श्लेष है, किन्तु वाक्य में चारुता विरोध के कारण ही आती है अतः मुख्यता विरोध की है। श्लेष उसका अङ्ग है।

(अप्रस्तुतशंसालङ्कारविवेचनम्)

इत्यनेकप्रकारोऽयमलङ्कारः प्रतायते[१]।
अप्रस्तुप्रशंसा स्यादप्रकान्तेषु या[२] स्तुतिः॥३४०॥

अन्वय— इति अयम् अलङ्कारः अनेकप्रकारः प्रतायते। अप्रकान्तेषु या स्तुतिः अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। अयम् = यह (विरोध)। अलङ्कारः = अलङ्कार। अनेकप्रकारः = अनेक प्रकार (विकल्पों) वाला। प्रतायते = प्रसरित होता है। अप्रकान्तेषु = अप्रस्तुत (पदार्थों) की। या = जो। स्तुतिः = स्तुति (प्रशंसा) (होती है)। अप्रस्तुतप्रशंसा = अप्रस्तुतप्रशंसा (अलङ्कार)। स्यात् = होती है।

अनुवाद— इस प्रकार यह (विरोध) अलङ्कार अनेक प्रकार (विकल्प) वाला

(१) प्रतीयते, -कारोऽतिशोभते।
(२) प्रक्रान्तापिता, -प्पित-, अप्रकाण्डे तु।

प्रसरित होता है। अप्रस्तुत (पदार्थों) की जो प्रशंसा (होती है, वह) अप्रस्तुतप्र॰ (अलङ्कार) होती है।

संस्कृतव्याख्या— अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारं विवेचयत्यत्र– **इत्यनेकेति**। **इति** अ॰ प्रकारेण **अयम्** एषः विरोधः **अलङ्कारः अनेकप्रकारः** अनेकः भेदः विकल्पो॰ यस्य तादृशः **प्रतायते** प्रसरति। **प्रकान्तेषु** अप्रस्तुतेषु वस्तुषु **या स्तुतिः** प्रशंसा भ॰ सा **अप्रस्तुतप्रशंसा** तन्नामालङ्कारः **स्यात्**। यत्र प्रस्तुतस्य निन्दामुद्दिश्य अप्रस्तुत॰ प्रशंसा भवति सा अप्रस्तुतप्रशंसा इति भावः। अप्रस्तुतानां पदार्थानां प्रशंसया प्रस्तुता॰ पदार्थानां निन्दैवास्यालङ्कारस्य मुख्यमुपपादकम्।

विशेष—

(१) इस प्रकार से यह विरोध अलङ्कार अनेक प्रकार का होता है उनका दिग्दर्श॰ यहाँ कराया गया है।

(२) प्रस्तुत वस्तु की निन्दा के लिए की गयी अप्रस्तुत वस्तु की प्रशंसा अप्रस्तुत॰ प्रशंसा अलङ्कार कहलाता है।

(अप्रस्तुतप्रशंसानिदर्शनम्)

सुखं जीवन्ति हरिणा वनेष्वपरसेविनः।
अन्नै[1]रयत्नसुलभैस्तृण[2]दर्भाङ्कुरादिभिः ॥३४१॥

अन्वय— वनेषु अपरसेविनः हरिणाः अयत्नसुलभैः अन्नैः तृणदर्भाङ्कुरादि॰ सुखं जीवन्ति।

शब्दार्थ— वनेषु = जङ्गलों में। अपरसेविनः = दूसरों की सेवा न करने वाले स्वतन्त्र। हरिणाः = हरिण। अयत्नसुलभैः = विना प्रयत्न (प्रयास) से प्राप्त तृणदर्भाङ्कुरादिभिः = तिनकों, कुशाङ्कुरों इत्यादि। अन्नैः = अन्नों (अनाजों) से सुखं = सुखपूर्वक। जीवन्ति = जीवन-व्यतीत करते हैं।

अनुवाद— जङ्गलों में दूसरों की सेवा न करने वाले (अर्थात् स्वतन्त्र) हरि॰ विना प्रयत्न (प्रयास) से प्राप्त तिनके, कुशाङ्कुर इत्यादि अनाजों (भोज्य-पदार्थों से) सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

संस्कृतव्याख्या— अप्रस्तुप्रशंसालङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **सुखमिति**। **वनेषु** जङ्गले॰ **अपरसेविनः** परं कञ्चिदन्यं न सेवन्ते इति तादृशाः स्वतन्त्राः **हरिणाः** मृगाः अयत्न॰

(१) अर्थै॰। जलै॰।
(२) -भैर्जल-।

सुलभैः प्रयासविशेषं विना सुकरैः **तृणदर्भाङ्कुरादिभिः** तृणकुशाङ्कुरादिभिः **अन्नैः** खाद्यपदार्थैः **सुखं** सुखपूर्वकं **जीवन्ति** जीवनं व्यतीतयन्ति ।

(अप्रस्तुतप्रशंसानिदर्शनविश्लेषणम्)

सेयमप्रस्तुतैवात्र मृगवृत्तिः प्रशस्यते ।
राजानुवर्तनक्लेशनिर्विण्णेन मनस्विना ।। ३४२ ।।

अन्वय— राजानुवर्तनक्लेशनिर्विण्णेन मनस्विना सा इयम् अप्रस्तुता एव मृगवृत्तिः प्रशस्यते ।

शब्दार्थ— राजानुवर्तनक्लेशनिर्विण्णेन = राजा की सेवारूपी क्लेश के कारण ऊबे हुए । मनस्विना = मनस्वी के द्वारा । सा = वह । इयं = यह । अप्रस्तुता एव = अप्रस्तुत ही । मृगवृत्तिः = मृगवृत्ति । प्रशस्यते = प्रशंसित की गयी है ।

अनुवाद— राजा की सेवा रूपी क्लेश के कारण ऊबे हुए (किसी) मनस्वी (व्यक्ति) के द्वारा अप्रस्तुत ही मृगवृत्ति प्रशंसित की गयी है ।

संस्कृतव्याख्या— अप्रस्तुतप्रशंसायाः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **सेयमिति** । **राजानुवर्तनक्लेशनिर्विण्णेन**– राजानुवर्त्तनं नृपतिपरिचरणं तदेव क्लेशः दुःखं तस्मात् निर्विण्णेन अतिविरक्तिं प्राप्तेन **मनस्विना** स्वाभिमानुयता पुरुषेण **सा इयम्** एषा अत्र **अप्रस्तुता मृगवृत्तिः** मृगजीवनविधा **प्रशस्यते** प्रशंसया तेनात्माजीवनवृत्तिराक्षिप्यते इति । एवमत्र अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राजा की सेवा से ऊबे हुए किसी स्वाभिमानी पुरुष द्वारा अप्रस्तुत मृगवृत्ति की प्रशंसा की गयी है जिससे वक्ता के स्वजीविकोपार्जन की निन्दा प्रतीत होती है अतः यह अप्रस्तुतप्रशंसा है । वह अप्रस्तुत की प्रशंसा से प्रस्तुत की निन्दा में होता है ।

(व्याजस्तुत्यलङ्कारविवेचनम्)

यदि निन्दन्निव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ मता[1] ।
दोषाभासा गुणा एव लभन्ते ह्यत्र[2] सन्निधिम् ।। ३४३ ।।

अन्वय— यदि निन्दन् इव स्तौति असौ व्याजस्तुतिः मता हि अत्र दोषाभासाः इव गुणाः एव सन्निधिं लभन्ते ।

(१) स्मृता ।
(२) तत्र ।

शब्दार्थ— यदि = यदि। निन्दन् एव = निन्दा करते हुए के समान। स्तौति = प्रशंसा की जाती है। असौ = वह। व्याजस्तुतिः = व्याजस्तुति। मता = कहलाती है, मानी जाती है। हि = क्योंकि। अत्र = यहाँ, इस (कथन में)। दोषाभासाः इव = दोष के समान आभासमान। गुणाः एव = गुण ही। सन्निधिं = सामीप्य को। लभन्ते = प्राप्त करते हैं।

अनुवाद— यदि (किसी वस्तु की) निन्दा करते हुए के समान (उसकी) प्रशंसा की जाती है तो वह व्याजस्तुति कहलाती है क्योंकि इस (कथन) में दोष के समान आभासमान गुण ही सामीप्य को प्राप्त करतें हैं।

संस्कृतव्याख्या— व्याजस्तुत्यलङ्कारं विवेचयत्यत्र– **यदीति**। **यदि** चेत् निन्दन् **इव** कस्यचिद् वस्तुनः निन्दां कुर्वन् इव **स्तौति** तं प्रशंसति **असौ व्याजस्तुतिः** तन्नामालङ्कारः मता स्मृता। **हि** यतो हि **यत्र** अस्मिन् कथने **दोषाभासाः इव** दोषाः इव आभासमानाः **गुणाः एव सन्निधिं** विद्यमानत्वं **लभन्ते** प्राप्यन्ते। दोषत्वेन आभासमानाः गुणाः एवात्र वर्ण्यन्ते इति भावः।

विशेष—

(१) जहाँ प्रतीयमान निन्दा द्वारा प्रशंसा का कथन होता है, वह व्याजस्तुति अलङ्कार कहलाता है। इस अलङ्कार में दोषाभास के समान प्रतीत होने वाले गुण ही प्रधान कारण होते हैं। अर्थात् जहाँ निन्दा के बहाने से प्रशंसा की जाती है, वहाँ व्याजस्तुति अलङ्कार होता है।

(२) दण्डी के अनुसार निन्दा द्वारा प्रशंसा का कथन व्याजस्तुति है किन्तु मम्मट आदि आचार्यों ने व्याजस्तुति को निन्दा द्वारा प्रशंसा और प्रशंसा द्वारा निन्दा का कथन इन दो भागों में विभाजित किया है– 'व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दा स्तुतिर्वा रूढिरन्यथा' (का० प्र० १०.११२)।

(व्याजस्तुतिनिदर्शनम्)

तापसेनापि रामेण जितेयं भूतधारिणी।
त्वया राज्ञापि सैवेयं जिता माभून्मदस्तव ॥३४४॥

अन्वय— तापसेन रामेण अपि भूतधारिणी जिता, त्वया राज्ञा अपि सा इयं जिता, (अत्र) तव मदः माभूत्।

शब्दार्थ— तापसेन = तपस्वी। रामेण = परशुराम के द्वारा। अपि = भी। इयं = यह। भूतधारिणी = पृथ्वी। जिता = जीत ली गयी थी। त्वया = तुम, आप। राज्ञा = राजा के द्वारा। अपि = भी। सा = वह। इयं = यह (पृथ्वी)। जिता = जीत

ली गयी है। तव = तुम्हारा, तुमको। मदः = मत, गर्व। माभूत् = नहीं होना चाहिए।

अनुवाद— तपस्वी (सैन्यबल-रहित) परशुराम के द्वारा भी यह पृथ्वी जीत ली गयी थी, तुम (सैन्यबल-सम्पन्न) राजा के द्वारा भी वही (पहले जीती गयी) यह (पृथ्वी) जीती गयी है, (अतः इस विषय में) तुमको गर्व नहीं होना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— व्याजस्तुतिमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **तापसेनेति**। **तापसेन** तपस्विनः अत एव सैन्यबलहीनेन **रामेण** परशुरामेण **अपि इयम्** एषा **भूतधारिणी** पृथ्वी जिता पराजिता **त्वया** सैन्यबलसम्पन्नेन **राज्ञा** नृपतिना **अपि सा** पूर्वं परशुरामेण जिता **इयम्** एषा पृथ्वी **जिता** विजिता, विषयेऽस्मिन् **तव** राज्ञः **मदः** गर्वः **माभूत्** न भवतु। साधनविहीनेन रामेण पृथ्वी जिता आसीत् साधनसम्पन्नेन राज्ञा तस्याः विजये क्रियमाणे गर्वस्यावसरो न विद्यते, इत्येवं राज्ञः प्रतिभासमानेन निन्दाव्याजेन सम्पूर्णपृथ्वीविजयोत्कर्षेण तस्य प्रशंसा वर्णिता अत एवात्र व्याजस्तुतिः अलङ्कारः वर्तते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राजा की निन्दा प्रतिभासित हो रही है किन्तु यह उसकी प्रशंसा है क्योंकि शङ्कर के शिष्य परशुराम ने जिस पृथ्वी को जीता था उसी पृथ्वी को आप ने जीत लिया– यह साधारण बात नहीं है। इस प्रकार यहाँ निन्दा के व्याज (बहाने) से राजा की प्रशंसा की गयी है अतः यहाँ व्याजस्तुति अलङ्कार है।

(२) परशुराम तपस्वी ब्राह्मण थे और जब-जब प्रतिपक्षी क्षत्रियों ने सिर उठाया तब-तब उन्होंने उन्हें कुचल डाला। इस प्रकार उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीविजय किया था।

(३) परशुराम के पास चतुरङ्गिणी सेना नहीं थी फिर भी उन्होंने पृथ्वी को जीता। राजा तो सैन्यबल इत्यादि युद्धसाधनों से सम्पन्न होकर पृथ्वी को जीता तो इसमें गर्व की कोई बात नहीं है। इस प्रकार यहाँ राजा की निन्दा प्रतिभासित हो रही है।

(४) इस प्रकार की निन्दा के बहाने से राजा की सम्पूर्ण पृथ्वी के विजेता के रूप में उसकी प्रशंसा की गयी है।

(श्लेषानुविद्धव्याजस्तुतिनिदर्शनम्)

पुंसः पुराणादाच्छिद्य श्रीस्त्वया परिभुज्यते।
राजन्निक्ष्वाकुवंश्यस्य[१] किमिदं तव युज्यते ।।३४५।।

(१) -वैशस्य।

अन्वय— राजन्, पुराणात् पुंसः आच्छिद्य श्रीः त्वया परिभुज्यजे, तव इक्ष्वाकु-वंशयस्य किम् इदं युज्यते।

शब्दार्थ— राजन् = हे राजन्। पुराणात् पुंसः = पुराण (प्राचीन) पुरुष (विष्णु) से (अन्यपक्ष में) पुराने (वृद्ध) व्यक्ति (राजा) से। आच्छिद्य = छीन कर। श्रीः = राजलक्ष्मी (अन्यपक्ष में) सम्पति। त्वया = तुम्हारे द्वारा। परिभुज्यते = उपभोग की जा रही है। इक्ष्वाकुवंशयस्य = इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए। तव = तुम्हारे। किम् = क्या। इदं = यह (कार्य)। युज्यते = उचित है।

अनुवाद— हे राजन्, पुराण पुरुष (विष्णु) से छीन कर लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) (पक्ष में किसी वृद्ध पुरुष राजा से छीनकर उसकी सम्पति) का तुम्हारे द्वारा उपभोग किया जा रहा है, (उच्च) इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए तुम्हारे लिए क्या यह (कार्य) उचित है (अर्थात् उचित नहीं है)।

संस्कृतव्याख्या— श्लेषानुविद्धां व्याजस्तुतिं निदर्शयत्यत्र– **पुंस इति**। राजन् हे नृपते, **पुराणात् पुंसः** पुराणपुरुषाद् विष्णोः वृद्धात् राज्ञः वा **आच्छिद्य** बलादपहृत्य **श्रीः** लक्ष्मीः **त्वया** राज्ञा **परिभुज्यते** निषेव्यते उच्चवंशे जातस्य **इक्ष्वाकुवंश्यस्य** इक्ष्वाकुकुले उत्पन्नस्य **तव** राज्ञः **किम् इदं** कार्यं **युज्यते** उचितं विद्यते, नैवेदम् उचित-मिति भावः। अत्र प्रतीयमाना राज्ञः निन्दा तस्य प्रशंसायै प्रयुज्यते अत एव श्लेषा-नुविद्धायाः निन्दायाः व्याजेन प्रशंसाकथनं श्लेषानुविद्धा व्याजस्तुतिरलङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पुराणपुरुष से छींनकर लायी गयी सम्पत्ति के उपभोग रूप आभासमान निन्दा के बहाने से राजा की विष्णु से तुलना करके उसकी सम्पत्तिशालि- प्रशंसित है अतः पुराणपुरुष और श्रीः में श्लेष होने के कारण यह श्लेषानुविद्ध व्याजस्तुति है।

(२) किसी वृद्ध राजा को पराजित करके उसकी राज्यलक्ष्मी का उपभोग करने वाले किसी इक्ष्वाकुवंशीय राजा की निन्दा करके पुराणपुरुष और श्रीः के श्लेष से उसकी समानता विष्णु से व्यक्त होने के कारण यहाँ प्रशंसा है।

(श्लिष्टव्याजस्तुतेः अन्यं निदर्शनम्)

भुजङ्गभोगसंसक्ता[1] कलत्रं तव मेदिनी।
अहङ्कारः परां कोटिमारोहति कुतस्तव॥३४६॥

(१) -सङ्क्रान्ता।

अन्वय— भुजङ्गभोगसंसक्ता मेदिनी तव कलत्रं (विद्यते) कुतः तव अहङ्कारः परां कोटिं आरोहति।

शब्दार्थ— भुजङ्गभोगसंसक्ता = शेषनाग के फणमण्डल अवस्थित, (अन्यपक्ष में-) दुष्ट (धूर्त) लोगों के साथ विषयभोग में आसक्त (अनुलिप्त)। मेदिनी = पृथ्वी (अन्यपक्ष में-) नीच जातीय स्त्री। तव = तुम्हारी। कलत्रं = पत्नी, भार्या। कुतः = किसलिए। तव = तुम्हारा। अहङ्कारः = अहङ्कार, अभिमान। परां कोटिं = चरम सीमा पर, पराकाष्ठा पर। आरोहति = चढ़ रहा है, पहुँच रहा है।

अनुवाद— (हे राजन्,) शेषनाग के फलमण्डल पर अवस्थित (अन्यपक्ष में- दुष्ट लोगों के साथ विषयभोग में अनुलिप्त) मेदिनी (पृथ्वी) (अन्य पक्ष में- नीच जातीय स्त्री) तुम्हारी पत्नी (भार्या, पालिता) है (फिर) किसलिए तुम्हारा अहङ्कार पराकाष्ठा पर चढ़ रहा है।

संस्कृतव्याख्या— श्लिष्टव्याजस्तुतेः अपरं निदर्शनं ददात्यत्र- **भुजङ्गेति**। **भुजङ्गभोगसंसक्ताः** भुजङ्गस्य शेषनागस्य भोगे फणमण्डले संसक्ता अवस्थिता पक्षान्तरे भुजङ्गानां दुष्टानां भोगे विषयभोगे संसक्ता अनुलिप्ता **मेदिनी** पृथ्वी **पक्षान्तरे नीचजातीया स्त्री** तव राज्ञः **कलत्रं** पत्नी विद्यते पुनः **कुतः** कस्मात् कारणात् **तव** राज्ञः **अहङ्कारः** अभिमानः **परां कोटिं** पराकाष्ठाम् **आरोहति** प्राप्यते। अत्र आपाततः प्रतीयमानया निन्दया सम्पूर्णपृथिव्याः स्वामी असीति प्रशंसारूपेण वर्णितः। भुजङ्गभोगसंसक्ता इति श्लिष्टपदेन निन्दा कथिता अत एवात्र श्लिष्टानुविद्धा व्याजस्तुतिः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राजा की आभासमान निन्दा वस्तुतः उसके सम्पूर्ण भूमण्डल पर आधिपत्यरूपी प्रशंसा को व्यक्त करता है अतः यहाँ व्याजस्तुति है। यह व्याजस्तुति 'भुजङ्गभोगसंसक्ता' इस श्लिष्टपद द्वारा होने से यह श्लिष्टाविद्ध व्याजस्तुति है।

(२) दुष्टों (भुजङ्गों) के साथ विषययोग में अनुलिप्त मेदिनी (नीचजातीय स्त्री) तुम्हारी पत्नी है, फिर भी तुम्हारे अहङ्कार का कोई ठिकाना नहीं है- यह आभासमान निन्दा है।

(३) भुजङ्ग शेषनाग के फणमण्डलों पर अवस्थित पृथ्वी तुम्हारी पत्नी है- यह प्रशंसा है।

(व्याजस्तुत्युपसंहारः)

इति श्लेषानुविद्धाना[१]मन्येषां चोपलक्ष्यताम् ।
व्याजस्तुतिप्रकाराणामपर्यन्तः प्रविस्तरः[२] ।।३४७।।

अन्वय— इति अन्येषां श्लेषानुविद्धानां व्याजस्तुतिप्रकाराणाम् अपर्यन्तः प्रविस्तरः च उपलक्ष्यताम् ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । अन्येषां = अन्य । श्लेषानुविद्धानां = श्लेष से अनुविद्ध । व्याजस्तुतिप्रकाराणां = व्याजस्तुति के विकल्पों का । अपर्यन्तः = अपरिमित । प्रविस्तरः = प्रपञ्च । उपलक्ष्यताम् = देख लेना चाहिए ।

अनुवाद— इस प्रकार अन्य श्लेष से अनुविद्ध व्याजस्तुति के विकल्पों के अपरिमित प्रपञ्च (विस्तार) (काव्यप्रबन्धों में) देख लेना चाहिए ।

संस्कृतव्याख्या— व्याजस्तुतिमलङ्कारमुपसंहरत्यत्र- **इतीति** । **इति** अनेन प्रकारेण **अन्येषाम्** अपरेषां **श्लेषानुविद्धानां** श्लेषेणानुगतानां **व्याजस्तुतिप्रकाराणां** व्याजस्तुतेः उद्भावितानां भेदानाम् **अपर्यन्तः** अपरिमितः **प्रविस्तरः** प्रपञ्चः **उपलक्ष्यतां** काव्यप्रबन्धेषु अनुलक्ष्यताम् ।

विशेष—

(१) यहाँ श्लेषानुविद्ध व्याजस्तुति अलङ्कार के दो उदाहरण दिये गये हैं । श्लेषानुविद्ध व्याजस्तुत्ति के अन्य अपरिमित भेदों की कल्पना की जा सकती है । उन उद्भावित भेदों के उदाहरणों को अन्य काव्यप्रबन्धों में देख लेना चाहिए, यह भाव है ।

(निदर्शनालङ्कारविवेचनम्)

अर्थान्तरप्रवृत्तेन[३] किञ्चित्तत्सदृशं फलम् ।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि[४] तत्स्यान्निदर्शनम्[५] ।।३४८।।

अन्वय— यदि अर्थान्तरप्रवृत्तेन तत्सदृशं किञ्चित् सत् असत् वा फलं निदर्श्येत् तत् निदर्शनं स्यात् ।

---

(१) बद्धानाम् ।
(२) - न्तस्तु विस्तरः ।
(३) आर्थान्तरस्य वृत्तेन ।
(४) यत्तु ।
(५) सा स्यन्निदर्शना, स्यात्तन्नि- ।

शब्दार्थ— यदि = यदि। अर्थान्तरप्रवृत्तेन = अन्य कार्य में प्रवृत्त (लगे हुए) (किसी पदार्थ द्वारा)। तत्सदृशं = उस (कार्य) के समान। किञ्चित् = कोई। सत् = अभीष्ट। असत् वा = अथवा अनभीष्ट। फलं = फल (कार्य) को। निदर्श्येत् = निर्दिष्ट किया जाता है। तत् = वह। निदर्शनं = निदर्शन (अलङ्कार)। स्यात् = होता है।

अनुवाद— यदि (किसी) अन्य कार्य में प्रवृत्त (किसी पदार्थ) द्वारा उस (कार्य) के समान कोई अभीष्ट अथवा अनभिष्ट फल (कार्य) को निर्दिष्ट किया जाता है तो वह निदर्शन अलङ्कार होता है।

संस्कृतव्याख्या— निदर्शनालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **अर्थान्तरेति**। **यदि** चेद् **अर्थान्तरप्रवृत्तेन** अर्थान्तरे अन्ये कार्ये प्रवृत्तेन निरतेन संलग्नेन वा पदार्थेन **तत्सदृशं** तेन कार्येण सदृशं **किञ्चित् सद्** अभीष्टम् **असद् वा** अनिष्टं वा **फलं** कार्यं **निदर्श्येत्** प्रतिपाद्येत् **तत्** ईदृशं **निदर्शनं** तन्नामालङ्कारः **स्यात्**।

विशेष—

(१) अन्यकार्य में लगे हुए पदार्थ द्वारा जो कोई उस कार्य समान अभीष्ट अथवा अनिष्ट फल (कार्य) प्रदर्शित किया जाता है; वह निदर्शन अलङ्कार होता है। इस अलङ्कार में सादृश्य गम्य होता है।

(२) दण्डी ने निदर्शन अलङ्कार को सत्फल और असत्फल के आधार पर दो भागों में विभक्त किया है- सत्फलनिदर्शन और असत्फलनिदर्शन। इनकों आगे उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(सत्फलनिदर्शननिदर्शनम्)

उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयितुमृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम् ।।३४९।।

अन्वय— सविता उदयन् एव ऋद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहं विभावयितुं पद्मेषु श्रियम् अर्पयति।

शब्दार्थ— सविता = सूर्य। उदयन् एव = उदित होते ही। ऋद्धीनां = सम्पदाओं अथवा अभ्युदयों के। फलं = फल, परिणाम, प्रयोजन। सुहृदनुग्रहं = मित्र लोगों के अनुग्रह (कृपा, उपकार) को। विभावयितुं = दिखलाने के लिए। पद्मेषु = कमलों में। श्रियं = शोभा को। अर्पयति = धारण करवा देता है।

अनुवाद— सूर्य उदित होते ही सम्पदाओं (अथवा अभ्युदयों) के फल-मित्र लोगों के अनुग्रह (उपकार) को दिखलाने के लिए कमलों में (विकासरूप) शोभा को धारण करवा देता है।

संस्कृतव्याख्या— सत्फलनिदर्शनं निदर्शयत्यत्र– **उदयन्निति**। **सविता** सूः
उदयन् एव उदयं गच्छन् एव **ऋद्धीनां** सम्पदाम् अभ्युदयानां वा **फलं** परिणा-
प्रयोजनं वा **सुहृदनुग्रहं** मित्रजनोपकारं **विभावयितुं** प्रदर्शयितुं **पद्मेषु** कमलेषु श्रिय
विकासरूपां शोभाम् **अर्पयति** धारयति। अत्र कमलेषु शोभाधानकार्ये प्रवृत्तः उदयन्
सूर्यः तत्सदृशं मित्रजनोपकाररूपस्य सत्फलं निदर्शयतीति सत्फलं निदर्शनं विद्यते।

विशेष—

(१) सूर्य कमलों में शोभा का आधान इसलिए करता है कि लोगों को यह ज्ञात हो जाय कि स्वयं समृद्ध होने का फल मित्रों को अनुगृहीत करना है। मित्रों को अनुगृहीत करना सत्फल (अभीष्ट फल) है। इस सत्फल को निदर्शित करने के कारण यहाँ सत्फलनिदर्शन अलङ्कार है।

(असत्फलनिदर्शननिदर्शनम्)

याति चन्द्रांशुभिः स्पृष्टा ध्वान्तराजिः[१] पराभवम्।
सद्यो राजविरुद्धानां सूचयन्ती दुरन्तताम् ॥३५०॥

अन्वय— चन्द्रांशुभिः स्पृष्टाः ध्वान्तराजिः राजविरुद्धानां दुरन्ततां सूचयन्ती सद्यः पराभवं याति।

शब्दार्थ— चन्द्रांशुभिः = चन्द्रमा की किरणों द्वारा। स्पृष्टा = छुई गयी, स्पर्श की गयी। ध्वान्तराजिः = अन्धकार-राशि। राजविरुद्धानाम् = राजा (चन्द्रमा अथवा नृपति) के विरुद्ध लोगों (विरोधियों) की। दुरन्ततां = दुःखान्तता को। सूचयन्ती = सूचित करती हुई। सद्यः = तत्क्षण, तत्काल। पराभवं = विनाश को। याति = चली जाती है, प्राप्त हो जाती है।

अनुवाद— चन्द्रमा की किरणों द्वारा स्पर्श की गयी अन्धकार-राशि राजा (चन्द्रमा, नृपति) के विरुद्ध लोगों (विरोधियों) की दुःखान्तता को सूचित करती हुई तत्क्षण विनाश को प्राप्त हो जाती है (विनष्ट हो जाती है)।

संस्कृतव्याख्या— असत्फलनिदर्शनं निदर्शयत्यत्र– **यातीति**। **चन्द्रांशुभिः** चन्द्रकिरणैः **स्पृष्टा** स्पर्शं प्राप्ता **ध्वान्तराजिः** अन्धकारराशिः **राजविरुद्धानां** चन्द्रप्रतिकूलानां राजविरोधिनां वा **दुरन्ततां** दुःखान्ततां **सूचयन्ती** बोधयन्ती **सद्यः** तत्क्षणं **पराभवं** विनाशं **याति** गच्छति। अत्र चन्द्रकिरणैः पराभूयमानाः तमोराशिः राजद्रोहिषु दुःखान्तत्वरूपम् अनिष्टफलं निदर्शयतीति असत्फलं निदर्शनं विद्यते।

---

(१) –राजी, –राशिः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रकिरणों से पराभूत गहन अन्धकार राजविरोध के असत्फल दुःखान्तता को सूचित करता है। अतः यहां असत्फल निदर्शन अलङ्कार है।

(सहोक्तिपरिवृत्तयोःविवेचनम्)

सहोक्तिः सहभावस्य[1] कथनं गुणकर्मणाम् ।
अर्थानां यो विनिमयः परिवृत्तिस्तु सा स्मृता[2] ।।३५१।।

अन्वय— गुणकर्मणां सहभावस्य कथनं सहोक्तिः, अर्थानां यः विनिमयः सा परिवृत्तिः स्मृता।

शब्दार्थ— गुणकर्मणां = गुणों अथवा क्रियाओं के। सहभावस्य = साहचर्य का, एक साथ विद्यमानता का। कथनं = कथन। सहोक्तिः = सहोक्ति अलङ्कार। अर्थानां = पदार्थों का। यः = जो। विनिमयः = विनिमय, आदान-प्रदान। सा = वह। परिवृत्तिः = परिवृत्ति (अलङ्कार)। स्मृता = कही जाती है।

अनुवाद— गुणों अथवा क्रियाओं के साहचर्य (सहभाव, एक साथ विद्यमानता) का कथन सहोक्ति (अलाङ्कार) तथा पदार्थों का जो विनिमय (आदान-प्रदान) (होता है) वह परिवृत्ति (अलङ्कार) कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— सहोक्तिं परिवृतिं चालङ्कारद्वयं विवेचयत्यत्र- **सहोक्तिरिति**। **गुणकर्मणां** गुणानां क्रियाणां वा **सहभावस्य** साहचर्यस्य **कथनं** प्रतिपादनं **सहोक्तिः** तन्नामालङ्कारः **अर्थानां** पदार्थानां च **यः विनिमयः** आदानं प्रदानं **सा परिवृत्तिः** तन्नामालङ्कारः। परार्थानां च आदानप्रदानक्रियालक्षणा परिवृत्तिरिति भावः।

विशेष—

(१) गुणों या क्रियाओं अथवा द्रव्यों का एक साथ अस्तित्व-कथन सहोक्ति अलङ्कार है। अर्थात् जहाँ सम्बन्धी-भेद से भिन्न होने वाले भी गुण, क्रिया, द्रव्य सहार्थक शब्द के बल से एक साथ कहे जाते हैं उनको सहोक्ति माना जाता है। गुण, क्रिया और द्रव्य के आधार पर सहोक्ति के तीन भेद होते हैं।

(२) वस्तुओं के विनिमय अर्थात् आदान-प्रदान को परिवृत्ति अलङ्कार कहा जाता है। विनिमय का तात्पर्य है- अपना कुछ देकर उसके स्थान पर दूसरे का कुछ ले लेना। यह विनिमय तीन प्रकार का हो सकता है- (क) सम से सम का (ख)

(१) -भावेन।
(२) यथा।

न्यून से अधिक का और (ग) अधिक से न्यून का। इस विनिमय के आधार पर परिवृत्ति के तीन भेद होते हैं।

(गुणसहोक्तिनिदर्शनम्)

सह दीर्घा मम श्वासैरिमाः सम्प्रति रात्रयः ।
पाण्डुराश्च ममैवाङ्गैः सह ताश्चन्द्रभूषणाः ।।३५२।।

अन्वय— सम्प्रति मम श्वासैः सह इमाः रात्रयः दीर्घाः (जाताः) मम एव अङ्गैः सह ताः चन्द्रभूषणाः च पाण्डुराः (जाताः)।

शब्दार्थ— सम्प्रति = इस समय। मम = मेरी। श्वासैः सह = श्वासों के साथ। इमाः = ये। रात्रयः = रातें। दीर्घाः = बड़ी, लम्बी। मम = मेरे। अङ्गैः सह = अङ्गों के साथ। चन्द्रभूषणाः = चन्द्रमारूपी आभूषण वाली। ताः = वे। पाण्डुराः = सफेद (हो गयी है)।

अनुवाद— इस समय (विरहकाल में) मेरी (लम्बी) श्वासों के साथ (मिल कर) ये रातें बड़ी (हो गयी हैं) और मेरे (विरह के कारण सफेद हुए) अङ्गों के साथ (मिलकर) वे चन्द्रमारूपी आभूषण वाली (रातें) सफेद (हो गयीं हैं)।

संस्कृतव्याख्या— गुणसहोक्तिं निदर्शयत्यत्र- **सहेति**। **सम्प्रति** अस्मिन् मम विरहकाले **मम** विरहिणः **श्वासैः** निःश्वसितैः सह मिलित्वा **इमाः** एताः **रात्रयः** निशाः **दीर्घा** आयताः सञ्जाताः तथा च **मम** विरहिणः एव **अङ्गैः** विरहसन्तापेन शुभ्रैः जातैः शरीरावयवैः सह मिलित्वा **ताः** पूर्वोक्ताः **चन्द्रभूषणाः** चन्द्ररूपभूषणयुताः सत्यः **पाण्डुराः** श्वेताभाः जायन्ते। सम्बन्धिभेदाद् भिन्नयोरपि दीर्घत्वपाण्डुरत्वयोः धर्मयोः सहभावेन कथनादत्र गुणसहोक्तिरलङ्कारः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में सम्बन्धिभेद से भिन्न दीर्घत्व और पाण्डुरत्व गुणों के सहभाव का कथन होने से यहाँ गुणसहोक्ति अलङ्कार है।

(२) रात्रि पदार्थ दीर्घत्व गुण के कारण विरही पुरुष के श्वास पदार्थ के साथ उक्त है और पाण्डुरत्व गुण के कारण शुक्लपक्ष की रात्रि विरही पुरुष के अङ्गों के साथ उक्त है। इस प्रकार सामान्य रात्रि पदार्थ दीर्घत्व और श्वासों का दीर्घत्व- ये दो गुण आश्रय पदार्थों के सहभाव के कारण सहभूत है। इसी प्रकार विशेष रात्रि पदार्थ का पाण्डुरत्व और अङ्गों का पाण्डुरत्व भिन्नाश्रय गुण एक पद से उक्त होने के कारण सहभूत है।

(क्रियासहोक्तिनिदर्शनम्)

वर्धते सह पान्थानां मूर्च्छया चूतमञ्जरी ।
वहन्ति[1] च समं तेषामश्रुभि[2]र्मलयानिलाः ।।३५३।।

अन्वय— चूतमञ्जरी पान्थानां मूर्च्छया सह वर्धते, मलयानिलाः च तेषाम् अश्रुभिः समं वहन्ति ।

शब्दार्थ— चूतमञ्जरी = आम्रमञ्जरी । पान्थानां = पथिकों की, प्रवासियों की । मूर्च्छया सह = मूर्च्छा के साथ । वर्धते = बढ़ रही है । मलयानिलाः च = और मलयपवन । तेषां = उन (पथिकों) के । अश्रुभिः समं = आँसुओं के साथ । वहन्ति = बह रहा है ।

अनुवाद— आम्रमञ्जरी प्रवासी पथिकों की मूर्च्छा के साथ (बढ़ती हुई) बढ़ रही है और मलयपवन उन (पथिकों) के (बहते हुए) आँसुओं के साथ (मिलकर) बह रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— क्रियासहोक्तिमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र– **वर्धते इति । चूतमञ्जरी** आम्रमञ्जरी **पान्थानां** प्रवासिपथिकानां **मूर्च्छया सह वर्धते** वृद्धिं प्राप्यते **मलयानिलाः च** मलयवायवः च **तेषां** पथिकानां **अश्रुभिः** नेत्रवारिभिः **समं** सह **वहन्ति** प्रचलन्ति । मूर्च्छावृद्धिचूत्तमञ्जरीवृद्ध्योः अश्रुप्रवाहमलयपवनप्रवाहयोः च क्रियाद्वयोः सहभावेन कथनादत्र क्रियासहोक्तिरलङ्कारः विद्यते ।

विशेष—

(१) मूर्च्छावृद्धि और मञ्जरीवृद्धि– इन दो क्रियाओं का तथा अश्रुप्रवाह और मलयपवनप्रवाह– इन दो क्रियाओं का सहभाव से कथन होने के कारण यहाँ क्रियासहोक्ति अलङ्कार है ।

(२) आम्रमञ्जरी जैसे-जैसे बढ़ रही है वैसे प्रवासी पथिकों की रति भी उद्दीपित होने से उनकी मूर्च्छा में वृद्धि हो रही है । इस प्रकार आम्रमञ्जरी का बढ़ना मूर्च्छावृद्धि में कारण है । कारण होने से आम्रमञ्जरी की वृद्धि प्रधान है ।

(३) इसी प्रकार जब सुगन्धित पवन भी चलने लगता है और पथिक अपनी नायिकाओं के पास नही पहुँच पाते तो कामपीड़ा के कारण उनके आँखों में आसुओं की वृद्धि होने लगती है ।

---

(१) वर्तन्ते ।
(२) अस्रुभिः ।

(४) प्रस्तुत उदाहरण में मूर्च्छावृद्धि और मञ्जरीवृद्धि इन दो क्रियाओं तथा अश्रुप्रवाह और पवन-प्रवाह इन दो क्रियाओं का सहभाव से कथन हुआ है।

(क्रियासहोक्तेरपरं निदर्शनम्)

कोकिलालापसुभगाः सुगन्धिवनवायवः ।
यान्ति सार्धं जनानन्दैर्वृद्धिं सुरभिवासराः ।।३५४।।

अन्वय— कोकिलालापसुभगाः सुगन्धिवनवायवः सुरभिवासराः जनानन्दैः सार्धं वृद्धिं यान्ति।

शब्दार्थ— कोकिलालापसुभगाः = कोयलों की कूजन से मनोहर। सुगन्धिवनवायवः = सुगन्धित वनपवन से युक्त। सुरभिवासराः = वसन्तकाल वाले दिन। जनानन्दैः सह = लोगों के आनन्द के साथ। वृद्धिं = वृद्धि को। यान्ति = प्राप्त करते हैं।

अनुवाद— कोयलों की कूजन से मनोहर और सुगन्धित वनपवन से युक्त वसन्तकाल वाले दिन लोगों के आनन्द के साथ वृद्धि को प्राप्त हो रहें हैं।

संस्कृतव्याख्या— क्रियासहोक्तेरपरं निदर्शनं ददात्यत्र– **कोकिलेति**। **कोकिलालापसुभगाः** कोकिलानां आलापैः कूजनैः सुभगाः मनोहराः **सुगन्धिवनवायवः** सुगन्धितोपवनवाताः **सुरभिवासराः** सुरभेः वसन्तकालस्य वासराः दिवसाः **जनानन्दैः** सार्धं जनानां लोकानाम् आनन्दैः हर्षोल्लासैः सह **वृद्धिं यान्ति** वर्धन्ते। वसन्तदिवसवृद्धिलोकानन्दवृद्ध्योः क्रियाद्वयोः सहभावेन वर्णनादत्र क्रियासहोक्तिरलङ्कारः।

विशेष—

(१) वसन्तकालिक दिनों की वृद्धि और लोगों के आनन्द की वृद्धि– इन दो क्रियाओं का सहभाव से कथन होने के कारण यहाँ क्रियासहोक्ति अलङ्कार है।

(२) वसन्त में दिन स्वभावतः क्रमशः बड़े होने लगते हैं, पर वे अकेले नहीं बढ़ते प्रत्युत कामोद्दीपक होने के कारण लोगों के आनन्द के साथ बढ़ते हैं। दोनों वृद्धि प्राप्त क्रियाओं का सहभाव से कथन हुआ है।

(सहोक्तेरुपसंहारः)

इत्युदाहृतयो दत्ताः सहोक्तेरत्र काश्चन ।
क्रियते परिवृत्तेश्च किञ्चिद्रूपनिरूपणम् ।।३५५।।

अन्वय— इति अत्र सहोक्तेः काश्चन उदाहृतयः दत्ताः। परिवृत्तेः च किञ्चित् रूपनिरूपणं क्रियते।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। अत्र = यहाँ। सहोक्तेः = सहोक्ति के। काश्चन =

कुछ। उदाहृतयः = उदाहरण। दत्ताः = दिये गये। परिवृत्तेः च = और परिवृत्ति का। किञ्चित् = कुछ, थोड़ा। निरूपणं = निरूपण, प्रतिपादन। क्रियते = किया जा रहा है।

अनुवाद— इस प्रकार यहाँ सहोक्ति के कुछ उदाहरण दिये गये और (अब) परिवृत्ति का कुछ निरूपण किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— सहोक्तिमुपसंहरत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **अत्र सहोक्तेः** अलङ्कारस्य **काश्चन उदाहृतयः** कानिचित् निदर्शनानि **दत्ताः** प्रस्तुतानि क्रियन्ते, **परिवृत्तेः च** अलङ्कारस्य **किञ्चित् निरूपणं** प्रतिपादनं **क्रियते** निरूप्यते।

(परिवृत्तिनिदर्शनम्)

शस्त्रप्रहारं ददता भुजेन तव भूभुजाम्।
चिरार्जितं हृतं तेषां यशः कुमुदपाण्डुरम्॥३५६॥

अन्वय— तव भूभुजां शस्त्रप्रहारं ददत्ता भुजेन तेषां चिरार्जितं कुमुदपाण्डुरं यशः हृतम्।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारी। भूभुजां = शत्रु राजाओं पर। शस्त्रप्रहारं = शस्त्र के प्रहार को। ददता = देती हुई, करती हुई। भुजेन = भुजा के द्वारा। तेषां = उन (शत्रु राजाओं) का। चिरार्जितं = चिरकाल से उपार्जित। कुमुदपाण्डुरं = कुमुदिनी के समान शुभ्र। यशः = यश। हृतं = ले लिया गया।

अनुवाद— (हे राजन्) शत्रु राजाओं पर शस्त्र प्रहार को करने वाली तुम्हारी भुजा के द्वारा उन (शत्रु राजाओं) का चिरकाल से उपार्जित कुमुदिनी के समान शुभ्र यश ले लिया गया।

संस्कृतव्याख्या— परिवृत्तिमलङ्कारं निदर्शयत्यत्र- **शस्त्रप्रहारमिति**। हे राजन्, **तव** राज्ञः **भूभुजां** शत्रुनृपतीनां **शस्त्रप्रहारं** कृपाणादिभिः शस्त्रैः प्रहारं **ददता** कुर्वता **भुजेन** बाहुना **तेषां** शत्रुराज्ञां **चिरार्जितं** चिरकालादुपार्जितं **कुमुदपाण्डुरं** कुमुदवत् शुभ्रं **यशः** कीर्तिः **हृतं** गृहीतम्। अत्र शस्त्रप्रहारयशसोः विनिमयः वर्णितः इति परिवृतिरलङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में किसी राजा के भुजबल शौर्य का वर्णन किया गया है। राजा की भुजा ने विपक्षी राजाओं को शस्त्रप्रहाररूपी क्रिया को देकर उसके बदले में उनका कुमुद के समान शुभ्र यश रूप द्रव्य ले लिया है। इस प्रकार यहाँ शस्त्र-प्रहार और यश का विनिमय (आदान-प्रदान) प्रस्तुत किया गया है अतः यहाँ परवृत्ति अलङ्कार है।

(२) शस्त्रप्रहार यश की अपेक्षा निकृष्ट है। परवर्ती आचार्यों के अनुसार न्यून प्र... करके अधिक आदान रूप परिवृत्ति है।

(३) राजा की एक ही भुजा ने अनेकों विपक्षी राजाओं की अत्यन्त विमलयश ... उत्कृष्ट वस्तु छीन लिया, वह भी एकमात्र निर्विशेष शस्त्रप्रहार देकर- इस ... की प्रतीति होने से राजा का शौर्यातिशय व्यक्त होता है।

(आशीःअलङ्कारविवेचनम्)

आशीर्नामाभिलषिते वस्तुन्याशंसनं यथा ।
पातु वः[1] परमं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरः[2] ।।

अन्वय— अभिलषिते वस्तुनि आशसनं आशीः नाम। यथा- अवाङ्मनसगोचरं परमं ज्योतिः वः पातु।

शब्दार्थ— अभिलषिते = अभिलषित, अभीष्ट। वस्तुनि = वस्तु के प्रति। आशंसनं = आशंसावचन, आशीर्वाद। आशीः नाम = आशीः नामक (अलङ्कार होता है)। यथा = जैसे। अवाङ्मनसगोचरः = वाणी और मन से न जानने योग्य, वाणी और मन से परे, वाणी और मन की पहुँच से बाहर। परमं = परम, सर्वश्रेष्ठ। ज्योतिः = ज्योति। वः = तुम लोगों की। पातु = रक्षा करे।

अनुवाद— अभिलषित (अभीष्ट) वस्तु के प्रति आशंसावचन (आशीर्वाद) आशीः नामक (अलङ्कार होता है)। जैसे वाणी और मन के द्वारा न जानने योग्य परम ज्योति (परमात्मज्योति) तुम लोगों की रक्षा करें।

संस्कृतव्याख्या— आशीःनामालङ्कारं विवेचयत्यत्र- **आशी इति**। **अभिलषिते** अभीष्टे **वस्तुनि** पदार्थे **आशंसनं** आशंसाकथनं **आशीःनाम** आशीः इति नामकोऽलङ्कार उच्यते। **यथा**- **अवाङ्मनसगोचरः** वाक् मनः च वाङ्मनसे तयोः अगोचरः अद्रष्टव्यः वाचा मनसा च ज्ञातुमशक्यः इत्यर्थः **परमं** सर्वश्रेष्ठं **ज्योतिः** परमात्मरूपं तेजः **वः** युष्मान् **पातु** रक्षतु।

विशेष—

(१) अभीष्ट वस्तु के सम्बन्ध में आशीर्वचन आशीःनामक अलङ्कार कहलाता है।

(२) प्रस्तुत उदाहरण में अपने अभीष्ट लोगों के सम्बन्ध में परमात्मस्वरूप ज्योति से रक्षा करने के लिए आशीर्वाद दिया जाता है, अतः यहाँ आशीःनामक अलङ्कार है।

(१) नः।

(२) - गोचरम्।

(कल्पितान्यालङ्काराणामन्तर्भावकथनम्)

अनन्वयससन्देहावुपमास्वेव दर्शितौ ।
उपमारूपकं चापि रूपकेष्वेव दर्शितम्[1] ।।३५८।।

अन्वय— अनन्वयससन्देहौ उपमासु एव दर्शितौ; उपमारूपकं च अपि रूपकेषु एव दर्शितम् ।

शब्दार्थ— अनन्वयससन्देहौ = अनन्वय (अलङ्कार) और सन्देह (समन्देह अलङ्कार)। उपमासु = उपमा (के निरूपण के प्रसङ्ग) में। दर्शितौ = दिखला दिये गये है। उपमारूपकं च = और उपमारूपक (अलङ्कार)। अपि = भी। रूपकेषु एव = रूपक (के निरूपण के प्रप्रङ्ग) में। दर्शितम् = दिखलाया जा चुका है।

अनुवाद— अनन्वय और सन्देह (अलङ्कार) उपमा (के निरूपण के प्रसङ्ग) में दिखला दिये गये हैं और उपमारूपक (अलङ्कार) रूपक (के निरूपण के प्रसङ्ग) में दिखलाया जा चुका है।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वम् उद्दिष्टानलङ्कारान् विवेच्यात्र मतान्तरोक्तानां केषाञ्चिदलङ्काराणां स्वोपदिष्टेषु अलङ्कारेषु अन्तर्भावं प्रदर्शयति- **अनन्वयेति**। **अनन्वयससन्देहौ** अनन्वयश्च सन्देहश्चालङ्कारौ **उपमासु एव** उपमानिरूपणप्रसङ्गेषु एव असाधारणोपमा संशयोपमारूपेण **दर्शितौ** निर्दिष्टौ विद्यते **उपमारूपकं च** उपमारूपकं नामालङ्कारः **रूपकेषु एव** रूपकनिरूपणप्रसङ्गेषु एव रूपकभेदरूपेण **दर्शितं** निर्दिष्टं विद्यते।

विशेष—

(१) कतिपय आचार्यो ने अनन्वय, सन्देह और उपमारूपक को पृथक् स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में माना है। दण्डी ने अनन्वय को असाधारणोपमा (२.३७) सन्देह को संशयोपमा (२.२६) और उपमारूपक (२.८८-८९) के नाम से रूपक भेद के रूप में उपमारूपक में समाहित करके इनका प्रतिपादन किया है।

(उत्प्रेक्षावयवस्यान्तरर्भावं संसृष्टिविवेचनञ्च)

उत्प्रेक्षाभेद एवासावुत्प्रेक्षावयवोऽपि यः[2] ।
नानालङ्कारसंसृष्टिः[3] संसृष्टिस्तु निगद्यते ।।३५९।।

अन्वय— यः उत्प्रेक्षावयवः असौ अपि उत्प्रेक्षाभेदः एव। नानालङ्कारसंसृष्टिः संसृष्टिः निगद्यते।

(१) कीर्तितम्। (२) च।
(३) सङ्कीर्णं तु, संसृष्टिः कथ्यते पुनः।

शब्दार्थ— यः = जो। उत्प्रेक्षावयवः = उत्प्रेक्षावयव (है)। असौ अपि = भी। उत्प्रेक्षाभेदः एव = उत्प्रेक्षा का भेद ही (है)। नानालङ्कारसंसृष्टिः = अ अलङ्कारों की संसृष्टि (एकत्र उपस्थिति)। संसृष्टिः = संसृष्टि (अलङ्कार)। निगद्यते कही जाती है।

अनुवाद— जो उत्प्रेक्षावयव है, वह भी उत्प्रेक्षा का ही भेद है। अनेक अल की एकत्र उपस्थिति संसृष्टि (अथवा सङ्कीर्ण) कही जाती है।

संस्कृतव्याख्या—उत्प्रेक्षावयवं उत्प्रेक्षायां अन्तर्भावं दर्शयन् संसृष्टिं विवृ त्यत्र- **उत्प्रेक्षाभेद इति**। **यः उत्प्रेक्षावयवः** इति पृथगलङ्कारः परैर्मन्यते **असौ अ** **उत्प्रेक्षाभेदः** उत्प्रेक्षायाः भेदः विद्यते। **नानालङ्कारसंसृष्टिः** नानालङ्काराणां संसृ एकत्रोपस्थितिः **संसृष्टिः** सङ्कीर्णमित्यप्यपरनामधेयालङ्कारः **निगद्यते** उच्यते।

विशेष—

(१) कतिपय आचार्यों ने उत्प्रेक्षावयव को अलग स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में स्वीक करते हैं। दण्डी ने इसे उत्प्रेक्षा का भेद माना है।

(२) जहाँ पर एकत्र अनेक अलङ्कारों की उपस्थिति हो जाती है, उसे संसृष्टि अलङ्क कहा जाता है। कतिपय लोग इसे सङ्कीर्ण अलङ्कार के नाम से भी अभिहि करते हैं।

(संसृष्टिभेदनिरूपणम्)

अङ्गाङ्गिभावावस्थानं सर्वेषां समकक्षता।
इत्यलङ्कारसंसृष्टेर्लक्षणीया द्वयी गतिः॥३६०॥

अन्वय— अङ्गाङ्गिभावावस्थानं सर्वेषां समकक्षता इति अलङ्कारसंसृष्टेः द्व गतिः लक्षणीया।

शब्दार्थ— अङ्गाङ्गिभावावस्थानं = अङ्गाङ्गिभाव (गौण और प्रधान भाव) उपस्थिति। सर्वेषां = सभी (अलङ्कारों) की। समकक्षता = समान रूप से उपस्थिति इति = यह। अलङ्कारसंसृष्टेः = अलङ्कारों की ससृष्टि की। द्वयी गतिः = दो रूप लक्षणीया = दिखलायी पड़ते हैं।

अनुवाद— (संसृष्ट हुए अलङ्कारों का) अङ्गाङ्गिभाव (गौण और प्रधान रूप) उपस्थिति तथा सभी अलङ्कारों की समानरूप से उपस्थिति- ये अलङ्कारों की संसृष्टि दो रूप दिखलायी पड़ते हैं।

संस्कृतव्याख्या— संसृष्टेः भेदद्वयं निर्दिशत्यत्र- **अङ्गाङ्गीति**। **अङ्गाङ्गिभावाव स्थानम्** अलङ्कारणाम् अङ्गाङ्गिभावेन गौणप्रधानभावेन अवस्थानम् उपस्थितिः कस्य

विद् गौणभावेन कस्यचित्प्रधानभावेनोपस्थितिः तथा च **सर्वेषाम्** अलङ्काराणां **समकक्षता** तुल्यबलता स्वतन्त्रेण उपस्थितिः इति **अलङ्कारसंसृष्टेः** अलङ्काराणां परस्परसंसर्गस्य **द्वयी गतिः** द्विविधा व्यवस्था **लक्षणीया** ज्ञातव्या ।

विशेष—

(१) संसृष्टि अलङ्कार दो प्रकार का होता है- (क) अङ्गाङ्गिभावावस्थापन तथा (ख) समकक्षता । जिस अलङ्कार में एक स्थान पर एकाधिक अलङ्कारों में अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध होता है अर्थात् एक अलङ्कार प्रधानरूप से तथा अन्य गौणरूप से उपस्थित होते हैं वह अङ्गाङ्गिभाव संसृष्टि कहलाता है तथा जिन एकाधिक अलङ्कारों में अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध नहीं होता- वे सभी स्वतन्त्ररूप से अवस्थित होते हैं, वह समकक्षता संसृष्टि कहलाता है ।

(२) दण्डी ने संसृष्टि-सङ्कर इन प्रभेदों को अलग-अलग न मानकर सभी को संसृष्टि ही माना है । परवर्ती आचार्यों के अनुसार समकक्षतया विद्यमान दो अलङ्कारों के संसर्ग से संसृष्टि अलङ्कार होता है । अङ्गाङ्गिभाव के साथ एकाश्रय स्थिति और संदिग्धता को सङ्कर अलङ्कार में समाविष्ट किया गया है—

मिथोऽनपेक्षमेतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते ॥
अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ ।
संन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः ॥ (सा०द०- १०.९८)

(३) इस प्रकार संसृष्टि और सङ्कर दोनों अलङ्कारों को संसृष्टि में ही समाहित करके दण्डी ने उसे दो भागों में विभाजित किया है ।

(अङ्गाङ्गिभावावस्थानसंसृष्टिनिदर्शनम्)

आक्षिपन्त्यरविन्दानि मुग्धे तव मुखश्रियम्[१] ।
कोश[२]दण्डसमग्राणां किमेषामस्ति दुष्करम् ।।३६१।।

अन्वय— मुग्धे, अरविन्दानि तव मुखश्रियम् आक्षिपन्ति, कोशदण्डसमग्राणां एषां किं दुष्करम् अस्ति ।

शब्दार्थ— मुग्धे = हे बाले । अरविन्दानि = लालकमल । तव = तुम्हारी । मुखश्रियम् = मुख की शोभा को । आक्षिपन्ति = आक्षिप्त करते हैं, नीचा दिखाते हैं, समानता करते हैं । कोशदण्डसमग्राणां = कोश (कमल का विकसित आकार, खजाना) और दण्ड (नाल, सेना) से सम्पन्न । एषां = इन (कमलों) के लिए । किं दुष्करम् = क्या दुष्कर (कठिन) । अस्ति = है ।

(१) -श्रियः । (२) कोष- ।

अनुवाद— हे बाले, (ये) लालकमल तुम्हारी मुख की शोभा को अक्षिप्त करते हैं। कोश (कमल का विकसित रूप, खजाना) और दण्ड (नाल, सेना) से सम्पन्न इन (कमलों) के लिए दुष्कर (कठिन) क्या है (अर्थात् कुछ भी कठिन नहीं है)।

संस्कृतव्याख्या— अङ्गाङ्गिभावावस्थानरूपां संसृष्टिं निदर्शयत्यत्र- **आक्षिपन्तीति मुग्धे** हे बाले, **अरविन्दानि** रक्तकमलानि **तव** मुग्धायाः **मुखश्रियं** मुखशोभाम् **आक्षिपन्ति** निन्दन्ति। **कोशदण्डसमाग्राणां** कोशेन कुड्मलेन दण्डेन समग्राणां संयुतानाम् **एषां** कमलानां **किं** खलु कार्यं **दुष्करं** दुःसाध्यम् **अस्ति** विद्यते। कोशेन राजकोषेण दण्डेन सैन्यबलेन किमपि असाध्यं नेत्ययमप्यर्थो अत्र प्रतिफलति। अत्र उपमाया प्रधानभावेन श्लेषानुविद्धस्य अर्थान्तरन्यास्याङ्गभावेन अङ्गाङ्गिभावावस्थानरूपा संसृष्टि अलङ्कारः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में आक्षिपन्ति पद से उपमा प्रधान (अङ्गी) रूप से प्रतीत होती है तथा कोश और दण्ड पदों में विद्यमान श्लेष से अनुविद्ध (अनुप्राणित) अर्थान्तरन्यास उसका अङ्ग है, अतः यहाँ अङ्गाङ्गिभावावस्थानरूप संसृष्टि अलङ्कार है।

(समकक्षतासंसृष्टिनिदर्शनम्)

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां[1] गता ।।३६२।।

अन्वय— तमः अङ्गानि लिम्पति इव, नभः अञ्जनं वर्षति इव, असत्पुरुषसेवा इव दृष्टिः निष्फलतां गता।

शब्दार्थ— तमः = अन्धकार। अङ्गानि = अङ्गों को। लिम्पति इव = मानो लीप रहा है, मानो लेप कर रहा है। नभः = आकाश। अञ्जनं = अञ्जन को, काजल को। वर्षति इव = मानो बरसा रहा है। असत्पुरुषसेवा इव = असज्जन (नीच) व्यक्ति की सेवा के समान। दृष्टिः = दृष्टि। निष्फलतां = निष्फलता को। गता = प्राप्त हो गयी है।

अनुवाद— अन्धकार मानो अङ्गों को लीप रहा है, आकाश मानो अञ्जन (काजल) को बरसा रहा है (अतः) असज्जन (नीच) व्यक्ति की सेवा के समान दृष्टि निष्फलता को प्राप्त हो गयी है।

संस्कृतव्याख्या— समकक्षतारूपां संसृष्टिं निदर्शयत्यत्र- **लिम्पतीति**। तमः

---

१) विफलतां।

गहनान्धकारः **अङ्गानि** शरीरावयवानि **लिम्पति इव** लेपनं करोति इव, **नभः** आकाशः **अञ्जनं** कज्जलं **वर्षति इव** वृष्टिं करोति इव अव एव **असत्पुरुषसेवा इव** असत्पुरुषस्य असज्जनजनस्य सेवा शुश्रूषा इव **दृष्टिः** दर्शनशक्त्यभावात् **निष्फलतां** निष्फलत्वं **गता** प्राप्ता। पूर्वार्धे उत्प्रेक्षाद्वयस्य उत्तरार्धे च उपमायाः समकक्षतया कथनेनात्र समकक्षता-रूपा संसृष्टिः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में कृष्णपक्ष की अँधेरी रात का वर्णन हुआ है। पूर्वार्ध में अन्धकार मानों अङ्गों को लीप रहा है और आकाश मानों अञ्जन बरसा रहा है– ये दो उत्प्रेक्षाएँ हैं तथा उत्तरार्ध में 'दृष्टिः उसी प्रकार निष्फल हो गयी है जिस प्रकार नीच व्यक्ति की सेवा' में उपमा है। यहाँ उत्प्रेक्षा और उपमा दोनों समकक्षतया स्वतन्त्र अन्योन्यनिरपेक्ष हैं अत एव समकक्षतारूपा संसृष्टि अलङ्कार है।

(संसृष्टौ श्लेषवैशिष्ट्यविवेचनम्)

श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्॥ ३६३॥

अन्वय— श्लेषः प्रायः सर्वासु वक्रोक्तिषु श्रियं पुष्णाति। वाङ्मयं स्वभावोक्तिः वक्रोक्तिः च इति द्विधा भिन्नम्।

शब्दार्थ— श्लेषः = श्लेष (अलङ्कार)। प्रायः = प्रायः। सर्वासु = सभी। वक्रोक्तिषु = वक्रोक्तियों में। श्रियं = शोभा को। पुष्णाति = बढ़ाता है। वाङ्मयं = सम्पूर्ण वाङ्मय (काव्यजगत्)। स्वभावोक्तिः = स्वभावाख्यान। वक्रोक्तिः च = और वक्राख्यान। इति = इस प्रकार। द्विधा = दो रूपों में। भिन्नं = विभक्त है।

अनुवाद— श्लेष (अलङ्कार) प्रायः सभी वक्रोक्तियों (सुन्दर उक्तियों) में शोभा को बढ़ाता है। सम्पूर्ण वाङ्मय (काव्य इत्यादि जगत्) स्वभावोक्ति (स्वभावाख्यान) और वक्रोक्ति (वक्राख्यान)– इस प्रकार दो रूपों में विभक्त है।

संस्कृतव्याख्या— अलङ्कारसंसृष्टौ श्लेषालङ्कारस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादयत्यत्र– **श्लेषरिति**। **श्लेषः** श्लेषालङ्कारः **प्रायः** बहुलतया **सर्वासु वक्रोक्तिषु** सर्वेष्वेवोक्ति-वैचित्र्यकृतालङ्कारेषु उपमादिषु **श्रियं** शोभां पुष्णाति विवर्धयति। **वाङ्मयं** सम्पूर्ण काव्या-दिजगत् **स्वभावोक्तिः** वस्तुस्वरूपवर्णनरूपं स्वभावाख्यानं **वक्रोक्तिः च** उक्तिवैचि-त्र्यरूपं वक्राख्यानं च **इति** एवं **द्विधा** द्विप्रकारेण **भिन्नं** विभक्तं विद्यते।

विशेष—

(१) दण्डी ने अलङ्कारों की संसृष्टि में श्लेष का विशेष महत्त्व दिखलाया है। उनके

अनुसार श्लेष सभी उक्तिवैचित्र्यरूप उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों में शोभा की वृद्धि करता है। ऐसे सभी उक्तिवैचित्र्य वाले कथन को यहाँ वक्रोक्ति नाम से अभिहित किया गया है।

(२) दण्डी ने सम्पूर्ण वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया है– (क) स्वभावोक्ति अथवा स्वभावाख्यान और (ख) वक्रोक्ति अथवा वक्राख्यान। किसी वस्तु के यथार्थस्वरूप का वर्णन स्वभावोक्ति अथवा स्वभावाख्यान है तथा उक्तिवैचित्र्य द्वारा चमत्कृत वर्णन करना वक्रोक्ति या वक्राख्यान है।

(३) स्वभावोक्ति सर्वजन संवेद्य होती है और वक्रोक्ति बुधजनसंवेद्य। इसी कारण से दण्डी ने पहले स्वभावोक्ति को पुनः वक्रोक्ति को स्थान दिया है।

(४) दण्डी ने वक्रोक्ति को पृथक् अलङ्कार के रूप में निरूपित नहीं किया है किन्तु स्वभावकथन को अन्य चमत्कारयुक्त कथन के लिए वक्रोक्ति संज्ञा का प्रयोग किया है। इस प्रकार दण्डी द्वारा प्रयुक्त वक्रोक्ति व्यापक अर्थ वाली है– इसका क्षेत्र व्यापक है। बाद के आलङ्कारिकों ने इसके अर्थ को सीमित करके अलग स्वतन्त्र अलङ्कार के रूप में व्याख्यायित किया है।

(भाविकत्वालङ्कारविवेचनम्)

भाविकत्वमिति[१] प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम्।
भावः कवेरभिप्रायः काव्येष्वासिद्धि संस्थितः[२] ।।३६४।।

अन्वय— प्रबन्धविषयं गुणं भाविकत्वम् प्राहुः। आसिद्धि काव्येषु कवेः संस्थितः अभिप्रायः भावः (इति)।

शब्दार्थ— प्रबन्धविषयं = (काव्य-) प्रबन्ध-विषयक, (काव्य-) प्रबन्ध में व्याप्त होने वाले। गुणं = गुण (विशेष) को। भाविकत्वं = भाविकत्व। प्राहुः = कहा गया है। काव्येषु = काव्यों में। आसिद्धि = सिद्धि (पूर्णता) पर्यन्त। संस्थितः = रहने वाला। अभिप्रायः = अभिप्राय। **भावः इति** = भाव कहलाता है।

अनुवाद— (काव्य) प्रबन्ध विषयक (काव्य-प्रबन्ध में व्याप्त होने वाला) गुण-विशेष भाविकत्व कहा गया है। काव्यों में (उनकी) सिद्धि (पूर्णता) पर्यन्त कवि का रहने वाला अभिप्राय भाव (कहलाता है)।

संस्कृतव्याख्या— भाविकत्वमलङ्कारं विवेचयत्यत्र– **भाविकत्वमिति। प्रबन्धविषयं** काव्यप्रबन्धविषयकं तत्र विद्यमानं चमत्काराधायकं **गुणं** गुणविशेषम् **भाविकत्वम्**

(१) तद्भाविकमिति, भाविकं तमिति। (२) यः स्थितः, काव्येष्वस्य व्यवस्थितिः।

इति प्राहुः कथयति। भावः कवेरभिप्रायः ततः प्रवृत्तं भाविकत्वम्। **काव्येषु** काव्यप्रबन्धेषु आसिद्धि समाप्तिपर्यन्तं **कवेः** काव्यकर्तुः **संस्थितः** समानरूपेण विद्यमानः **अभिप्रायः** काव्यरचनाप्रयोजकः मनःसङ्कल्पविशेषः **भावः** इति कथितः।

विशेष—

(१) सभी प्रकार के काव्यप्रबन्धों में काव्य के निबन्धन में व्याप्त होकर स्थित रहने वाला गुणविशेष भाविक कहलाता है। इसी विशेषता के कारण दण्डी ने इसे अलङ्कार न कहकर गुणविशेष कहा है।

(२) भाविक शब्द का अर्थ है– भाव में होने वाला। काव्यों में कवि का जो अभिप्राय काव्य की समाप्ति पर्यन्त विद्यमान रहता है, वह भाव कहलाता है। कवि जिस अभिप्राय से काव्य का आरम्भ करता है, उसी का निर्वाह करता हुआ उसे समाप्त करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त अभिप्राय भाव होता है।

(३) भाविक का दण्डी की अलङ्कार संकल्पना में विशिष्ट स्थान है। यह सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त रहता है इसीलिए आचार्य ने इसका उदाहरण नहीं दिया है।

(४) कल्पना की दृष्टि से भाविकत्व एक व्यापक तत्त्व है जो किसी अलङ्कार-विशेष या गुण-विशेष में समाहित नहीं हो सकता। परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने इस स्वरूप को पूर्णतः बदलकर इसका क्षेत्र सीमित कर दिया है जिससे यह केवल एक अलङ्कार बन कर ही रह गया है। उनके अनुसार भूतकालिक अथवा भविष्यकालिक किसी अद्भुत पदार्थ का ऐसा विशद वर्णन जो प्रत्यक्ष के समान प्रतीत हो, भाविक अलङ्कार कहलाता है—

अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः।
यत्प्रत्यक्षमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम्॥
(सा०द०- १०.९३)

(भाविकस्वरूपविशेषनिरूपणम्)

परस्परोपकारित्वं सर्वेषां वस्तुपर्वणाम्।
विशेषणानां व्यर्थानामक्रिया स्थानवर्णना ॥३६५॥
व्यक्तिरुक्तिक्रमबलाद्[१] गम्भीरस्यापि वस्तुनः।
भावायत्तमिदं सर्वमिति तद्भाविकं विदुः ॥३६६॥

अन्वय— सर्वेषां वस्तुपर्वणां परस्परोपकारित्वं, व्यर्थानां विशेषणानां अक्रिया, स्थानवर्णना, उक्तिक्रमबलात् गम्भीरस्य अपि वस्तुनः व्यक्तिः इदं सर्वं भावायत्तं तत् भाविकं विदुः।

शब्दार्थ— सर्वेषां = सभी। वस्तुपर्वणां = विषयवस्तु के (विभिन्न) भागों की। परस्परोपकारित्वं = परस्पर उपकारिता (पोषकत्व)। व्यर्थानां = व्यर्थ, अनुपयुक्त निरर्थक। विशेषणानां = विशेषणों का। अक्रिया = अप्रयोग, प्रयोग न करना। स्थानवर्णना = (उचित) स्थान (अवसर) पर वर्णन। उक्तिक्रमबलात् = उक्ति के क्रम के अनुसार, कथन के क्रम की शक्ति के अनुसार। गम्भीरस्य = गम्भीर। अपि = भी। वस्तुनः = विषयवस्तु की। व्यक्तिः = अभिव्यक्ति, अभिव्यञ्जना। इति = इस प्रकार। इदं = यह। सर्वं = सभी। भावायत्तं = भाव के अधीन होते हैं, भाव पर आश्रित हैं। तत् = उसको। भाविकं = भाविक। विदुः = कहा जाता है।

अनुवाद— सभी विषयवस्तु के (विभिन्न) भागों की परस्पर उपकारिता (पोषकत्व), अनुपयुक्त विशेषणों का प्रयोग न करना (अर्थात् उपयुक्त विशेषणों का प्रयोग), (उचित) स्थान (अवसर) पर (नगर, समुद्रादि का) वर्णन और कथन के क्रम की शक्ति के अनुसार गम्भीर भी विषयवस्तु की अभिव्यक्ति– इस प्रकार ये सभी भाव के अधीन (भाव पर आश्रित) होते हैं, उसको भाविक कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— भाविकस्वरूपस्य विशेषं निरूपयत्यत्र– **परस्परेति**। **सर्वेषां वस्तुपर्वणां** वस्तुनः प्रतिपाद्यविषयस्य विभिन्नानां भागानां **परस्परोपकारित्वं** अन्योन्यसापेक्षावस्थित्या अन्योन्यपोषकता, **व्यर्थानाम्** अनुपयुक्तानां **विशेषणानाम् अक्रिया** विशेषणानाम् अप्रयोगः समुचितविशेषणानां प्रयोगः इत्यर्थः **स्थानवर्णना** स्थाने समुचितस्थाने समुचितावसरे वा नगरादीनां वर्णना वर्णनम्, **उक्तिक्रमबलात्** वर्णनक्रमसामर्थ्यात् वर्णनक्रमानुसारं इत्यर्थः **गम्भीरस्य** निगूढस्य **अपि वस्तुनः** प्रतिपाद्यविषयस्य **व्यक्तिः** अभिव्यक्तिः **इति** अनेन प्रकारेण **इदं** पूर्वोक्तकथितं **सर्वं** तथ्यं **भावायत्तं** भावे पूर्वोक्तरूपे काव्यसमाप्तिपर्यन्तं कवेः वर्तमाने अभिप्राये आयत्तं संश्रितं **तत्** तस्मात्कारणात् **भाविकं विदुः** कथयन्ति।

विशेष—

(१) दण्डी ने भाविक के चार विशिष्ट तत्त्वों का निर्देश किया है जो भाव पर आश्रित होते हैं। वे ये हैं- (क) काव्य की कथावस्तु के सभी (भागों) का परस्पर उपकारिता-भाव से सम्बन्ध होना चाहिए। (ख) काव्य में निष्प्रयोजन किसी विशेषण का प्रयोग नहीं करना चाहिए। (ग) नगर, समुद्र इत्यादि का वर्णन उचित स्थान पर करना चाहिए और (घ) वर्णन क्रम के अनुसार गूढ़ विषयवस्तु की भी अभिव्यक्ति करनी चाहिए।

(२) दण्डी के अनुसार प्रतिपादित ये चारों तथ्य कवि के भाव (अभिप्राय) पर आश्रित होते हैं, अतः ये सभी भाविक कहलाते हैं।

(१) वशात्।

(सन्ध्यङ्गादीनामलङ्कारान्तर्भावः)

यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे ।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः ।।३६७।।

अन्वय— आगमान्तरे यत् च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणादि व्यावर्णितम् इदं नः अलङ्कारतया एव इष्टं च ।

शब्दार्थ— आगमान्तरे = अन्य (नाट्यशास्त्र इत्यादि) शास्त्रग्रन्थ में । यत् च = और जो । सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणादि = सन्धियाँ तथा (उनके) अङ्ग (सन्ध्यङ्ग), वृत्तियाँ तथा (उनके) अङ्ग (वृत्त्यङ्ग) लक्षण इत्यादि । व्यावर्णितं = निरूपित किया गया है । इदं = यह । नः = हमें । अलङ्कारतया = अलङ्कार के रूप से । एव = ही । इष्टं च = अभीष्ट है ।

अनुवाद— अन्य (नाट्यशास्त्र इत्यादि) शास्त्रग्रन्थ में जो सन्धियाँ, सन्ध्यङ्ग, वृत्तियाँ, वृत्त्यङ्ग, लक्षण इत्यादि निरूपित किया गया है, वह हमें (शोभाकारक होने के कारण) अलङ्कार के रूप में अभीष्ट है ।

संस्कृतव्याख्या— सन्ध्यङ्गादीनामलङ्कारतया अन्तर्भावं निरूपयत्यत्र- **यच्चेति** । **आगमान्तरे** अन्ये नाट्यशास्त्रादौ शास्त्रग्रन्थे **यत् सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणादि** सन्धयः, सन्ध्यङ्गानि, वृत्तयः वृत्त्यङ्गानि लक्षणानि इत्यादि **व्यावर्णितं** निरूपितम् **इदं** सर्वं **नः** अस्माकम् **अलङ्कारतया** शोभाकरत्वाद् अलङ्कारत्वेन **इष्टं च** अभीष्टं विद्यते ।

विशेष—

(१) नाट्यशास्त्र में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहरण- इन पाँच सन्धियों, चौसठ सन्ध्यङ्गों, भारती, सात्त्वती, कैशिकी और आरभटी— इन चार वृत्तियों तथा सोलह वृत्त्यङ्गों तथा भूषण इत्यादि छत्तीस लक्षणों इत्यादि नाट्यविषयक तत्त्वों का निरूपण किया गया है । ये तत्त्व भी काव्य के शोभाधायक तत्त्व हैं अतः दण्डी ने इन्हें शोभाधायक होने के कारण अलङ्कार के रूप में अभीष्ट माना है ।

(प्रकरणोपसंहारः)

पन्थाः स एष[1] विवृतः परिमाणवृत्त्या
सङ्क्षिप्य[2] विस्तरमनन्तमलङ्क्रियाणाम् ।
वाचामतीत्य विषयं परिवर्तमाना-
नभ्यास एव विवरीतुमलं विशेषान् ।।३६८।।

।। इति दण्डिनः कृतौ काव्यादर्शेऽलङ्कार विभागो नाम द्वितीयः परिच्छेदः ।।

अन्वय— अलङ्क्रियाणाम् अनन्तं विस्तरं सङ्क्षिप्य परिमाणवृत्त्या सः एषः

पन्था: विवृत: । वाचाम् विषयम् अतीत्य परिवर्तमानान् विशेषान् विवरीतुम् अभ्यास: एव अलम् ।

शब्दार्थ— अलङ्क्रियाणाम् = अलङ्कारों के । अनन्तं = अपरिमित, अगणित । विस्तरं = विस्तार को, प्रपञ्च को । सङ्क्षिप्य = संक्षिप्त करके । परिमाणवृत्या = परिमित रूप से । स: = वह । एष: = यह । पन्था = मार्ग । विवृत: = व्याख्यात है, व्याख्या की गयी है, स्पष्ट किया गया है । वाचां = वाणी के । विषयं = को । अतीत्य = अतिक्रमित करके । परिवर्तमानान् = परिवर्तित होते हुए, उद्भावित होते हुए । विशेषान् = विशेष (अलङ्कार भेदों) को । विवरीतुं = प्रकाशित करने के लिए, स्पष्ट करने के लिए । अभ्यास: एव = अभ्यास ही । अलं = समर्थ हो सकता है ।

अनुवाद— अलङ्कारों के अपरिमित विस्तार (विकल्प) को संक्षिप्त करके परिमित रूप से वह (अलङ्कार के निरूपण का) यह मार्ग स्पष्ट किया गया है । वाणी के विषय को अतिक्रमित करके परिवर्तित होते हुए (उद्भावित होते हुए) विशेष (असंख्य अलङ्कार के भेदों) को स्पष्ट करने के लिए अभ्यास ही समर्थ है ।

संस्कृतव्याख्या— प्रकरणोपसंहारं प्रकटयत्यत्र– **पन्था इति** । **अलङ्क्रियाणाम्** अलङ्काराणाम् **अनन्तं** अपरिमितं **विस्तारं** प्रपञ्चं **संक्षिप्य** संक्षेपं कृत्वा **परिमाणवृत्या** परिमितरूपेण **सः** पूर्वोक्त: **एषः पन्थाः** अलङ्कारमार्ग: **विवृतः** स्पष्टीकृत: विद्यते । **वाचां** वाणीनां **विषयं** वर्णनपथम् **अतीत्य** अतिक्रम्य **परिवर्तमानान्** नूतनोद्भावनया विद्यमानान् **विशेषान्** अलङ्कारप्रभेदान् **विवरीतुं** प्रकाशयितुम् **अभ्यासः एव** निरन्तर-काव्यानुशीलनमेव **अलं** समर्थ: भवति । अनेन प्रकारेण शिक्षाप्रयोगाभ्याससंलग्ना: जना: एव कवीनामाचार्याणां च स्वयमेव कथनविशेषान् अलङ्कारान् प्रकाशयितुं सक्षमा: भवान्तीति भाव: ।

विशेष—

(१) अलङ्कार-विषयक नयी-नयी होने वाली उद्भावनाओं के कारण अलङ्कारों के भेद की संख्या अपरिमित हो जाती है । उन सभी अपरिमित अलङ्कार प्रभेदों का विवेचन अत्यन्त दुष्कर है अत: यहाँ इस ग्रन्थ में इस विस्तार को संक्षिप्त करके परिमित भेदों का ही निरूपण किया गया है ।

(२) इन अनन्त विकल्पों के यथावत् ज्ञान के लिए काव्यानुशीलन और शास्त्रानुशीलन का अभ्यास आवश्यक है । अभ्यास से ही विकल्पों की उद्भावना और उनका ज्ञान किया जा सकता है ।

॥ इस प्रकार डॉ० जमुनापाठककृत काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद की 'शशिप्रभा' नामक संस्कृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ॥